श्री प्रेमचंद

जन्म बनारस के पास लमही मे १८८० ई० मे। असली नाम श्री धनपतराय। आठ वर्ष की आयु मे माता और चौदह मे पिता का निधन हो गया। अपने बल-बूते पर पढे। बी० ए० किया। १९०१ मे उपन्यास लिखना शुरू किया। कहानी १९०७ से लिखने लगे। उर्दू मे नवावराय के नाम से लिखते थे। १९१० मे सोजेवतन जब्त की गयी, उसके बाद प्रेमचद के नाम से लिखने लगे। १९२० तक सरकारी नौकरी की। फिर सत्याग्रह से प्रभावित हो नौकरी छोड दी। १९२३ मे सरस्वती प्रेम और १९३० मे 'हस' की स्थापना की। ८ अक्तूबर १९३६ को निधन हुआ।

प्रेमाश्रम का रचना काल—१९१८-१९ ई०

प्रेमाश्रम

प्रेमचंद

सरस्वती प्रेस
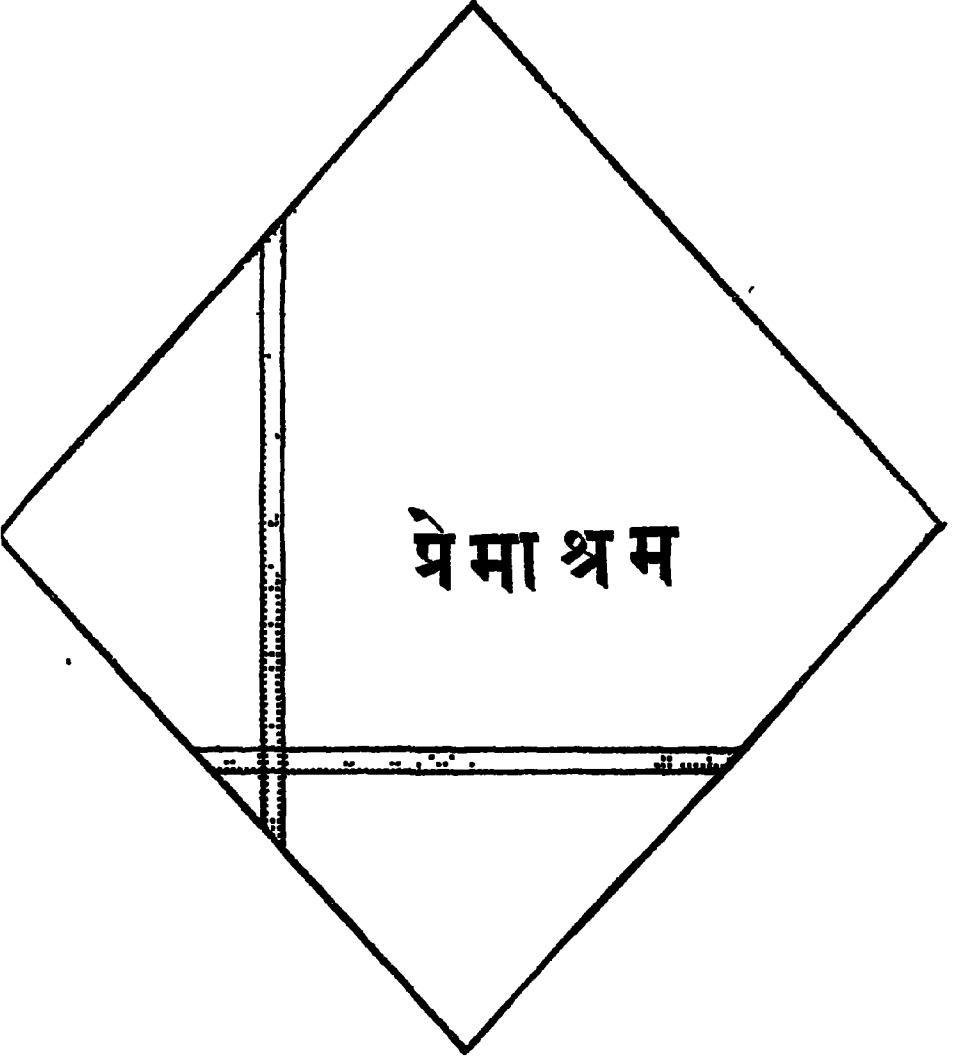
रचना काल : १९१८-१९ ई०

प्रेमाश्रम

१

सध्या हो गयी है। दिन भर के थके-मांदे बैल खेत से,आ गये है। घरो से धुएँ के काले बादल उठने लगे। लखनपुर मे आज परगने के हाकिम की परताल थी। गाँव के नेतागण दिन भर उनके घोडे के पीछे-पीछे दौडते रहे थे। इस समय वह अलाव के पास बैठे हुए नारियल पी रहे है और हाकिमो के चरित्र पर अपना-अपना मत प्रकट कर रहे है। लखनपुर बनारस नगर से बारह मील पर उत्तर की ओर एक बडा गाँव है। यहाँ अधिकाश कुर्मी और ठाकुरो की बस्ती है, दो-चार घर अन्य जातियो के भी है।

मनोहर ने कहा, भाई हाकिम तो अँगरेज, अगर यह न होते तो इस देशवाले हाकिम हम लोगो को पीस कर पी जाते।

दुखरन भगत ने इस कथन का समर्थन किया—जैसा उनका अकबाल है, वैसा ही नारायण ने स्वभाव भी दिया है। न्याय करना यही जानते है, दूध का दूध और पानी का पानी, घूस-रिसवत से कुछ मतलब नही। आज छोटे साहब को देखो, मुँह-अँधेरे घोडे पर सवार हो गये और दिन भर परताल की। तहसीलदार, पेसकार, कानूनगोय एक भी उनके साथ नही पहुँचता था।

सुक्खू कुर्मी ने कहा—यह लोग अँगरेजो की क्या बराबरी करेंगे ? बस खाली गाली देना और इजलास पर गरजना जानते है। घर से तो निकलते ही नही। जो कुछ चपरासी या पटवारी ने कह दिया, वही मान गये। दिन भर पडे-पडे आलसी हो जाते हैं।

मनोहर—सुनते है अँगरेज लोग घी नही खाते।

सुक्खू—घी क्यो नही खाते ? बिना घी-दूध के इतना बूता कहाँ से होगा ? वह मसक्कत करते हैं, इसी से उन्हे घी-दूध पच जाता है। हमारे देशी हाकिम खाते तो बहुत हैं पर खाट पर पडे रहते है। इसी से उनका पेट बढ जाता है।

दुखरन भगत—तहसीलदार साहब तो ऐसे मालूम होते है जैसे कोल्हू। अभी पहले आये थे तो कैसे दुबले-पतले थे, लेकिन दो ही साल मे उन्हे न जाने कहाँ की मोटाई लग गयी।

सुक्खू—रिसवत का पैसा देह फुला देता है।

मनोहर—यह कहने की बात है। तहसीलदार एक पैसा भी नही लेते।

सुक्खू—बिना हराम की कौडी खाये देह फूल ही नही सकती।

मनोहर ने हँस कर कहा—पटवारी की देह क्यो नही फूल जाती, चुचके आम बने हुए है।

सुक्खू—पटवारी सैकडे-हजार की गठरी थोडे ही उड़ाता है। जव बहुत दाँव-पेच किया तो दो-चार रुपये मिल गये। उसकी तनख्वाह तो कानूनगोय ले लेते है। इसी छीनझपट पर निर्वाह करता है, तो देह कहाँ से फूलेगी? तकावी मे देखा नही, तहसीलदार साहब ने हजारो पर हाथ फेर दिया।

दुखरन—कहते हैं कि विद्या से आदमी की बुद्धि ठीक हो जाती है, पर यहाँ उलटा ही देखने मे आता है। यह हाकिम और अमले तो पढे-लिखे विद्वान होते है, लेकिन किसी को दया-धर्म का विचार नही होता।

सुक्खू—जब देश के अभाग आते हैं तो सभी बाते उलटी हो जाती है। जब बीमार के मरने के दिन आ जाते है तो औषधि भी औगुन करती है।

मनोहर—हमी लोग तो रिसवत दे कर उनकी आदत बिगाड़ देते हैं। हम न दें तो वह कैसे पाये! बुरे तो हम हैं। लेने वाला मिलता हुआ धन थोडे ही छोड देगा? यहाँ तो आपस मे ही एक दूसरे को खाये जाते है। तुम हमे लूटने को तैयार, हम तुम्हे लूटने को तैयार। इसका और क्या फल होगा?

दुखरन—अरे तो हम मूरख, गँवार, अपढ़ है। वह लोग तो विद्यावान है। उन्हे न सोचना चाहिए कि यह गरीब लोग हमारे ही भाई बद है! हमे भगवान ने विद्या दी है, तो इन पर निगाह रखे। इन विद्यावानो से तो हम मूरख ही अच्छे। अन्याय सह लेना अन्याय करने से तो अच्छा है।

सुक्खू—यह विद्या का दोष नही, देश का अभाग है।

मनोहर—न विद्या का दोष है, न देश का अभाग; यह हमारी फूट का फल है। सब अपना दोष है। विद्या से और कुछ नही होता तो दूसरो का धन ऐंठना तो आ जाता है। मूरख रहने से तो अपना धन गँवाना पडता है।

सुक्खू—हाँ, तुमने यह ठीक कहा कि विद्या से दूसरो का धन लेना आ जाता है। हमारे बडे सरकार जब तक रहे दो साल की मालगुजारी बाकी पड जाती थी, तब भी डाँट-डपट कर छोड़ देते थे! छोटे सरकार जब से मालिक हुए है, देखते हो, कैसा उपद्रव कर रहे हैं! रात-दिन जाफा, बेदखली, अखराज की धूम मची हुई है!

दुखरन—कारिंदा साहब कल कहते थे कि अब की इस गाँव की बारी है, देखो क्या होता है?

मनोहर—होगा क्या, तुम हमारे खेत पर चढोगे, हम तुम्हारे खेत पर चढेंगे, छोटे सरकार की चाँदी होगी। सरकार की आँखे तो तब खुलती जब कोई किसी के खेत पर दाँव न लगाता। सब कौल कर लेते। लेकिन यह कहाँ होनेवाला है। सब से पहले तो सुक्खू महतो दौडेंगे।

सुक्खू—कौन कहे कि मनोहर न दौड़ेंगे।

मनोहर—मुझसे चाहे गगाजली उठवा लो, मैं खेत पर न जाऊँगा और जाऊँगा

कैसे, कुछ घर मे पूंजी भी तो हो। अभी रब्बी मे महीनो की देर है और घर मे अनाज का दाना नही है। गुड एक सौ रुपये से कुछ ऊपर ही हुआ है, लेकिन बैल बैठाऊँ हो गया है, डेढ़ सौ लगेंगे तब कही एक बैल आयेगा।

दुखरन—क्या जाने क्या हो गया कि अब खेती मे बरक्कत ही नही रही। पाँच बीघे रब्बी बोयी थी, लेकिन दस मन की भी आशा नही है और गुड का तुम जानते ही हो, जो हाल हुआ। कोल्हाडे मे ही बिसेसर साह ने तौला लिया। बाल-बच्चो के लिए शीरा तक न बचा। देखें भगवान कैसे पार लगाते है।

अभी यही बातें हो रही थी कि गिरधर महाराज आते हुए दिखायी दिये। लम्बा डील था, भरा हुआ बदन, तनी हुई छाती, सिर पर एक पगडी, बदन पर एक चुस्त मिरजई। मोटा-सा लट्ठ कधे पर रखे हुए थे। उन्हे देखते ही सब लोग माँचो से उतर कर जमीन पर बैठ गये। यह महाशय जमीदार के चपरासी थे। जबान से सबके दोस्त, दिल से सब के दुश्मन थे। जमीदार के सामने जमीदार की-सी कहते थे, असामियो के सामने असामियो की-सी। इसलिए उनके पीठ पीछे लोग चाहे उनकी कितनी ही बुराइयाँ करें, मुँह पर कोई कुछ न कहता था।

सुक्खू ने पूछा—कहो महाराज किधर से?

गिरधर ने इस ढग से कहा, मानो वह जीवन से असतुष्ट है—किधर से बतायें, ज्ञान बाबू के मारे नाको दम है! अब हुकुम हुआ है कि असामियो को घी के लिए रुपये दे दो। रुपये सेर का भाव कटेगा। दिन भर दौडते हो गया।

मनोहर—कितने का घी मिला?

गिरधर—अभी तो खाली रुपया बाँट रहे है। बड़े सरकार की बरसी होनेवाली है। उसी की तैयारी है। आज कोई ५० रुपये बाँटे है।

मनोहर—लेकिन बाजार-भाव तो दस छटाँक का है।

गिरधर—भाई, हम तो हुक्म के गुलाम है। बाजार मे छटाँक भर बिके, हमको तो सेर भर लेने का हुक्म है। इस गाँव मे भी ५० रुपये देने हैं। बोलो सुक्खू महतो, कितना लेते हो?

सुक्खू ने सिर नीचा करके कहा, जितना चाहे दे दो, तुम्हारी जमीन मे बसे हुए है, भाग के कहाँ जायेंगे?

गिरधर—तुम बड़े असामी हो। भला दस रुपये तो लो और दुखरन भगत, तुम्हे कितना दे?

दुखरन—हमे भी पाँच रुपये दे दो।

मनोहर—मेरे घर तो एक ही भैंस लगती है, उसका दूध बाल-बच्चो मे उठ जाता है, घी होता ही नही। अगर गाँव मे कोई कह दे कि मैंने एक पैसे का भी घी बेचा है तो ५० रुपये लेने पर तैयार हूँ।

गिरधर—अरे क्या ५ रुपये भी न लोगे? भला भगत के बराबर तो हो जाओ।

मनोहर—भगत के घर मे भैंस लगती है, घी बिकता है, वह जितना चाहे ले लें।

मैं रुपये ले लूँ तो मुझे बाजार से दस छटाँक का मोल ले कर देना पडेगा।

गिरधर—जो चाहो करो, पर सरकार का हुक्म तो मानना ही पडेगा। लालगज मे ३० रुपये दे आया हूँ। वहाँ गाँव मे एक भैंस भी नही है। लोग बाजार से ही ले कर देगे। पडाव मे २० रुपये दिये है। वहाँ भी जानते हो किसी के भैंस नही है।

मनोहर—भैंस न होगी तो पास रुपये होगे। यहाँ तो गाँठ मे कौडी भी नही है।

गिरधर—जब जमीदार की जमीन जोतते हो तो उसके हुक्म के बाहर नही जा सकते।

मनोहर—जमीन कोई खैरात जोतते है! उसका लगान देते है। एक किस्त भी बाकी पड जाये तो नालिस होती है।

गिरधर—मनोहर, घी तो तुम दोगे दौडते हुए, पर चार बाते सुन कर। जमीदार के गाँव मे रहकर उससे हेकडी नही चल सकती। अभी कारिंदा साहबे बुलायेगे तो रुपये भी दोगे, हाथ-पैर भी पडोगे, मैं सीधे-सीधे कहता हूँ तो तेवर बदलते हो।

मनोहर ने गर्म हो कर कहा—कारिंदा कोई काटू है न जमीदार कोई हौवा है। यहाँ कोई दबेल नही है। जब कौडी-कौडी लगान चुकाते है तो धौस क्यो सहे?

गिरधर—सरकार को अभी जानते नही हो। बडे सरकार का जमाना अब नही है। इनके चगुल मे एक बार आ जाओगे तो निकलते न बनेगा।

मनोहर की क्रोधाग्नि और भी प्रचड हुई। बोला, अच्छा जाओ, तोप पर उडवा देना। गिरधर महाराज उठ खडे हुए। सुक्खू और दुखरन ने अब मनोहर के साथ बैठना उचित न समझा। वह भी गिरधर के साथ चले गये। मनोहर ने इन दोनो आदमियो को तीव्र दृष्टि से देखा और नारियल पीने लगा।

२

लखनपुर के जमीदारो का मकान काशी मे औरगाबाद के निकट था। मकान के दो खड आमने-सामने बने हुए थे। एक जनाना मकान था, दूसरी मरदानी बैठक। दोनो खडो के बीच की जमीन बेल-बूटे से सजी हुई थी, दोनो ओर ऊँची दीवारे खीची हुई थी, लेकिन दोनो ही खड जगह-जगह टूट-फूट गये थे। कही कोई कडी टूट गयी थी और उसे थूनियो के सहारे रोका गया था, कही दीवार फट गयी थी और कही छत धँस पडी थी—एक वृद्ध रोगी की तरह जो लाठी के सहारे चलता हो। किसी समय यह परिवार नगर मे बहुत प्रतिष्ठित था, किन्तु ऐश्वर्य के अभिमान और कुल-मर्यादा-पालन ने उसे धीरे-धीरे इतना गिरा दिया कि अब मोहल्ले का बनिया पैसे-धेले की चीज भी उनके नाम पर उधार न देता था। लाला जटाशकर मरते-मरते मर गये, पर जब घर से निकले तो पालकी पर। लडके-लडकियो के विवाह किये तो हौसले से। कोई उत्सव आता तो हृदय सरिता की भाँति उमड़ आता था, कोई मेहमान आ जाता तो उसे सर-आँखो पर बैठाते, साधु-सत्कार और अतिथि-सेवा मे उन्हे हार्दिक आनद होता था। इसी मर्यादा-रक्षा में जायदाद का बडा भाग बिक गया, कुछ रेहन हो गया

और अब लखनपुर के सिवा चार और छोटे-छोटे गाँव रह गये थे जिनसे कोई चार हजार वार्षिक लाभ होता था।

लाला जटाशकर के एक छोटे भाई थे। उनका नाम प्रभाशकर था। यही सियाह और सफेद के मालिक थे। बडे लाला साहब को अपनी भागवत और गीता से परमानुराग था। घर का प्रबध छोटे भाई के ही हाथो मे था। दोनो भाइयो मे इतना प्रेम था कि उनके बीच मे कभी कटु वाक्यो की नौबत न आयी थी। स्त्रियो मे तू-तू, मैं-मै होती थी, किंतु भाइयो पर इसका असर न पडता था। प्रभाशकर स्वय कितना ही कष्ट उठाये अपने भाई से कभी भूल कर शिकायत न करते थे। जटाशकर भी उनके किसी काम मे हस्तक्षेप न करते थे।

लाला जटाशकर का एक साल पूर्व देहात हो गया था। उनकी स्त्री उनके पहले ही मर चुकी थी। उनके दो पुत्र थे, प्रेमशकर और ज्ञानशकर। दोनो के विवाह हो चुके थे। प्रेमशकर चार-पाँच वर्षो से लापता थे। उनकी पत्नी श्रद्धा घर मे पडी उनके नाम को रोया करती थी। ज्ञानशकर ने गत वर्ष बी० ए० की उपाधि प्राप्त की थी और इस समय हारमोनियम बजाने मे मग्न रहते थे। उनके एक पुत्र था, मायाशकर। लाला प्रभाशकर की स्त्री जीवित थी। उनके तीन बेटे और दो बेटियाँ। बडे बेटे दयाशकर सब-इन्स्पेक्टर थे। विवाह हो चुका था। बाकी दोनो लडके अभी मदरसे मे अँगरेजी पढते थे। दोनो पुत्रियाँ भी कुँवारी थी।

प्रेमशकर ने बी० ए० की डिग्री लेने के बाद अमेरिका जा कर आगे पढने की इच्छा की थी, पर जब अपने चाचा को इसका विरोध करते देखा तो एक दिन चुपके से भाग निकले। घरवालो से पत्र-व्यवहार करना भी बद कर दिया। उनके पीछे ज्ञानशकर ने बाप और चाचा से लडाई ठानी। उनकी फजूलखर्चियो की आलोचना किया करते। कहते, क्या आप लोग हमारे लिए कुछ भी नही छोड जायेगे ? क्या आपकी यही इच्छा है कि हम रोटियो को मोहताज हो जायें ? किन्तु इसका जवाब यही मिलता, भाई हम लोग तो जिस प्रकार अब तक निभाते आये है उसी प्रकार निभायेगे। यदि तुम इससे उत्तम प्रबध कर सकते हो तो करो, जरा हम भी देखे। ज्ञानशकर उस समय कालेज मे थे, यह चुनौती सुन कर चुप हो जाते थे। पर जब से वह डिग्री ले कर आये थे और इधर उनके पिता का देहात हो चुका था, उन्होने घर के प्रबध मे सशोधन करने का यत्न करना शुरू किया था, जिसका फल यह हुआ था कि उस मेल-मिलाप मे बहुत कुछ अतर पड चुका था, जो पिछले साठ वर्षो से चला आता था। न चाचा का प्रबध भतीजे को पसद था, न भतीजे का चाचा को। आये दिन शाब्दिक सग्राम होते रहते। ज्ञानशकर कहते, आपने सारी जायदाद चौपट कर दी, हम लोगो को कही का न रखा। सारा जीवन खाट पर पडे-पडे पूर्वजो की कमाई खाने मे काट दिया। मर्यादा-रक्षा की तारीफ तो तब थी जब अपने बाहुबल से कुछ करते, या जायदाद को बचा कर करते। घर बेच कर तमाशा देखना कौन-सा मुश्किल काम है ? लाला प्रभाशकर यह कटु वाक्य सुन कर अपने भाई को याद करते और उनका नाम ले कर रोने लगते। यह चोटें उनसे सही न जाती थी।

लाला जटाशकर की बरसी के लिए प्रभाशंकर ने दो हजार का अनुमान किया था। एक हजार ब्राह्मणो का भोज होनेवाला था। नगर भर के समस्त प्रतिष्ठित पुरुषो को निमत्रण देने का विचार था। इसके सिवा चाँदी के बर्तन, कालीन, पलग, वस्त्र आदि महापात्र को देने के लिए बन रहे थे। ज्ञानशकर इसे धन का अपव्यय समझते थे। उनकी राय थी कि इस कार्य मे दो सौ रुपये से अधिक खर्च न किया जाय। जब घर की दशा ऐक है ऐसी चिंताजनतो इतने रुपये खर्च करना सर्वथा अनुचित है; किंतु प्रभाशकर कहते थे, जब मैं मर जाऊँ तब तुम चाहे अपने बाप को एक-एक बूंद पानी के लिए तरसाना; पर जब तक मेरे दम मे दम है, मैं उनकी आत्मा को दुखी नही कर सकता। सारे नगर मे उनकी उदारता की धूम थी, बड़े-बड़े उनके सामने सिर झुका लेते थे, ऐसे प्रतिभाशाली पुरुष की बरसी भी यथा योग्य होनी चाहिए—यही हमारी श्रद्धा और प्रेम का अतिम प्रमाण है।

ज्ञानशकर के हृदय मे भावी उन्नति की बडी-बडी अभिलाषाएँ थी। वह अपने परिवार को फिर समृद्ध और सम्मान के शिखर पर ले जाना चाहते थे। घोडे और फिटन की उन्हे बडी-बड़ी आकाक्षा थी। वह शान से फिटन पर बैठ कर निकला चाहते थे कि हठात् लोगो की आँखें उनकी तरफ उठ जायें और लोग कहे कि लाला जटा-शकर के बेटे हैं। वह अपने दीवानखाने को नाना प्रकार की सामग्रियो से सजाना चाहते थे। मकान को भी आवश्यकतानुसार बढाना चाहते थे। वह घटो एकाग्र बैठे हुए इन्ही विचारो मे मग्न रहते थे। चैन से जीवन व्यतीत हो, यही उनका ध्येय था। वर्त्तमान दशा मे मितव्ययिता के सिवा उन्हे इसका कोई दूसरा उपाय न सूझता था। कोई छोटी-मोटी नौकरी करने मे वह अपमान समझते थे; वकालत से उन्हें अरुचि थी और उच्चाधिकारो का द्वार उनके लिए बद था। उनका घराना शहर मे चाहे कितना ही सम्मानित हो, पर देश के विधाताओ की दृष्टि मे उसे वह गौरव प्राप्त न था जो उच्चाधिकार-सिद्धि का अनुष्ठान है। लाला जटाशकर तो विरक्त ही थे और प्रभा-शकर केवल जिलाधीशो की कृपा-दृष्टि को अपने लिए काफी समझते थे। इसका फल जो कुछ हो सकता था वह उन्हे मिल चुका था। उनके बडे बेटे दयाशकर सब-इन्स्पे-क्टर हो गये थे। ज्ञानशकर कभी-कभी इस अकर्मण्यता के लिए भी अपने चाचा से उलझा करते थे—आपने अपना सारा जीवन नष्ट कर दिया। लाखो की जायदाद भोग-विलास मे उड़ा दी। सदा आतिथ्य-सत्कार और मर्यादा-रक्षा पर जान देते रहे। अगर इस उत्साह का एक अश भी अधिकारी वर्ग के सेवा-सत्कार मे समर्पण करते तो आज मैं डिप्टी कलक्टर होता। खानेवाले खा-खाकर चल दिये। अब उन्हें याद भी नही रहा कि आपने उन्हे कभी खिलाया या नही। खस्ता कचौड़ियाँ और सोने के पत्र लगे हुए पान के बीडे खिलाने से परिवार की उन्नति नही होती, इसके और ही रास्ते हैं। बेचारे प्रभाशकर यह तिरस्कार सुन कर व्यथित होते और कहते, बेटा, ऐसी-ऐसी बातें करके हमे न जलाओ। तुम फिटन और घोडे, कुरसी और मेज, आइने और तस्वीरो पर जान देते हो। तुम चाहते हो कि हम अच्छे से अच्छा खायें, अच्छे से अच्छा

पहने, लेकिन खाने पहनने से दूसरो को क्या सुख होगा? तुम्हारे धन और सम्पत्ति से दूसरे क्या लाभ उठायेंगे? हमने भोग-विलास में जीवन नही विताया। वह कुल-मर्यादा की रक्षा थी। विलासिता यह है, जिसके पीछे तुम उन्मत्त हो। हमने जो कुछ किया नाम के लिए किया। घर मे उपवास हो गया है, लेकिन जब कोई मेहमान आ गया तो उसे सिर और आंखो पर लेते थे। तुमको बस अपना पेट भरने की, अपने शौक की, अपने विलास की धुन है। यह जायदाद वनाने के नही विगाड़ने के लक्षण है। अतर इतना ही है कि हमने दूसरो के लिए बिगाड़ा, तुम अपने लिए विगाड़ोगे।

मुसीवत यह थी कि ज्ञानशंकर की स्त्री विद्यावती भी इन विचारो मे अपने पति से सहमत न थी। उसके विचार वहुत-कुछ लाला प्रभाशंकर से मिलते थे। उसे परमार्थ पर स्वार्थ से अधिक श्रद्धा थी। उसे वाबू ज्ञानशकर को अपने चाचा से वाद-विवाद करते देख कर खेद होता था और अक्सर मिलने पर वह उन्हे समझाने की चेप्टा करती थी। पर ज्ञानशकर उसे झिड़क दिया करते थे। वह इतने शिक्षित हो कर भी स्त्री का आदर उमसे अधिक न करते थे, जितना अपने पैर के जूतो का। अतएव उनका दाम्पत्य जीवन भी, जो चित्त की शाति का एक प्रधान साधन है, सुखकर न था।

३

मनोहर अक्खडपन की वातें तो कर वैठा, किंतु जव क्रोध शांत हुआ तो मालूम हुआ कि मुझसे वड़ी भूल हुई। गाँववाले सव के सव मेरे दुश्मन हैं। वह इस समय चौपाल मे वैठे मेरी निंदा कर रहे होगे। कारिंदा न जाने कौन-सा उपद्रव मचाये। वेचारे दुर्जन को बात की वात मे मटिया मेट कर दिया, तो फिर मुझे विगाड़ते क्या देर लगती है। मैं अपनी जवान से लाचार हूँ। कितना ही उसे वस मे रखना चाहता हूँ, पर नही रख सकता। यही न होता कि जहाँ और सव लेना-देना है वहाँ दस रुपये और हो जाते, नक्कू तो न वनता।

लेकिन इन विचारो ने एक क्षण मे फिर पलटा खाया। मनुष्य जिस काम को हृदय से बुरा नही समझता, उसके कुपरिणाम का भय एक गौरवपूर्ण धैर्य की शरण लिया करता है। मनोहर अव इस विचार से अपने को शाति देने लगा, मैं विगड़ जाऊँगा तो वला से, पर किसी की धौंस तो न सहूँगा, किसी के सामने सिर तो नीचा नही करता। जमीदार भी देख लें कि गाँव मे सव के सव भाँड़ ही नही है। अगर कोई मामला खड़ा किया तो अदालत मे हाकिम के सामने सारा भंडा फोड़ दूंगा, जो कुछ होगा, देखा जायगा।

इसी उधेड़वुन मे वह भोजन करने लगा। चौके में एक मिट्टी के तेल का चिराग जल रहा था; किंतु छत मे धुआँ इतना भरा हुआ था कि उसका प्रकाश मद पड़ गया था। उसकी स्त्री विलासी ने एक पीतल की थाली में वथुए की भाजी और जौ की कई मोटी-मोटी रोटियाँ परस दी। मनोहर इस भाँति रोटियाँ तोड़-तोड़ मुँह में रखता

था, जैसे कोई दवा खा रहा हो। इतनी ही रुचि से वह घास भी खाता। बिलासी ने पूछा, क्या साग अच्छा नहीं? गुड़ दूँ?

मनोहर—नहीं, साग तो अच्छा है।

बिलासी—क्या भूख नहीं?

मनोहर—भूख क्यों नहीं है, खा तो रहा हूँ।

बिलासी—खाते तो नहीं हो, जैसे ऊँघ रहे हो। किसी से कुछ कहा-सुनी तो नहीं हुई है?

मनोहर—नहीं, कहा-सुनी किस से होती?

इतने में एक युवक कोठरी में आ कर खड़ा हो गया। उसका शरीर खूब गठीला हृष्ट-पुष्ट था, छाती चौड़ी और भरी हुई थी। आँखों से तेज झलक रहा था। उसके गले में सोने का यंत्र था और दाहिने बाँह में चाँदी का एक अनत। यह मनोहर का पुत्र बलराज था।

बिलासी—कहाँ घूम रहे हो? आओ, खा लो, थाली परसूँ।

बलराज ने धुएँ से आँखें मलते हुए कहा, काहे दादा, आज गिरधर महाराज तुमसे क्यों बिगड़ रहे थे? लोग कहते हैं कि बहुत लाल-पीले हो रहे थे?

मनोहर—कुछ नहीं, तुमसे कौन कहता था?

बलराज—सभी लोग तो कह रहे हैं। तुमसे घी माँगते थे, तुमने कहा, मेरे पास घी नहीं है, बस इसी पर तन गये।

मनोहर—अरे तो कोई झगड़ा थोड़े ही हुआ। गिरधर महाराज ने कहा, तुम्हें घी देना पड़ेगा, हमने कह दिया, जब घी हो जायगा तब देंगे, अभी तो नहीं है। इसमें भला झगड़ने की कौन-सी बात थी?

बलराज—झगड़े की बात क्यों नहीं है। कोई हमसे क्यों घी माँगे? किसी का दिया खाते हैं कि किसी के घर माँगने जाते हैं? अपना तो एक पैसा नहीं छोड़ते, तो हम क्यों धौंस सहें? न हुआ मैं, नहीं तो दिखा देता। क्या हमको भी दुर्जन समझ लिया है?

मनोहर की छाती अभिमान से फूली जाती थी, पर इसके साथ ही यह चिंता भी थी कि कहीं यह कोई उजड्डपन न कर बैठे। बोला, चुपके से बैठ कर खाना खा लो, बहुत बहकना अच्छा नहीं होता। कोई सुन लेगा तो वहाँ जा कर एक की चार जड़ आवेगा। यहाँ कोई अपना मित्र नहीं है।

बलराज—सुन लेगा तो क्या किसी से छिपा के कहते हैं। जिसे बहुत घमंड हो आ कर देख ले। एक-एक का सिर तोड़ के रख दें। यही न होगा, कैद हो कर चला जाऊँगा। इससे कौन डरता है? महात्मा गाँधी भी तो कैद हो आये हैं।

बिलासी ने मनोहर की ओर तिरस्कार के भाव से देख कर कहा, तुम्हारी कैसी आदत है कि जब देखो एक न एक बखेड़ा मचाये ही रहते हो। जब सारा गाँव घी दे रहा है तब हम क्या गाँव से बाहर हैं? जैसे बन पड़ेगा देंगे। इसमें कोई अपनी

हेठी थोड़े ही हुई जाती है? हेठा तो नारायण ने ही बना दिया है। तो क्या अकड़ने से ऊँचे हो जायँगे? थोड़ा-सा घी हाँड़ी में है, दो-चार दिन में और बटोर लूँगी, जाकर तौल आना।

बलराज—क्यों दे आयें? किसी के दबैल हैं।

बिलासी—नहीं, तुम तो लाटगवर्नर हो। घर में भूनी भाँग नहीं, उस पर इतना घमंड?

बलराज—हम दरिद्र नहीं, किसी से माँगने तो नहीं जाते?

बिलासी—अरे जा बैठ, आया है बड़ा जोधा बनके। ऊँट जब तक पहाड़ पर नहीं चढ़ता तब तक समझता है कि मुझसे ऊँचा और कौन होगा? जमींदार से बैर कर गाँव में रहना सहज नहीं है। (मनोहर से) सुनते हो महापुरुष, कल कारिंदा के पास जाके कह-सुन आओ।

मनोहर—मैं तो अब नहीं जाऊँगा।

बिलासी—क्यों?

मनोहर—क्यों क्या, अपनी खुशी है। जायें क्या, अपने ऊपर तालियाँ लगवायें?

बिलासी—अच्छा, तो मुझे जाने दोगे?

मनोहर—तुम्हें भी न जाने दूंगा। कारिंदा हमारा कर ही क्या सकता है? बहुत करेगा अपना निकमी खेत छोड़ा लेगा। न दो हल चलेंगे, एक ही सही।

यद्यपि मनोहर बढ़-बढ़ कर बातें कर रहा था, पर वास्तव में उसका इन्कार अब परास्त तर्क के समान था। यदि बिना दूसरों की दृष्टि में अपमान उठाये बिगड़ा हुआ खेल बन जाय तो उसे कोई आपत्ति नहीं थी। हाँ, वह स्वयं क्षमा-प्रार्थना करने में अपनी हेठी समझता था। एक बार तन कर फिर झुकना उसके लिए बड़ी लज्जा की बात थी। बलराज की उद्दंडता उसे शांत करने में हानि के भय से भी अधिक सफल हुई थी।

प्रातःकाल बिलासी चौपाल जाने को तैयार हुई; पर न मनोहर साथ चलने को राजी होता था, न बलराज। अकेली जाने की उसकी हिम्मत न पड़ती थी। इतने में कादिर मियाँ ने घर में प्रवेश किया। बूढ़े आदमी थे, ठिंगना डील, लम्बी दाढ़ी, घुटने के ऊपर तक धोती, एक गाढ़े की मिरजई पहने हुए थे। गाँव के नाते से वह मनोहर के बड़े भाई होते थे। बिलासी ने उन्हें देखते ही थोड़ा-सा घूंघट निकाल लिया।

कादिर ने चिंतापूर्ण भाव से कहा, अरे मनोहर, कल तुम्हें क्या सूझ गयी? जल्दी जाकर कारिंदा साहब को मना लो, नहीं तो फिर कुछ करते-धरते न बनेगी। सुना है वह तुम्हारी शिकायत करने मालिकों के पास जा रहे हैं। सुक्खू भी साथ जाने को तैयार है। नहीं मालूम, दोनों में क्या साँठ-गाँठ हुई है।

बिलासी—भाई जी, यह बूढ़े हो गये, लेकिन इनका लड़कपन अभी नहीं गया। कितना समझाती हूँ, बस अपने ही मन की करते हैं। इन्हीं की देखा-देखी एक लड़का है वह भी हाथ से निकला जाता है। जिससे देखो उसी से उलझ पड़ता है। भला इनने

पूछा जाय कि सारे गाँव ने घी के रुपये लिये तो तुम्हे नाही करने मे क्या पडी थी ?

कादिर—इनकी भूल है और क्या ? दस रुपये हमे भी लेने पड़े, क्या करते ? और यह कोई नयी बात थोडे ही है ? बडे सरकार थे तब भी तो एक न एक बेगार लगी ही रहती थी।

मनोहर—भैया, तब की बाते जाने दो। तब साल दो साल की देन बाकी पड जाती थी ! मुदा मालिक कभी कुडकी बेदखली नही करते थे। जब कोई काम-काज पडता था, तब हमको नेवता मिलता था। लडकियो के ब्याह के लिए उनके यहाँ से लकडी, चारा और २५ रु० बँधा हुआ था। यह सब जानते हो कि नही ? जब वह अपने लडको की तरह पालते थे तो रैयत भी हँसी-खुशी उनकी बेगार करती थी। अब यह बाते तो गयी, बस एक न एक पच्चड लगा ही रहता है। तो जब उनकी ओर से यह कडाई है तो हम भी कोई मिट्टी के लोदे थोडे ही है ?

कादिर—तब की बाते छोडो, अब जो सामने है उसे देखो। चलो, जल्दी करो, मै इसी लिए तुम्हारे पास आया हूँ। मेरे बैल खेत मे खडे है।

मनोहर—दादा, मैं तो न जाऊँगा।

बिलासी—इनकी चूडियाँ मैली हो जायँगी, चलो मैं चलती हूँ।

कादिर और बिलासी दोनो चौपाल चले। वहाँ इस वक्त बहुत से आदमी जमा थे। कुछ लोग लगान के रुपये दाखिल करने आये, कुछ घी के रुपये लेने के लिए और कुछ केवल तमाशा देखने और ठकुरसुहाती करने के लिए। कारिंदे का नाम गुलाम गौस खाँ था। वह बृहदाकार मनुष्य थे, साँवला रग, लम्बी दाढी, चेहरे से कठोरता झलकती थी। अपनी जवानी मे वह पलटन मे नौकर थे और हवलदार के दरजे तक पहुँचे थे। जब सीमा प्रान्त मे कुछ छेडछाड हुई तब बीमारी की छुट्टी ले कर घर भाग आये और यही से इस्तीफा पेश कर दिया। वह अब भी अपने सैनिक जीवन की कथाएँ मजे ले-ले कर कहते थे। इस समय वह तख्त पर बैठे हुए हुक्का पी रहे थे। सुक्खू और दुखरन तख्त के नीचे बैठे हुए थे।

सुक्खू ने कहा, हम मजदूर ठहरे, हम घमड करे तो हमारी भूल है। जमीदार की जमीन मे बसते है, उसका दिया खाते है, उससे बिगड कर कहाँ जायँगे—क्यो दुखरन ?

दुखरन—हाँ, ठीक ही है।

सुक्खू—नारायण हमे चार पैसे दे, दस मन अनाज दे तो क्या हम अपने मालिको से लड़े, मारे घमड के धरती पर पैर न रखे ?

दुखरन—यही मद तो आदमी को खराब करता है। इसी मद ने रावण को मिटाया, इसी के कारण जरासध और दुरजोधन का सर्वनाश हो गया। तो भला हमारी-तुम्हारी कौन बात है ?

इतने मे कादिर मियाँ चौपाल मे आये। उनके पीछे-पीछे बिलासी भी आयी। कादिर ने कहा, खाँ साहब, यह मनोहर की घरवाली आयी है, जितने रुपये चाहे घी के लिए दे दे। बेचारी डर के मारे आती न थी।

गौस खाँ ने कटु स्वर से कहा, वह कहाँ है मनोहर, क्या उसे आते शरम आती थी?

बिलासी ने दीनता पूर्वक कहा, सरकार उनकी बातो का कुछ ख्याल न करें। आपकी गुलामी करने को मै तैयार हूँ।

कादिर—यूँ तो गऊ है, किंतु आज न जाने उसके सिर कैसे भूत सवार हो गया। क्यो सुक्खू महतो, आज तक गाँव मे किसी से लड़ाई हुई है?

सुक्खू ने बगले झाँकते हुए कहा, नही भाई, कोई झूठ थोडे ही कह देगा।

कादिर—अब बैठा रो रहा है। कितना समझाया कि चल के खाँ साहब से कसूर माफ करा ले, लेकिन शरम से आता नही है।

गौस खाँ—शर्म नही, शरारत है। उसके सिर पर जो भूत चढा हुआ है उसका उतार मेरे पास है। उसे गरूर हो गया है।

कादिर—अरे खाँ साहब, बेचारा मजूर गरूर किस बात पर करेगा? मूरख उजड्ड आदमी है, बात करने का सहूर नही है।

गौस खाँ—तुम्हे वकालत करने की जरूरत नही। मै अपना काम खूब जानता हूँ। इस तरह दबने लगा तब तो मुझसे कारिंदागिरी हो चुकी। आज एक ने तेवर बदले हैं, कल उसके दूसरे भाई शेर हो जायेंगे। फिर जमीदार को कौन पूछता है। अगर पलटन मे किसी ने ऐसी शरारत की होती तो उसे गोली मार दी जाती। जमीदार से आँखे बदलना खाला जी का घर नही है।

यह कह कर गौस खाँ टाँगन पर सवार होने चले। बिलासी रोती हुई उनके सामने हाथ बाँध कर खडी हो गयी और बोली, सरकार कही की न रहूँगी। जो डाँड चाहे लगा दीजिए, जो सजा चाहे दीजिए, मालिको के कान मे यह बात न डालिए। लेकिन खाँ साहब ने सुक्खू महतो को हत्थे पर चढा लिया था। वह सूखी करुणा को अपनी कपट-चाल मे बाधक बनाना नही चाहते थे। तुरत घोडे पर सवार हो गये और सुक्खू को आगे-आगे चलने का हुक्म दिया। कादिर मियाँ ने धीरे से गिरधर महाराज के कान मे कहा, क्या महाराज, बेचारे मनोहर का सत्यानाश करके ही दम लोगे?

गिरधर ने गौरव-युक्त भाव से कहा, जब तुम हमसे आँखे दिखलाओगे तो हम भी अपनी-सी करके रहेगे। हमसे कोई एक अगुल दबे तो हम उससे हाथ भर दबने को तैयार हैं। जो हमसे जौ भर तनेगा हम उससे गज भर तन जायेंगे।

कादिर—यह तो सुपद ही है, तुम हक से दबने लगोगे तो तुम्हे कौन पूछेगा? मुदा अब मनोहर के लिए कोई राह निकालो। उसका सुभाव तो जानते हो। गुस्सैल आदमी है, पहले बिगड़ जाता है, फिर बैठ कर रोता है। बेचारा मिट्टी मे मिल जायगा।

गिरधर—भाई, अब तो तीर हमारे हाथ से निकल गया।

कादिर—मनोहर की हत्या तुम्हारे ऊपर ही पड़ेगी।

गिरधर—एक उपाय मेरी समझ मे आता है। जा कर मनोहर से कह दो कि मालिक के पास जा कर हाथ-पैर पड़े। वहाँ मैं भी कुछ कह-सुन दूँगा। तुम लोगों के साथ नेकी करने का जी तो नही चाहता, काम पड़ने पर घिघिआते हो, काम निकल

गया तो सीधे ताकते भी नही। लेकिन अपनी-अपनी करनी अपने साथ है। जा कर उसे भेज दो।

कादिर और बिलासी मनोहर के पास गये। वह शका और चिंता की मूर्ति बना हुआ उसी रास्ते की ओर ताक रहा था। कादिर ने जाते ही यहाँ का समाचार कहा और गिरधर महाराज का आदेश भी सुना दिया। मनोहर क्षण भर सोच कर बोला, वहाँ मेरी और भी दुर्गति होगी। अब तो सिर पर पडी ही है, जो कुछ होगा, देखा जायगा।

कादिर—नही, तुम्हे जाना चाहिए। मैं भी चलूँगा।

मनोहर—मेरे पीछे तुम्हारी भी ले-दे होगी।

बिलासी ने कादिर की ओर अत्यत विनीत भाव से देख कर कहा, दादा जी, वह न जायेंगे, मैं ही तुम्हारे साथ चली चलूँगी।

कादिर—तुम क्या चलोगी, वहाँ बड़े आदमियो के सामने मुँह तो खुलना चाहिए।

बिलासी—न कुछ कहते बनेगा, रो तो लूँगी।

कादिर—यह जाने देंगे?

बिलासी—जाने क्यों न देंगे, मैं कुछ माँगती हूँ? इन्हे अपना बुरा-भला न सूझता हो, मुझे तो सूझता है।

कादिर—तो फिर देर न करनी चाहिए, नही तो वह लोग पहले से ही मालिको का कान भर देंगे।

मनोहर ज्यो का त्यो मूरत की तरह बैठा रहा। बिलासी घर मे गयी, अपने गहने निकाल कर पहने, चादर ओढी और बाहर निकल कर खड़ी हो गयी। कादिर मियाँ संकोच मे पडे हुए थे। उन्हे आशा थी कि अब भी मनोहर उठेगा; किंतु जब वह अपनी जगह से जग भी न हिला तब धीरे-धीरे आगे चले। बिलासी भी पीछे-पीछे चली। पर रह रह कर कातर नेत्रो से मनोहर की ओर ताकती जाती थी। जब वह गाँव के बाहर निकल गये, तो मनोहर कुछ सोच कर उठा और लपका हुआ कादिर मियाँ के समीप आ कर बिलासी से बोला, जा घर बैठ, मैं जाता हूँ।

४

तीसरा पहर था। ज्ञानशंकर दीवानखाने मे बैठे हुए एक किताब पढ रहे थे कि कहार ने आ कर कहा, बाबू साहब पूछते है, कै बजे हैं? ज्ञानशकर ने चिढ कर कहा, जा कह दे, आप को नीचे बुलाते हैं? क्या सारे दिन सोते रहेंगे?

इन महाशय का नाम बाबू ज्वालासिह था। ज्ञानशकर के सहपाठी थे और आज ही इस जिले मे डिप्टी कलेक्टर हो कर आये। दोपहर तक दोनो मित्रो मे बात चीत होती रही। ज्वालासिह रात भर के जगे थे, सो गये। ज्ञानशकर को नीद नही आयी। इस समय उनकी छाती पर साँप सा लोट रहा था। सब के सब बाजी लिये जाते हैं और मैं कही का न हुआ। कभी अपने ऊपर क्रोध आता, कभी अपने पिता और चाचा

के ऊपर। पुराना सौहार्द द्वेष का रूप ग्रहण करता जाता था। यदि इस समय अकस्मात् ज्वालासिंह के पद-च्युत होने का समाचार मिल जाता तो शायद ज्ञानशंकर के हृदय को शांति होती। वह इस क्षुद्र भाव को मन मे न आने देना चाहते थे। अपने को समझाते थे कि यह अपना-अपना भाग्य है। अपना मित्र कोई ऊँचा पद पाये तो हमे प्रसन्न होना चाहिए, किंतु उनकी विकलता इन सद् विचारो से न मिटती थी और बहुत यत्न करने पर भी परस्पर सम्भाषण मे उनकी लघुता प्रकट हो जाती थी। ज्वालासिंह को विदित हो रहा था कि मेरी यह तरक्की इन्हे जला रही है, किंतु यह सर्वथा ज्ञानशंकर की ईर्षा-वृत्ति का ही दोष न था। ज्वालासिंह के बात-व्यवहार में वह पहले की सी स्नेहमय सरलता न थी, वरन् उसकी जगह एक अज्ञात सहृदयता, एक कृत्रिम वात्सल्य, एक गौरव-युक्त साधुता पायी जाती थी, जो ज्ञानशंकर के घाव पर नमक का काम कर रही थी। इसमे सदेह नही कि ज्वालासिंह का यह दुःस्वभाव इच्छित न था, वह इतनी नीच प्रकृति के पुरुष न थे, पर अपनी सफलता ने उन्हें उन्मत्त कर दिया था। इधर ज्ञानशंकर इतने उदार न थे कि इससे मानव चरित्र के अध्ययन का आनंद उठाते।

कहार के जाने के क्षण भर पीछे ज्वालासिंह उतर पडे और बोले, यार, बताओ क्या समय है? जरा साहब से मिलने जाना है। ज्ञानशंकर ने कहा, अजी, मिल लेना ऐसी क्या जल्दी है?

ज्वालासिंह—नही भाई, एक बार मिलना जरूरी है, जरा मालूम तो हो जाय किस ढंग का आदमी है, खुश कैसे होता है?

ज्ञान—वह इस बात से खुश होता है कि आप दिन मे तीन बार उसके द्वार पर नाक रगड़ें।

ज्वालासिंह ने हँस कर कहा, तो कुछ मुश्किल नही, मैं पाँच बार सिजदे किया करूँगा।

ज्ञान—और वह इस बात से खुश होता है कि आप कायदे-कानून को तिलांजलि दीजिए, केवल उसकी इच्छा को कानून समझिए।

ज्वालासिंह—ऐसा ही करूँगा।

ज्ञान—इनकम टैक्स बढ़ाना पड़ेगा। किसी अभियुक्त को भूल कर भी छोड़ा तो बहुत बुरी तरह खबर लेगा।

ज्वाला—भाई, तुम बना रहे हो, ऐसा क्या होगा!

ज्ञान—नहीं, विश्वास मानिए, वह ऐसा ही विचित्र जीव है।

ज्वाला—तब तो उसके साथ मेरा निबाह कठिन है।

ज्ञान—जरा भी नहीं। आज आप ऐसी बातें कर रहे हैं, कल को उसके इशारों पर नाचेंगे। इस घमंड में न रहिए कि आपको अधिकार प्राप्त हुआ है, वास्तव मे आपने गुलामी लिखायी है। यहाँ आपको आत्मा की स्वाधीनता से हाथ धोना पड़ेगा, न्याय और सत्य का गला घोटना पड़ेगा, यही आपकी उन्नति और सम्मान के साधन हैं। मैं

तो ऐसे अधिकार पर लात मारता हूँ। यहाँ तो अल्लाहताला भी आसमान से उतर आयें और अन्याय करने को कहे तो उनका हुक्म न मानूँ।

ज्वालासिंह समझ गये कि यह जले हुए दिल के फफोले है। बोले, अभी ऐसी दूर की ले रहे हो, कल को नामजद हो जाओ, तो यह बातें भूल जायें।

ज्ञानशंकर—हाँ, बहुत सम्भव है, क्योकि मै भी तो मनुष्य हूँ, लेकिन सयोग से मेरे इस परीक्षा मे पडने की कोई सम्भावना नही है और हो भी तो मैं आत्मा की रक्षा करना सर्वोपरि समझूँगा।

ज्वालासिंह गर्म होकर बोले, आपको यह अनुमान करने का क्या अधिकार है कि और लोग अपनी आत्मा का आपसे कम आदर करते है? मेरा विचार तो यह है कि ससार मे रहकर मनुष्य आत्मा की जितनी रक्षा कर सकता है, उससे अधिकार उसे वचित नही कर सकता। अगर आप समझते हो कि वकालत या डाक्टरी विशेप रूप से आत्म-रक्षा के अनुकूल है तो आपकी भूल है। मेरे चचा साहव वकील है, वडे भाई साहव डाक्टरी करते हैं, पर वह लोग केवल धन कमाने की मशीने है, मैंने उन्हे कभी असत्-सत् के झगडे मे पडते हुए नही पाया?

ज्ञानशंकर—वह चाहे तो आत्मा की रक्षा कर सकते है।

ज्वालासिंह—वस, उतनी ही जितनी कि एक सरकारी नौकर कर सकता है। वकील को ही ले लीजिए, यदि विवेक की रक्षा करे तो रोटियाँ चाहे भले खाय, समृद्धि-शाली नही हो सकता। अपने पेशे मे उन्नति करने के लिए उसे अधिकारियो का कृपा-पात्र वनना परमावश्यक है और डाक्टरो का तो जीवन ही रईसो की कृपा पर निर्भर है, गरीबो से उन्हे क्या मिलेगा? द्वार पर सैकड़ो गरीव रोगी खडे रहते हैं, लेकिन जहाँ किसी रईस का आदमी पहुँचा, वह उनको छोड कर फिटन पर सवार हो जाते है। इसे मैं आत्मा की स्वाधीनता नही कह सकता।

इतने मे गौस खाँ, गिरधर महाराज और सुक्खू ने कमरे मे प्रवेश किया। गौस तो सलाम करके फर्श पर वैठ गये, शेष दोनो आदमी खड़े रहे। लाला प्रभाशकर वरामदे मे वैठे हुए थे। पूछा, असामियो को घी के रुपये वाँट दिये?

गौस खाँ—जी हाँ, हुजूर के इकवाल से सव रुपये तकसीम हो गये, मगर इलाके मे चद आदमी ऐसे सरकश हो गये है कि खुदा की पनाह। अगर उनकी तवीह न की गयी तो एक दिन मेरी इज्जत मे फर्क आ जायगा और क्या अजव है कि जान से भी हाथ धोऊँ।

ज्ञानशंकर—(विस्मित हो कर) देहात मे भी यह हवा चली?

गौस खाँ ने रोनी सूरत वना कर कहा, हुजूर, कुछ न पूछिए, गिरधर महाराज भाग न खडे हो तो इनके जान की खैरियत नही थी।

ज्ञान—उन आदमियो को पकड के पिटवाया क्यो नही?

गौस—तो थानेदार साहव के लिए थैली कहाँ से लाता?

ज्ञान—अजी आप लोगो को तो सैकडो हथकडे मालूम है, किसी भी शिकजे मे कस लीजिए?

गौस—हुजूर, मौरूसी असामी है। यह सव जमीदार को कुछ नही समझते। उनमे एक का नाम मनोहर है। वीस वीघे जोतता है और कुल ५० रु० लगान देता है। आज उसी आराजी का किसी दूसरे असामी से वदोवस्त हो सकता तो १०० रुपये कही नही गये थे।

ज्ञानशकर ने चचा की ओर देख कर पूछा, आपके अधिकाश असामी दखलदार क्यो कर हो गये?

प्रभाशकर ने उदासीनता से कहा, जो कुछ किया होगा इन्ही कारिंदो ने किया होगा, मुझे क्या खवर?

ज्ञानशकर—(व्यंग से) तभी तो इलाका चौपट हो गया!

प्रभाशकर ने झुंझला कर कहा, अव तो भगवान की दया से तुमने हाथ-पैर सँभाले, इलाके का प्रवध क्यो नही करते?

ज्ञान—आपके मारे जव मेरी कुछ चले तव तो।

प्रभा—मुझसे कसम ले लो, जो तुम्हारे वीच कुछ वोलूं, यह काम करते वहुत दिन हो गये, इसके लिए लोलुप नही हूँ।

ज्ञान—तो फिर मैं भी दिखा दूंगा कि प्रवध से क्या हो सकता है?

इसी समय कादिर खाँ और मनोहर आ कर द्वार पर खडे हो गये। गौस खाँ ने कहा, हुजूर, यह वही असामी है, जिसका अभी मैं जिक्र कर रहा था।

ज्ञानशकर ने मनोहर की ओर क्रोध से देखकर कहा, क्यो रे जिस पत्तल मे खाता है उसी मे छेद करता है? १०० रुपये की जमीन ५० रुपये मे जोतता है, उस पर जव थोड़ा सा वल खाने का अवसर पडा तो जामे से वाहर हो गया?

मनोहर की जवान वद हो गयी। रास्ते मे जितनी वाते कादिर खाँ ने सिखायी थी, वह सव भूल गयी!

ज्ञानशकर ने उसी स्वर मे फिर कहा, दुष्ट कही का! तू समझता होगा कि मैं दखलदार हूँ, जमीदार मेरा कर ही क्या सकता है? लेकिन मैं तुझे दिखा दूंगा कि जमीदार क्या कर सकता है? तेरा इतना हियाव है कि तू मेरे आदमियो पर हाथ उठाये?

मनोहर निर्वल क्रोध से काँप और सोच रहा था, मैंने घी के रुपये नही लिये, वह कोई पाप नही है। मुझे लेना चाहिए था, दवाव के भय से नही, केवल इसलिए कि वडे सरकार हमारे ऊपर दया रखते थे। उसे लज्जा आयी कि मैंने ऐसे दयालु स्वामी की आत्मा के साथ कृतघ्नता की, किंतु इसका दड गाली और अपमान नही है। उसका अपमानाहत हृदय उत्तर देने के लिए व्यग्र होने लगा! किंतु कादिर ने उसे वोलने का अवसर न दिया। वोला, हुजूर, हम लोगो की मजाल ही क्या है कि सरकार के आदमियो के सामने सिर उठा सके? हाँ, अपढ गँवार ठहरे, वातचीत करने का सहूर नही है, उजड्डपन की वाते मुँह से निकल आती हैं। क्या हम नही जानते कि हुजूर

चाहे तो आज हमारा ठिकाना न लगे! अब तो यही बिनती है कि जो खता हुई, माफी दी जाय।

लाला प्रभाशकर को मनोहर पर दया आ गयी, सरल प्रकृति के मनुष्य थे। बोले, तुम लोग हमारे पुराने असामी हो, क्या नही जानते हो कि असामियो पर सख्ती करना हमारे यहाँ का दस्तूर नही है? ऐसा ही कोई काम आ पडता है तो तुमसे बेगार ली जाती है और तुम हमेशा उसे हँसी-खुशी देते रहे हो। अब भी उसी तरह निभाते चलो। नही तो भाई, अब जमाना नाजुक है, हमने तो भली-बुरी तरह अपना निभा दिया, मगर इस तरह लडको से न निभेगी। उनका खून गर्म ठहरा, इसलिए सब सँभल कर रहो, चार बातें सह लिया करो, जाओ, फिर ऐसा काम न करना। घर से कुछ खा कर चले न होगे। दिन भी चढ आया, यही खा-पी कर विश्राम करो, दिन ढले चले जाना।

प्रभाशकर ने अपने निर्द्वंद्व स्वभाव के अनुसार इस मामले को टालना चाहा, किंतु ज्ञानशकर ने उनकी ओर तीव्र नेत्रो से देख कर कहा, आप मेरे बीच मे क्यो बोलते हैं? इस नरमी ने तो इन आदमियो को शेर बना दिया है। अगर आप इस तरह मेरे कामो मे हस्तक्षेप करते रहेगें तो मैं इलाके का प्रबध कर चुका। अभी आपने वचन दिया है कि इलाके से कोई सरोकार न रखूंगा। अब आपको बोलने का कोई अधिकार नही है।

प्रभाशकर यह तिरस्कार न सह सके, रुष्ट होकर बोले, अधिकार क्यो नही है? क्या मै मर गया हूँ?

ज्ञानशकर—नही, आप को कोई अधिकार नही है। आपने सारा इलाका चौपट कर दिया, अब क्या चाहते है कि जो बचा-खुचा है, उसे धूल मे मिला दे।

प्रभाशकर के कलेजे मे चोट लग गयी। बोले, बेटा! ऐसी बातें करके क्यो दिल दुखाते हो? तुम्हारे पूज्य पिता मर गये, लेकिन कभी मेरी बात नही दुलखी। अब तुम मेरी जबान बद कर देना चाहते हो, किंतु यह नही हो सकता कि अन्याय देखा करूँ और मुँह न खोलूं। जब तक जीवित हूँ, तुम यह अधिकार मुझसे नही छीन सकते।

ज्वालासिंह ने दिलासा दिया, नही साहब, आप घर के मालिक हैं, यह आपकी गोद के पले हुए लडके हैं, इनकी अबोध बातो पर ध्यान न दीजिए। इनकी भूल है जो कहते है कि आपका कोई अधिकार नही है। आपको सब कुछ अधिकार है, आप घर के स्वामी है।

गौस खाँ ने कहा, हुजूर का फर्माना बहुत दुरुस्त है। आप खानदान के सरपरस्त और मुरब्बी हैं! आपके मन्सब से किसे इनकार हो सकता है?

ज्ञानशकर समझ गये कि ज्वालासिंह ने मुझसे बदला ले लिया, उन्हे यह खेद हुआ कि ऐसी अविनय मैंने क्यो की! खेद केवल यह था कि ज्वालासिंह यहाँ बैठे थे और उनके सामने वह असज्जनता नही प्रकट करना चाहते थे। बोले, अधिकार से मेरा वह आशय नही था जो आपने समझा। मैं केवल यह कहना चाहता था कि जब आपने

इलाके का प्रवध मेरे सुपुर्द कर दिया है तो मुझी को करने दीजिए। यह शब्द अनायास मेरे मुँह से निकल गया। मैं इसके लिए बहुत लज्जित हूँ। भाई ज्वालासिंह, मैं चचा साहब का जितना अदब करता हूँ उतना अपने पिता का भी नही किया। मैं स्वयं गरीब आदमियों पर सख्ती करने का विरोधी हूँ। इस विषय मे आप मेरे विचारों से भली भाँति परिचित हैं। किंतु इसका यह आशय नहीं है कि हम दीन-पालन की धुन में इलाके से ही हाथ धो बैठें? पुराने जमाने की बात और थी। तब जीवन संग्राम इतना भयंकर न था, हमारी आवश्यकताएँ परिमित थीं, सामाजिक अवस्था इतनी उन्नत न थी और सब से बड़ी बात तो यह है कि भूमि का मूल्य इतना चढ़ा हुआ न था। मेरे कई गाँव जो दो-दो हजार पर बिक गये हैं, उनके दाम आज बीस-बीस हजार लगे हुए हैं। उन दिनों असामी मुश्किल से मिलते थे, अब एक टुकड़े के लिए सौ-सौ आदमी मुँह फैलाये हुए हैं। यह कैसे हो सकता है कि इस आर्थिक दशा का असर जमींदार पर न पड़े?

लाला प्रभाशंकर को अपने अप्रिय शब्दों का बहुत दु:ख हुआ, जिस भाई को वह देवतुल्य समझते थे, उसी के पुत्र से द्वेष करने पर उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। बोले, भैया, इन बातों को तुम जितना समझोगे मैं बूढ़ा आदमी उतना क्या समझूँगा? तुम घर के मालिक हो। मैंने भूल की कि बीच में कूद पड़ा। मेरे लिए एक टुकड़ा रोटी के सिवा और किसी चीज की आवश्यकता नही है। तुम जैसे चाहो वैसे घर को सँभालो।

थोड़ी देर तक सब लोग चुप-चाप बैठे रहे। अंत मे गौस खाँ ने पूछा, हुजूर, मनोहर के बारे में क्या हुक्म होता है?

ज्ञानशंकर—इजाफा लगान का दावा कीजिए?

कादिर—सरकार, बड़ा गरीब आदमी है, मर जायगा।

ज्ञानशंकर—अगर इसकी जोत में कुछ सिकमी जमीन हो तो निकाल लीजिए।

कादिर—सरकार, बेचारा बिना मारे मर जायगा।

ज्ञानशंकर—उसकी परवाह नही, असामियों की कमी नही है।

कादिर—हुजूर....

ज्ञानशंकर—चुप रहो, मैं तुमसे हुज्जत नही करना चाहता।

कादिर—सरकार, जरा....

ज्ञानशंकर—बस, कह दिया कि जबान मत खोलो।

मनोहर अब तक चुपचाप खड़ा था। प्रभाशंकर की बात सुनकर उसे आशा हुई थी कि यहाँ आना निष्फल नही हुआ। उनकी विनयशीलता ने वशीभूत कर लिया था। ज्ञानशंकर के कटु व्यवहार के सामने प्रभाशंकर की नम्रता उसे देवोचित प्रतीत होती थी। उसके हृदय मे उत्कंठा हो रही थी कि अपना सर्वस्व लाकर इनके सामने रख दूँ और कह दूँ कि यह मेरी ओर से बड़े सरकार की भेंट है। लेकिन ज्ञानशंकर के अंतिम शब्दो ने इन भावनाओं को पद-दलित कर दिया। विशेषत: कादिर मियाँ का अपमान उसे असह्य हो गया। तेवर बदल बोला, दादा, इस दरबार से अब दया-

धर्म उठ गया। चलो, भगवान की जो इच्छा होगी, वह होगा। जिसने मुँह चीरा है वह खाने को भी देगा। भीख नहीं तो परदेश तो कहीं नहीं गया है?

यह कह कर उसने कादिर का हाथ पकड़ा और उसे जबरदस्ती खींचता हुआ दीवानखाने से बाहर निकल गया। ज्ञानशंकर को इस समय इतना क्रोध आ रहा था कि यदि कानून का भय न होता तो वह उसे जीता चुनवा देते। अगर इसका कुछ अंश मनोहर को डाँटने-फटकारने में निकल जाता तो कदाचित् उनकी ज्वाला कुछ शांत हो जाती, किंतु अब हृदय में खौलने के सिवा उनके निकलने का कोई रास्ता न था। उनकी दशा उस बालक की-सी हो रही थी, जिसका हमजोली उसे दाँत काट कर भाग गया हो। इस ज्ञान से उन्हें शांति न होती थी कि मैं इस मनुष्य के भाग का विधाता हूँ, आज इसे पैरों तले कुचल सकता हूँ। क्रोध को दुर्वचन से विशेष रुचि होती है।

ज्वालासिंह मौनी बने बैठे थे। उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि ज्ञानशंकर में इतनी दयाहीन स्वार्थपरता कहाँ से आ गयी? अभी क्षण भर पहले यह महाशय न्याय और लोक-सेवा का कैसा महत्त्वपूर्ण वर्णन कर रहे थे। इतनी ही देर में यह कायापलट। विचार और व्यवहार में इतना अंतर? मनोहर चला गया तो ज्ञानशंकर से बोले, इजाफा लगान का दावा कीजिएगा तो क्या उसकी ओर से उज्रदारी न होगी? आप केवल एक असामी पर दावा नहीं कर सकते।

ज्ञानशंकर—हाँ, यह बात ठीक कहते हैं। खाँ साहब, आप उन असामियों की एक सूची तैयार कीजिए, जिन पर कायदे के अनुसार इजाफा हो सकता है। क्या हरज है, लगे हाथ सारे गाँव पर दावा हो जाय?

ज्वालासिंह ने मनोहर की रक्षा के लिए यह शंका की थी। उसका यह विपरीत फल देख कर उन्हें फ़िर कुछ कहने का साहस न हुआ। उठ कर ऊपर चले गये।

५

एक महीना बीत गया, गौस खाँ ने असामियों की सूची न तैयार की और न ज्ञानशंकर ने ही फिर ताकीद की। गौस खाँ के स्व-हित और स्वामि-हित में विरोध हो रहा था और ज्ञानशंकर सोच रहे थे कि जब इजाफे से सारे परिवार का लाभ होगा तो मुझको क्या पड़ी है कि बैठे-बिठाये सिर-दर्द मोल लूँ। सैकड़ों गरीबों का गला तो मैं दबाऊँ और चैन सारा घर करे। वह इस सारे अन्याय का लाभ अकेले ही उठाना चाहते थे, और लोग भी शरीक हों, यह उन्हें स्वीकार न था। अब उन्हें रात-दिन यही दुश्चिंता रहती थी कि किसी तरह चचा साहब से अलग हो जाऊँ। यह विचार सर्वथा उनके स्वार्थानुकूल था। उनके ऊपर केवल तीन प्राणियों के भरण-पोषण का भार था—आप, स्त्री और भावज। लड़का अभी दूध पीता था। इलाके की आमदनी का बड़ा भाग प्रभाशंकर के काम आता था, जिनके तीन पुत्र थे, दो पुत्रियाँ, एक बहू, एक पोता और स्त्री-पुरुष आप। ज्ञानशंकर अपने पिता के परिवार-पालन पर झुंझलाया करते।

आज से तीन साल पहले वह अलग हो गये होते तो आज हमारी दशा ऐसी खराब न होती। चचा के सिर जो पडती उसे झेलते, खाते चाहे उपवास करते, हमसे तो कोई मतलब न रहता बल्कि उस दशा मे हम उनकी कुछ सहायता करते तो वह इसे ऋण समझते, नही तो आज झाड-लीप कर हाथ काला करने के सिवा और क्या मिला? प्रभाशकर दुनिया देखे हुए थे। भतीजे का यह भाव देख कर दबते थे, अनुचित बाते सुन कर भी अनसुनी कर जाते। दयाशकर उनकी कुछ सहायता करने के बदले उलटे उन्ही के सामने हाथ फैलाते रहते थे, इसलिए दब कर रहने मे ही उनका कल्याण था।

ज्ञानशकर दम्भ और द्वेष के आवेग मे बहने लगे। एक नौकर चचा का काम करता तो दूसरे को खामखाह अपने किसी न किसी काम मे उलझा रखते। इसी फेर मे पडे रहते कि चचा के आठ प्राणियो पर जितना व्यय होता है उतना मेरे तीन प्राणियो पर हो। भोजन करने जाते तो बहुत-सा खाना जूठा करके छोड देते। इतने पर भी सतोष न हुआ तो दो कुत्ते पाले। उन्हे साथ बैठा कर खिलाते। यहाँ तक कि प्रभाशकर डाक्टर के यहाँ से कोई दवा लाते तो आप भी उतने ही मूल्य की औषधि अवश्य लाते, चाहे उसे फेक ही क्यो न दे। इतने अन्याय पर भी चित्त को शान्ति न होती थी। चाहते थे कि महिलाओ मे भी धमचख मचे। विद्या की शालीनता उन्हे नागवार मालूम होती, उसे समझाते कि तुम्हे अपने भले-बुरे की जरा भी परवा नही। मरदो को इतना अवकाश कहाँ कि जरा-जरा-सी बात पर ध्यान रखे। यह स्त्रियो का खास काम है, यहाँ तक कि इसी कारण उन्हे घर मे आग लगाने का दोष लगाया जाता है, लेकिन तुम्हे किसी बात की सुधि ही नही रहती। आँखो से देखती हो कि घी घडा लुढका जाता है, पर जबान नही हिलती। विद्यावती यह शिक्षा पा कर भी उसे ग्रहण न करती थी।

इसी बीच मे एक ऐसी घटना हो गयी, जिसने इस विरोधाग्नि को और भी भडका दिया। दयाशकर यो तो पहले से ही अपने थाने मे अन्धेर मचाये हुए थे, लेकिन जब से ज्वालासिंह उनके इलाके के मैजिस्ट्रेट हो गये थे तब से तो वह पूरे बादशाह बन बैठे थे। उन्हे यह मालूम ही था कि डिप्टी साहब ज्ञानशकर के मित्र है। इतना सहारा मेलजोल पैदा करने के लिए काफी था। कभी उनके पास चिडिया भेजते, कभी मछलियाँ, कभी दूध-घी। स्वयं उनसे मिलने जाते तो मित्रवत् व्यवहार करते। इधर सम्मान बढा तो भय कम हुआ, इलाके को लूटने लगे। ज्वालासिंह के पास शिकायते पहुँची, लेकिन वह लिहाज के मारे न तो दयाशकर से और न उनके घरवालो से ही इनकी चर्चा कर सके। लोगो ने जब देखा कि डिप्टी साहब भी हमारी फरियाद नही सुनते तो हार मान कर चुप हो बैठे। दयाशकर और भी शेर हुए। पहले दाँव-घात देख कर हाथ चलाते थे, अब नि शक हो गये। यहाँ तक कि प्याला लबालब हो गया। इलाके मे एक भारी डाका पडा। वह उसकी तहकीकात करने गये। एक जमीदार पर सदेह हुआ, तुरत उसके घर की तलाशी लेनी शुरू की, चोरी का कुछ माल बरामद हो गया। फिर क्या था, उसी दम उसे हिरासत मे ले लिया। जमीदार ने कुछ दे-दिला कर बला टाली। पर अभिमानी मनुष्य था, यह अपमान न सहा गया। उसने दूसरे दिन ज्वाला-

सिंह के इजलास मे दारोगा साहब पर मुकदमा दायर कर दिया। इलाके मे आग सुलग रही थी, हवा पाते ही भडक उठी। चारो तरफ से झूठे-सच्चे इस्तगासे होने लगे। अत मे ज्वालासिह को विवश हो कर इन मामलो की छानबीन करनी पडी। सारा रहस्य खुल गया। उन्होने पुलिस के अधिकारियो को रिपोर्ट की। दयाशकर मुअत्तल हो गये, उन पर रिश्वत लेने और झूठे मुकदमे बनाने के अभियोग चलने लगे। पाँसा पलट गया; उन्होने जमीदार को हिरासत मे लिया था, अब खुद हिरासत मे आ गये। लाला प्रभाशकर के उद्योग से जमानत तो मजूर हो गयी, लेकिन अभियोग इतने सप्रमाण थे कि दयाशकर के बचने की बहुत कम आशा थी। वह स्वय निराश थे। सिट्टी-पट्टी भूल गयी, मानो किसी ने बुद्धि हर ली हो। जो जबान थाने की दीवारो को कम्पित कर दिया करती थी, वह अब हिलती भी न थी। वह बुद्धि जो हवा मे किले बनाती रहती थी, अब इस गुत्थी को भी न सुलझा सकती थी। कोई कुछ पूछता तो शून्य भाव से दीवार की ओर ताकने लगते। उन्हे खेद न था, लज्जा न थी, केवल विस्मय था कि मैं इस दलदल मे कैसे फँस गया? वह मौन दशा मे बैठे सोचा करते, मुझसे यह भूल हो गयी, अमुक बात बिगड गयी, नही तो कदापि नही फँसता। विपत्ति मे भी जिस हृदय मे सद्ज्ञान न उत्पन्न हो वह सूखा वृक्ष है, जो पानी पा कर पनपता नही, बल्कि सड़ जाता है। ज्ञानशकर इस दुरवस्था मे अपने सम्बन्धियो की सहायता करना अपना धर्म समझते थे; किंतु इस विषय मे उन्हे किसी से कुछ कहते हुए सकोच ही नही होता, वरन् जब कोई दयाशकर के व्यवहार की आलोचना करने लगता, तब वह उसका प्रतिवाद करने के बदले उससे सहमत हो जाते थे।

लाला प्रभाशकर ने बेटे को बरी कराने के लिए कोई बात उठा नही रखी। वह रात-दिन इसी चिंता मे डूबे रहते थे। पुत्र-प्रेम तो था ही, पर कदाचित् उससे भी अधिक लोकनिन्दा की लाज थी। जो घराना सारे शहर मे सम्मानित हो, उसका यह पतन हृदय-विदारक था। जब वह चारों तरफ से दौड़-धूप कर निराश हो गये तब एक दिन ज्ञानशकर से बोले, आज जरा ज्वालासिह के पास चले जाते; तुम्हारे मित्र हैं, शायद कुछ रियायत करे।

ज्ञानशंकर ने विस्मित भाव से कहा, मेरा इस वक्त उनके पास जाना सर्वथा अनुचित है।

प्रभाशकर—मैं जानता हूँ और इसी लिए अब तक तुमसे जिक्र नही किया। लेकिन अब इसके बिना काम नही चलता दिखायी देता। डिप्टी साहब अपने इजलास से बरी कर दें, फिर आगे हम देख लेंगे। वह चाहे तो सबूतो को निर्बल बना सकते हैं।

ज्ञान—पर आप इसकी कैसे आशा रखते है कि मेरे कहने से वह अपने ईमान का खून करने पर तैयार हो जायँगे।

प्रभाशंकर ने आग्रह पूर्वक कहा, मित्रो के कहने सुनने का बडा असर होता है।

बूढ़ो की बातें बहुधा वर्तमान सभ्य प्रथा के प्रतिकूल होती है। युवकगण इन बातो पर अधीर हो उठते हैं। उन्हे बूढो का यह अज्ञान अक्षम्य-सा जान पड़ता है। ज्ञान-

शंकर चिढ़ कर बोले, जब आपकी समझ मे बात ही नही आती तो मैं क्या करूँ? मैं अपने को दूसरो की निगाह मे गिराना नही चाहता।

प्रभाशंकर ने पूछा, क्या अपने भाई की सिफारिश करने से अपमान होता है?

ज्ञानशंकर ने कटु भाव से कहा, सिफारिश चाहे किसी काम के लिए हो, नीची बात है, विशेष करके ऐसे मामले मे।

प्रभाशंकर बोले, इसका अर्थ तो यह है कि मुसीबत मे भाई से मदद की आशा न रखनी चाहिए।

'मुसीबत उन कठिनाइयों का नाम है जो दैवी और अनिवार्य कारणो से उत्पन्न हो, जान-बूझ कर आग मे कूदना मुसीबत नही है।'

'लेकिन जो जान-बूझ कर आग मे कूदे, क्या उसकी प्राण-रक्षा न करनी चाहिए?'

इतने मे बड़ी बहू दरवाजे पर आ कर खडी हो गयी और बोली, चल कर लल्लू (दयाशंकर) को जरा समझा क्यो नही देते? रात को भी खाना नही खाया और इस वक्त अभी तक हाथ-मुँह नही धोया। प्रभाशंकर खिन्न हो कर बोले, कहाँ तक समझाऊँ? समझाते-समझाते तो हार गया। बेटा! मेरे चित्त की इस समय जो दशा है, वह बयान नही कर सकता। तुमने जो बाते कही हैं वह बहुत माकूल हैं, लेकिन मुझ पर इतनी दया करो, आज डिप्टी साहब के पास जरा चले जाओ। मेरा मन कहता है, कि तुम्हारे जाने से कुछ न कुछ उपकार अवश्य होगा।

ज्ञानशंकर बगलें झाँक रहे थे कि बड़ी बहू बोल उठी, यह जा चुके। लल्लू कहते थे कि ज्ञानू झूठ भी जा कर कुछ कह दे तो सारा काम बन जाय, लेकिन इन्हे क्या परवा है, चाहे कोई चूल्हे भाड़ मे जाय। फँसाना होता तो चाहे दौड-धूप करते भी, बचाने कैसे जायें, हेठी न हो जायगी।

प्रभाशंकर ने तिरस्कार के भाव से कहा, क्या बेबात की बात कहती हो? अन्दर जा कर बैठती क्यों नही?

बडी बहू ने कुटिल नेत्रो से ज्ञानशंकर को देखते हुए कहा, मैं तो बेलाग बात कहती हूँ, किसी को भला लगे या बुरा। जो बात इनके मन मे है वह मेरी आँखो के सामने है।

ज्ञानशंकर मर्माहत हो कर बोले, चाचा साहब! आप सुनते हैं इनकी बातें? यह मुझे इतना नीच समझती हैं।

बड़ी बहू ने मुँह बना कर कहा, यह क्या सुनेंगे, कान भी हो? सारी उम्र गुलामी करते कटी, अब भी वही आदत पडी हुई है। तुम्हारा हाल मैं जानती हूँ।

प्रभाशंकर ने व्यथित हो कर कहा, ईश्वर के लिए चुप रहो। बड़ी बहू त्योरियां चढा कर बोली, चुप क्यो रहूँ, किसी का डर है? यहाँ तो जान पर बनी हुई है और यह अपने घमंड मे भूले हुए है। ऐसे आदमी का तो मुँह देखना पाप है।

प्रभाशंकर ने भतीजे की ओर दीनता से देख कर कहा, बेटा, यह इस समय आपे मे नही हैं। इनकी बातो का बुरा नही मानना। लेकिन ज्ञानशंकर ने ये बातें न सुनी,

चाची के कठोर वाक्य उनके हृदय को मथ रहे थे। बोले, तो मैं आप लोगों के साथ रह कर कौन-सा स्वर्ग का सुख भोग रहा हूँ?

बड़ी बहू—जो अभिलाषा मन मे हो वह निकाल डालो। जब अपनापन ही नही, तो एक घर मे रहने से थोड़े ही एक हो जायेंगे!

ज्ञान—आप लोगो की यही इच्छा है तो यही सही मुझे निकाल दीजिए।

बड़ी बहू—हमारी इच्छा है? आज महीनो से तुम्हारा रग देख रही हूँ। ईश्वर ने आँखें दी हैं, धूप मे बाल नही सफेद किये हैं। हम लोग तुम्हारी आँख मे काँटे की तरह खटकते हैं। तुम समझते हो यह लोग हमारा सर्वस्व खाये जाते है। जब तुम्हारे मन मे इतना कमीनापन आ गया तो फिर—

प्रभाशकर ने ठडी साँस ले कर कहा, या ईश्वर, मुझे मौत क्यो नही आ जाती। बड़ी बहू ने पति को कुपित नेत्रो से देख कर कहा, तुम्हे, यह बहुत प्यारे हैं, तो जा कर इनकी जूतियाँ सीधी करो। जो आदमी मुसीबत मे साथ न दे, वह दुश्मन है, उससे दूर रहना ही अच्छा है।

ज्ञान—तो यह धमकी किसे देती हो? कल के बदले आज ही हिस्सा-बाँट कर लो!

बड़ी बहू—क्या तुम समझते हो कि हम तुम्हारा दिया खाती है?

ज्ञान—इन बातो का प्रयोजन ही क्या है?

बड़ी बहू—नही, तुम्हे यही घमड है।

ज्ञान—अगर यही घमंड है तो क्या अन्याय है। जितना आपका खर्च है उतना मेरा कभी नही है।

बड़ी बहू ने पति की ओर देख कर व्यग भाव से कहा—कुछ सुन रहे हो सपूत की बातें! बोलते क्यो नही? क्या मुँह मे दही जमा हुआ है। बाप हजारो रुपये साल साधु-भिखारियो को खिला दिया करते थे। मरते दम तक पालकी के बारह कहार दरवाजे से नही टले। इन्हें आज हमारी रोटियाँ अखर रही हैं। लाला, हमारा जस मानो कि आज रईसों की तरह चैन कर रहे हो, नही तो मुँह मे मक्खियाँ आती-जाती।

प्रभाशकर यह बातें न सुन सके। उठ कर बाहर चले गये। बड़ी बहू मोर्चे पर अकेले ठहर न सकी, घर मे चली गयी। लेकिन ज्ञानशकर वही बैठे रहे। उनके हृदय मे एक दाह-सी हो रही थी। इतनी निष्ठुरता! इतनी कृतघ्नता! मैं कमीना हूँ, मैं दुश्मन हूँ, मेरी सूरत देखना पाप है। जिन्दगी-भर इनका नोचा-खसोटा, आज यह बातें! यह घमड! देखता हूँ यह घमड कब तक रहता है? इसे तोड़ न दिया तो कहना! ये लोग सोचते होंगे, मालिक तो हम हैं, कुंजियाँ तो हमारे पास है, इसे जो देंगे, वह ले लेगा। एक-एक चीज का आधा करा लूँगा। बुढ़िया के पास जरूर रुपये हैं। पिता जी ने सब कुछ इन्ही लोगों पर छोड़ दिया था। इसने काट-कपट कर दस-बीस हजार जमा कर लिया है। बस, उसी का घमड है, और कोई बात नही। द्वेष मे दूसरो को धनी समझने की विशेष चेष्टा होती है।

ज्ञानशकर इन कुकल्पनाओ से भरे हुए बाहर आये तो चचा को दीवानखाने मे

मुशी ईजादहुसेन से वाते करते पाया। यह मुशी ज्वालासिंह के इजलास के अहलमद थे—वडे वातूनी, वडे चलते-पुर्जे। वह कह रहे थे, आप घबरायें नही, खुदा ने चाहा तो वावू दयाशकर बेदाग बरी हो जायेंगे। मैंने महरी की मारफत उनकी बीबी को ऐसा चग पर चढाया है कि वह दारोगा जी को बिला वरी कराये डिप्टी साहब का दामन न छोडेगी। सौ-दो-सौ रुपए खर्च हो जायेंगे, मगर क्या मुजायका, आवरू तो वच जायगी। अकस्मात् ज्ञानशकर को वहाँ देख कर वह कुछ झेप गये।

प्रभाशकर बोले, रुपये जितने दरकार हो ले जायँ, आपकी कोशिश से बात बन गयी तो हमेशा आपका शुक्रगुजार रहूँगा।

ईजादहुसेन ने ज्ञानशकर को देखते हुए कहा, वावू ज्वालासिंह दोस्ती का कुछ हक तो जरूर ही अदा करेंगे। जवान से चाहे कितने ही बेनियाज बने, लेकिन दिल मे वह आपका वहुत लेहाज करते है। मैं भी इस पर खूब रग चढाता रहता हूँ। कल आपका जिक्र करते हुए मैंने कहा, वह तो दो-तीन दिन से दाना-पानी तर्क किये हुए हैं। यह सुन कर कुछ गौर करने लगे, वाद अजाँ उठ कर अदर चले गये।

प्रभाशकर ने मुशी को श्रद्धापूर्ण नेत्रो से देखा, पर ज्ञानशकर ने तुच्छ दृष्टि से देखा और ऊपर चले गये। विद्यावती उनकी राह देख रही थी, बोली, आज देर क्यो कर रहे हो? भोजन तो कभी से तैयार है।

ज्ञानशकर ने उदासीनता से कहा, क्या खाऊँ, कुछ मिले भी? मालिक और मालकिन दोनो ने आज से मेरा निवटारा कर दिया। उन्हे मेरी सूरत देखने से पाप लगता है। ऐसो के साथ रहने से तो मर जाना अच्छा है।

विद्यावती ने सशक होकर पूछा, क्या बात हुई?

ज्ञानशकर ने इस प्रश्न का उत्तर विस्तार के साथ दिया। उन्हे आशा थी कि इन वातो से विद्या की शाति-प्रियता को आघात पहुँचेगा, किन्तु उन्हे कितनी निराशा हुई जब उसने सारी कथा सुनने के बाद कहा, तुम्हे ज्वालासिंह के यहाँ चले जाना चाहिए था। चाचा जी की बात रह जाती। ऐसे ही अवसरो पर तो अपने-पराये की पहचान होती है। तुम्हारी ओर से आना-कानी देख कर उन लोगो को क्रोध आ गया होगा। क्रोध मे आदमी अपने मन की बात नही कहता। वह केवल दूसरे का दिल दुखाना चाहता है।

ज्ञानशकर खिन्न हो कर बोले, तुम्हारी बातें सुन कर जी चाहता है कि अपना और तुम्हारा दोनो का सिर फोड लूँ। उन लोगो के कटु वाक्यो को फूल-पान समझ लिया, मुझी को उपदेश देने लगी। मुझे तो यह लज्जा आ रही है कि इस गुरगे ईजादहुसेन ने मेरी तरफ से न जाने क्या क्या रद्दे जमाये होंगे और तुम मुझे सिफारिश करने की शिक्षा देती हो। मैं ज्वालासिंह को जता देना चाहता हूँ कि इस विषय मे सर्वथा स्वतत्र हूँ। गरजमद बन कर उनकी दृष्टि मे नीचा बनना नही चाहता।

विद्या ने विस्मित होकर पूछा, क्या उनसे यह कहने जाओगे?

ज्ञानशकर—अवश्य जाऊँगा। दूसरे की आवरू के लिए अपनी प्रतिष्ठा क्यो खोऊँ?

विद्या—भला वह अपने मन मे क्या कहेगे ? क्या इससे तुम्हारा द्वेष न प्रकट होगा ?

ज्ञानशकर—तुम मुझे जितना मूर्ख समझती हो, उतना नही हूँ। मुझे मालूम है कौन बात किस ढग से करनी चाहिए।

विद्या चिन्तित नेत्रो से भूमि की ओर देखने लगी। उसे पति की सकीर्णता पर खेद हो रहा था, लेकिन कुछ और कहते डरती थी कि कही उनकी दुष्कामना और भी दृढ न हो जाय। इतने मे दयाशकर की स्त्री भोजन करने के लिए बुलाने आयी। उधर श्रद्धा ने जा कर बड़ी बहू को मनाना शुरू किया। विद्या ने लाला प्रभाशकर को मनाने के लिए तेजशंकर को भेजा, पर इनमे कोई भी भोजन करने न उठा। प्रभाशकर को यह ग्लानि हो रही थी कि मेरी स्त्री ने ज्ञानशकर को अप्रिय बातें सुनायी। बडी बहू को शोक था कि मेरे पुत्र का कोई हितैषी नही। और ज्ञानशकर को यह जलन थी कि यह लोग मेरा खा कर मुझी को आँखें दिखाते हैं। क्षुधाग्नि के साथ क्रोधाग्नि भी भड़कती जाती थी।

विवाद मे हम बहुधा अत्यत नीतिपरायण बन जाते है, पर वास्तव मे इससे हमारा अभिप्राय यही होता है, कि विपक्षी की जबान बद कर दें। इन चद घटो मे ही ज्ञान-शकर की नीतिपरायणता ईर्षाग्नि मे परिवर्तित हो चुकी थी। जिस प्राणी के हित के लिए ज्वालासिंह से कुछ कहना उन्हें असगत जान पडता था, उसी के अहित के लिए वह वहाँ जाने को तैयार हो गये। उन्होने इस प्रसग की सारी बातें मन में निश्चित कर ली थी, इस प्रश्न को ऐसी कुशलता से उठाना चाहते थे कि नीयत का परदा न खुलने पाये।

दूसरे दिन प्रात काल ज्यो ही नौ बजे, ज्ञानशकर ने पैरगाड़ी सँभाली और घर से निकले। द्वार पर लाला प्रभाशकर अपने दोनो पुत्रो के साथ टहल रहे थे। ज्ञानशंकर ने मन मे कहा, बुड्ढा साठ बरस का हो गया है, पर अभी तक वही जवानी की ऐंठ है। कैसा अकड़ कर चलता है! अब देखता हूँ, मिश्री और मक्खन कहाँ मिलता है ? लौंडे मेरी ओर कैसे घूर रहे हैं, मानो निगल जायेंगे। वर्षा का आगमन हो चुका था, घटा उमडी हुई थी मानो समुद्र आकाश पर चढ़ गया हो। सड़को पर इतना कीचड था कि ज्ञानशकर की पैर गाड़ी मुश्किल से निकल सकी, छींटो से कपड़े खराब हो गये। उन्हे म्युनिसिपैलिटी के सदस्यो पर क्रोध आ रहा था कि यह सब के सब स्वार्थी खुशामदी और उचक्के हैं। चुनाव के समय भिखारियों की तरह द्वार द्वार घूमते-फिरते हैं, लेकिन मेम्बर होते ही राजा बन बैठते हैं। उस कठिन तपस्या का फल यह निर्वाण पद प्राप्त हो जाता है। यह बडी भूल है कि मेम्बरो को एक निर्दिष्ट काल के लिए रखा जाता है। वोटरो को अधिकार होना चाहिए कि जब किसी सदस्य को जी चुराते देखें तो उसे पदच्युत कर दें। यह मिथ्या है कि उस दशा मे कोई कर्तव्यपरायण मनुष्य मेम्बरी के लिए खड़ा न होगा। जिन्हे राष्ट्रीय उन्नति की धुन है, वह प्रत्येक अवस्था मे जाति-सेवा के लिए तैयार रहेगें। मेरे विचार मे जो लोग सच्चे अनुराग से काम करना चाहते हैं वह इस बंधन से और भी खुश होगे। इससे उन्हे अपनी अक-

मंण्यता से वचने का एक साधन मिल जायगा। और यदि हमे जाति-सेवा का अनुराग नही तो म्युनिसिपल हाल मे वैठने की तृष्णा क्यो हो। क्या इससे इज्जत होती है? सिपाही वन कर कोई लडने से जी चुराये, यह उसकी कीर्ति नही, अपमान है।

ज्ञानशकर इन्ही विचारो मे मग्न थे कि ज्वालासिंह का वगला आ गया। वह घोडे पर हवा खाने जा रहे थे। साईस घोडा कसे खडा था। ज्ञानशकर को देखते ही वडे प्रेम से मिले और इधर-उधर की वाते करने लगे। उन्हे भ्रम हुआ कि यह महाशय अपने भाई की सिफारिश करने आये होगे। इसलिए उन्हे इस तरह वातो मे लगाना चाहते थे कि उस मुकदमे की चर्चा ही न आने पाये। उन्हे दयाशकर के विरुद्ध कोई सवल प्रमाण न मिला था। यह वह जानते थे कि दयाशकर का जीवन उज्ज्वल नही है, परतु यह अभियोग सिद्ध न होता था। उनको वरी करने का निश्चय कर चुके थे। ऐसी दशा मे वह किसी को यह विचार करने का अवसर नही देना चाहते थे कि मैंने अनुचित पक्षपात किया है। ज्ञानशकर के आने से जनता के सदेह की पुष्टि हो सकती थी। जनता को ऐसे समाचार वडी आसानी से मिल जाते है। अरदली और चपरासी अपना गौरव वढाने के लिए ऐसी खवरे वडी तत्परता से फैलाते है। वोले, कहिए, आपके असामी सीधे हो गये।

ज्ञानशकर—जी नहीं, उन्हे कावू मे करना इतना सहज नही है। चाचा साहव ने उन्हे सिर चढा दिया है। मैं इधर ऐसे झमेले मे पडा रहा कि उस विषय मे कुछ करने का अवकाश ही न मिला।

ज्वालासिंह डरे कि भूमिका तो नही है। तुरत पहलू वदल कर वोले, भाई साहव, मैंने यह नौकरी क्या कर ली, एक जजाल सिर ले लिया। प्रात काल से सध्या तक सिर उठाने की फुरसत नही मिलती। वहुधा दस ग्यारह वजे रात तक काम करना पड़ता है। और इतना ही होता तो भुगत भी लेता, इसके साथ-साथ यह चिन्ता भी लगी रहती है कि ऊपरवाले खुश रहे। आप जानते ही है, अव की वर्षा वहुत हुई है, मेरे इलाके के सैकडो गाँवो मे वाढ आ गयी। खेतो का तो कहना ही क्या, किसानो की झोपडियाँ तक वह गयी। जमीदारो ने आधी मालगुजारी की छूट की प्रार्थना की है और यह सर्वथा न्यायानुकूल है। किंतु हाकिमो की यह इच्छा मालूम होती है कि इन दरखास्तो को दाखिल दफ्तर कर दिया जाय। यद्यपि वह प्रत्यक्ष ऐसा करते नही, पर हानियो की जाँच मे इतनी वाधाएँ डालते है कि जाँच व्यर्थ हो जाती है। अव यदि मैं जान कर अनजान वनूँ और स्वच्छदता से जाँच करूँ तो अवश्य ही मुझ पर फटकार पडेगी। लोग सदेह की दृष्टि से देखने लगेगे। यहाँ की हवा ही कुछ ऐसी विगडी हुई है कि मनुष्य इस अन्याय से किसी भाँति वच नही सकता। अपने अन्य सहवर्गियो की दशा देख कर वस यही इच्छा होती है कि इस्तीफा दे कर घर की राह लूँ। मनुष्य कितना स्वार्थ-प्रिय और कितना चापलूस वन सकता है, इसका यहाँ से उत्तम उदाहरण और कही न मिल सकेगा। यदि साहव वहादुर जरा-सा इशारा कर दे कि आमदनी के टैक्स की जाँच अच्छी तरह की जाय तो विश्वास मानिए हमारे मित्रगण दो ही दिन मे

टैक्स को बढ़ाकर दुगुना-तिगुना कर देंगे। यदि इशारा हो जाय कि अब की तकावी जरा हाथ रोक कर दी जाय तो समझ लीजिए कि वह बंद हो जायगी। इन महानुभावों की बातें सुन कर ऐसी घृणा होती है कि इनका मुँह न देखूँ। न कोई वैज्ञानिक निरूपण, न कोई राजनैतिक या आर्थिक बात, न कोई साहित्य की चर्चा। बस मैंने यह किया, साहब ने यह कहा, तो मैंने यह उत्तर दिया। आपसे यथार्थ कहता हूँ, कोई छटा हुआ शोहदा भी अपनी कपट-लीलाओं की डींग यों न मारेगा। खेद तो यह है कि इस रोग से पुराने विचार के बुड्ढे ही ग्रसित नहीं, हमारा नवशिक्षित वर्ग उनसे कहीं अधिक रोग से ग्रसित देख पड़ता है। मार्ले, मिल और स्पेन्सर सभी इस स्वार्थ सिद्धान्त के सामने दब जाते हैं। अजी, यहाँ ऐसे-ऐसे भद्र पुरुष पड़े हुए हैं जो खानसामों और अरदलियों की पूजा किया करते हैं, केवल इसलिए कि वह साहब से उनकी प्रशंसा किया करें। जिसे अधिकार मिल गया वह समझने लगता है, अब मैं हाकिम हूँ, अब जनता से, देशबंधुओं से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। अँगरेज अधिकारियों के सम्मुख जायेंगे तो नम्रता, विनय और शील के पुतले बन जायेंगे, मानो ईश्वर के दरबार में खड़े हैं, पर जब दौरे पर निकलेंगे तो प्रजा और जमींदारों पर ऐसा रोब जमायेंगे मानो उनके भाग्य के विधाता हैं।

ज्वालासिंह ने स्थिति को खूब बढ़ा कर दर्शाया, क्योंकि इस विषय में वह ज्ञानशंकर के विचारों से परिचित थे। उनका अभिप्राय केवल यह था कि इस समय दयाशंकर के अभियोग की चर्चा न आने पाये।

ज्ञानशंकर ने प्रसन्न हो कर कहा, मैंने तो आपसे पहले ही दिन कहा था, किंतु आपको विश्वास न आता था। अभी तो आपको केवल अपने सहवर्गियों की कपटनीति का अनुभव हुआ है। कुछ दिन और रहिए तो अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की चालें देख कर तो आप दंग रह जायेंगे। यह सब आप को कठपुतली बना कर नचायेंगे। बदनामी से बचने का इसके सिवा और उपाय नहीं है कि उन्हें मुँह न लगाया जाय। आपका अहलमद ईजादहुसेन एक ही घाघ है, उससे होशियार रहिएगा। वह तरह-तरह से आपको अपने पंजे में लाने की कोशिश करेगा। आज ही मैंने उसके मुँह से ऐसी बातें सुनी हैं जिनसे विदित होता है कि वह आपको धोखा दे रहा है। उसने आपसे कदाचित मेरी ओर से दयाशंकर की सिफारिश की है। यद्यपि मुझे दयाशंकर से उतनी ही सहानुभूति है जितनी भाई को भाई के साथ हो सकती है, तथापि मैं ऐसा धृष्ट नहीं हूँ कि मित्रता से अनुचित लाभ उठा कर न्याय का बाधक बनूँ। मैं कुमार्ग का पक्ष कदापि न ग्रहण करूँगा; चाहे मेरे पुत्र के ही सम्बन्ध में क्यों न हो। मैं मनुष्यत्व को भ्रातृप्रेम से उच्चतर समझता हूँ। मैं उन आदमियों में हूँ कि यदि ऐसी दशा में आपको सहृदयता की ओर झुका हुआ देखूँ तो आपको उससे बाज रखूँ।

ज्वालासिंह मनोविज्ञान के ज्ञाता थे। समझ गये कि यह महाशय इस समय अपने चाचा से बिगड़े हुए हैं। यह नीतिपरायणता उसी का बुखार है। द्वेष और वैमनस्य कहाँ तक छिपाया जा सकता है, इसका अनुभव हो गया। उनकी दृष्टि में ज्ञानशंकर

की जो प्रतिष्ठा थी वह लुप्त हो गयी। भाई का अपने भाई की सिफारिश करना सर्वथा स्वाभाविक और मानवचरित्रानुकूल है। इसे वह बहुत बुरा नही समझते थे, किंतु भाई का अहित करने के लिए नैतिक सिद्धान्तो का आश्रय लेना वह एक अमानुषिक व्यापार समझते थे। ऐसे दुष्प्रकृति मनुष्यो को जो आठो पहर न्याय और सत्य की हॉक लगाते फिरते हो मर्माहत करने का यह अच्छा अवसर मिला। बोले, आपको भ्रम हुआ है। ईजाद हुसेन ने मुझसे इस विषय मे कोई बातचीत नही की। और न इसकी जरूरत ही थी, क्योकि मैं अपने फैसले मे दयाशकर को पहले ही निरपराध लिख चुका हूँ। और सब को यह भली-भाँति मालूम है, कि मैं किसी की नही सुनता। मैने पक्षपात-रहित हो कर यह धारणा की है और मुझे आशा है कि आप यह सुन कर प्रसन्न होगे।

ज्ञानशकर का मुख पीला पड गया, मानो किसी ने उसके घर मे आग लगाने का समाचार कह दिया हो। हृदय मे तीर-सा चुभ गया। अवाक् रह गये।

ज्वालासिंह—गवाह कमजोर थे। मुकदमा बिलकुल बनावटी था।

ज्ञानशकर—यह सुन कर असीम आनद हुआ। आपको हजारो धन्यवाद। चाचा साहब तो सुन कर खुशी से बावले हो जायेगे।

ज्वालासिंह इस चुटकी से पीड़ित हो कर बोले, यह कानून की बात है।

ज्ञानशकर—आप चाहे जो कुछ कहे, पर मैं तो इसे अनुग्रह ही समझूँगा। मित्रता कानून की सीमाओ को अज्ञात रूप से विस्तृत कर देती है। इसके सिवा आप लोगों को भी तो पुलिस का दबाव मानना पड़ता है। उनके द्रोही बनने से आप लोगो के मार्ग मे कितनी बाधाएँ पडती है, इसे भी तो विचारना ही पड़ता है।

ज्वालासिंह इस व्यग से और भी तिलमिला उठे। गर्व से बोले, यहाँ जो कुछ करते है न्याय के बल पर करते हैं। पुलिस क्या, ईश्वर के दबाव को भी नही मान सकते। आपकी इन बातो मे कुछ वैमनस्य की गध आती है। मुझे सदेह होता है कि दयाशकर का मुक्त होना आपको अच्छा नही लगा।

ज्ञानशकर ने उत्तेजित होकर कहा, यदि आपको ऐसा सदेह है तो यह कहने के लिए मुझे क्षमा कीजिए कि इतने दिनो तक साथ रहने पर भी आप मुझसे सर्वथा अपरिचित हैं। मेरी प्रकृति कितनी ही दुर्बल हो, पर अभी इस अधोगति को नही पहुँची है कि अपने भाई की ओर हाथ उठाये। मगर यह कहने मे भी मुझे सकोच नही है कि भ्रातृ-स्नेह की अपेक्षा मेरी दृष्टि मे राष्ट्र-हित का महत्त्व कही अधिक है और जब इन दोनो मे विरोध होगा तो मैं राष्ट्र-हित की ओर झुकूंगा। यदि आप इसे वैमनस्य या ईर्षा समझे तो यह आपकी सज्जनता है। मेरी नीति-शिक्षा ने मुझे यही सिखाया है और यथासाध्य उसका पालन करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। जब एक व्यक्ति-विशेष से जनता का अपकार होता हो तो हमारा धर्म है कि उस व्यक्ति का तिरस्कार करें और उसे सीधे मार्ग पर लायें, चाहे वह कितना ही आत्मीय हो। ससार के इतिहास मे ऐसे उदाहरण अप्राप्य नही हैं, जहाँ राष्ट्रीय कर्तव्य ने कुल-हित पर विजय पायी है, ऐसी दशा मे जब आप मुझ पर दुराग्रह का दोषारोपण करते हैं तो मैं इसके

सिवा और क्या कह सकता हूँ कि आपकी नीति शिक्षा और ईथिक्स ने आपको कुछ भी लाभ नहीं पहुँचाया।

यह कह कर ज्ञानशंकर बाहर निकल आये। जिस मनोरथ से वह इतने सवेरे यहाँ आये थे उनके यों विफल हो जाने से उनका चित्त बहुत खिन्न हो रहा था! हाँ, यह अवश्य था कि मैंने इन महाशय के दाँत खट्टे कर दिये, अब यह फिर मुझसे ऐसी बातें करने का साहस न कर सकेंगे। ज्वालासिंह ने भी उन्हें रोकने की चेष्टा नहीं की। वह सोच रहे थे कि इस मनुष्य में बुद्धि-बल और दुर्जनता का कैसा विलक्षण समावेश हो गया है? चातुरी कपट के साथ मिलकर दो-आतशा शराब बन जाती है। इस फटकार से कुछ तो आँखें खुली होंगी। समझ गये होंगे कि कूटनीति के परखनेवाले संसार में लोप नहीं हो गये।

ज्ञानशंकर यहाँ से चले तो उनकी दशा उस जुआरी की-सी थी जो जुए में हार गया हो और सोचता हो कि ऐसी कौन-सी वस्तु दाँव पर लगाऊँ कि मेरी जीत हो जाय। उनका चित्त उद्विग्न हो रहा था। ज्वालासिंह को यद्यपि उन्होंने तुर्की-बतुर्की जवाब दिया था फिर भी उन्हें प्रतीत होता था कि मैं कोई गहरी चोट न कर सका। अब ऐसी कितनी ही बातें याद आ रही थीं जिनसे ज्वालासिंह के हृदय पर आघात किया जा सकता था। और कुछ नहीं तो रिश्वत का ही दोष लगा देता। खैर, फिर कभी देखा जायगा। अब उन्हें राष्ट्र-प्रेम और मनुष्यत्व का वह उच्चादर्श भी हास्यास्पद-सा जान पड़ता था, जिसके आधार पर उन्होंने ज्वालासिंह को लज्जित करना चाहा था। वह ज्यों-ज्यों इस सारी स्थिति का निरूपण करते थे; उन्हें ज्वालासिंह का व्यवहार सर्वथा असंगत जान पड़ता था। मान लिया कि उन पर मेरी ईर्षा का रहस्य खुल गया तो सहृदयता और शालीनता इसमें थी कि वह मुझसे सहानुभूति प्रकट करते, मेरे आँसू पोछते। ईर्षा भी मानव स्वभाव का एक अंग ही है, चाहे वह कितना ही अवहेलनीय क्यों न हो। यदि कोई मनुष्य इसके लिए मेरा अपमान करे तो इसका कारण उसकी आत्मिक पवित्रता नहीं, वरन् मिथ्याभिमान है। ज्वालासिंह कोई ऋषि नहीं, देवता नहीं, और न यह सम्भव है कि ईर्षा-वेग से कभी उनका हृदय प्रवाहित न हुआ हो। उनकी यह गर्वपूर्ण नीतिज्ञता और धर्मपरायणता स्वयं उस ईर्षा का फल है, जो उनके हृदय में अपनी मानसिक लघुता के ज्ञान से प्रज्वलित हुई है।

यह सोचते हुए वह घर पहुँचे तो अपने दोनों छोटे चचेरे भाइयों को अपने कमरे में किताबें उलटते-पुलटते देखा। यद्यपि यह कोई असाधारण बात न थी, पर ज्ञानशंकर इस समय मानसिक अशान्ति से पीड़ित हो रहे थे। जल गये और दोनो लड़कों को डाँटकर भगा दिया। इन लोगों ने अवश्य मुझे छेड़ने के लिए इन शैतानों को यहाँ भेज दिया है। नीचे इतना बड़ा दीवानखाना है दो कमरे हैं क्या उनके लिए इतना काफी नहीं कि मेरे पास एक छोटे-से कमरे को भी नहीं देख सकते। क्या इस पर भी दाँत है? मुझे घर से निकालने की ठनी है क्या? इस मामले को अभी से साफ़ कर लेना चाहिए। यह कदापि नहीं हो सकता कि मुझे लोग दबाते जायें और मैं चूँ न

करूँ। मन मे यह निश्चय करके उन्होने तत्क्षण अपने चाचा के नाम यह पत्र लिखा—

'मान्यवर, यह वात मेरे लिए असह्य है कि आपके सुपुत्र मेरी अनुपस्थिति मे मेरे कमरे मे आ कर ऊधम मचायें और मेरी वस्तुओ का सर्वनाश करें। मैं चाहता हूँ कि आज घर का वँटवारा हो जाय और लडको को ताकीद कर दी जाय कि वह भूल कर भी मेरे मकान मे पदक्षेप न करें, अन्यथा मैं उनकी ताडना करूँ, तो आपको या चाची को मुझसे शिकायत करने का कोई अधिकार न रहेगा। इसका ध्यान रखिएगा कि मुझे जो भाग मिले वह गार्हस्थ्य आवश्यकताओ के अनुकूल हो, और सवसे वडी वात यह है कि वह पृथक् हो जिसमे मैं उसको अपना समझ सकूँ और आते-जाते, उठते-बैठते, आग्नेय नेत्रो और व्यंग शरो का लक्ष्य न वनूँ।'

यह पत्र कहार को दे कर वह उत्तर का इंतजार करने लगे। सोच रहे थे कि देखे, वुड्ढा अव की क्या चाल चलता है? एक क्षण मे कहार ने उसका जवाब ला कर उनके हाथ मे रख दिया—

'वेटा, मेरे लड़के तुम्हारे लडके हैं। उन्हे दंड देने का तुमको पूरा अधिकार है, इसकी शिकायत मुझे न कभी हुई है न होगी। वल्कि तुम्हारा मुझपर अनुग्रह होगा, यदि कभी-कभी इनकी खवर लेते रहो। रहा घर का वँटवारा, उसे मैं तुम्हारे ऊपर छोड़ता हूँ। घर तुम्हारा है, मैं भी तुम्हारा हूँ, जो टुकडा चाहो मुझे दे दो, मुझे कोई आपत्ति न होगी। हाँ, यह ध्यान रखना कि मैं वाहर वैठने का आदी हूँ, इसलिए दीवान-खाने के वरामदे मे मेरे लिए एक चौकी की जगह दे देना। वस, यही मेरी हार्दिक अभि-लाषा थी कि मेरे जीवनकाल मे यह विच्छेद न होता, पर तुम्हारी यदि यही इच्छा है और तुम इसी मे प्रसन्न हो तो मैं क्या कर सकता हूँ।'

ज्ञानशकर ने पुर्जे को जेव मे रख लिया और मुस्कराये। वुड्ढा कैसा घाघ है, इन्ही नम्रताओ से उसने पिता जी को उल्लू वना लिया था, मुझसे भी वही चाल चल रहा है, पर मैं ऐसा गौखा नही हूँ। समझे होंगे कि जरा दव जाऊँ तो वह आप ही दव जायेगा! यहाँ ऐसी विषम शालीनता का पाठ नही पढा है। विवश हो कर दवना तो समझ में आता है, पर किसी के खातिर से दवना, केवल मुरौवत के हाथो की कठपुतली वनना, यह निरी भावुकता है!

ज्ञानशकर बैठ कर सोचने लगे, कैसे इस समस्या की पूर्ति करूँ, केवल यह एक कमरा नीचे के दीवानखाने और उसके वगल के दोनो कमरो की समता नही कर सकता। ऊपर के दो कमरो पर दयाशकर का अधिकार है। पर ऊपर के तीनो कमरे मेरे, नीचे के तीनो कमरे उनके। यहाँ तो वड़ी सुगमता से विभाग हो गया, किंतु जनाने घर मे यह पार्थक्य इतना सुलभ नही। पद की कम से कम दो दीवारें खीचनी पडेंगी। पूर्व की ओर निकास के लिए एक द्वार खोलना पडेगा, और इसमे झझट है। म्युनिसिपैलिटी महीनो का अलसेट लगा देगी। क्या हर्ज है, यदि मैं दीवानखाने के नीचे-ऊपर के दोनो भागो पर सतोष कर लूँ? जनाना मकान उन्ही के हिस्से मे डाल दूँ। यहाँ ऊपर स्त्रियाँ भली-भाँति रह सकती है। जनाना मकान इससे वडा अवश्य है, पर न जाने कव का वना

हुआ है। थोडे ही दिनो मे उसे फिर बनवाना पडगा। दीवारे अभी से गिरने लगी हैं। नित्य मरम्मत होती ही रहती है। छत भी टपकती है। बस मेरे लिए दीवानखाना ही अच्छा है। चाचा साहब का इसमे गुजर नही हो सकता, उन्हे विवश हो कर जनाना मकान लेना पडेगा। यह बात मुझे खूब सूझी, अपना अर्थ भी सिद्ध हो जायेगा और उदारता का श्रेय भी हाथ रहेगा।

मन मे यह निश्चय करके वह स्त्रियो से परामर्श करने के लिए अदर गये। वह सभ्यता के अनुसार स्त्रियो की सम्मति अवश्य लेते थे, पर 'वीटो' का अधिकार अपने हाथ मे रखते और प्रत्येक अवसर पर उसका उपयोग करने के कारण वह अबाध्य सम्मति का गला घोट देते थे। वह अदर गये तो उन्हे बड़ा करुणाजनक दृश्य दिखाई दिया। दयाशकर कचहरी जा रहे थे और बडी बहू आँखो मे आँसू भरे उनको विदा कर रही थी। दोनो बहनें उनके पैरो से लिपट कर रो रही थी। उनकी पत्नी अपने कमरे के द्वार पर घूँघट निकाले उदास खडी थी। सकोचवश पति के पास न आ सकती थी। श्रद्धा भी खडी रो रही थी। आज अभियोग का फैसला सुनाया जानेवाला था। मालूम नही क्या होगा। घर लौट कर आना बदा है या फिर घर का मुँह देखना नसीब न होगा। दयाशकर अत्यत कातर देख पडते थे। ज्ञानशकर को देखते ही उनके नेत्र सजल हो गये, निकट आ कर बोले, भैया, आज मेरा हृदय शका से काँप रहा है। ऐसा जान पड़ता है, आप लोगो के दर्शन न होगे। मेरे अपराधो को क्षमा कीजिएगा, कौन जाने फिर भेट हो या न हो, दया का क्या आसरा? यह घर अब आपके सुपुर्द है।

ज्ञानशकर उनकी यह बाते सुन कर पिघल गये। अपने हृदय की संकीर्णता-क्षुद्रता पर ग्लानि उत्पन्न हुई। तस्कीन देते हुए बोले, ऐसी बातें मुँह से न निकालो, तुम्हारा बाल भी बाँका न होगा। ज्वालासिंह कितने ही निर्दयी बने, पर मेरे एहसानो को नही भूल सकते। और सच्ची बात तो यह है कि मैं अभी तुम्हारे ही सम्बन्ध मे बातें करके उनके पास से आ रहा हूँ, तुम अवश्य बरी हो जाओगे। उन्होने स्पष्ट शब्दो मे मुझे इसका विश्वास दिलाया है। चलता तो मैं भी तुम्हारे साथ, किन्तु मेरे जाने से काम बिगड जायगा।

दयाशकर ने अविश्वासपूर्ण कृतज्ञता के भाव से उनकी ओर देख कर कहा, हाकिमो की बात का क्या भरोसा?

ज्ञानशकर—ज्वालासिंह उन हाकिमो मे नही है।

दयाशकर—यह न कहिए, बडा बेमुरौवत आदमी है।

ज्ञानशकर ने उनके हृदयस्थ अविश्वास को तोड कर कहा, यही हृदय की निर्बलता हमारे अपराधो का ईश्वरीय दड है, नही तो तुम्हे इतना अविश्वास न होता।

दयाशकर लज्जित हो कर वहाँ से चले गये। ज्ञानशकर ने भी उनसे और कुछ न कहा—उन्होने हारी हुई बाजी को जीतना चाहा था, पर सफल न हुए। वह इस बात पर मन मे झुंझलाये कि यह लोग मुझे उच्च भावो के योग्य नही समझते। मैं इनकी दृष्टि मे विषैला सर्प हूँ। जब मुझ पर अविश्वास है तो फिर जो कुछ करना है वह

खुल्लम-खुल्ला क्यो न करूँ ? आत्मीयता का स्वाँग भरना व्यर्थ है। इन भावो से यह लोग अब हत्थे चढनेवाले नही। सद्भावो का अकुर जो एक क्षण के लिए उनके हृदय मे विकसित हुआ था, इन दुष्कामनाओ से झुलस गया। वह विद्या के पास गये तो उसने पूछा, आज सवेरे कहाँ गये थे ?

ज्ञानशकर—जरा ज्वालासिंह से मिलने गया था।

विद्या—तुम्हारी ये वाते मुझे अच्छी नही लगती।

ज्ञान—कौन-सी बातें ?

विद्या—यही, अपने घर के लोगो की हाकिमो से शिकायत करना। भाइयो मे खटपट सभी जगह होती है, मगर कोई इस तरह भाई की जड नही काटता।

ज्ञानशकर ने होठ चबा कर कहा, तुमने मुझे इतना कमीना, इतना कपटी समझ लिया है ?

विद्या दृढता से बोली, अच्छा, मेरी कसम खाओ कि तुम इसलिए ज्वालासिंह के पास नही गये थे।

ज्ञानशकर ने कठोर स्वर मे कहा, मैं तुम्हारे सामने अपनी सफाई देना आवश्यक नही समझता।

यह कह कर ज्ञानशकर चारपाई पर बैठ गये। विद्या ने पते की बात कही थी और इसने उन्हे मर्माहत कर दिया था। उन्हे इस समय विदित हुआ कि सारे घर के लोग, यहाँ तक कि मेरी स्त्री भी मुझे कितना नीच समझती है।

विद्या ने फिर कहा, अरे तो यहाँ कोई दूसरा थोड़े ही बैठा हुआ है, जो सुन लेगा।

ज्ञान—चुप भी रहो, तुम्हारी ऐसी बातो से बदन मे आग लग जाती है। मालूम नही, तुम्हे कब बात करने की तमीज आयेगी। क्या हुआ, आज भोजन न मिलेगा क्या ? दोपहर तो होने को आयी।

विद्या—आज तो भोजन बना ही नही। तुम्ही ने घर बाँटने के लिए चाचा जी को कोई चिट्ठी लिखी थी। तब से वह बैठे हुए रो रहे हैं।

ज्ञान—उनका रोने का जी चाहता है तो रोयें ! हम लोगो को भूखो मारेंगे क्या ?

विद्या ने पति को तिरस्कार की दृष्टि से देख कर कहा, घर मे जब ऐसा रार मचा हो तो खाने-पीने की इच्छा किसे होती है ? चचा जी को इस दशा मे देख कर किसके घट के नीचे अन्न जायगा। एक तो लडके पर यह विपत्ति दूसरे घर मे यह द्वेष। जब से तुम्हारी चिट्ठी पायी है, सिर नही उठाया ! तुम्हे अलग होने की यह धुन क्यो समायी है ?

ज्ञान—इसी लिए कि जो थोडी बहुत जायदाद बच रही है वह भी इस भाड़ मे न जल जाय। पहले घर मे छह हजार सालाना की जायदाद थी। अब मुश्किल से दो हजार की रह गयी है। इन लोगो ने सब खा-पीकर बराबर कर दिया।

विद्या—तो यह लोग कोई पराये तो नहीं हैं।

ज्ञान—तुम जब ऐसी बडी-बडी बातें करने लगती हो तो मालूम होता है, बनासेठ

की बेटी हो। तुम्हारे बाप के पास तो लाखो की सम्पत्ति है, क्यो नही उसमे थोडी-सी हमे दे देते, वह तो कभी बात नही पूछते और तुम्हारे पैरो तले गगा बहती है।

विद्या—पुरुषार्थी लोग दूसरो की सम्पत्ति पर मुँह नही फैलाते। अपने बाहुबल का भरोसा रखते है।

ज्ञान—लजाती तो नही हो, ऊपर से बढ-बढ कर बाते करती हो। यह क्यो नही कहती कि घर की जायदाद प्राणो से भी प्रिय होती है और उसकी रक्षा प्राणो से भी अधिक की जाती है? नही तो ढाई लाख सालाना जिसके घर मे आता हो, उसके लिए बेटी-दामाद पर दो-चार हजार खर्च कर देना कौन-सी बडी बात है? लाला साहब तो पैसे को यो दाँतो से पकडते है और तुम इतनी उदार बनती हो, मानो जायदाद का कुछ मूल्य ही नही।

इतने मे श्रद्धा आ गयी और ज्ञानशकर घर के बँटवारे के विषय मे उससे बाते करने लगे।

६

लाला प्रभाशकर का क्रोध ज्यो ही शात हुआ वह अपने कटु वाक्यो पर बहुत लज्जित हुए। बडी बहू की तीखी बाते ज्यो-ज्यो उन्हे याद आती थी ग्लानि और भी बढती जाती थी। जिस भाई के प्रेम और अनुराग से उनका हृदय परिपूर्ण था, जिसके मृत्यु-शोक का घाव अभी भरने न पाया था, जिसका स्मरण आते ही आँखो से अश्रुधारा बहने लगती थी उसके प्राणाधार पुत्र के साथ उन्हे अपना यह बर्ताव बडी कृतघ्नता का मालूम होता था। रात को उन्होने कुछ न खाया। सिर-पीडा का बहाना करके लेट रहे। कमरे मे धुँधला प्रकाश था। उन्हे ऐसा जान पडा, मानो लाला जटाशकर द्वार पर खडे उनकी ओर तिरस्कार की दृष्टि से देख रहे है। वह घबडा कर उठ बैठे, साँस वेग से चलने लगी। बडी प्रबल इच्छा हुई कि इसी दम चल कर ज्ञानशकर से क्षमा माँगूँ, किन्तु रात ज्यादा हो गयी थी, बेचारे एक ठढी साँस ले कर फिर लेट रहे। हा! जिस भाई ने जिन्दगी भर मे मेरी ओर कडी निगाह से भी नही देखा उसकी आत्मा को मेरे कारण ऐसा विषाद हो! मैं कितना अत्याचारी, कितना सकीर्ण हृदय, कितना कुटिल प्रकृति हूँ!

प्रात काल उन्होने बडी बहू से पूछा, रात ज्ञानू ने कुछ खाया था या नही?

बडी बहू—रात चूल्हा ही नही जला, किसी ने भी नही खाया।

प्रभाशकर—तुम लोग खाओ या न खाओ, लेकिन उसे क्यो भूखा मारती हो, भला ज्ञानू अपने मन मे क्या कहता होगा? मुझे कितना नीच समझ रहा होगा!

बड़ी बहू—नही तो अब तक मानो वह तुम्हे देवता समझता था। तुम्हारी आँखो पर पर्दा पडा होगा, लेकिन मैं इस छोकरे का रुख साल भर से देख रही हूँ। अचरज यही है कि वह अब तक कैसे चुप रहा? आखिर वह क्या समझ कर अलग हो रहा है! यही न कि हम लोग पराये हैं! उसे इसकी लेशमात्र भी परवा नही कि इन लोगो का

निर्वाह कैसे होगा? उसे तो बस रुपये की हाय-हाय पडी है, चाहे चचा, भाई, भतीजे जीयें या मरें। ऐसे आदमी का मुँह देखना पाप है।

प्रभाशकर —फिर वही बात मुँह से निकालती हो। अगर वह अपना आधा हिस्सा माँगता है तो क्या बुरा करता है? यही तो ससार की प्रथा हो रही है।

बडी बहू—तुम्हारी तो बुद्धि मारी गयी है। कहाँ तक कोई समझाये! जैसे कुछ सूझता ही नही। हमारे लडके की जान पर बनी हुई है, घर विध्वस हुआ जाता है, दाना-पानी हराम हो रहा है, वहाँ आधी रात तक हारमोनियम बजता है! मैं तो उसे काला नाग समझती हूँ, जिसके विष का उतार नही। यदि कोई हमारे गले पर छुरी भी चला दे तो उसकी आँखो मे आँसू न आये। तुम यहाँ बैठे पछता रहे हो और वह टोले-महल्ले में घूम-घूम तुम्हे बदनाम कर रहा है? सब तुम्ही को बुरा कह रहे है।

प्रभा—यह सब तुम्हारी मिथ्या कल्पना है, उसका हृदय इतना क्षुद्र नही है।

बडी बहू—तुम इसी तरह बैठे स्वर्ग-सपना देखते रहोगे और वह एक दिन सब सम्बन्धियो को बटोर कर बाँट-बखरे की बात छेड देगा, फिर कुछ करते-धरते न बनेगा। राय कमलानद से भी पत्र-व्यवहार कर रहा है। मेरी बात मानो, अपने सम्बन्धियो को भी सचेत कर दो। पहले से सजग रहना अच्छा है।

प्रभाशकर ने गौरवोन्मत्त हो कर कहा, यह हमसे मरते दम तक न होगा। मैं ऐसा निर्लज्ज नही हूँ कि अपने घर की फूट का ढिंढोरा पीटता फिरूँ? ज्ञानशकर मुझसे चाहे जो भाव रखे, किन्तु मैं उसे अपना ही समझता हूँ। हम दोनो भाई एक दूसरे के लिए प्राण देते रहे। आज भैया के पीछे मैं इतना बेशर्म हो जाऊँ कि दूसरो से पचायत कराता फिरूँ? मुझे ज्ञानशकर से ऐसे द्वेष की आशा नही, लेकिन यदि उसके हाथो मेरा अहित भी हो जाय तो मुझे लेशमात्र भी दुख न होगा। अगर भैया पर हमारा बोझ न होता तो उनका जीवन बड़े सुख से व्यतीत हो सकता था। उन्ही का लड़का है। यदि उसके सुख और सतोष के लिए हमे थोडा सा कष्ट भी हो तो हमे बुरा न मानना चाहिए, हमारे सिर उसके ऋण से दबे हुए हैं। मैं छोटी-छोटी बातो के लिए उससे रार मचाना अनुचित समझता हूँ।

बडी बहू ने इसका प्रतिवाद न किया, उठ कर वहाँ से चली गयी। प्रभाशकर उन्हे और भी लज्जित करना चाहते थे। कुछ देर तक वही बैठे रहे कि आज आये तो दिल का बुखार निकालूं, लेकिन जब देर हुई तो उकता कर बाहर चले गये। वह पहले कितनी ही बार बडी बहू से ज्ञानशकर की शिकायत कर चुके थे। उसके फैशन और ठाट के लिए वह कभी खुशी से रुपये न देते थे, किन्तु जब वह बड़ी बहू या अपने घर के किसी अन्य व्यक्ति को ज्ञानशकर से विरोध करते देखते, तो उनकी न्याय वृत्ति प्रज्ज्वलित हो जाती थी और वह उमग मे आ कर सज्जनता और उदारता की ऐसी डीग मारने लगते थे, जिसको व्यवहार मे लाने का कदाचित् उन्हे कभी साहस न होता।

बाहर आ कर वह आँगन मे टहलने लगे और तेजशकर को यह देखने को भेजा कि ज्ञानशकर क्या कर रहे हैं। वह उनसे क्षमा माँगना चाहते थे, किन्तु जब उन्हे

पैरगाड़ी पर सवार कहीं जाते देखा, तो कुछ न कह सके। ज्ञानशंकर के तेवर कुछ बदले हुए थे, आँखों में क्रोध झलक रहा था। प्रभाशंकर ने सोचा, इतने सबेरे यह कहाँ जा रहे हैं, अवश्य कुछ दाल में काला है। उन्होंने अपनी चिड़ियों के पिंजरे उतार लिए और दाने चुगाने लगे। पहाड़ी मैने के हरिभजन का आनन्द उठाने में वह अपने को भूल जाया करते थे। इसके बाद स्नान करके रामायण का पाठ करने लगे। इतने में दस बज गये और कहार ने ज्ञानशंकर का पत्र ला कर उनके सामने रख दिया। उन्होंने तुरत पत्र को उठा लिया और पढ़ने लगे। उनकी ईश-वंदना में व्यावहारिक कामों से कोई बाधा न पड़ती थी। इस पत्र को पढ़ कर उनके शरीर में ज्वाला-सी लग गयी। उसका एक-एक शब्द चिनगारी के समान हृदय पर लगता था। ज्ञानशंकर कितना दम्भी और ईर्षालु है, इसका कुछ अनुमान हुआ। ज्ञात हुआ कि बड़ी बहू ने उसकी प्रकृति के विषय में जो आलोचना की थी वह सर्वथा सत्य थी। यह दुस्साहस! यह पत्र उसकी कलम से कैसे निकला! उसने मेरी गर्दन पर तलवार भी चला दी होती तो भी मैं इतना द्वेष न कर सकता। इतना योग्य और चतुर होने पर भी उसका हृदय इतना संकीर्ण है। विद्या का फल तो यह होना चाहिए कि मनुष्य में धैर्य और संतोष का विकास हो, ममत्व का दमन हो, हृदय उदार हो, न कि स्वार्थपरता, क्षुद्रता और शील-हीनता का भूत सिर चढ़ जाय। लड़कों ने शरारत की थी, डाँट देते, झगड़ा मिटता। क्यों जरा-सी बात का बतंगड़ बनाया। अब स्पष्ट विदित हो रहा है कि साथ निर्वाह न होगा। मैं कहाँ तक दबा करूँगा, मैं कहाँ तक सिर झुकाऊँगा? खैर, उनकी जैसी इच्छा हो करें। मैं अपनी ओर से ऐसी कोई बात न करूँगा जिससे मेरी पीठ में धूल लगे। मकान बाँटने को कहते हैं। इससे बड़ा अनर्थ और क्या होगा? घर का पर्दा खुल जायेगा, सम्बन्धियों में घर-घर चर्चा होगी! हा दुर्भाग्य! घर में दो चूल्हे जलेंगे! जो बात कभी न हुई थी, वह अब होगी! मेरे और मेरे प्रिय भाई के पुत्र के बीच केवल पड़ोसी का नाता रह जायगा। वह जो जीवन पर्यन्त साथ रहे, साथ खेले, साथ रोये, साथ हँसे, अब अलग हो जायेंगे। किन्तु इसके सिवा और उपाय ही क्या है! लिख दूँ कि तुम जैसे चाहो घर को बाँट लो? क्यों कहूँ कि मैं यह मकान लूँगा, यह कोठा लूँगा। जब अलग ही होने हैं तो जहाँ तक हो सके आपस में मनमुटाव न होने दें। यह सोच लाला प्रभाशंकर ने ज्ञानशंकर को उत्तर दिया। उन्हें अब भी आशा थी कि मेरे उत्तर की नम्रता का ज्ञानशंकर पर अवश्य कुछ न कुछ असर होगा। क्या आश्चर्य है कि अलग होने का विचार ही उसके दिल से अलग हो जाय! यह विचार उन्होंने पत्र का उत्तर लिख दिया और जवाब का इंतजार करने लगा।

ग्यारह बजे तक कोई जवाब न आया। दयाशंकर कचहरी जाने लगे। बड़ी बहू आ कर बोली, लल्लू के साथ तुम भी चले जाओ। आज तजवीज सुनाई जायगी। जाने कैसी पड़े, कैसी न पड़े। प्रभाशंकर ने अपने जीवन में कभी कचहरी के अंदर कदम न रखा था। दोनों भाइयों की प्रतिज्ञा थी कि चाहे कुछ भी क्यों न हो, कचहरी का मुँह न देखेंगे। यद्यपि इस प्रतिज्ञा के कारण उन्हें कितनी ही बार हानियाँ उठानी पड़ी

थी, कितनी ही बार बल खाना पडा था, विरोधियो के सामने झुकना पडा था, तथापि उन्होंने अब तक प्रतिज्ञा का पालन किया था। बडी बहू की बात सुन कर प्रभाशकर बडे असमजस मे पडे रहे। न तो जाते ही बनता था, न इन्कार ही करते बनता था। बगलें झाँकने लगे। दयाशकर ने उन्हे द्विविधा मे देख कर कुछ उदासीन भाव से कहा, आपका जी न चाहता हो न चलिए, मुझ पर जो कुछ पडेगी देख लूंगा।

बडी बहू—नही, चले जायेंगे, हरज क्या है?

दयाशकर—जब कभी कचहरी न गये तो अब कैसे जा सकते है। प्रतिज्ञा न टूट जायेगी?

बडी बहू—भला, ऐसी प्रतिज्ञा बहुत देखी है। लाऊँ कपडे?

दयाशकर—नही, मैं अकेले ही चला जाऊँगा, आपके चलने की जरूरत नही।

यह कह कर दयाशकर चले गये। बडी बहू भी पति को अश्रद्धा की दृष्टि से देखते हुए घर मे चली गयी। प्रभाशकर मन मे बडी बहू पर झुंझला रहे थे कि इसने मेरे कचहरी जाने का प्रश्न क्यो उठाया! मैं वहाँ जाकर क्या बना लेता, हाकिम की कलम तो पकड़ नही लेता, न उससे कुछ विनय-प्रार्थना ही कर सकता था। और फिर जब कभी न गया तो अब क्यो जाऊँ? जिसने काँटे बोये है वह उनके फल खायगा। इस फिक्र मे कहाँ तक जान दूं?

वह इसी खिन्नावस्था मे बैठे थे कि ज्ञानशकर का दूसरा पत्र पहुँचा। उन्होने सपूर्ण दीवानखाना लेने का निश्चय किया था। प्रभाशकर ने सोचा मेरी नम्रता उसके क्रोध को शान्त कर देगी। उस आशा के प्रतिकूल जब यह प्रस्ताव सामने आया तो उनका चित्त अस्थिर हो गया। पत्र के निश्चयात्मक शब्दो ने उन्हे सज्ञा-हीन कर दिया। बौखला गये। क्रोध की जगह उनके हृदय मे एक विवशता का सचार हुआ। क्रोध प्रत्याघात की सामर्थ्य का द्योतक है। उनमे यह शक्ति निर्जीव हो गयी थी। उस प्रस्ताव की भयकर मूर्ति ने संग्राम की कल्पना तक मिटा दी। उस बालक की-सी दशा हो गयी जो हाथी को सामने देख कर मारे भय के रोने लगे, उसे भागने तक की सुध न रहे। उनका समस्त जीवन भ्रातृ-प्रेम की सुखद छाया मे व्यतीत हुआ था। वैमनस्य और विरोध की यह ज्वाला-सम धूप असह्य हो गयी! एक दीन प्रार्थी की भाँति ज्ञानशकर के पास गये और करुण स्वर मे बोले, ज्ञानू, ईश्वर के लिए इतनी बेमुरौवती न करो। मेरी वृद्धावस्था पर दया करो। मेरी आत्मा पर ऐसा निर्दय आघात न करो। तुम सारा मकान ले लो, मेरे बाल-बच्चो के लिए जहाँ चाहो थोड़ा-सा स्थान दे दो, मैं उसी मे अपना निर्वाह कर लूंगा। मेरे-जीवन भर इसी प्रकार चलने दो। जब मर जाऊँ तो जो इच्छा हो करना। एक थाली मे न खाओ, एक घर मे तो रहो, इतना सम्बन्ध तो बनाये रखो। मुझे दीवानखाने की जरूरत नही है। भला सोचो तो तुम दीवानखाने मे जा कर रहोगे तो बिरादरी के लोग क्या कहेगें? नगरवाले क्या कहेंगे? सब कुछ हो गया है, पर अभी तक तुम्हारी कुल की मर्यादा बनी हुई है। हम दोनो भाई नगर मे राम-लखन की जोड़ी कहलाते थे। हमारे प्रेम और एकता की सारे नगर मे उपमा दी जाती थी।

किसी को यह कहने का अवसर मत दो कि एक भाई की आँखे बद होते ही आपस मे ऐसी अनवन हो गयी कि अब एक घर मे रह भी नही सकते। मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करो।

ज्ञानशकर पर इन विनयपूर्ण शब्दो का कुछ भी असर न हुआ। उनके विचार मे वह विकृत भावुकता थी, जो मानसिक दुर्बलता का चिह्न है। हाँ, उस पर कृत्रिमता का सदेह नही हो सकता था। उन्हे विश्वास हो गया कि चाचा साहब को इस समय हार्दिक वेदना हो रही है। वृद्धजनो का हृदय कुछ कोमल हुआ करता है। इन्होने जन्म भर कुल-प्रतिष्ठा तथा मान-मर्यादा के देवता की उपासना की है। इस समय अपकीर्ति का भय चित्त को अस्थिर कर रहा है। बोले, मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, पर यह तो विचार कीजिए कि इस पुराने घर मे दो परिवारो का निर्वाह हो भी कैसे सकता है? रसोई का मकान केवल एक ही है। ऊपर सोने के लिए तीन कमरे हैं। आँगन कहने को तो है, किन्तु वायु और प्रकाश का प्रवेश केवल एक मे ही होता है। स्नान-गृह भी एक है। इन कष्टो को नित्य नही झेला जा सकता। हमारी आयु इतनी दीर्घ नही है कि उसका एक भाग कष्टो को ही भेंट किया जाय। आपकी कोमल आत्मा को इस परिवर्तन से दु:ख अवश्य होगा और मुझे आपसे पूर्ण सहानुभूति है, किन्तु भावुकता के फेर मे पड़ कर अपने शारीरिक सुख और शान्ति का बलिदान करना मुझे पसद नही। यदि आप भी इस विषय पर निष्पक्ष हो कर विचार करेंगे तो मुझसे सहमत हो जायेंगे।

प्रभाशकर—मुझे तो इस बदनामी के सामने यह असुविधाएँ कुछ भी नही मालूम होती। जैसे अब तक काम चलता आ रहा है, उसी भाँति अब भी चल सकता है।

ज्ञानशकर—आपके और मेरे जीवन-सिद्धातो मे बडा अतर है। आप भावो की आराधना करते हैं, मैं विचार का उपासक हूँ। आप निंदा के भय से प्रत्येक आपत्ति के सामने सिर झुकायेंगे, मैं अपनी विचार स्वतत्रता के सामने लोकमत की लेश-मात्र भी परवाह नही करता! जीवन आनद से व्यतीत हो, यह हमारा अभीष्ट है। यदि ससार स्वार्थपरता कह कर इसकी हँसी उडाये, निंदा करे तो मैं उसकी सम्मति को पैरो तले कुचल डालूँगा। आपकी शिष्टता का आधार ही आत्मघात है। आपके घर मे चाहे उपवास होता हो, किन्तु कोई मेहमान आ जाय तो आप ऋण ले कर उसका सत्कार करेंगे। मैं ऐसे मेहमान को दूर से ही प्रणाम करूँगा। आपके यहाँ जाडे मे मेहमान लोग प्राय बिना ओढना-बिछौना लिए ही चले आते हैं। आप स्वय जाड़ा खाते हैं, पर मेहमान के ओढने-बिछौने का प्रबध अवश्य करते है! मेरे लिए यह अवस्था दुस्सह है। किसी मनुष्य को चाहे वह हमारा निजी सम्बन्धी ही क्यों न हो, यह अधिकार नही है कि वह इस प्रकार मुझे असमजस मे डाले। मैं स्वय किसी से यह आशा नही रखता। मैं तो इसे भी सर्वथा अनुचित समझता हूँ कि कोई असमय और बिना पूर्व सूचना के मेरे घर आये, चाहे वह मेरा भाई ही क्यो न हो। आपके यहाँ नित्य दो-चार निठल्ले नातेदार पड़े खाट तोडा किये, आपकी जायदाद मटियामेट हो

गयी, पर आपने कभी इशारे से भी उनकी अवहेलना नही की। मैं ऐसी घास-पात को कदापि न जमने दूंगा, जिससे जीवन के पौधे का ह्रास हो। लेकिन वह प्रथा अब कालविरुद्ध हो गयी। यह जीवन-सग्राम का युग है, और यदि हमको ससार मे जीवित रहना है तो हमे विवश हो कर नवीन और पुरुषोचित्त सिद्धान्तो के अनुकूल बनना पडेगा।

ज्ञानशकर ने नयी सभ्यता की जिन विशेषताओ का उल्लेख किया, उनका वह स्वय व्यवहार न कर सकते थे। केवल उनमे मानसिक भक्ति रखते थे। प्राचीन प्रथा को मिटाना उनकी सामर्थ्य से परे था। निन्दा और परिहास से सिद्धान्त मे चाहे न डरते हो पर प्रत्यक्ष उसकी अवज्ञा न कर सकते थे। आतिथ्य-सत्कार और कुटुम्ब-पालन को मन मे चाहे अपव्यय समझते हो, पर उनके मित्रो तथा सम्बन्धियो को कभी उनकी शिकायत नही हुई। किन्तु साधारणत उनका सम्भाषण विवाद का रूप धारण कर लिया करता था, इसलिए वह आवेश मे ऐसे सिद्धान्तो का समर्थन करने लगते थे, जिनका अनुकरण करने का उन्हे कभी साहस न होता। लाला प्रभाशकर समझ गये कि इसके सामने मेरी कुछ न चलेगी। इसके मन मे जो बात ठन गयी है उसे पूरा करके छोडेगा। जिसे कुल-मर्यादा की परवाह नही उससे उदारता की आशा रखना व्यर्थ है। दुखित भाव से बोले, बेटा, मैं पुराने जमाने का आदमी हूँ, तुम्हारी इन नयी-नयी बातो को नही समझता। हम तो अपनी मान-मर्यादा को प्राणो से भी प्रिय समझते थे। यदि घर मे एक दूसरे का सिर काट लेते तो भी अलग होने का नाम नही लेते। लेकिन तुम्हारी इसमे हानि हो रही है तो जो इच्छा हो करो, मुझे कोई आपत्ति नही है। हाँ इतना फिर भी कहूँगा कि अभी दो-चार दिन रुक जाओ। जहाँ इतने दिनो तकलीफ उठायी है, दो-चार दिन और उठा लो। आज लल्लू के मुकदमे का फैसला सुनाया जायगा। हम लोगो के हाथ-पैर फूले हुए हैं, दाना-पानी हराम हो रहा है, जरा यह आग ठडी हो जाने दो।

ज्ञानशकर मे आत्मश्लाघा की मात्रा अधिक थी। उन्हे स्वभावत तुच्छता से घृणा थी। पर यही ममत्व अपना गौरव और सम्मान बढ़ाने के लिए उन्हे कभी-कभी धूर्तता की प्रेरणा किया करता था, विशेषत जब उसके प्रकट होने की कोई सम्भावना न होती थी। सहानुभूति पूर्ण भाव से बोले, इस विषय मे आप निश्चिन्त रहे, दयाशकर केवल मुक्त ही नही, बरी हो जायेंगे। उधर के गवाह जैसे बिगडे है, वह आपको मालूम ही है; तिस पर भी सबको शंका थी कि ज्वालासिंह जरूर दबाव मे आ जायेंगे। ऐसी दशा मे मुझे कैसे चैन आ सकता था। मैं आज प्रात काल उनके पास गया और परमात्मा ने मेरी लाज रख ली। यह कोई कहने की बात नही है, पर मैंने अपने सामने फैसला लिखवा कर पढ लिया, तब उनका पिंड छोडा। पहले तो महाशय देर तक बगलें झाँकते रहे, पर मैंने ऐसा फटकारा कि अत मे लज्जित हो कर उन्हे फैसला लिखना ही पडा। मैंने कहा, महाशय, आपने मेरी ही बदौलत बी० ए० की डिगरी पायी है, इसे मत भूलिए। यदि आप मेरा इतना भी लिहाज न करेंगे तो मैं समझूंगा कि एहसान उठ गया।

प्रभाशकर ने ज्ञान बाबू को श्रद्धा-पूर्ण नेत्रो से देखा। उन्हे ऐसा जान पडा कि भैया साक्षात् सामने खडे है और मेरे सिर पर रक्षा का हाथ रखे हुए है। अगर अवस्था बाधक न होती तो वह ज्ञानशकर के पैरो पर गिर पडते और उसे आँसू की बूंदो से तर कर देते। उन्हे लज्जा आयी कि मैंने ऐसे कर्तव्यपरायण, ऐसे न्यायशील, ऐसे दयालु, ऐसे देवतुल्य पुरुष का तिरस्कार किया! यह मेरी उद्दडता थी कि मैंने उससे दयाशकर की सिफारिश करने का आग्रह किया। यह सर्वथा अनुचित था। आजकल के सुशिक्षित युवक-गण अपना कर्त्तव्य स्वय समझते है और अपनी इच्छानुकूल उसका पालन करते है, यही कारण है कि उन्हे किसी की प्रेरणा अप्रिय लगती है। बोले, बेटा, यह समाचार सुन कर मुझे कितना हर्ष हो रहा है, वह प्रकट नही कर सकता। तुमने मुझे प्राणदान दिया और कुल मर्यादा रख ली। मेरा रोम-रोम तुम्हारा अनुगृहीत है! मुझे अब विश्वास हो गया है कि भैया देवलोक मे बैठे हुए भी मेरी रक्षा कर रहे है। मुझे अत्यत खेद है कि मैंने तुम्हे कटु शब्द कहे, परमात्मा मुझे इसका दड दे, मेरे अपराध क्षमा करो। बुड्ढे आदमी चिडचिडे हुआ करते है, उनकी बातो का बुरा न मानना चाहिए। मैंने अब तक तुम्हारा अतर-स्वरूप न देखा था, तुम्हारे उच्चादर्शों से अनभिज्ञ था। मुझे यह स्वीकार करते हुए खेद होता है कि मैं तुम्हे अपना अशुभचिन्तक समझने लगा था। पर अब मुझे तुम्हारी सज्जनता, तुम्हारा भ्रातृ-स्नेह और तुम्हारी उदारता का अनुभव हुआ। मुझे इस मतिभ्रम का सदैव पछतावा रहेगा।

यह कहते-कहते लाला प्रभाशकर का गला भर आया। हृदय पर जमा हुआ बर्फ पिघल गया, आँखो से जल-बिन्दु गिरने लगे। किन्तु ज्ञानशकर के मुख से सात्वना का एक शब्द भी न निकला। वह इस कपटाभिनय का रग भी गहरा न कर सके। प्रभाशकर की सरलता, श्रद्धालुता और निर्मलता के आकाश मे उन्हे अपनी स्वार्थान्धता, कपटशीलता और मलिनता अत्यत कालिमापूर्ण और ग्लानिमय दिखाई देने लगी। वह स्वय अपनी ही दृष्टि मे गिर गये, इस कपट-काड का आनद न उठा सके। शिक्षित आत्मा इतनी दुर्बल नही हो सकती, इस विशुद्ध वात्सल्य ध्वनि ने उनकी सोई हुई आत्मा को एक क्षण के लिए जगा दिया। उसने आँखे खोली, देखा कि मन मुझे काँटो मे घसीटे लिए चला जाता है। वह अड गयी, धरती पर पैर जमा दिये और निश्चय कर लिया कि इससे आगे न बढूंगी।

सहसा सैयद ईजाद हुसेन मुस्कराते हुए दीवानखाने मे आये। प्रभाशकर ने उनकी ओर आशा भरे नेत्रो से देख कर पूछा, कहिए, कुशल तो है?

ईजाद—सब खुदा का फजलो करम है। लाइए, मुँह मीठा कराइए। खुदा गवाह है कि सुबह से अब तक पानी का एक कतरा भी हलक के नीचे गया हो। बारे खुदा ने आबरू रख ली, बाजी अपनी रही, बेदाग छुडा लाये, आँच तक न लगी। हक यह है कि जितनी उम्मीद न थी उससे कुछ ज्यादा ही कामयाबी हुई। मुझे ज्वालासिंह से ऐसी उम्मीद न थी।

प्रभाशकर—ज्ञानू, यह तुम्हारी सद्प्रेरणा का फल है। ईश्वर तुम्हे चिरंजीवि करे।

ईजाद—बेशक, बेशक, इस कामयाबी का सेहरा आप के ही सिर है। मैंने भी जो कुछ किया है आपकी बदौलत किया है। आपका आज सुबह को उनके पास जाना काम कर गया। कल मैंने इन्ही हाथों से तजवीज लिखी थी। वह सरासर हमारे खिलाफ थी। आज जो तजवीज उन्होंने सुनायी, वह कोई और ही चीज है, यह सब आपकी मुलाकात का नतीजा है। आपने उनसे जो बातें की और जिस तरीके से उन्हे रास्ते पर लाये उसकी हर्फ-बहर्फ इत्तला मुझे मिल चुकी है। अगर आपने इतनी साफगोई से काम न लिया होता तो वह हजरत पजे मे आनेवाले न थे।

प्रभाशकर—बेटा, आज भैया होते तो तुम्हारा यह सदुद्योग देख कर उनकी गज भर की छाती हो जाती। तुमने उनका सिर ऊँचा कर दिया।

ज्ञानशकर देख रहे थे कि ईजाद हुसेन चचा साहब के साथ कैसे दाँव खेल रहा है और मेरा मुँह बद करने के लिए कैसी कपट नीति मे काम ले रहा है। मगर कुछ बोल न सकते थे। चोर-चोर मौसेरे भाई हो जाते हैं। उन्हे अपने ऊपर क्रोध आ रहा था कि मैं ऐसे दुर्बल प्रकृति के मनुष्य को उसके कुटिल स्वार्थ-साधन मे योग देने पर बाध्य हो रहा हूँ। मैंने कीचड़ मे पैर रखा और प्रतिक्षण नीचे की ओर फिसलता चला जाता हूँ।

७

जब तक इलाके का प्रबध लाला प्रभाशकर के हाथो मे था, वह गौस खाँ को अत्याचार से रोकते रहते थे। अब ज्ञानशकर मालिक और मुख्तार थे। उनकी स्वार्थ-प्रियता ने खाँ साहब को अपनी अभिलापाएँ पूर्ण करने का अवसर प्रदान कर दिया था। वर्षान्त पर उन्होंने बडी निर्दयता से लगान वसूल किया। एक कौड़ी भी बाकी न छोडी। जिसने रुपये न दिये या न दे सका, उस पर नालिश की, कुर्की करायी और एक का डेढ वसूल किया। शिकमी असामियो को समूल उखाड दिया और उनकी भूमि पर लगान बढा कर दूसरे आदमियों को सौंप दिया। मौरूसी और दखीलकार असामियो पर भी कर-वृद्धि के उपाय सोचने लगे। वह जानते थे कि कर-वृद्धि भूमि की उत्पादक शक्ति पर निर्भर है और इस शक्ति को घटाने-बढाने के लिए केवल थोड़ी-सी वाक्चतुरता की आवश्यकता होती है। सारे इलाके मे हाहाकार मच गया। कर-वृद्धि के पिशाच को शात करने के लिए लोग नाना प्रकार के अनुष्ठान करने लगे। प्रभात से सध्या तक खाँ साहब का दरबार लगा रहता! वह स्वय मसनद लगा कर विराजमान होते। मुन्शी मौजीलाल पटवारी उनके दाहिनी ओर बैठते और सुक्खू चौधरी बायीं ओर। यह महानुभाव गाँव के मुखिया, सबमे बडे किसान और सामर्थी पुरुष थे। असामियों पर उनका बहुत दबाव था, इसलिए नीतिकुशल खाँ साहब ने उन्हे अपना मत्री बना लिया था। यह त्रिमूर्ति समस्त इलाके की भाग्य विधायक थी।

खाँ साहब पहले अपने अवकाश का समय भोग-विलास मे व्यतीत करते थे। अब यह समय कुरान का पाठ करने मे व्यतीत होता था। जहाँ कोई फकीर या भिक्षुक द्वार

पर खड़ा भी न होने पाता था, वहाँ अब अभ्यागतो का उदारतापूर्ण सत्कार किया जाता था। कभी-कभी वस्त्रदान भी होता। लोक-सिद्धि ने परलोक बनाने की सदिच्छा उत्पन्न कर दी थी।

अब खाँ साहब को विदित हुआ कि इस इलाके को विद्रोही समझने मे मेरी भूल थी। ऐसा विरला ही कोई असामी था जिसने उनकी चौखट पर मस्तक न नवाया हो। गाँव मे दस-बारह घर ठाकुरो के थे। उनमे लगान बडी कठिनाई से वसूल होता था। किन्तु इजाफा लगाने की खबर पाते ही वह भी दब गये। डपटसिंह उनके नेता थे। वह दिन मे दस-पाँच बार खाँ साहब को सलाम करने आया करते थे। दुखरन भगत शिव जी को जल चढ़ाने जाते समय पहले चौपाल का दर्शन करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। बस, अब समस्त इलाके मे कोई विद्रोही था तो मनोहर था और कोई उसका बधु था तो कादिर। वह खेत से लौटता तो कादिर के घर जा बैठता और अपने दिनो को रोता। इन दोनो मनुष्यो को साथ बैठे देख कर सुक्खू चौधरी की छाती पर साँप लोटने लगता था। वह यह जानना चाहते थे कि इन दोनो मे क्या बातें हुआ करती हैं। अवश्य दोनो मेरी ही बुराई करते होगे। उन्हे देखते ही दोनो चुप हो जाते थे, इससे चौधरी के सदेह की और भी पुष्टि हो जाती थी। खाँ साहब ने कादिर का नाम शैतान रख छोडा था और मनोहर को काला नाग कहा करते थे। काले नाग का तो उन्हे बहुत भय नही था, क्योकि एक चोट से उसका काम तमाम कर सकते थे, मगर शैतान से डरते थे। क्योकि उस पर चोट करना दुस्तर था। उस जवार मे कादिर का बडा मान था। वह बडा नीतिकुशल, उदार और दयालु था। इसके अतिरिक्त उसे जड़ी-बूटियो का अच्छा ज्ञान था। यहाँ हकीम, वैद्य, डाक्टर जो कुछ था वही था। रोग-निदान मे भी उसे पूर्ण अभ्यास था। इससे जनता की उसमे विशेष श्रद्धा थी। एक बार लाला जटाशकर कठिन नेत्र रोग से पीडित थे। बहुत प्रयत्न किये, पर कुछ लाभ न हुआ, कादिर की जडी-बूटियो ने एक ही सप्ताह मे इस असाध्य रोग का निवारण कर दिया। खाँ साहब को भी एक बार कादिर के ही नुस्खे ने प्लेग से बचा लिया था। खाँ साहब इस उपकार से तो नही, पर कादिर की सर्व-प्रियता से सशक रहते थे। वह सदैव इसी उधेड-बुन मे रहते थे कि इस शैतान को कैसे पजे मे लाऊँ।

किन्तु कादिर निश्चित और निश्शक अपने काम मे लगा रहता था। उसे एक क्षण के लिए भी यह भय न होता था कि गाँव के जमीदार और कारिन्दा मेरे शत्रु हो रहे हैं और उनकी शत्रुता मेरा सर्वनाश कर सकती है। यदि इस समय भी दैवयोग से खाँ साहब बीमार पड जाते, तो वह उनका इशारा पाते ही तुरत उनके उपचार और सेवाशुश्रूषा मे दत्तचित हो जाता। उसके हृदय मे राग और द्वेप के लिए स्थान न था और न इस बात की ही परवाह थी कि मेरे विषय मे कैसे-कैसे मिथ्यालाप हो रहे हैं! वह गाँव मे विद्रोहाग्नि भडका सकता था, खाँ साहब और उनके सिपाहियो की खबर ले सकता था। गाँव मे ऐसे कई उद्दड नवयुवक थे, जो इस अनिष्ट के लिए आतुर

थे किन्तु कादिर उन्हें सँभाले रहता था। दीनरक्षा उसका लक्ष्य था, किन्तु क्रोध और द्वेष को उभाड कर नहीं, वरन् सद्व्यवहार तथा सत्य प्रेरणा से।

मनोहर की दशा इनके प्रतिकूल थी। जिस दिन से वह ज्ञानशंकर की कठोर बातें सुन कर लौटा था, उसी दिन से विकृत भावनाएँ उसके हृदय और मस्तिष्क में गूँजती रहती थी। एक दीन मर्माहत पक्षी था, जो घावो से तडप रहा था। वह अपशब्द उसे एक क्षण भी न भूलते थे। वह ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहता था। वह जानता था कि सबलों से बैर बढाने में मेरा ही सर्वनाश होगा, किन्तु इस समय उसकी अवस्था उस मनुष्य की-सी हो रही थी, जिसके झोपडे में आग लगी हो और वह उसके बुझाने में असमर्थ हो कर शेष भागो में भी आग लगा दे कि किसी प्रकार इस विपत्ति का अन्त हो। रोगी अपने रोग को असाध्य देखता है, तो पथ्यापथ्य की बेडियो को तोड कर मृत्यु की ओर दौडता है। मनोहर चौपाल के सामने से निकलता तो अकड कर चलने लगता। अपनी चारपाई पर बैठे हुए कभी खाँ साहब या गिरधर महाराज को आते देखता, तो उठ कर सलाम करने के बदले पैर फैलाकर लेट जाता। सावन में उसके पेडों के आम पके, उसने सब आम तोड कर घर मे रख लिये, जमींदार का चिरकाल से बँधा हुआ चतुर्थांश न दिया और जब गिरधर महाराज माँगने आये तो उन्हें दुत्कार दिया। वह सिद्ध करना चाहता था कि मुझे तुम्हारी धमकियों की जरा भी परवाह नही है। कभी-कभी नौ-दस बजे रात तक उसके द्वार पर गाना होता, जिसका अभिप्राय केवल खाँ साहब और सुक्खू चौधरी को जलाना था। बलराज को अब वह स्वेच्छाचार प्राप्त हो गया, जिसके लिए पहले उसे झिडकियाँ खानी पड़ती थी। उसके रँगीले सहचरो का यहाँ खूब आदर-सत्कार होता, भंग छनती, लकडी के खेल होते, लावनी और ख्याल की तानें उडती, डफली बजती। मनोहर जवानी के जोश के साथ इन जमघटों में सम्मिलित होता। ये ही दोनो पक्षो के विचार विनिमय के माध्यम थे। खाँ साहब को एक-एक बात की सूचना यहाँ हो जाती थी। यहाँ का एक-एक शब्द वहाँ पहुँच जाता था। यह गुप्त चालें आग पर तेल छिडकती रहती थी। खाँ साहब ने एक दिन कहा, आजकल तो उधर खूब गुलछर्रे उड़ रहे हैं, बेदखली का सम्मन पहुँचेगा तो होश ठिकाने हो जायगा। मनोहर ने उत्तर दिया, बेदखली की धमकी दूसरों को दे, यहाँ हमारे खेत के मेडों पर कोई आया तो उसके बाल-बच्चे उसके नाम को रोयेंगे।

एक दिन संध्या समय, मनोहर द्वार पर बैठा हुआ बैलों के लिए कड़वी छाँट रहा था और बलराज अपनी लाठी में तेल लगाता था कि ठाकुर डपटसिंह आ कर माचे पर बैठ गये, और बोले, सुनते हैं डिप्टी ज्वालासिंह हमारे बाबू साहब के पुराने दोस्त हैं। छोटे सरकार के लडके थानेदार थे, उनका मुकद्दमा उन्हीं के इजलास में था। वह आज बरी हो गये।

मनोहर—रिशवत तो साबित हो गयी थी न?

डपटसिंह—हाँ साबित हो गयी थी। किसी को उनके बरी होने की आशा न थी।

पर बाबू ज्ञानशकर ने ऐसी सिफारिश पहुँचायी कि डिप्टी साहब को मुकदमा खारिज करना पडा।

मनोहर—हमारे परगने का हाकिम भी तो वही डिप्टी है।

डपट—हाँ, इसी की तो चिन्ता है। इजाफा लगान का मामला उसी के इजलास मे जायगा और ज्ञान बाबू अपना पूरा जोर लगायेगे।

मनोहर—तब क्या करना होगा?

डपट—कुछ समझ मे नही आता।

मनोहर—ऐसा कोई कानून नही बन जाता कि बेसी का मामला इन हाकिमो के इजलास मे न पेश हुआ करे। हाकिम लोग आप भी तो ज़मीदार होते है, इसलिए वह जमीदारो का पक्ष करते है। सुनते है, लाट साहब के यहाँ कोई पचायत होती है, यह बातें उस पचायत मे कोई नही कहता?

डपट—वहाँ भी तो सब जमीदार ही होते हैं, काश्तकारो की फरयाद कौन करेगा?

मनोहर—हमने तो ठान लिया है कि एक कौडी भी बेसी न देंगे।

बलराज ने लाठी कधे पर रख कर कहा, कौन इजाफा करेगा, सिर तोड़ के रख दूंगा।

मनोहर—तू क्यो बीच मे बोलता है? तुझसे तो हम नही पूछते। यह तो न होगा कि साँझ हो गयी है, लाओ भैस दुह लूँ, बैल की नाद मे पानी डाल दूँ। बे बात की बात बकता है। (ठाकुर से) यह लौडा घर का रत्ती भर काम नही करता, बस खाने भर का घर से नाता है, मटरगस किया करता है।

डपट—मुझसे क्या कहते हो, मेरे यहाँ तो तीन-तीन मूसलचद हैं।

मनोहर—मैं तो एक कौडी बेसी न दूंगा, और न खेत ही छोडूँगा। खेतो के साथ जान भी जायगी और दो-चार को साथ ले कर जायगी।

बलराज—किसी ने हमारे खेतो की ओर आँख भी उठायी तो कुशल नही।

मनोहर—फिर बीच मे बोला?

बलराज—क्यो न बोलूँ, तुम तो दो-चार दिन के मेहमान हो, जो कुछ पडेगी वह तो हमारे ही सिर पडेगी। जमीदार कोई बादशाह नही है कि चाहे जितनी जबरदस्ती करे और हम मुँह न खोले। इस जमाने मे तो बादशाहो का भी इतना अख्तियार नही, जमीदार किस गिनती मे है! कचहरी-दरबार मे कही सुनायी नही है तो (लाठी दिखला कर) यह तो कही नही गयी है।

डपट—कही खाँ साहब यह बाते सुन ले तो गजब हो जाय।

बलराज—तुम खाँ साहब से डरो, यहाँ उनके दबैल नही है। खेत मे चाहे कुछ उपज हो या न हो, बेसी होती चली जाय, ऐसा क्या अधेर है? सरकार के घर कुछ तो न्याय होगा, किस बात पर बेसी मजूर करेगी।

डपट—अनाज का भाव नही चढ गया है?

बलराज—भाव चढ गया है तो मजदूरो की मजदूरी भी तो चढ गयी है, बैलो का

दाम भी तो चढ़ गया है, लोहे-लक्कड़ का दाम भी तो चढ़ गया है, यह किस के घर से आयेगा?

इतने में तो कादिर मियाँ घास का गट्ठर सिर पर रखे हुए आकर खड़े हो गये। वलराज की बातें सुनीं तो मुस्कराकर वोले, भाँग का दाम भी तो चढ़ गया है। चरस भी महँगी हो गयी है, कत्था-सुपारी भी तो दूने दामों विकती हैं, इसे क्यों छोड़े जाते हो?

मनोहर—हाँ, कादिर दादा, तुमने हमारे मन की कही।

वलराज—तो क्या अपनी जवानी में तुम लोगों ने बूटी-भाँग न पी होगी? सदा इसी तरह एक जून चवेना और दूसरी जून रोटी-साग खा कर दिन काटे हैं? और फिर तुम जमींदार के गुलाम वने रहो तो उस जमाने में और कर ही क्या सकते थे? न अपने खेत में काम करते, किसी दूसरे के खेत में मजूरी करते। अव तो शहरों में मजूरों की माँग है, रुपया रोज खाने को मिलता है, रहने को पक्का घर अलग। अव हम जमींदारों की धौंस क्यों सहें, क्यों भर पेट खाने को तरसें?

कादिर—क्यों मनोहर, क्या खाने को नहीं देते?

वलराज—यह भी कोई खाना है कि एक आदमी खाय और घर के सव आदमी उपास करें? गाँव में सुक्खू चौधरी को छोड़ कर और किसी के घर दोनों वेला चूल्हा जलता है? किसी को एक जून चवेना मिलता है, कोई चुटकी भर सत्तू फाँक कर रह जाता है। दूसरी वेला भी पेट भर रोटी नहीं मिलती।

कादिर—भाई, वलराज वात तो सच्ची कहता है। इस खेती में कुछ रह नहीं गया, मजदूरी भी नहीं पड़ती। अव मेरे ही घर देखो, कुल छोटे-वड़े मिलाकर दस आदमी हैं, पाँच-पाँच रुपये भी कमाते तो छह सौ रुपये साल भर के होते। खा-पी कर पचास रुपये वच ही रहते। लेकिन इस खेती में रात-दिन लगे रहते हैं, फिर भी किसी को भर पेट दाना नहीं मिलता।

डपट—वस, एक मरजाद रह गयी है, दूसरे की मजूरी नहीं करते वनती। इसी वहाने से किसी तरह निवाह हो जाता है। नहीं तो वलराज की उमिर में हम लोग खेत के डाँढ़ पर न जाते थे। न जाने क्या हुआ कि जमीन की वरक्कत ही उठ गयी। जहाँ बीघा पीछे वीस-वीस मन होते थे, वहाँ अव चार-पाँच मन से आगे नहीं जाता।

मनोहर—सरकार को यह हाल मालूम होता तो जरूर कास्तकारों पर निगाह करती।

कादिर—मालूम क्यों नहीं है? रत्ती-रत्ती का पता लगा लेती है।

डपट—(हँसकर) वलराज से कहो, सरकार के दरवार में हम लोगों की ओर से फरियाद कर आये।

वलराज—तुम लोग तो ऐसी हँसी उड़ाते हो, मानो कास्तकार कुछ होता ही नहीं। वह जमींदार की वेगार ही भरने के लिए वनाया गया है; लेकिन मेरे पास जो पत्र आता है, उसमें लिखा है कि रूस देश में कास्तकारों का राज है, वह जो चाहते हैं करते हैं। उन्हीं के पास कोई और देश वलगारी है। वहाँ अभी हाल की वात है,

कास्तकारो ने राजा को गद्दी से उतार दिया है और अब किसानो और मजदूरो की पचायत राज करती है।

कादिर—(कुतूहल से) तो चलो ठाकुर! उसी देश में चले, वहाँ मालगुजारी न देनी पडेगी।

डपट—वहाँ के कास्तकार बडे चतुर और बुद्धिमान होगे तभी राज सँभालते होगे।

कादिर—मुझे तो विश्वास नही आता।

मनोहर—हमारे पत्र मे झूठी बाते नही होती।

बलराज—पत्रवाले झूठी बाते लिखे तो सजा पा जायँ।

मनोहर—जब उस देश के किसान राज का बदोबस्त कर लेते है, तो क्या हम लोग लाट साहब से अपना रोना भी न रो सकेगे?

कादिर—तहसीलदार साहब के सामने तो मुँह खुलता नही, लाट साहब से कौन फरियाद करेगा?

बलराज—तुम्हारा मुँह न खुले, मेरी तो लाट साहब से बातचीत हो, तो सारी कथा कह सुनाऊँ।

कादिर—अच्छा, अब की हाकिम लोग दौरे पर आयेगे, तो हम तुम्ही को उनके सामने खडा कर देगे।

यह कह कर कादिर खाँ घर की ओर चले। बलराज ने भी लाठी कंधे पर रखी और उनके पीछे चला। जब दोनो कुछ दूर निकल गये तब बलराज ने कहा, दादा कहो तो खाँ साहब की (घूसे का इशारा करके) कर दी जाय।

कादिर ने चौक कर उसकी ओर देखा, क्या गाँव भर को बँधवाने पर लगे हो? भूल कर भी ऐसा काम न करना।

बलराज—सब मामला लैस है, तुम्हारे हुकुम की देर है।

कादिर—(कान पकड कर) नही, मैं तुम्हें आग मे कूदने की सलाह न दूँगा। जब अल्लाह को मजूर होगा तब वह आप ही यहाँ से चले जायेगे।

बलराज—अच्छा तो बीच मे न पड़ोगे न?

कादिर—तो क्या तुम लोग सचमुच मार-पीट पर उतारू हो क्या? हमारी बात न मानोगे तो मै जा कर थाने मे इत्तला कर दूँगा। यह मुझसे नही हो सकता कि तुम लोग गाँव मे आग लगाओ और मै देखता रहूँ।

बलराज—तो तुम्हारी सलाह है नित यह अन्याय सहते जायें!

कादिर—जब अल्लाह को मजूर होगा तो आप-ही-आप सब उपाय हो जायगा।

८

जिस भाँति सूर्यास्त के पीछे एक विशेष प्रकार के जीवधारी, जो न पशु हैं न पक्षी, जीविका की खोज में निकल पडते हैं, अपनी लम्बी श्रेणियो से आकाश मडल को आच्छादित कर लेते है, उसी भाँति कार्तिक का आरम्भ होते ही एक अन्य प्रकार के जतु

देहातो मे निकल पडते है और अपने खेमो तथा छोलदारियो से समस्त ग्राममडल को उज्ज्वल कर देते है। वर्षा के आदि मे राजसिक कीट और पतग का उद्भव होता है, उसके अत मे तामसिक कीट और पतग का। उनका उत्थान होते ही देहातो मे भूकम्प सा आ जाता है और लोग भय से प्राण छिपाने लगते है।

इसमे सदेह नही कि अधिकारियो के यह दौरे सदिच्छाओ से प्रेरित हो कर होते है। उनका अभिप्राय है जनता की वास्तविक दशा का ज्ञान प्राप्त करना, न्याय-प्रार्थी के द्वार तक पहुँचना, प्रजा के दु खो को सुनना, उनकी आवश्यकताओ को देखना, उनके कष्टो का अनुमान करना, उनके विचारो से परिचित होना। यदि यह अर्थ सिद्ध होते तो यह दौरे वसतकाल से भी अधिक प्राण पोषक होते, लोग वीणा-पखावज से, ढोल-मजीरे से उनका अभिवादन करते। किन्तु जिस भाँति प्रकाश की रश्मियाँ पानी मे वक्रगामी हो जाती है, उसी भाँति सदिच्छाएँ भी बहुधा मानवी दुर्बलताओ के सम्पर्क से विषम हो जाया करती हैं। सत्य और न्याय पैरो के नीचे आ जाता है, लोभ और स्वार्थ की विजय हो जाती है। अधिकारी वर्ग और उनके कर्मचारी विरहिणी की भाँति इस सुख काल के दिन गिना करते है। शहरो मे तो उनकी दाल नही गलती, या गलती है तो बहुत कम। वहाँ प्रत्येक वस्तु के लिए उन्हे जेब मे हाथ डालना पडता है, किन्तु देहातो मे जेब की जगह उनका हाथ अपने सोटे पर होता है या किसी दीन किसान की गर्दन पर। जिस घी, दूध, शाक-भाजी, मास-मछली आदि के लिए शहर मे तरसते थे, जिनका स्वप्न मे भी दर्शन नही होता था, उन पदार्थो की यहाँ केवल जिह्वा और बाहु के बल से रेल-पेल हो जाती है। जितना खा सकते है, खाते है, बार-बार खाते हैं, और जो नही खा सकते, वह घर भेजते हैं। घी से भरे हुए कनस्टर, दूधसे भरे हुए मटके, उपले और लकडी, घास और चारे से लदी हुई गाडियाँ शहरो मे आने लगती है। घरवाले हर्ष से फूले नही समाते, अपने भाग्य को सराहते है, क्योकि अब दु ख के दिन गये और सुख के दिन आये। उनकी तरी वर्षा के पीछे आती है, वह खुश्की मे तरी का आनद उठाते हैं। देहातवालो के लिए वह बडे सकट के दिन होते हैं, उनकी शामत आ जाती है, मार खाते है, बेगार मे पकडे जाते है, दासत्व के दारुण निर्दय आघातो से आत्मा का भी ह्रास हो जाता है।

अगहन का महीना था, साँझ हो गयी थी। कादिर खाँ के द्वार पर अलाव लगी हुई थी। कई आदमी उसके इर्द-गिर्द बैठे हुए बाते कर रहे थे। कादिर ने बाजार के तम्बाकू की निन्दा की, दुखरन भगत ने उनका अनुमोदन किया। इसके बाद डपटसिंह पत्थर और बेलन के कोल्हुओ के गुण-दोष की विवेचना करने लगे, अत मे लोहे ने पत्थर पर विजय पायी।

दुखरन बोले, आजकल रात को मटर मे सियार और हिरन बडा उपद्रव मचाते है। जाडे के मारे उठा नही जाता।

कादिर—अब की ठंड पडेगी। दिन को पछुआ चलता है। मेरे पास तो कोई कम्बल भी नही, वही एक दोहर लपेटे पडा रहता हूँ। पुआल न हो गया होता तो रात

को अकड़ जाता।

डपट—यहाँ किसके पास कम्बल है। उसी एक पुराने धुस्से की भुगुत है। लकडी भी इतनी नही मिलती कि रात भर तापे।

मनोहर—अब की बेटी के ब्याह मे इमली का पेड कटवाया था। क्या सब जल गयी ?

डपट—नही, बची तो बहुत थी, पर कल डिप्टी ज्वालासिह के लश्कर मे चली गयी। खाँ साहब से कितना कहा कि इसे मत ले जाइए, पर उनकी बला सुनती है। चपरासियो को ढेर दिखा दिया। बात की बात मे सारी लकड़ी उठ गयी।

मनोहर—तुमने चपरासियो से कुछ कहा नही ?

डपट—क्या कहता, दस-पाँच मन लकडी के पीछे अपनी जान साँसत मे डालता! गालियाँ खाता, लश्कर मे पकड जाता, मार पडती ऊपर से, तब तुम भी पास न फट-कते। दोनो लडके और झपट तो गरम हो पडे थे, लेकिन मैंने उन्हे डाँट दिया। जबरदस्त का ठेंगा सिर पर।

कादिर—हाकिमो का दौरा क्या है, हमारी मौत है। बकरीद मे कुर्बानी के लिए जो बकरा पाल रखा था, वह कल लश्कर मे पकड गया। रब्बी बूचड पाँच रुपये नगद था, मगर मैंने न दिया था। इस वखत सात से कम का माल न था।

मनोहर—यह लोग बडा अधेर मचाते है। आते है इतजाम करने, इन्साफ करने, लेकिन हमारे गले पर छुरी चलाते हैं। इससे कही अच्छा तो यही था कि दौरे बद हो जाते। यही न होता कि मुकदमेवालो को सदर जाना पडता, इस साँसत से तो जान बचती।

कादिर—इसमे हाकिमो का कसूर नही। यह सब उनके लश्करवालो की धाँधली है। वही सब हाकिमो को भी बदनाम कर देते है।

मनोहर—कैसी बाते कहते हो दादा ? यह सब मिली भगत है। हाकिम का इशारा न हो तो मजाल है कि कोई लश्करी परायी चीज पर हाथ डाल सके। सब कुछ हाकिमो की मर्जी से होता है और उनकी मर्जी क्यो न होगी ? सेत का माल किसको बुरा लगता है ?

डपट—ठीक बात है। जिसकी जितनी आमद होती है वह उतना ही और मुँह फैलाता है।

दुखरन—परमात्मा यह अधेर देखते है, और कोई जतन नही करते। देखें बिसेसर साह को अबकी कितनी घटी आती है।

डपट—परसाल तो पूरे तीन सौ की चपत पडी थी। वही अबकी भी समझो, अगर जिन्स ही तक रहे तो इतना घाटा न पडे, मगर यहाँ तो इलायची, कत्था, सुपारी, मेवा और मिश्री सभी कुछ चाहिए और सब टके सेर। लोग खाने के इतने शौकीन बनते हैं, पर यह नही होता कि वे सब चीजें अपने साथ रखें।

मनोहर—शहर मे खरे दाम लगते है, यहाँ जी मे आया दिया न दिया।

कादिर—कल लश्कर का एक चपरासी बिसेसर के यहाँ साबूदाना माँग रहा था।

विसेसर हाथ जोड़ता था, पैरो पडता था कि मेरे यहाँ नही है, लेकिन चपरासी एक न सुनता था, कहता था जहाँ से चाहो मुझे ला कर दो। गालियाँ देता था, डडा दिखाता था। वारे वलराज पहुँच गया। जव वह कडा पडा तो चपरासी मियाँ नरम पडे, और भुनभुनाते चले गये।

दुखरन—विसेसर की एक वार मरम्मत हो जाती तो अच्छा होता। गाँव भर का गला मरोड़ता है, यह उसकी सजा है।

डपट—और हम-तुम किसका गला मरोडते है?

मनोहर ने चिन्तित भाव से कहा, वलराज अब सरकारी आदमियो के मुँह आने लगा। कितना समझा के हार गया मानता नही।

कादिर—यह उमिर ही ऐसी होती है।

यही वातें हो रही थी कि एक वटोही आ कर अलाव के पास खड़ा हो गया। उसके पीछे-पीछे एक वुढिया लाठी टेकती हुई आयी और अलाव से दूर सिर झुका कर वैठ गयी।

कादिर ने पूछा—कहो भाई, कहाँ घर है?

घर तो देवरी पार, अपनी वुढिया माता को लिये अस्पताल जाता था। मगर वह जो सडक के किनारे वगीचे मे डिप्टी साहव का लश्कर उतरा है, वहाँ पहुँचा तो चपरासी ने गाड़ी रोक ली और हमारे कपडे-लत्ते फेक-फांक कर लकडी लादने लगे। कितनी अरज-विनती की, वुढिया वीमार है, भर रात का चला हूँ, आज अस्पताल नही पहुँचता तो कल न जाने इसका क्या हाल हो। मगर कौन सुनता है? मैं रोता ही रहा, वहाँ गाडी लद गयी। तव मुझसे कहने लगे, गाडी हांक। क्या करूँ, अव गाडी हाँक सदर जा रहा हूँ। वैल और गाडी उनके भरोसे छोड कर आया हूँ। जव लकडी पहुँचा के लौटूँगा तव अस्पताल जाऊँगा। तुम लोगो मे हो सके तो वुढिया के लिए एक खटिया दे दो और कही पड रहने का ठिकाना वता दो। इतना पुण्य करो, मैं बड़ी विपत्तियो मे हूँ।

दुखरन—यह वडा अधेर है। यह लोग आदमी काहे के, पूरे राक्षस हैं, जिन्हे दयाधरम का विचार नही।

डपट—दिन भर के थके-मांदे वैल हैं, न जाने कहाँ गाड़ी ले जानी पड़ेगी और न जाने कव लौटोगे। तव तक वुढ़िया अकेली पड़ी रहेगी? जाने कैसी पड़े, कैसी न पड़े! हम लोग कितने भी हों, है तो पराये ही, घर के आदमी की और बात है।

मनोहर—मेरा तो ऐसा ही जी चाहता है कि इसी दम डिप्टी साहव के सामने चला जाऊँ और ऐसी खरी-खरी सुनाऊँ कि वह भी याद करेंगे। वड़े हाकिम की पाग वने हैं। इन्साफ तो क्या करेंगे, उल्टे और गरीबो को पीसते हैं। खटिया की तो कोई वात नही है और न जगह की ही कमी है, लेकिन यह अकेली रहेगी कैसे?

वटोही—कैसे वताऊँ? जो भाग्य मे लिखा है वही होगा।

मनोहर—यहाँ से कोई तुम्हारी गाड़ी हाँक ले जाय तो कोई हरज है?

बटोही—ऐसा हो जाय तो क्या पूछना। है कोई आदमी?

मनोहर—आदमी बहुत है, कोई न कोई चला जायगा।

कादिर—तुम्हारा हलवाहा तो खाली है, उसे भेज दो।

मनोहर—हलवाहे से बैल सधे न सधे, मै ही चला जाऊँगा।

कादिर—तुम्हारे ऊपर मुझे विश्वास नही आता। कही झगडा कर बैठो तो और बन जाय। दुखरन भगत, तुम चले जाओ तो अच्छा हो।

दुखरन ने नाक सिकोड कर कहा, मुझे तो जानते हो, रात को कही नही जाता। भजन-भाव की यही वेला है।

कादिर—चला तो मैं जाता, लेकिन मेरा मन कहता है कि बूढी को अच्छा करने का जस मुझी को मिलेगा। कौन जाने अल्लाह को यही मजूर हो। मैं उन्हे अपने घर लिए जाता हूँ। जो कुछ बन पडेगा करूँगा। गाडी हसनू से हँकवाये देता हूँ। बैलो को चारा-पानी देना है, बलराज को थोड़ी देर के लिए भेज देना।

कादिर के बरौठे मे वृद्धा की चारपाई पड गयी। कादिर का लडका हसनू गाडी हाँकने के लिए पडाव की तरफ चला। इतने मे सुक्खू चौधरी और गौस खाँ दो चपरासियो के साथ आते दिखायी दिये। दूसरी ओर से बलराज भी आ कर खडा हो गया।

गौस खाँ ने कहा, सब लोग यहाँ बैठे गलचौड कर रहे हो, कुछ लश्कर की भी खबर है? देखो, यही चपरासी लोग दूध के लिए आये हैं, उसका बदोबस्त करो।

कादिर—कितना दूध चाहिए?

एक चपरासी—कम से कम दस सेर।

कादिर—दस सेर! इतना दूध तो चाहे गाँव भर मे न निकले। दो ही चार आदमियो के पास तो भैंसें है और वह भी दुधार नही है। मेरे यहाँ तो दोनो जून मे सेर भर से ज्यादा नही होता।

चपरासी—भैंसे हमारे सामने लाओ, दूध तो हमारा चपरास निकालता है। हम पत्थर से दूध निकाल लें। चोरो के पेट की बात तक निकाल लेते है, भैंसें तो फिर भैंसें है। इस चपरास मे वह जादू है, कि चाहे तो जगल मे मगल कर दे। लाओ, भैसे यहाँ खडी करो।

गौस खाँ—इतने तूल-कलाम की क्या जरूरत है? दूध का इतजाम हो जायगा। दो सेर सुक्खू देने को कहते हैं। कादिर के यहाँ दो सेर मिल ही जायगा, दुखरन भगत दो सेर देंगे, मनोहर और डपटसिह भी दो-दो सेर दे देंगे। बस हो गया।

कादिर—मै दो-चार सेर का बीमा नही लेता। यह दोनो भैसे खडी हैं। जितना दूध दे दें उतना ले लिया जाय।

दुखरन—मेरी तो दोनो भैसे गाभिन हे। बहुत देगी तो आधा सेर। पुवाल तो खाने को पाती हैं और वह भी आधा पेट। कही चराई है नही, दूध कहाँ से हो?

डपटसिह—सुक्खू चौधरी जितना देते हैं, उसका आधा मुझसे ले लीजिए। हैसियत के हिसाब से न लीजिएगा।

गौस खाँ—तुम लोगों की यह निहायत वेहूदी आदत है कि हर वात मे लाग-डाँट करने लगते हो। शराफत और नरमी से आधा भी न दोगे, लेकिन सख्ती से पूरा लिए हाजिर हो जाओगे। मैंने तुमसे दो सेर कह दिया है, इतना तुम्हे देना होगा।

डपट—इस तरह आप मालिक हैं, भैंसे खोल ले जाइए, लेकिन दो सेर दूध मेरे यहाँ न होगा।

गौस खाँ—मनोहर तुम्हारी भैंसे तो दुधार हैं?

मनोहर ने अभी जवाव न दिया था कि वलराज वोल उठा मेरी भैंसे वहुत दुधार हैं, मन भर दूध देती है, लेकिन वेगार के नाम से छटाँक भर भी न देगी।

मनोहर—तू चुपचाप क्यो नही रहता? तुमसे कौन पूछता है? हमसे जितना हो सकेगा देंगे, तुमसे मतलव?

चपरासी ने वलराज की ओर अपमान-जनक क्रोध से देख कर कहा, महतो, अभी हम लोगो के पजे मे नहा पडे हो। एक वार पड जाओगे तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जायगा। मुँह से वाते न निकलेगी।

दूसरा चपरासी—मालूम होता है, सिर पर गरमी चढ गयी है तभी इतना ऐंठ रहा है। इसे लश्कर ले चलो तो गरमी उतर जाय।

वलराज ने मर्माहत हो कर कहा, मियाँ, हमारी गरमी पाँच-पाँच रुपल्ली के चपरासियो के मान की नही है, जाओ, अपने साहव वहादुर के जूते सीधे करो, जो तुम्हारा काम है, हमारी गरमी के फेर मे न पडो, नही तो हाथ लग जायेंगे। उस जन्म के पापो का दड भोग रहे हो, लेकिन अव भी तुम्हारी आँखें नही खुलती?

वलराज ने यह शब्द ऐसी सगर्व गम्भीरता से कहे कि दोनो चपरासी खिसिया-से गये। इस घोर अपमान का प्रतिकार करना कठिन था। यह मानो वाद को वाणी की परिधि से निकाल कर कर्म के क्षेत्र मे लाने की ललकार थी। व्यगाघात शाब्दिक कलह की चरम सीमा है। उसका प्रतिकार मुँह से नही हाथ से होता है। लेकिन वलराज की चौडी छाती और पुष्ट भुजदड देख कर चपरासियो को हाथापाई करने का साहस न हो सका। गौस खाँ ने बोला, खाँ साहव, आप इस लौडे को देखते हैं, कैसा वढा जाता है? इसे समझा दीजिए, हमारे मुँह न लगे। ऐसा न हो शामत आ जाय और छह महीने तक चक्की पीसनी पडे। हम आप लोगो का मुलाहिजा करते हैं, नही तो इस हेकडी का मजा चखा देते।

गौस खाँ—सुनते हो मनोहर, अपने वेटे की वात? भला सोचो तो डिप्टी साहव के कानो मे यह वात पड जाय तो तुम्हारा क्या हाल हो? कही एक पत्ती का साया भी न मिलेगा।

मनोहर ने दीनता से खाँ साहव की ओर देख कर कहा, खाँ साहव, मै तो इसे सव तरह से समझा-बुझा कर हार गया। न जाने क्या हाल करने पर तुला है? (वलराज से) अरे, तू यहाँ से जायगा कि नही?

वलराज—खाँ साहव मुझे किसी का डर नही है। यह लोग डिप्टी साहव से मेरी

शिकायत करने की धमकी देते है, मै आप ही उनके पास जाता हूँ। इन लोगो को उन्होंने कभी ऐसा नादिरशाही हुक्म न दिया होगा कि जा कर गाँव मे आग लगा दो। और मान ले कि वह ऐसा कडा हुक्म दे भी दे, तो इन लोगो को तो सोचना चाहिए कि गरीब किसान भी हमारे भाई बद है, इन्हे व्यर्थ न सताये। लेकिन इन लोगो को तो पैसे के लोभ और चपरास के मद ने ऐसा अधा बना दिया है कि कुछ सूझता ही नही। आज उस बेचारी बुढिया का क्या हाल होगा, मरेगी कि जियेगी। नौकरी तो की है पाँच रुपये की, काम है बस्ते ढोना, मेज साफ करना, साहब के पीछे-पीछे खिदमतगारो की तरह चलना और बनते है रईस!

मनोहर—तू चुप होगा कि नही?

एक चपरासी—नही, इसे खूब गालियाँ दे लेने दो, जिसमे इसके दिल की हवस निकल जाय। इसका मजा कल मिलेगा। खाँ साहब, आपने सुना है, आपको गवाही देनी पडेगी। आपका इतना मुलाहिजा बहुत किया। लाइए, दूध का कुछ इतजाम करते है कि हम लोग जायँ?

गौस खाँ—नही जी, दूध लो, और दस सेर से ज्यादा। यही लोग झख मारेगे। क्या बताये आज इस छोकडे की बदौलत हमको तुम लोगो के सामने इतना शर्मिन्दा होना पडा। इस गाँव की कुछ हवा ही बिगडी हुई है। मैं खूब समझता हूँ। यह लोग जो भीगी बिल्ली बने बैठे हुए है, इन्ही के शह देने से लौडे को इतनी जुर्रत हुई है, नही तो इसकी मजाल थी कि यो टर्राता। बछडा खूँटे के ही बल कूदता है। खैर, अगर मेरा नाम गौस खाँ है तो एक-एक से समझूँगा।

इस तिरस्कार का आशातीत प्रभाव हुआ। सब दहल उठे। वह अविनयशीलता, जो पहले सब के चेहरे से झलक रही थी, लुप्त हो गयी। मनोहर तो ऐसा सिटपिटा गया, मानो सैकडो जूते पडे हो। इस खटाई ने सब के नशे उतार दिये।

कादिर खाँ बोले—मनोहर, जाओ, जितना दूध है सब यहाँ भेज दो।

गौस खाँ—हमको मनोहर के दूध की जरूरत नही है।

बलराज—यहाँ देता ही कौन है?

मनोहर खिसिया गया। उठ खडा हुआ और बोला, अच्छा ले अब तू ही बोल, जो तेरे जी मे आये कर, मैं जाता हूँ। अपना घर-द्वार सम्भाल, मेरा निबाह तेरे साथ न होगा। चाहे घर को रख, चाहे आग लगा दे।

यह कह कर वह सशक क्रोध से भरा हुआ वहाँ से चल दिया। बलराज भी धीरे-धीरे अपने अखाड़े की ओर चला। वहाँ इस समय सन्नाटा था। मुगदर की जोडी रखी हुई थी। एक पत्थर की नाल जमीन पर पड़ी हुई थी, और लेजिम आम की डाल से लटक रहा था। बलराज ने कपडे उतारे और लँगोट कस कर अखाडे मे उतरा, लेकिन आज व्यायाम मे उसका मन न लगा। चपरासियो की बात एक फोडे की भाँति उसके हृदय मे टीस रही थी। यद्यपि उसने चपरासियो को निर्भय हो कर उत्तर दिया था, लेकिन उसे इसमे तनिक भी सदेह न था कि गाँव के अन्य पुरुषों को, यहाँ तक कि मेरे

पिता को भी, मेरी बातें उद्दंड प्रतीत हुईं। सब के सब कैसा सन्नाटा खींचे बैठे रहे। मालूम होता था किसी के मुंह मे जीभ ही नही है। तभी तो यह दुर्गति हो रही है! अगर कुछ दम हो तो आज इतने पीसे-कुचले क्यो जाते? और तो और, दादा ने भी मुझी को डाँटा। न जाने इनके मन मे इतना डर क्यो समा गया है? पहले तो ये इतने कायर न थे। कदाचित् अब मेरी चिन्ता इन्हे सताने लगी। लेकिन मुझे अवसर मिला तो स्पष्ट कह दूंगा कि तुम मेरी ओर से निश्चिंत रहो। मुझे परमात्मा ने हाथ-पैर दिये है। मिहनत कर सकता हूँ और दो को खिलाकर खा सकता हूँ। तुम्हे अगर अपने खेत इतने प्यारे है कि उनके पीछे तुम अत्याचार और अपमान सहने पर तैयार हो तो शौक से सहो, लेकिन मैं ऐसे खेतो पर लात मारता हूँ। अपने पसीने की रोटी खाऊँगा और अकड कर चलूंगा। अगर कोई आँख दिखायेगा तो उसकी आँख निकाल लूंगा। यह बुड्ढा गौस खाँ कैसी लाल-पीली आँख कर रहा था, मालूम होता है इनकी मृत्यु मेरे ही हाथो लिखी हुई है। मुझपर दो चोट कर चुके हैं। अब देखता हूँ कौन हाथ निकालते है। इनका क्रोध मुझी पर उतरेगा। कोई चिन्ता नही, देखा जायगा। दोनो चपरासी मन मे फूले न समाये होंगे कि सारा गाँव कैसा रोब मे आ गया, पानी भरने को तैयार है। गाँव वालो ने भी लल्लो-चप्पो की होगी। कोई परवाह नही। चपरासी मेरा कर ही क्या सकते हैं? लेकिन मुझे कल प्रातःकाल डिप्टी साहब के पास जा कर उनसे सब हाल कह देना चाहिए। विद्वान पुरुष है। दीन जनो पर उन्हे अवश्य दया आयेगी। अगर वह गाड़ियो के पकडने की मनाही कर दे तो क्या पूछना? उन्हे यह अत्याचार कभी पसद न आता होगा। यह चपरासी लोग उनसे छिपा कर यो जबरदस्ती करते हैं। लेकिन कही उन्होने मुझे अपने इजलास से खड़े-खड़े निकलवा दिया तो? बड़े आदमियो को घमड बहुत होता है। कोई हरज नही मैं सडक पर खड़ा हो जाऊँगा और देखूंगा कि कैसे कोई मुसाफिरो की गाडी पकडता है। या तो दो-चार का सिर तोड़ के रख दूंगा या आप भी वही मर जाऊँगा। अब बिना गरम पडे काम नही चल सकता। वह दादा बुलाने आ रहे है।

बलराज अपने बाप के पीछे-पीछे घर पहुँचा। रास्ते मे कोई बात-चीत नही हुई। विलासी बलराज को देखकर बोली, कहाँ जाके बैठ रहे? तुम्हारे दादा कब से खोज रहे हैं। चलो, रोटी तैयार है।

बलराज—अखाडे की ओर चला गया था।

विलासी—तुम अखाडे मत जाया करो।

बलराज—क्यो?

विलासी—क्यों क्या, देखते नही हो, सब की आँखो मे कैसे चुभते हो? जिन्हे तुम अपना हितू समझते हो, वह सब के सब तुम्हारी जान के घातक हैं। तुम्हें आग मे ढकेल कर आप तमाशा देखेंगे। आज ही तुम्हे सरकारी आदमियों से भिडा कर कैसा दबक गये?

बलराज ने इस उपदेश का कुछ उत्तर न दिया। चौके पर जा बैठा। उसने एक

ओर मनोहर था और दूसरी ओर जरा हट कर उनका हलवाहा रंगी चमार बैठा हुआ था। बिलासी ने जौ की मोटी-मोटी रोटियाँ, बथुआ का साग और अरहर की दाल तीनों थालियों में परस दी। तब एक फूल के कटोरे में दूध ला कर बलराज के सामने रख दिया।

बलराज—क्या और दूध नहीं है?

बिलासी—दूध कहाँ है, बेगार में नहीं चला गया?

बलराज—अच्छा, यह कटोरा रंगी के सामने रख दो।

बिलासी—तुम खा लो, रंगी एक दिन दूध न खायेगा तो दुबला न हो जायेगा।

बलराज बेगार का हाल सुन कर क्रोध से आग हो रहा था। कटोरे को उठा कर आँगन की ओर जोर से फेंक दिया। वह तुलसी के चबूतरे से टकरा कर टूट गया। बिलासी ने दौड़ कर कटोरा उठा लिया और पछताते हुए बोली, तुम्हें क्या हो गया है? राम, राम ऐसा सुंदर कटोरा चूर कर दिया। कहीं सनक तो नहीं गये हो?

बलराज—हाँ, सनक ही गया हूँ।

बिलासी—किस बात पर कटोरे को पटक दिया?

बलराज—इसी लिए कि जो हमसे अधिक काम करता है उसे हमसे अधिक खाना चाहिए। हमने तुमसे बार-बार कह दिया है कि रसोई में जो कुछ थोड़ा-बहुत हो, वह सबके सामने आना चाहिए। अच्छा खायें, बुरा खायें तो सब खायें; लेकिन तुम्हें न जाने क्यों यह बात भूल जाती है? अब याद रहेगी। रंगी कोई बेगार का आदमी नहीं है, घर का आदमी है। वह मुँह से चाहे न कहे, पर मन में अवश्य कहता होगा कि छाती फाट कर काम मैं करूँ और मूँछों पर ताव देकर खायें यह लोग। ऐसे दूध-घी खाने पर लानत है।

रंगी ने कहा—भैया, नित तो दूध खाता हूँ, एक दिन न सही। तुम हक-नाहक इतने खफा हो गये।

इसके बाद तीनों आदमी चुपचाप खाने लगे। खा-पी कर बलराज और रंगी ऊख की रखवाली करने मड़िया की तरफ चले। वहाँ बलराज ने चरस निकाली और दोनों ने खूब दम लगाये। जब दोनों ऊख के छिलके के बिछावन पर कम्बल ओढ़ कर लेटे तो रंगी बोला, क्यों भैया, आज तुमसे लश्कर के चपरासियों से कुछ कहा सुनी हो गयी थी क्या?

बलराज—हाँ, हुज्जत हो गयी। दादा ने मने न किया होता तो दोनों को मारता।

रंगी—वही दोनों तुम्हें बुरा-भला कहते चले जाते थे। मैं उधर से क्यारी में पानी खोल कर आता था। मुझे देख कर दोनों चुप हो गये। मैंने इतना सुना, 'अगर यह लौंडा कल सड़क पर गाड़ियाँ पकड़ने में कुछ तकरार करे तो बस चोरी का इलजाम लगा कर गिरफ्तार कर लो। एक पचास बेंत पड़ जायँ तो इसकी शेखी उतर जाय।'

बलराज—अच्छा, यह सब यहाँ तक मेरे पीछे पड़े हुए हैं। तुमने अच्छा किया कि मुझे चेता दिया, मैं कल सबेरे ही डिप्टी साहब के पास जाऊँगा।

रंगी—क्या उनके जाओगे भैया। अच्छा आदमी नहीं है। बड़ी कड़ी सजा देता

हूँ। किसी को छोडना तो जानता ही नही। तुम्हे क्या करना है? जिसकी गाडियाँ पकडी जायँगी वह आप निवट लेगा।

बलराज—वाह, लोगो मे इतना ही बूता होता तो किसी की गाडी पकडी ही क्यो जाती? सीधे का मुँह कुत्ता चाटता है। यह चपरासी भी तो आदमी ही है!

रगी—तो तुम काहे को दूसरे के बीच मे पडते हो? तुम्हारे दादा आज बहुत उदास थे और अम्माँ रोती रही।

बलराज—क्या जाने क्यो रगी, जब से दुनिया का थोडा-बहुत हाल जानने लगा हूँ मुझसे अन्याय नही देखा जाता। जब किसी जबरे को किसी गरीब का गला दबाते देखता हूँ तो मेरे बदन मे आग-सी लग जाती है। यही जी चाहता है कि चाहे अपनी जान रहे या जाय, इस जबरे का सिर नीचा कर दूँ। सिर पर एक भूत-सा सवार हो जाता है। जानता हूँ कि अकेला चना भाड नही फोड सकता, पर मन काबू से बाहर हो जाता है।

इसी तरह की बातें करते दोनो सो गये। प्रात काल बलराज घर गया, कसरत की, दूध पीया और अपना ढीला कुर्त्ता पहन, पगडी बाँध डिप्टी साहब के पडाव की ओर चला। मनोहर अब तक उससे रूठे बैठे थे, अब जब्त न कर सके। पूछा, कहाँ जाते हो?

बलराज—जाता हूँ डिप्टी साहब के पास।

मनोहर—क्यो सिर पर भूत सवार है? अपना काम क्यो नही देखते।

बलराज—देखूँगा कि पढे-लिखे लोगो का मिजाज कैसा होता है?

मनोहर—धक्के खाओगे, और कुछ नही!

बलराज—धक्के तो चपरासियो के खाते हैं, इसकी क्या चिन्ता। कुत्ते की जात पहचानी जायेगी।

मनोहर ने उसकी ओर निराशापूर्ण स्नेह की दृष्टि से देखा और कधे पर कुदाल रख कर हार की ओर चल दिया। बलराज को मालूम हो गया कि अब यह मुझे छोडा हुआ साँड समझ रहे हैं, पर वह अपनी धुन मे मग्न था। मनोहर का यह विचार कि इस समय समझाने का उतना असर न होगा जितना विरक्ति-भाव का, निष्फल हो गया। वह ज्योंही घर से बाहर निकला, बलराज ने भी लट्ठ कधे पर रखा और कैम्प की ओर चला। किसी हाकिम के सम्मुख जाने का यह पहला ही अवसर था। मन मे अनेक विचार आते थे। मालूम नहीं मिलें, या न मिलें, कहीं मेरी बातें सुनकर बिगड न जायें, मुझे देखते ही सामने से निकलवा न दें, चपरासियो ने मेरी शिकायत अवश्य की होगी। क्रोध मे भरे बैठे होगे। बाबू ज्ञानशकर से इनकी दोस्ती भी तो है। उन्होंने भी हम लोगो की ओर से उनके कान खूब भरे होगे। मेरी सूरत देखते ही जल जायेंगे। और जो कुछ हो, एक नया अनुभव तो हो जायगा। यही पढे-लिखे लोग तो हैं जो सभाओ मे और लाट साहब के दरबार मे हम लोगो की भलाई की रट लगाया करते हैं, हमारे नेता बनते हैं। देखूँगा कि यह लोग अपनी बातो के कितने धनी हैं।

बलराज कैम्प मे पहुँचा तो देखा कि जगह-जगह लकडी के अलाव जल रहे हैं, कहीं पानी गर्म हो रहा है, कहीं चाय बन रही है। एक ओर कूचड़ बकरे का माँस काट रहा

है, दूसरी ओर विसेसर साह बैठे जिन्स तौल रहे है। चारो ओर घडे और हाँडियाँ टूटी पडी थी। एक वृक्ष की छाँह मे कितने ही आदमी सिकुडे बैठे थे, जिनके मुकदमो की आज पेशी होनेवाली थी। बलराज पेडो की आड मे होता हुआ ज्वालासिंह के खेमे के पास जा पहुँचा। उसे यह धडका लगा हुआ था कि कही उन दोनो चपरासियो की निगाह मुझपर न पड जाय। वह खडा सोचने लगा कि डिप्टी साहब के सामने कैसे जाऊँ? उस पर इस समय एक रोब छाया हुआ था। खेमे के सामने जाते हुए पैर काँपते थे। अचानक उसे गौस खाँ और सुक्खू चौधरी एक पेड के नीचे आग तापते दिखाई पडे। अब वह खेमे के पीछे खडा न रह सका। उनके सामने धक्के खाना या डाँट सुनना मर जाने से भी बुरा था। वह जी कडा करके खेमे के सामने चला गया और ज्वालासिंह को सलाम करके चुपचाप खडा हो गया।

बाबू ज्वालासिंह एक न्यायशील और दयालु मनुष्य थे, किन्तु इन दो तीन महीना के दौरे मे उन्हे अनुभव हो गया था कि बिना कडाई के मैं सफलता के साथ अपने कर्तव्य का पालन नही कर सकता। सौजन्य और शालीनता निज के कामो मे चाहे कितनी ही सराहनीय हो, लेकिन शासन-कार्य मे यह सद्गुण अवगुण बन जाते है, लोग उनसे अनुचित लाभ उठाने लगते है, उन्हे अपनी स्वार्थ-सिद्धि का साधन बना लेते है। अतएव न्याय और शील मे परस्पर विरोध हो जाता है। रसद और बेगार के विषय मे भी अधीनस्थ कर्मचारियो की चापलूसियाँ उनकी न्याय-नीति पर विजय पा गयी थी, और वह अज्ञात भाव से स्वेच्छाचारी अधिकारियो के वर्तमान साँचे मे ढल गये थे। उन्हे अपने विवेक पर पहले से ही गर्व था, अब इसने आत्मश्लाघा का रूप धारण कर लिया था। वह जो कुछ कहते या करते थे उसके विरुद्ध एक शब्द भी न सुनना चाहते थे। इससे उनकी राय पर कोई असर न पड़ता था। वह निस्पृह मनुष्य थे और न्याय-मार्ग से जौ भर भी न टलते थे। उन्हे स्वाभाविक रूप से यह विचार होता था कि किसी को मुझसे शिकायत न होनी चाहिए। अपने औचित्य-पालन का विश्वास और अपनी गौरवशील प्रकृति उन्हे प्राथियो के प्रति अनुदार बना देती थी। बलराज को सामने देख कर बोले, कौन हो? यहाँ क्यो खडे हो?

बलराज ने झुक कर सलाम किया। उसकी उद्दडता लुप्त हो गयी थी। डरता हुआ बोला, हुजूर से कुछ बोलना चाहता हूँ। ताबेदार का घर इसी लखनपुर मे है।

ज्वालासिंह—क्या कहना है?

बलराज—कुछ नही, इतना ही पूछना चाहता हूँ कि सरकार को आज कितनी गाडियो की जरूरत होगी?

ज्वालासिंह—क्या तुम गाडियो के चौधरी हो?

बलराज—जी नही, चपरासी लोग सडक पर जा कर मुसाफिरो की गाडियाँ रोकते हैं और उन्हे दिक करते है। मैं चाहता हूँ कि सरकार को जितनी गाडियाँ दरकार हो, उतनी आस-पास के गाँव से खोज लाऊँ। उनका सरकार से जो किराया मिलता हो वह दे दिया जाय तो मुसाफिरो को रोकना न पड़े।

ज्वालासिंह ने अपना सामान लादने के लिए ऊँट रख लिए थे, किन्तु यह जानते

थे कि मातहतों और चपरासियों को अपना असबाव लादने के लिए गाड़ियों की जरूरत होती है। उन्हें इसका खर्च सरकार से नहीं मिलता। अतएव वे लोग गाड़ियाँ न रोकें, तो उनका काम ही न चले। यह व्यवहार चाहे प्रजा को कष्ट पहुँचाए, पर क्षम्य है। उनके विचार में यह कोई ऐसी ज्यादती न थी। संभव था कि यही प्रस्ताव किसी सम्मानित पुरुष ने किया होता, तो वह उस पर विचार करते, लेकिन एक अक्खड़, गँवार, मूर्ख देहाती को उनसे यह शिकायत करने का साहस हो, वह उन्हें न्याय का पाठ पढ़ाने का दावा करे, यह उनके आत्माभिमान के लिए असह्य था। चिढ़कर बोले, जाकर सरिश्तेदार से पूछो।

बलराज—हुजूर ही उन्हें बुला कर पूछ लें, मुझे वह न बतायेंगे।

ज्वालासिंह—मुझे इस दर्द-सिर की फुर्सत नहीं है।

बलराज के तीवर पर बल पड़ गये। शिक्षित समुदाय की नीति-परायणता और सज्जनता पर उसकी जो श्रद्धा थी, वह क्षण-मात्र में भंग हो गयी। इन सद्भावों की जगह उसे अधिकार और स्वेच्छाचार का अहंकार अकड़ता दीख पड़ा। अहंकार के सामने सिर झुकाना उसने न सीखा था। उसने निश्चय किया कि जो मनुष्य इतना अभिमानी हो और मुझे इतना नीच समझे, वह आदर के योग्य नहीं है। इनमें और गौस खाँ या मामूली चपरासियों में अंतर ही क्या रहा? ज्ञान और विवेक की ज्योति कहाँ गयी? निःशंक हो कर बोला—सरकार इसे सिर-दर्द समझते हैं और यहाँ हम लोगों की जान पर बनी हुई है। हजूर यहाँ धर्म के आसन पर बैठे हैं, और चपरासी लोग परजा को लूटते फिरते हैं। मुझे आपसे यह बिनती करने का हौसला हुआ, तो इसलिए कि मैं समझता था, आप दीनों की रक्षा करेंगे। अब मालूम हो गया कि हम अभागों का सहायक परमात्मा के सिवा और कोई नहीं।

यह कह कर वह बिना सलाम किये ही वहाँ से चल दिया। उसे एक नशा-सा हो गया था। बातें अवज्ञापूर्ण थीं, पर उनमें स्वाभिमान और सदिच्छा कूट-कूट कर भरी हुई थी। ज्वालासिंह में अभी तक सहृदयता का सम्पूर्णतः पतन न हुआ था। क्रोध की जगह उनके मन में सद्भावना का विकास हुआ। अब तक इनके यहाँ स्वार्थी और खुशामदी आदमियों का ही जमघट रहता था। ऐसे एक भी स्पष्टवादी मनुष्य से उनका सम्पर्क न हुआ था। जिस प्रकार मीठे पदार्थ खाने से ऊब कर हमारा मन कड़वी वस्तुओं की ओर लपकता है, उसी भाँति ज्वालासिंह को ये कड़वी बातें प्रिय लगीं। उन्होंने उनके हृदय-नेत्रों के सामने से पदाभिमान का पर्दा हटा दिया। जी में तो आया कि इस युवक को बुला कर उससे खूब बातें करूँ, किन्तु अपनी स्थिति का विचार करके रुक गये। वह बहुत देर तक बैठे हुए इन बातों पर विचार करते रहे। अंतिम शब्दों ने उनकी आत्मा को एक ठोंका दिया था, और वह जाग्रत हो गई थी। मन में अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर लेने के बाद उन्होंने अहलमद-साहब को बुलाया। सैयद ईजाद हुसेन ने बलराज को जाते देख लिया! कल का सारा वृत्तांत उन्हें मालूम ही था। ताड़ गये कि लौंडा डिप्टी साहब के पास फरियाद ले कर आया होगा। पहले तो

शका हुई, कही डिप्टी साहब इसकी बातो मे न आ गये हो। लेकिन जब उसकी बातो से ज्ञान हुआ कि डिप्टी साहब ने उल्टे और फटकार सुनाई तो धैर्य हुआ। वलराज को डाँटने लगे। वह अपने अफसरो के इशारे के गुलाम थे और उन्ही की इच्छानुसार अपने कर्त्तव्य का निर्माण किया करते थे।

वलराज इस समय ऐसा हताश हो रहा था कि पहले थोडी देर तक वह चुपचाप खडा ईजाद हुसेन की कठोर बाते सुनता रहा। अत मे गम्भीर भाव से बोला, आप क्या चाहते है कि हम लोगो पर अन्याय भी हो और हम फरियाद भी न करे?

ईजाद हुसेन—फरियाद का मजा तो चख लिया। अब चालान होता है तो देखे कहाँ जाते हो। सरकारी आदमियो से मुजाहिम होना कोई खाला जी का घर नही है। डिप्टी साहब को तुम लोगो की सरकशी का रत्ती-रत्ती हाल मालूम है। बाबू ज्ञानशकर ने सारा कच्चा चिट्ठा उनसे बयान कर दिया है। वह तो मौके की तलाश मे थे। आज शाम तक सारा गाँव बँधा जाता है। गौस खाँ को सीधा पा लिया है, इसी से शेर हो गये हो। अब सारी कसर निकल जाती है। इतने बेत पडेगे कि धज्जियाँ उड जायेगी।

वलराज—ऐसा कोई अधेर है कि हाकिम लोग बेकसूर किसी को सजा दे दे।

ईजाद हुसेन—हाँ हाँ, ऐसा ही अधेर है। सरकारी आदमियो को हमेशा बेगार मिली है और हमेशा मिलेगी। तुम गाडियाँ न दोगे तो वह क्या अपने सिर पर असबाब लादेगे? हमे जिन जिन चीजो की जरूरत होगी, तुम्ही से ली जायेगी। हँसकर दो या रो कर दो। समझ गये ।

इतने मे एक चपरासी ने कहा, चलिए, आप को सरकार याद करते है। ईजाद हुसेन पान खाए हुए थे। तुरत कुल्ली की, पगडी बाँधी और ज्वालासिंह के सामने जा कर सलाम किया।

ज्वालासिंह ने कहा, मीर साहब, चपरासियो को ताकीद कर दीजिए कि अब से कैम्प के लिए बेगार मे गाडियाँ न पकडा करे। आप लोग अपना सामान मेरे ऊँटो पर रख लिया कीजिए। इससे आप लोगो को चाहे थोडी सी तकलीफ हो, लेकिन यह मुनासिब नही मालूम होता कि अपनी आसाइश के लिए दूसरो पर जब्र किया जाय।

ईजाद हुसेन—हुजूर बहुत बजा फरमाते है। आज से गाडियाँ पकडने की सख्त मुमानियत कर दी जायगी। बेशक यह सरासर जुल्म है।

ज्वालासिंह—चपरासियो से कह दीजिए कि मेरे इजलास के खेमे मे रात को सो रहा करे। बेगार मे पुआल लेने की जरूरत नहीं। गरीब किसान यही पुआल काट-काट कर जानवरो को खिलाते है, इसलिए उन्हे इसका देना नागवार गुजरता है।

ईजाद हुसेन—हुजूर का फर्माना बजा है। हुक्काम को ऐसा ही गरीबपरवर होना चाहिए। लोग जमीदारो की सख्तियो से यो ही परेशान रहते हैं, उस पर हुक्काम की बेगार तो और भी सितम हो जाती है।

ज्वालासिंह के हृदय मे ज्ञानशकर के ताने अभी तक खटक रहे थे। यदि थोड़े से कष्ट से उनपर छीटे उडाने को सामग्री हाथ आ जाय तो क्या पूछना! ज्वालासिंह इस द्वेष के आवेग को न रोक सके। एक बार गाँव मे जा कर उनकी दशा आँखो से देखने का निश्चय किया।

आठ बज चुके थे, किन्तु अभी तक चारों ओर कुहरा छाया हुआ था। लखनपुर के किसान आज छुट्टी सी मना रहे थे। जगह-जगह अलाव के पास बैठे हुए लोग कल की घटना की आलोचना कर रहे थे। बलराज की धृष्टता पर टिप्पणियाँ हो रही थीं। इतने में ज्वालासिंह चपरासियों और कर्मचारियों के साथ गाँव में आ पहुँचे। गौस खाँ और उनके दोनों चपरासी पीछे-पीछे चले आते थे। उन्हें देखते ही स्त्रियाँ अपने अधमँजे बर्तन छोड़ छोड़ कर घरों में घुसीं। बाल-वृद्ध भी इधर-उधर दबक गये। कोई द्वार पर कूड़ा उठाने लगा, कोई रास्ते में पड़ी हुई खाट उठाने लगा। ज्वालासिंह गाँव भ्रमण करते हुए सुक्खू चौधरी के कोल्हुआड़े में आ कर खड़े हो गये। सुक्खू चारपाई लेने दौड़े। गौस खाँ ने एक आदमी को कुरसी लाने के लिए चौपाल दौड़ाया। लोगों ने चारों ओर से आ-आ कर ज्वालासिंह को घेर लिया। अमंगल के भय से सब के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं।

ज्वालासिंह—तुम्हारी खेती इस साल कैसी है?

सुक्खू चौधरी को नेतृत्व का पद प्राप्त था। ऐसे अवसरों पर वही अग्रसर हुआ करते थे। पर वह अभी तक घर मे से चारपाई निकाल रहे थे, जो वृहदाकार होने के कारण द्वारे से निकल न सकती थी। इसलिए कादिर खाँ को प्रतिनिधि का आसन ग्रहण करना पड़ा। उन्होंने विनीत भाव से उत्तर दिया, हजूर अभी तक अच्छी है, आगे अल्लाह मालिक है।

ज्वालासिंह—यहाँ मुझे आबपाशी के कुएँ बहुत कम नजर आते हैं, क्या जमींदार की तरफ से इसका इंतजाम नहीं है?

कादिर—हमारे जमींदार तो हजूर हम लोगों की बड़ी परवस्ती करते हैं, अल्लाह उन्हें सलामत रखें। हम लोग आप ही आलस के मारे कोई फिकर नहीं करते।

ज्वालासिंह—मुंशी गौस खाँ तुम लोगों की सरकशी की बहुत शिकायत करते हैं। बाबू ज्ञानशंकर भी तुम लोगों से खुश नहीं हैं, यह क्या बात है? तुम लोग वक्त पर लगान नहीं देते और जब तकाजा किया जाता है, तो फिसाद पर अमादा हो जाते हो। तुम्हें मालूम है कि जमींदार चाहे तो तुमसे एक के दो वसूल कर सकता है?

गजाधर अहीर ने दबी जबान से कहा, तो कौन कहे कि छोड़ देते हैं!

ज्वालासिंह—क्या कहते हो? सामने आ कर कहो।

कादिर—कुछ नहीं हुजूर, यही कहता है कि हमारी मजाल है जो अपने मालिक के सामने सिर उठायें। हम तो उनके ताबेदार हैं, उनका दिया खाते है, उनकी जमीन में बसते हैं, भला उनसे सरकशी करके अल्लाह को क्या मुँह दिखायेंगे? रही बकाया, सो हजूर जहाँ तक होता है साल तमाम तक कौड़ी-कौड़ी चुका देते हैं। हाँ, जब कोई काबू नहीं चलता तो कभी थोड़ी बहुत बाक़ी रह भी जाती है।

ज्वालासिंह ने इसी प्रकार से और भी कई प्रश्न किये, किन्तु उनका अभीष्ट पूरा न हो सका। किसी की जबान से गौस खाँ या बाबू ज्ञानशंकर के विरुद्ध एक शब्द भी न निकला। अंत में हार मान कर वह पड़ाव को चल दिये।

६

अपनी पारिवारिक सदिच्छा का ऐसा उत्तम प्रमाण देने के बाद ज्ञानशकर को बँटवारे के विषय मे अब कोई असुविधा न रही। लाला प्रभाशकर ने उन्ही की इच्छानुसार करने का निश्चय कर लिया। दीवान खाना उनके लिए खाली कर दिया, लखनपुर मौसल्लम उनके हिस्से मे दे दिया, और घर की अन्य सामग्रियाँ भी उन्ही की मरजी के मुताबिक बाँट दी। बडी बहू की ओर से विरोध की शका थी, लेकिन इस एहसान ने उनकी जबान ही नही बद कर दी, वरन् उनके मनोमालिन्य को भी मिटा दिया। प्रभाशकर अब बडी बहू से, नौकरो से, मित्रो से, सम्बन्धियो से ज्ञानशकर की प्रशसा किया करते और प्राय. अपनी आत्मीयता को किसी न किसी उपहार के स्वरूप मे प्रकट करते। एक दुशाला, एक चाँदी का थाल, कई सुदर चित्र, एक बहुत अच्छा ऊनी कालीन और ऐसी ही विचित्र वस्तुएँ उन्हे भेट की। उन्हे स्वादिष्ट पदार्थो से बडी रुचि थी। नित्य नाना प्रकार के मुरब्बे, चटनियाँ, अचार बनाया करते थे। इस कला मे प्रवीण थे। आप भी शौक से खाते थे, और दूसरो को खिला कर आनदित होते थे। ज्ञानशकर के लिए नित्य कोई न कोई स्वादिष्ट पदार्थ बना कर भेजते। यहाँ तक कि ज्ञानशकर इन सद्भावो से तग आ गये। उनकी आत्मा अभी तक उनकी कपट-नीति पर उनको लज्जित किया करती थी। यह खातिरदारियाँ उन्हे अपनी कुटिलता की याद दिलाती थी और इससे उनका चित्त दुखी होता था। अपने चाचा की सरल-हृदयता और सज्जनता के सामने अपनी धूर्तता और मलीनता अत्यत घृणित दीख पडती थी।

लखनपुर ज्ञानशकर की चिर अभिलाषाओ का स्वर्ग था। घर की सारी सम्पत्ति मे ऐसा उपजाऊ, ऐसा समृद्धिपूर्ण और कोई गाँव नही था जो शहर से मिला हुआ, पक्की सडक के किनारे और जलवायु भी उत्तम। यहाँ कई हलो की सीर थी, एक कच्चा पर सुदर मकान भी था और सबसे बड़ी बात यह है कि यहाँ इजाफा लगान की बड़ी गुजाइश थी। थोडे उद्योग से उनका नफा दूना हो सकता था। दो चार कच्चे कुएँ खुदवा कर इजाफे की कानूनी शर्त पूरी की जा सकती थी। बँटवारे को एक सप्ताह भी न हुआ था कि ज्ञानशकर ने गौस खाँ को बुलाया, जमाबदी की जाँच की, इजाफा बेदखली की फर्द तैयार की और असामियो पर मुकदमा दायर करने का हुक्म दे दिया। अब तक सीर बिलकुल न होती थी। इसका भी प्रबध किया। वह चाहते थे कि अपने हल, बैल, हलवाहे रक्खे जायँ और विधि-पूर्वक खेती की जाय। किन्तु खाँ साहब ने कहा, इतने आडम्बर की जरूरत नही, बेगार मे बडी सुगमता से सीर हो सकती है। सीर के लिए बेगार जमीदार का हक है, उसे क्यो छोड़िए?

लेकिन सुव्यवस्था रूपी मधुर गान मे एक कटु स्वर भी था, जिससे उसका लालित्य भग हो जाता था। यह विद्यावती का असहयोग था। उसे अपने पति की स्वार्थपरता एक आँख न भाती थी। कभी-कभी यह मतिभेद विवाद और कलह का भी रूप धारण कर लेता था।

फागुन का महीना था। लाला प्रभाशकर धूमधाम से होली मनाया करते थे। अपने

घरवालों के लिए, नये कपड़े लाये तो ज्ञानशंकर के परिवार के लिए भी लेते आये थे। लगभग पचास वर्षों से वह घर भर के लिए नये वस्त्र लाने के आदी हो गये थे। अब अलग हो जाने पर भी वह उस प्रथा को निभाते रहना चाहते थे। ऐसे आनंद के अवसर पर द्वेष भाव को जाग्रत रखना उनके लिए अत्यंत दुःखकर था। विद्या ने यह कपड़े तो रख लिए, पर इसके बदले में प्रभाशंकर के लड़कों, लड़कियों और बहू के लिए एक-एक जोड़े धोती की व्यवस्था की। ज्ञानशंकर ने यह प्रस्ताव सुना तो चिढ़ कर बोले, यदि यही करना है तो उनके कपड़े लौटा क्यों नहीं देतीं?

विद्या—भला कपड़े लौटा दोगे तो वह अपने मन में क्या कहेंगे? वह बेचारे तो तुमसे मिलने को दौड़ते हैं और तुम भागे-भागे फिरते हो। तुम्हें रुपयों का ही ख्याल है न? तुम कुछ मत देना, मैं अपने पास से दूँगी।

ज्ञान—जब तुम धन्ना सेठों की तरह बातें करने लगती हो तो बदन में आग सी लग जाती है! उन्होंने कपड़े भेजे तो कोई एहसान नहीं किया। दूकानों का साल भर का किराया पेशगी ले कर हड़प चुके हैं। यह चाल इसी लिए चल रहे हैं कि मैं मुँह भी न खोल सकूँ और उनका बड़प्पन भी बना रहे। अपनी गाँठ से करते तो मालूम होता।

विद्या—तुम दूसरों की कीर्ति को कभी-कभी ऐसा मिटाने लगते हो कि मुझे तुम्हारी अनुदारता पर दुःख होता है। उन्होंने अपना समझ कर उपहार दिया, तुम्हें इसमें उनकी चाल सूझ गयी।

ज्ञान—मुझे भी घर में बैठे सुख-भोग की सामग्रियाँ मिलतीं तो मैं तुमसे अधिक उदार बन जाता। तुम्हें क्या मालूम है कि मैं आजकल कितनी मुश्किल से गृहस्थी का प्रबंध कर रहा हूँ? लखनपुर से जो थोड़ा बहुत मिला उसी में गुजर हो रहा है। किफायत से न चलता तो अब तक सैकड़ों का कर्ज हो गया होता। केवल अदालत के लिए सैकड़ों रुपयों की जरूरत है। बेदखली और इजाफे के कागज-पत्र तैयार हैं, पर मुकदमे दायर करने के लिए हाथ में कुछ भी नहीं। उधर गाँववाले भी बिगड़े हुए हैं। ज्वालासिंह ने अबकी दौरे में उन्हें ऐसा सिर चढ़ा दिया कि मुझे कुछ समझते ही नहीं। मैं तो इन चिंताओं में मरा जाता हूँ और तुम्हें एक न एक खुराफात सूझा करती है।

विद्या—मैं तुमसे रुपये तो नहीं माँगती!

ज्ञान—मैं अपने और तुम्हारे रुपयों में कोई भेद नहीं समझता। हाँ, जब रायसाहब तुम्हारे नाम कोई जायदाद लिख देंगे तो समझने लगूँगा।

विद्या—मैं तुम्हारा एक पैसा नहीं चाहती।

ज्ञान—माना, लेकिन वहाँ से भी तुम रोकड़ नहीं लाती हो। साल में सौ-पचास रुपये मिल जाते होंगे, इतने पर ही तुम्हारे पैर जमीन पर नहीं पड़ते। छिछले ताल की तरह उबलने लगती हो।

विद्या—तो क्या चाहते हो कि वह तुम्हें अपना घर उठा कर दे दें?

ज्ञान—वह बेचारे आप तो अघा लें, मुझे क्या देंगे? मैं तो ऐसे आदमी को पशु

से गया-गुजरा समझता हूँ जो आप तो लाखो उडाये और अपने निकटतम सम्बन्धियो की बात भी न पूछे। वह तो अगर मर भी जाये तो मेरी आँखो मे आँसू न आये।

विद्या—तुम्हारी आत्मा इतनी सकुचित है, यह मुझे आज मालूम हुआ।

ज्ञान—ईश्वर को धन्यवाद दो कि मुझसे विवाह हो गया, नही तो कोई बात भी न पूछता। लाला बरसो तक दही-दही हॉकते रहे, पर कोई सेत भी न पूछता था।

विद्यावती इस मर्माघात को न सह सकी, क्रोध के मारे उसका चेहरा तमतमा उठा। वह झमक कर वहाँ से चली जाने को उठी कि इतने मे महरी ने एक तार का लिफाफा ला कर ज्ञानशकर के हाथ मे रख दिया। लिखा था—

"पुत्र का स्वर्गवास हो गया, जल्द आओ।" —कमलानंद

ज्ञानशकर ने तार का कागज जमीन पर फेक दिया और लम्बी साँस खीच कर बोले, हा! शोक! परमात्मा, यह तुमने क्या किया!

विद्या ठिठक गयी।

ज्ञानशकर ने विद्या से कहा, विद्या हम लोगो पर वज्र गिर पडा, हमारा

विद्या ने कातर नेत्रो से देख कर कहा, मेरे घर पर तो कुशल है ?

ज्ञानशकर—हाय प्रिये, किस मुँह से कहूँ कि सब कुशल है! वह घर उजड गया, उस घर का दीपक बुझ गया! बाबू रामानद अब इस ससार मे नही है। हा, ईश्वर!

विद्या के मुँह से सहसा एक चीख निकल गयी। विह्वल होकर भूमि पर गिर पडी और छाती पीट-पीट कर विलाप करने लगी। श्रद्धा दौडी हुई आयी। महरियाँ जमा हो गयी। बडी बहू ने रोना सुना तो अपनी बहू और पुत्रियो के साथ आ पहुँची। कमरे मे स्त्रियो की भीड लग गयी। मायाशकर माता को रोते देख कर चिल्लाने लगा। सभी स्त्रियो के मुख पर शोक की आभा थी और नेत्रो मे करुणा का जल। कोई ईश्वर को कोसती थी, कोई समय की निंदा करती थी। अकाल मृत्यु कदाचित् हमारी दृष्टि मे ईश्वर का सबसे बडा अन्याय है। यह विपत्ति हमारी श्रद्धा और भक्ति का नाश कर देती है, हमे ईश्वरद्रोही बना देती है। हमे उनकी सहन पड गयी है। लेकिन हमारी अन्याय पीडित आँखें भी यह दारुण दृश्य सहन नही कर सकती। अकाल मृत्यु हमारे हृदय पट पर सब से कठोर दैवी आघात है। यह हमारे न्याय-ज्ञान पर सब से भयकर बलात्कार है।

पर हा स्वार्थ सग्राम! यह निर्दय वज्र-प्रहार ज्ञानशकर को सुखद पुष्प वर्षा के तुल्य जान पडा। उन्हे क्षणिक शोक अवश्य हुआ, किंतु तुरत ही हृदय मे नयी आकाक्षाएँ तरगे मारने लगी। अब तक उनका जीवन लक्ष्यहीन था। अब उसमे एक महान लक्ष्य का विकास हुआ। विपुल सम्पत्ति का मार्ग निश्चित हो गया। ऊसर भूमि मे हरियाली लहरे मारने लगी। राय कमलानद के अब और कोई पुत्र न था। दो पुत्रियो मे एक विधवा और निस्सतान थी। विद्या को ही ईश्वर ने सतान दी थी और मायाशकर अब राय साहब का वारिस था। कोई आश्चर्य नही कि ज्ञानशकर को यह शोकमय व्यापार अपने सौभाग्य की ईश्वर कृत व्यवस्था जान पडती थी। वह मायाशकर को गोद मे ले कर नीचे दीवानखाने मे चले आये और विरासत

के सम्बन्ध मे स्मृतिकारों की व्यवस्था का अवलोकन करने लगे। वह अपनी आशाओं की पुष्टि और शंकाओं का समाधान करना चाहते थे। कुछ दिनो तक कानून पढा था, कानूनी किताबों का उनके पास अच्छा संग्रह था। पहले मनुस्मृति खोली, सन्तोष न हुआ। मिताक्षरा का विधान देखा, शंका और भी बढी। याज्ञवल्क्य ने भी विषय का कुछ सन्तोषप्रद स्पष्टीकरण न किया। किसी वकील की सम्मति आवश्यक जान पडी। वह इतने उतावले हो रहे थे कि तत्काल कपडे पहन कर चलने को तैयार हो गये। कहार से कहा, माया को ले जा, बाजार की सैर करा ला। कमरे से बाहर निकले ही थे कि याद आया, तार का जवाब नही दिया। फिर कमरे मे गये, सम-वेदना का तार लिखा, इतने मे लाला प्रभाशंकर और दयाशंकर आ पहुँचे, ज्ञानशंकर को इस समय उनका आना जहर-सा लगा। प्रभाशंकर बोले, मैंने तो अभी सुना। सन्नाटे मे आ गया। बेचारे रायसाहब को बुढापे मे यह बुरा धक्का लगा। घर ही वीरान हो गया।

ज्ञानशंकर—ईश्वर की लीला विचित्र है!

प्रभाशंकर—अभी उम्र ही क्या थी! बिल्कुल लडका था। तुम्हारे विवाह मे देखा था, चेहरे से तेज बरसता था। ऐसा प्रतापी लडका मैंने नही देखा।

ज्ञानशंकर—इसी से तो ईश्वर के न्याय विधान पर से विश्वास उठ जाता है।

दयाशंकर—आपकी बडी साली के तो कोई लडका नही है न?

ज्ञानशंकर ने विरक्त भाव से कहा, नहीं।

दयाशंकर—तब तो चाहे माया ही वारिस हो।

ज्ञानशंकर ने उनका तिरस्कार करते हुए कहा, कैसी बात करते हो? कहाँ कौन सी बात, कहाँ कौन सी बात? ऐसी बातों का यह समय नही है।

दयाशंकर लज्जित हो गये। ज्ञानशंकर को अब यह विलम्ब असह्य होने लगा। पैरगाडी उठायी और दोनो आदमियों को बरामदे मे ही छोड कर डाक्टर इरफानअली के बँगले की ओर चल दिये, जो नामी बैरिस्टर थे।

बैरिस्टर साहब का बँगला खूब सजा हुआ था। शाम हो गयी थी, वह हवा खाने जा रहे थे। मोटर तैयार थी, लेकिन मुवक्किलों से जान न छूटती थी, वह इस समय अपने आफिस मे आराम कुर्सी पर लेटे हुए सिगार पी रहे थे और अपने छोटे टेरियर को गोद मे लिए उसके सिर मे थपकियाँ देते जाते थे। मुवक्किल लोग दूसरे कमरे मे बैठे थे। एक बारी-बारी से डाक्टर साहब के पास आ कर अपना वृत्तान्त कहते जाते थे। ज्ञानशंकर को बैठे-बैठे आठ बज गये। तब जा कर उनकी बारी आयी। उन्होंने आसन जमा कर अपना मामला सुनाना शुरू किया। उन्होंने उनकी सब बातें नोट कर लीं। उनकी फीस ५ रु० हुई। डाक्टर साहब की सम्मति के लिए दूसरे दिन बुलाया। उसकी फीस ५०० रु० थी। यदि इस सम्मति पर कुछ शंकाएँ हों तो उनके समाधान के लिए प्रति घंटा १०० रु० देने पडेंगे। ज्ञानशंकर को मालूम न था कि डाक्टर साहब के समय का मूल्य इतना अधिक है। मन मे पछताये कि नाहक इस झंझट मे फँसा। कहाँ तो

फीस तो उसी दम दे दी और घर से रुपया लाने का बहाना करके वहाँ से निकल आये। लेकिन रास्ते मे सोचने लगे, इनकी राय जरूर पक्की होती होगी, तभी तो उसका इतना मूल्य है। नही तो इतने आदमी उन्हे घेरे क्यो रहते। कदाचित् इसी लिए कल बुलाया है, खूब छान-परताल करके तब राय देगे। अटकल-पच्चू बाते कहनी होती तो अभी न कह देते। अँगरेजी नीति मे यही तो गुण है कि दाम चौकस लेते है, पर माल खरा देते है। सैकडो नजीरें देखनी पडेंगी, हिंदू शास्त्रो का मथन करना पडेगा, तब जाके तत्व हाथ आयेगा, रुपये का कोई प्रबंध करना चाहिए। उसका मुँह देखने से काम न चलेगा। एक बात निश्चित रूप से मालूम तो हो जायेगी। यह नही कि मैं तो धोखे मे निश्चित बैठा रहूँ और वहाँ दाल न गले, सारी आशाएँ नष्ट हो जायें। मगर यह व्यवसाय है उत्तम। आदमी चाहे तो सोने की दीवार खडी कर दे। मुझे शामत सवार हुई कि उसे छोड बैठा, नही तो आज क्या मेरी आमदनी दो हजार मासिक से कम होती? जब निरे काठ के उल्लू तक हजारो पर हाथ साफ करते है तो क्या मेरी ही न चलती? इस जमीदारी का बुरा हो। इसने मुझे कही का न रखा।

वह घर पहुँचे तो नौ बज चुके थे। विद्या अपने कमरे मे अकेले उदास पडी थी, महरियाँ काम-धधे मे लगी हुई थी और पडोसिनें विदा हो गयी थी। ज्ञानशकर ने विद्या का सिर उठा कर अपनी गोद मे रख लिया और गद्गद् स्वर से बोले, मुँह देखना भी न बदा था।

विद्या ने रोते हुए कहा, उनकी सूरत एक क्षण के लिए भी आँखो से नही उतरती। ऐसा जान पडता है, वह मेरे सामने खडे मुस्करा रहे हैं।

ज्ञान—मेरा तो अब सासारिक वस्तुओ पर भरोसा ही नही रहा। यही जी चाहता कि सब कुछ छोडछाड के कही चल दूँ।

विद्या—कल शाम की गाडी से चलो। कुछ रुपए लेते चलने होगे। मैं उनके षोडशे मे कुछ दान करना चाहती हूँ।

ज्ञान—हाँ, हाँ, जरूर। अब उनकी आत्मा को संतुष्ट करने का हमारे पास यही तो एक साधन रह गया है।

विद्या—उन्हे घोडे की सवारी का बहुत शौक था। मैं एक घोडा उनके नाम पर देना चाहती हूँ।

ज्ञान—बहुत अच्छी बात है। दो-ढाई सौ मे घोडा मिल जायेगा।

विद्यावती ने डरते-डरते यह प्रस्ताव किया था। ज्ञानशकर ने उसे सहर्ष स्वीकार करके उसे मुग्ध कर दिया।

ज्ञानशकर इस अपव्यय को इस समय काटना अनुचित समझते थे। यह अवसर ही ऐसा था। अब वह विद्या का निरादर तथा अवहेलना न कर सकते थे।

१०

राय बहादुर कमलानन्द लखनऊ के एक बडे रईस और तालुकेदार थे। वार्षिक आय एक लाख के लगभग थी। अमीनाबाद मे उनका विशाल भवन था। शहर मे

उनकी और भी कई कोठियाँ थीं, पर वह अधिकांश नैनीताल या मसूरी में रहा करते थे। यद्यपि उनकी पत्नी का देहांत उनकी युवावस्था में हो गया, पर उन्होंने दूसरा विवाह न किया था। मित्रों और हितसाधकों ने बहुत घेरा, पर वह पुनर्विवाह के बंधन में न पड़े। विवाह का उद्देश्य संतान है और जब ईश्वर ने उन्हें एक पुत्र और दो पुत्रियाँ प्रदान कर दीं तो फिर विवाह करने की क्या जरूरत? उन्होंने अपनी बड़ी लड़की गायत्री का विवाह गोरखपुर के एक बड़े रईस से किया। उत्सव में लाखों रुपये खर्च कर दिये। पर जब विवाह के दो ही साल पीछे गायत्री विधवा हो गयी—उनके पति को किसी घर के ही प्राणी ने लोभवश विष दे दिया—तो राय साहब ने विद्या को किसी साधारण कुटुम्ब में ब्याहने का निश्चय किया, जहाँ जीवन इतना कंटकमय न हो। यही कारण था कि ज्ञानशंकर को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्वर्गीय बाबू रामानंद अभी तक कुँवारे ही थे। उनकी अवस्था बीस वर्ष से अधिक हो गयी थी, पर राय साहब उनका विवाह करने को कभी उत्सुक न हुए। वह उनके मानसिक तथा शारीरिक विकास में कोई कृत्रिम बाधा न डालना चाहते थे। पर शोक! रामानंद घुड़दौड़ में सम्मिलित होने के लिए पूना गये हुए थे। वहाँ घोड़े पर से गिर पड़े, मर्मस्थानों पर कड़ी चोट आ गयी। लखनऊ पहुँचने के दो ही दिन बाद उनका प्राणांत हो गया। राय साहब की सारी सद्कल्पनाएँ विनष्ट हो गयीं, आशाओं का दीपक बुझ गया।

किंतु राय साहब उन प्राणियों में न थे, जो शोक-संताप के ग्रास बन जाते हैं। इसे विराग कहिए, चाहे प्रेम-शिथिलता, या चित्त की स्थिरता। दो ही चार दिनों में उनका पुत्र-शोक जीवन की अविश्रांत कर्म-धारा में विलीन हो गया।

राय साहब बड़े रसिक पुरुष थे। घुड़दौड़ और शिकार, सरोद और सितार से उन्हें समान प्रेम था। साहित्य और राजनीति के भी ज्ञाता थे। अवस्था साठ वर्ष के लगभग थी, पर इन विषयों में उनका उत्साह लेश मात्र भी क्षीण न हुआ। अस्तबल में दस-बारह चुने हुए घोड़े थे, विविध प्रकार की कई बग्घियाँ, दो मोटरकार, दो हाथी। दर्जनों कुत्ते पाल रखे थे। इनके अतिरिक्त बाज, शिकरे आदि शिकारी चिड़ियों की एक हवाई सेना भी थी। उनके दीवानखाने में अस्त्र-शस्त्र की शृंखला देख कर जान पड़ता था, मानो शस्त्रालय है। घुड़दौड़ में वह अच्छे-अच्छे सहसवारों से पाला मारते थे। शिकार में उनके निशाने अचूक पड़ते थे। पोलो के मैदान में उनकी चपलता और हाथों की सफाई देख कर आश्चर्य होता था। श्रव्य कलाओं में भी वह इससे कम प्रवीण न थे। शाम को जब वह सितार ले कर बैठते तो उनकी सिद्धि पर अच्छे-अच्छे उस्ताद भी चकित हो जाते थे। उनके स्वर में अलौकिक माधुर्य था। वे संगीत के सूक्ष्म तत्वों के वेत्ता थे। उनके ध्रुपद की अलाप सुन कर बड़े-बड़े कलावन्त भी सिर धुनने लगते थे। काव्य-कला में भी उनकी कुशलता और मार्मिकता कवियों को लज्जित कर देती थी, उनकी रचनाएँ अच्छे-अच्छे कवियों से टक्कर लेती थीं। संस्कृत, फारसी, हिंदी, उर्दू, अँगरेजी सभी भाषाओं के वे पंडित थे। स्मरणशक्ति विलक्षण थी। कविजनों के सहस्रों शेर, दोहे, कवित्त, पद्य कंठस्थ थे और बातचीत में वह उनका बड़ी सुरुचि से उपयोग करते

थे। इसी लिए उनकी बाते सुनने मे लोगो को आनद मिलता था। इधर दस-बारह वर्षों से राजनीति मे भी प्रविष्ट हो गये थे। कौसिल भवन मे उनका स्थान प्रथम श्रेणी मे था। उनकी राय सदैव निर्भीक होती थी। वह अवसर या समय के भक्त न थे। राष्ट्र या शासन के दास न बन कर सर्वदा अपनी विचार-शक्ति से काम लेते थे। इसी कारण कौसिल मे उनकी बडी शान थी। यद्यपि यह बहुत कम बोलते थे, और राजनीति भवन से बाहर उनकी आवाज कभी न सुनाई देती थी, किंतु जब बोलते थे तो अच्छे ही बोलते थे। ज्ञानशकर को उनके बुद्धि-चमत्कार और ज्ञान-विस्तार पर अचम्भा होता था। यदि आँखो देखी बात न होती तो किसी एक व्यक्ति मे इतने गुणो की चर्चा सुन कर उन्हे विश्वास न होता। इस सत्सग से उनकी आँखे खुल गयी। उन्हे अपनी योग्यता और चतुरता पर बडा गर्व था। इन सिद्धियो ने उसे चूर-चूर कर दिया। पहले दो सप्ताह तक तो उन पर श्रद्धा का एक नशा छाया रहा। राय साहब जो कुछ कहते वह सब उन्हे प्रामाणिक जान पडता था। पग-पग पर, बात-बात मे उन्हे अपनी त्रुटियाँ दिखाई देती और लज्जित होना पडता। यहाँ तक कि साहित्य और दर्शन मे भी, जो उनके मुख्य विषय थे, राय साहब के विचारो पर मनन करने के लिए उन्हे बहुत कुछ स''मग्री मिल जाती थी। सबसे कुतूहल की बात तो यह थी कि ऐसे दारुण शोक के बोझ के नीचे राय साहब क्योकर सीधे खडे रह सकते थे। उनके विलास उपवन पर इस दुस्सह झोके का जरा भी असर न दिखाई देता था।

किंतु शनै-शनै ज्ञानशकर को राय साहब की इस बहुज्ञता से अश्रद्धा होने लगी। आठो पहर अपनी हीनता का अनुभव असह्य था। उनके विचार मे अब राय साहब का इन आमोदप्रमोद विषयो मे लिप्त रहना शोभा नही देता था। यावज्जीवन विलासिता मे लीन रहने के बाद अब उन्हे विरक्त हो जाना चाहिए था। इस आमोद-लिप्सा की भी कोई सीमा है? इसे सजीविता नही कह सकते, यह निश्चलता नही, इसे धैर्य कहना ही उपयुक्त है। धैर्य कभी सजीवता और वासना का रूप नही धारण करता। वह हृदय पर विरक्ति, उदासीनता और मलीनता का रग फेर देता है। वह केवल हृदयदाह है, जिससे आँसू तक सूख जाता है। वह शोक भी अतिम अवस्था है। कोई योगी, सिद्ध महात्मा भी जवान बेटे का दाग दिल पर रखते हुए इतना अविचलित नही रह सकता। यह नग्न इद्रियोपासना है। अहकार ने महात्मा का दमन कर दिया, ममत्व ने हृदय के कोमल भावो का सर्वनाश कर दिया है। ज्ञानशकर को अब रायसाहब की एक-एक बात मे क्षुद्र विलासिता की झलक दिखाई देती। वह उनके प्रत्येक व्यवहार को तीव्र समालोचना की दृष्टि से देखते।

परंतु एक महीना गुजर जाने पर भी ज्ञानशकर ने कभी बनारस जाने की इच्छा नही प्रकट की। यद्यपि विद्यावती का उनके साथ जाने पर राजी न होना उनके यहाँ पडे रहने का अच्छा बहाना था, पर वास्तव मे इसका एक दूसरा ही कारण था, जिसे अत करण मे भी व्यक्त करने का उन्हे साहस न होता था। गायत्री के कोमल भाव और मृदुल रसमयी बातो का उनके चित्त पर आकर्षण होने लगा था। उसका विक-

सित लावण्यमय सौंदर्य अज्ञात रूप से उनके हृदय को खीचता जाता था, और वह पतग की भाँति, परिणाम से बेखबर इस दीपक की ओर बढते चले जाते थे। उन्हे गायत्री प्रेमाकाक्षा और प्रेमानुरोध की मूर्ति दिखाई देती थी, और यह भ्रम उनकी लालसा को और भी उत्तेजित करता रहता था। घर मे किसी बडी-बूढी स्त्री के न होने के कारण उनका आदर-सत्कार गायत्री ही करती थी और ऐसे स्नेह और अनुराग के साथ कि ज्ञानशकर को इसमे प्रेमादेश का रसमय आनद मिलता था। सुखद कल्पनाएँ मनोहर रूप धारण करके उनकी दृष्टि के सामने नृत्य करने लगती थी। उन्हे अपना जीवन कभी इतना सुखमय न मालूम हुआ था। हृदय सागर मे कभी ऐसी प्रबल तरगें न उठी थी। उनका मन केवल प्रेमवासनाओ का आनद न उठाता था। वह गायत्री की अतुल सम्पत्ति का भी सुख-भोग करता था। उनकी भावी उन्नति का भवन निर्माण हो चुका था, यदि वह इस उद्यान से सुसज्जित हो जाय तो उसकी शोभा कितनी अपूर्व होगी? उसका दृश्य कितना विस्तृत, कितना मनोहर होगा!

ज्ञानशकर की दृष्टि मे आत्म-सयम का महत्त्व बहुत कम था। उनका विचार था कि सयम और नियम मानव-चरित्र के स्वाभाविक विकास के बाधक है। वही पौधा सघन वृक्ष हो सकता है जो समीर और लू, वर्षा और पाले मे समान रूप से खडा रहे। उसकी वृद्धि के लिए अग्निमय प्रचड वायु उतनी ही आवश्यक है जितनी शीतल मन्द समीर, शुष्कता उतनी ही प्राणपोषक है, जितनी आर्द्रता। चरित्रोन्नति के लिए भी विविध प्रकार की परिस्थितियाँ अनिवार्य है। दरिद्रता को काला नाग क्यो समझें। चरित्र-सगठन के लिए यह सम्पत्ति से कही महत्त्वपूर्ण है। यह मनुष्य मे दृढता और सकल्प, दया और सहानुभूति के भाव उदय करती है। प्रत्येक अनुभव चरित्र के किसी न किसी अग की पुष्टि करता है, यह प्राकृतिक नियम है। इसमे कृत्रिम बाधाओ के डालने से चरित्र विषम हो जाता है। यहाँ तक कि क्रोध और ईर्षा, असत्य और कपट मे भी बहुमूल्य शिक्षा के अकुर छिपे रहते है। जब तक सितार का प्रत्येक तार चोट न खाय, सुरीली ध्वनि नही निकल सकती। मनोवृत्तियो को रोकना ईश्वरीय नियमो मे हस्तक्षेप करना है। इच्छाओ का दमन करना आत्म-हत्या के समान है। इससे चरित्र सकुचित हो जाता है। बधनो के दिन अब नही रहे, यह अबाध, उदार, विराट, उन्नति का समय है। त्याग और बहिष्कार उस समय के लिए उपयुक्त था, जब लोग ससार को असार, स्वप्नवत् समझते थे। यह सासारिक उन्नति का काल है, धर्मा-धर्म का विचार सकीर्णता का द्योतक है। सासारिक उन्नति हमारा अभीष्ट है। प्रत्येक साधन जो अभीष्ट सिद्धि मे हमारा सहायक हो ग्राह्य है। इन विचारो ने ज्ञानशकर को विवेक-शून्य बना दिया था। हाँ, वर्तमान अवस्था का यह प्रभाव था कि वह निंदा और उपहास से डरते थे, हालाँकि यह भी उनके विचारो मे मानसिक दुर्बलता थी।

गायत्री उन स्त्रियो मे न थी, जिनके लिए पुरुषो का हृदय एक खुला हुआ पृष्ठ होता है। उसका पति एक दुराचारी मनुष्य था, पर गायत्री को कभी उस पर सदेह

नही हुआ, उसके मनोभावो की तह तक कभी नही पहुँची और यद्यपि उसे मरे हुए तीन साल बीत चुके थे, पर वह अभी तक आध्यात्मिक श्रद्धा से उसकी स्मृति की आराधना किया करती थी। उसका निष्फल हृदय वासनायुक्त प्रेम के रहस्यो से अनभिज्ञ था। किंतु इसके साथ ही सगर्वता उसके स्वभाव का प्रधान अग थी। वह अपने को उससे कही ज्यादा विवेकशील और मर्मज्ञ समझती थी, जितनी वह वास्तव मे थी। उसके मनोवेग और विचार जल के नीचे बैठनेवाले रोड़े नही सतह पर तैरनेवाले बुलबुले थे। ज्ञानशकर एक रूपवान, सौम्य, मृदुमुख मनुष्य थे। गायत्री सरल भाव से इन गुणो पर मुग्ध थी। वह उनसे मुस्कराकर कहती, तुम्हारी बातो मे जादू है, तुम्हारी बातों से कभी मन तृप्त नहीं होता। ज्ञानशकर के सम्मुख विद्या से कहती, ऐसा पति पा कर भी तू अपने भाग्य को नही सराहती? यद्यपि ज्ञानशकर उससे दो-चार ही मास छोटे थे, पर उसकी छोटी बहन के पति थे, इसलिए वह उन्हे छोटे भाई के तुल्य समझती थी। वह उनके लिए अच्छे-अच्छे भोज्य पदार्थ आप बनाती, दिन मे कई बार जलपान करने के लिए घर मे बुलाती थी। उसे धार्मिक और वैज्ञानिक विषयो से विशेष रुचि थी। ज्ञानशकर से इसी विषय की बाते करने और सुनने में उसे हार्दिक आनद प्राप्त होता था। वह साली के नाते से प्रथानुसार उनसे दिल्लगी भी करती, उन पर भावमय चोटें करती और हँसती थी। मुँह लटका कर उदास बैठना उसकी आदत न थी। वह हँसमुख, विनयशील, सरल-हृदय, विनोद-प्रिय रमणी थी, जिसके हृदय मे लीला और क्रीड़ा के लिए कही जगह न थी।

किंतु उसका यह सरल सीधा व्यवहार ज्ञानशकर की मलिन दृष्टि मे परिवर्तित हो जाता था। उज्ज्वलता मे वैचित्र्य और समता मे विषमता दीख पड़ती थी। उन्हे गायत्री सकेत द्वारा कहती हुई मालूम होती, 'आओ, इस उजड़े हुए हृदय को आबाद करो। आओ, इस अन्धकारमय कुटीर को आलोकित करो।' इस प्रेमाह्वान का अनादर करना उनके लिए असाध्य था। परन्तु स्वय उनके हृदय ने गायत्री को यह निमत्रण नही दिया, कभी अपना प्रेम उस पर अर्पण नही किया—उन्हें बहुधा क्लब मे देर हो जाती, ताश की बाजी अधूरी न छोड़ सकते थे; कभी सैर-सपाटे में विलम्ब हो जाता, किंतु वह स्वय विकल न होते, यही सोचते कि गायत्री विकल हो रही होगी। अग्नि गायत्री के हृदय मे जलती थी, उन्हे केवल उसमे हाथ सेंकना था। उन्हे इस प्रयास मे वही उल्लास होता था, जो किसी शिकारी को शिकार मे, किसी खिलाड़ी को बाजी की जीत मे होता है। वह प्रेम न था, वशीकरण की इच्छा थी। इस इच्छा और प्रेम मे बड़ा भेद है, इच्छा अपनी ओर खीचती है, प्रेम स्वय खिंच जाता है। इच्छा मे ममत्व है, प्रेम मे आत्मसमर्पण। ज्ञानशकर के हृदयस्थल में यही वशीकरण-चेष्टा किलोलें कर रही थी।

गायत्री भोली सही, अजान सही, पर शनै.शनै उसे ज्ञानशकर से लगाव होता जाता था। यदि कोई भूल कर भी विष खा ले, तो उसका असर क्या कुछ कम होगा। ज्ञानशंकर को बाहर से आने मे देर होती, तो उसे बेचैनी होने लगती, किसी काम मे जी नही लगता, वह अटारी पर चढ कर उनकी बाट जोहती। वह पहले विद्यावती के

सामने हँस-हँस कर उनसे बातें करती थी, कभी उनसे अकेले भेंट हो जाती तो उसे कोई बात ही न सूझती थी। अब वह अवस्था न थी। उसकी बात अब एकांत की खोज मे रहती। विद्या की उपस्थिति उन दोनो को मौन बना देती थी। अब वह केवल वैज्ञानिक तथा धार्मिक चर्चाओ पर आवद्ध न होते। बहुधा स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध की मीमासा किया करते और कभी-कभी ऐसे मार्मिक प्रसगो का सामना करना पड़ता कि गायत्री लज्जा से सिर झुका लेती।

एक दिन सध्या समय गायत्री बगीचे मे आराम कुर्सी पर लेटी हुई एक पत्र पढ रही थी, जो अभी डाक से आया था। यद्यपि लू का चलना बद हो गया था, पर गर्मी के मारे बुरा हाल था। प्रत्येक वस्तु से ज्वाला-सी निकल रही थी। वह पत्र को उठाती थी और फिर गर्मी से विकल हो कर रख देती थी। अत मे उसने एक परिचारिका को पखा झलने के लिए बुलाया और अब पत्र को पढने लगी। उसके मुख्तार-आम ने लिखा था, सरकार यहाँ जल्द आयें। यहाँ कई ऐसे मामले आ पडे है जो आपकी अनुमति के बिना तै नही हो सकते। हरिहरपुर के इलाके मे बिलकुल वर्षा नही हुई यह आपको ज्ञात ही है। अब वहाँ के असामियो से लगान वसूल करना अत्यत कठिन हो रहा है। वह सोलहो आने छूट की प्रार्थना करते हैं। मैंने जिलाधीश से इस विषय मे अनुरोध किया, पर उसका कुछ फल न हुआ। वह अवश्य छूट कर देंगे। यदि आप आ कर स्वय जिलाधीश से मिलें तो शायद सफलता हो। यदि श्रीमान् राय साहब यहाँ पधारने का कष्ट उठायें तो निश्चय ही उनका प्रभाव कठिन को सुगम कर दे। असामियो के इस आदोलन से हलचल मची हुई है। शका है कि छूट न हुई तो उत्पात होने लगेगा। इसलिए आपका जिलाधीश से साक्षात् करना परमावश्यक है।

गायत्री सोचने लगी, यह जमीदारी क्या है, जी का जजाल है। महीने आध महीने के लिए भी कही जायें तो हाय-हाय-सी होने लगती है। असामियो मे यह धुन न जाने कैसे समा गयी कि जहाँ देखो वही उपद्रव करने पर तत्पर दिखाई देते हैं। सरकार को इन पर कडा हाथ रखना चाहिए। जरा भी शह मिली और यह काबू से बाहर हुए। अगर इस इलाके मे असामियो की छूट हो गयी तो मेरा २०--२५ हजार का नुकसान हो जायगा। इसी तरह और इलाके मे भी उपद्रव के डर से छूट हो जाय तो मैं तो कही की न रहूँ। कुछ वसूल न होगा तो मेरा खर्च कैसे चलेगा? माना कि मुझे उस इलाके की मालगुजारी न देनी पडेगी, पर और भी तो कितने ही रुपये पृथक्-पृथक नामो से देने पडते हैं, वह तो देने ही पडेगे। वह किस के घर से आयेंगे? छूट भी हो जाय, मगर लूंगी असामियों से ही।

पर मेरा जी वहाँ कैसे लगेगा। यह बातें वहाँ कहाँ सुनने को मिलेंगी, अकेले पडे-पडे जी उकताया करेगा। जब तक ज्ञानशकर यहाँ रहेगे तब तक तो मैं गोरखपुर जाती नही। हाँ, जब वह चले जायेंगे तो मजबूरी है। नुकसान ही न होगा? बला से। जीवन के दिन आनद से तो कट रहे हैं; धर्म और ज्ञान की चर्चा सुनने में आती है। कल बाबू साहब मुझसे चिढ गये होगे, लेकिन मेरा मन तो अब भी स्वीकार नही करता

कि विवाह केवल एक शारीरिक सम्बन्ध और सामाजिक व्यवस्था है। वह स्वय कहते हैं कि मानव शरीर का कई सालो मे सम्पूर्णत रूपातर हो जाता है। शायद आठ वर्ष कहते थे। यदि विवाह केवल दैहिक सम्बन्ध हो तो इस नियमित समय के बाद उसका अस्तित्व ही नही रहता। इसका तो यह आशय है कि आठ वर्षो के बाद पति और पत्नी इस धर्म-बंधन से मुक्त हो जाते हैं, एक का दूसरे पर कोई अधिकार नही रहता। आज फिर यही प्रश्न उठाऊँगी। लो, आप ही आ गये। बोली, कहिए कही जाने को तैयार हैं क्या?

ज्ञान—आज यहाँ थिएट्रिकल कम्पनी का तमाशा होनेवाला है। आप से पूछने आया हूँ कि आप के लिए भी जगह रिजर्व कराता आऊँ? आज बडी भीड होगी।

गायत्री—विद्या से पूछा, वह जायगी?

ज्ञान—वह तो कहती है कि माया को साथ ले कर जाने मे तकलीफ होगी। मैंने भी आग्रह नही किया।

गायत्री—तो अकेले जाने पर मुझे भी कुछ आनद न आयेगा।

ज्ञान—आप न जायँगी तो मैं भी न जाऊँगा।

गायत्री—तब तो मैं कदापि न जाऊँगी। आप की बातो मे मुझे थिएटर से अधिक आनद मिलता है। आइए, बैठिए। कल की बात अधूरी रह गयी थी। आप कहते थे, स्त्रियो मे आकर्षण-शक्ति पुरुषो से अधिक होती है, पर आपने इसका कोई कारण नही बताया था।

ज्ञान—इसका कारण तो स्पष्ट ही है। स्त्रियो का जीवन-क्षेत्र परिमित होता है और पुरुषो का विस्तृत। इसी लिए स्त्रियो की सारी शक्तियाँ केंद्रस्थ हो जाती हैं और पुरुषो की विच्छिन्न।

गायत्री—लेकिन ऐसा होता तो पुरुषो को स्त्रियो के अधीन रहना चाहिए था। वह उन पर शासन क्योकर करते?

ज्ञान—तो क्या आप समझती है कि मर्द स्त्रियो पर शासन करते हैं? ऐसी बात तो नही है। वास्तव मे मर्द ही स्त्रियो के अधीन होते है। स्त्रियाँ उनके जीवन की विधाता होती है। देह पर उनका शासन चाहे न हो, हृदय पर उन्ही का साम्राज्य होता है।

गायत्री—तो फिर मर्द इतने निष्ठुर क्यो हो जाते हैं?

ज्ञान—मर्दो पर निष्ठुरता का दोष लगाना न्याय-विरुद्ध है। वह उस समय तक सिर नही उठा सकते, जब तक या तो स्त्री स्वय उन्हे मुक्त न कर दे, अथवा किसी दूसरी स्त्री की प्रबल विद्युत शक्ति उन पर प्रभाव न डाले।

गायत्री—(हँसकर) आपने तो सारा दोष स्त्रियो के ही सिर रख दिया।

ज्ञानशंकर ने भावुकता से उत्तर दिया, अन्याय तो वह करती हैं, फरियाद कौन सुनेगा?

इतने मे विद्यावती मायाशंकर को गोद मे लिए आ कर खडी हो गयी। माया चार

वर्ष का हो चुका था, पर अभी तक कोई और बच्चा न होने के कारण वह शैशवावस्था के आनंद भोगता था।

गायत्री ने पूछा, क्यो विद्या, आज थिएटर देखने चलती हो?

विद्या—कोई अनुरोध करेगा तो चली चलूंगी, नही तो मेरा जी नही चाहता।

ज्ञान—तुम्हारी इच्छा हो तो चलो, मैं अनुरोध नही करता।

विद्या—तो फिर मैं भी नही जाती।

गायत्री—मैं अनुरोध करती हूँ, तुम्हे चलना पडेगा। बाबू जी, आप जगहे रिज़र्व करा लीजिए।

नौ बजे रात को तीनो एक फिटन पर बैठ कर थिएटर को चले। माया भी साथ था। फिटन कुछ दूर चली आयी तो वह पानी-पानी चिल्लाने लगा। ज्ञानशंकर ने विद्या से कहा, लडके को ले कर चली थी, तो पानी की एक सुराही क्यो न रख ली?

विद्या—क्या जानती थी कि घर से निकलते ही इसे प्यास लग जायगी?

ज्ञान—पानदान रखना तो न भूल गयी?

विद्या—इसी से तो मैं कहती थी कि मै न चलूंगी।

गायत्री—थिएटर के हाते मे बर्फ-पानी सब कुछ मिल जायगा।

माया यह सुन कर और भी अधीर हो गया। रो-रो कर दुनियाँ सिर पर उठा ली। ज्ञानशंकर ने उसे बढावा दिया। वह और भी गला फाड-फाड कर बिलबिलाने लगा।

ज्ञान—जब अभी से यह हाल है, तो दो बजे रात तक न जाने क्या होगा?

गायत्री—कौन जागता रहेगा? जाते ही जाते तो सो जायेगा।

ज्ञान—गोद मे आराम से तो सो सकेगा नही, रह रह कर चौकेगा और रोयेगा। सारी सभा घबडा जायेगी। लोग कहेगे, यह पुछल्ला अच्छा साथ लेते आये।

विद्या—कोचवान से कह क्यो नही देते कि गाडी लौटा दे, मैं न जाऊँगी।

ज्ञान—यह सब बाते पहले ही सोच लेनी चाहिए थी न? गाडी यहाँ से लौटेगी तो आते-आते दस बज जायेगे। आधा तमाशा ही गायब हो जायेगा। वहाँ पहुँच जाये तो जी चाहे मजे से तमाशा देखना, माया को इसी गाड़ी मे पडे रहने देना या उचित समझना तो लौट आना।

गायत्री—वहाँ तक जा कर तो लौटना अच्छा नही लगता।

ज्ञान—मैंने तो सब कुछ इन्ही की इच्छा पर छोड दिया।

गायत्री—क्या वहाँ कोई आराम कुर्सी न मिल जायेगी?

विद्या—यह सब झझट करने की जरूरत ही क्या है? मैं लौट आऊँगी। मैं तमाशा देखने को उत्सुक न थी, तुम्हारी खातिर से चली आयी थी।

थिएटर का पडाल आ गया। खूब जमाव था। ज्ञानशंकर उतर पडे। गायत्री ने विद्या से उतरने को कहा, पर वह बहुत आग्रह करने पर भी न उठी। कोचवान को पानी लाने को भेजा। इतने मे ज्ञानशंकर लपके हुए आये, और बोले, भाभी, जल्दी कीजिए, घटी हो गयी, तमाशा आरम्भ होने वाला है। जब तक यह माया को पानी

पिलाती है, आप चल कर बैठ जाइए, नही तो शायद जगह ही न मिले।

यह कह कर वह गायत्री को लिए हुए पडाल मे घुस गये। पहले दरजे के मरदाने और जनाने भागो के बीच मे केवल एक चिक का परदा था। चिक के बाहर ज्ञानशकर बैठे और चिक के पास ही भीतर गायत्री को बैठाया। वही दोनो जगहे उन्होने रिजर्व (स्वरक्षित) करा रखी थी।

गायत्री जल्दी से गाडी से उतर कर ज्ञानशकर के साथ चली आयी थी। विद्या अभी आयेगी, यह उसे निश्चय था। लेकिन जब उसे बैठे कई मिनट हो गये, विद्या न दिखाई दी और अत मे ज्ञानशकर ने आ कर कहा, वह चली गयी, तो उसे बडा क्षोभ हुआ। समझ गयी कि वह रूठ कर चली गयी। अपने मन मे मुझे ओछी, निष्ठुर समझ रही होगी। मुझे भी उसी के साथ लौट जाना चाहिए था। उसके साथ तमाशा देखने मे हर्ज नही था। लोग यह अनुमान करते कि मैं उसकी खातिर से आयी हूँ, किन्तु उसके लौट जाने पर मेरा यहाँ रहना सर्वथा अनुचित है। घर की लौडियाँ और महरियाँ तक हँसेगी और उनका हँसना यथार्थ है, दादाजी न जाने मन मे क्या सोचेंगे। मेरे लिए अब तीर्थ-यात्रा, गगा-स्नान, पूजा-पाठ, दान और व्रत है। यह विहार-विलास सोहागिन के लिए है। मुझे अवश्य लौट जाना चाहिए। लेकिन बाबू जी से इतना जल्द लौटने को कहूँगी तो वह मुझपर अवश्य झुँझलायेगे, पछतायेगे कि नाहक इसके साथ आया। बुरी फँसी। कुछ देर यहाँ बैठे बिना अब किसी तरह छुटकारा न मिलेगा।

यह निश्चय करके वह बैठी। लेकिन जब अपने आगे-पीछे दृष्टि पडी तो उसे वहाँ एक पल भर भी बैठना दुस्तर जान पडा। समस्त जनाना भाग वेश्याओ से भरा हुआ था। एक से एक सुन्दर, एक से एक रगीन। चारो ओर से खस और मेंहदी की लपटे आ रही थी। उनका आभरण और शृगार, उनका ठाट-बाट, उनके हाव-भाव, उनकी मद-मुस्कान, सब गायत्री को घृणोत्पादक प्रतीत होते थे। उसे भी अपने रूप-लावण्य पर घमड था, पर इस सौंदर्य-सरोवर मे वह एक जल-कण के समान विलीन हो गयी थी। अपनी तुच्छता का ज्ञान उसे और भी व्यस्त करने लगा। यह कुलटाएँ कितनी ढीठ, कितनी निर्लज्ज हैं। इसकी शिकायत नही कि इन्होने क्यो ऐसे पापमय, ऐसे नारकीय पथ पर पग रखा। यह अपने पूर्व कर्मो का फल है। दुरवस्था जो न कराये थोडा, लेकिन यह अभिमान क्यो ? ये इठलाती किस बिरते पर है ? मालूम होता है, सब की सब नवाबजादियाँ हो। इन्हे तो शर्म से सिर झुकाये रहना चाहिए था। इनके रोम-रोम से दीनता और लज्जा टपकनी चाहिए थी। पर यह ऐसी प्रसन्न है मानो ससार मे इनसे सुखी और कोई है ही नही। पाप एक करुणाजनक वस्तु है, मानवीय विवशता का द्योतक है। उसे देख कर दया आती है, लेकिन पाप के साथ निर्लज्जता और मदाधता एक पैशाचिक लीला है, दया और धर्म की सीमा से बाहर।

गायत्री अब पल भर भी न ठहर सकी। ज्ञानशकर से बोली, मैं बाहर जाती हूँ, यहाँ नही बैठा जाता, मुझे घर पहुँचा दीजिए।

उसे सशय था कि ज्ञानशकर वहाँ ठहरने के लिए आग्रह करेंगे। चलेंगे भी तो क्रुद्ध हो कर। पर यह बात न थी। ज्ञानशकर सहर्ष उठ खडे हुए। बाहर आ कर एक बग्घी किराये पर की और घर चले।

गायत्री ने इतना जल्द थिएटर से लौट आने के लिए क्षमा माँगी। फिर वेश्याओ की बेशरमी की चर्चा की, पर ज्ञानशकर ने कुछ उत्तर न दिया। उन्होने आज मन मे एक विषम कल्पना की थी और इस समय उसे कार्य रूप मे लाने के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्तियो को इस प्रकार एकाग्र कर रहे थे, मानो किसी नदी मे कूद रहे हों। उनका हृदयाकाश मनोविकार की काली घटाओ से आच्छादित हो रहा था, जो इधर महीनो से जमा हो रही थी। वह ऐसे ही अवसर की ताक मे थे। उन्होने अपना कार्य-क्रम स्थिर कर लिया। लक्षणो से उन्हे गायत्री के सहयोग का भी निश्चय होता जाता था। उसका थिएटर देखने पर राजी हो जाना, विद्या के साथ घर न लौटना, उनके साथ अकेले बग्घी मे बैठना इसके प्रत्यक्ष प्रमाण थे। कदाचित् उन्हे अवसर देने के ही लिए वह इतनी जल्द लौटी थी, क्योकि घर की फिटन पर लौटने से काम मे विघ्न पडने का भय था। ऐसी अनुकूल दशा मे आगा-पीछा करना, उनके विचार मे वह कापुरुषता थी, जो अभीष्ट सिद्धि की घातक है। उन्होने किताबो मे पढा था कि पुरुषोचित उद्दडता वशीकरण का सिद्धमत्र है। तत्क्षण उनकी विकृत-चेष्टा प्रज्ज्वलित हो गयी, आँखो से ज्वाला निकलने लगी, रक्त खौलने लगा, साँस वेग से चलने लगी। उन्होने अपने घुटने से गायत्री की जाँघ मे एक ठोका दिया। गायत्री ने तुरत पैर समेट लिए, उसे कुचेष्टा की लेश-मात्र भी शका न हुई। किंतु एक क्षण के बाद ज्ञानशकर ने अपने जलते हुए हाथ से उसकी कलाई पकड कर धीरे से दबा दी। गायत्री ने चौक कर हाथ खीच लिया, मानो किसी विषधर ने काट खाया हो, और भयभीत नेत्रो से ज्ञानशकर को देखा। सडक पर बिजली की लालटेनें जल रही थीं। उनके प्रकाश मे ज्ञानशकर के चेहरे पर एक सतप्त उग्रता, एक प्रदीप्त दुस्साहस दिखायी दिया। उसका चित्त अस्थिर हो गया, आँखो मे अँधेरा छा गया, सारी देह पसीने से तर हो गयी। उसने कातर नेत्रो से बाहर की ओर झाँका। समझ न पडा कि कहाँ हूँ, कब घर पहुँचूँगी। निर्बल क्रोध की एक लहर नसो मे दौड गयी और आँखो से बह निकली। उसे फिर ज्ञानशकर की ओर ताकने का साहस न हुआ। उनसे कुछ कह न सकी। उसका क्रोध भी शात हो गया। वह सज्ञाशून्य हो गयी। सारे मनोवेग शिथिल पड गये। केवल आत्मवेदना का ज्ञान आरे के समान हृदय को चीर रहा था। उसकी वह वस्तु लुट गयी, जो उसे जान से भी अधिक प्रिय थी, जो उसके मन की रक्षक, उसके आत्म-गौरव की पोषक, धैर्य का आधार और उसके जीवन का अवलम्ब थी। उसका जी डूबा जाता था। सहसा उसे जान पडा कि अब मैं किसी को मुँह दिखाने के योग्य नही रही। अब तक उसका ध्यान अपने अपमान के इस बाह्य स्वरूप की ओर नही गया था। अब उसे ज्ञात हुआ कि यह केवल मेरा आत्मिक पतन ही नही है, उसने मेरी आत्मा को कलुषित नही किया, बरन् मेरी बाह्य प्रतिष्ठा का भी सर्व-

नाश कर दिया। इस अवगति ने उसके डूबते हुए हृदय को थाम लिया। गोली खा कर दम तोड़ता हुआ पक्षी भी छुरी को देख कर तड़प जाता है।

गायत्री जरा सँभल गयी, उसने ज्ञानशंकर की ओर सजल आँखो से देखा। कहना चाहती थी, जो कुछ तुमने किया उसका बदला तुम्हे परमात्मा देंगे। लेकिन यदि सौजन्यता का अल्पांश भी रह गया है तो मेरी लाज रखना, सतीत्व का नाश तो हो गया पर लोकसम्मान की रक्षा करना. किंतु शब्द न निकले, अश्रु-प्रवाह मे विलीन हो गये।

ज्ञानशंकर को भी मालूम हो गया कि मैंने धोखा खाया। मेरी उद्विग्नता ने सारा काम चौपट कर दिया। अभी तक उन्हे अपनी अधोगति पर लज्जा न आयी थी। पर गायत्री की सिसकियाँ सुनी तो हृदय पर चोट-सी लगी। अतरात्मा जाग्रत हो गयी, शर्म से गर्दन झुक गयी। कुवासना लुप्त हो गयी। अपने पाप की अधमता का ज्ञान हुआ। ग्लानि और अनुताप के भी शब्द मुँह तक आये, पर व्यक्त न हो सके। गायत्री की ओर देखने का भी हौसला न पडा। अपनी मलिनता और दुष्टता अपनी ही दृष्टि मे ही मालूम होने लगी। हा! मैं कैसा दुरात्मा हूँ। मेरे विवेक, ज्ञान और सद्विचार ने आत्महिंसा के सामने सिर झुका दिया। मेरी उच्च शिक्षा और उच्चादर्श का यही परिणाम होना था! अपने नैतिक पतन के ज्ञान ने आत्म-वेदना का सचार कर दिया। उनकी आखो से आँसु की धारा प्रवाहित हो गयी।

दोनो प्राणी खिड़कियो से सिर निकाले रोते रहे, यहाँ तक कि गाडी घर पर पहुँच गयी।

११

आँधी का पहला वेग जब शान्त हो जाता है, तब वायु के प्रचड झोके, बिजली की चमक और कडक भी बद हो जाती है और मूसलाधार वर्षा होने लगती है। गायत्री के चित्त की शांति भी द्रवीभूत हो गयी थी। हृदय मे रुधिर की जगह आँसुओ का सचार हो रहा था।

आधी रात बीत गयी, पर उसके आँसू न थमे। उसका आत्मगौरव आज नष्ट हो गया। पति-वियोग के बाद उसकी सुदृढ स्मृति ही गायत्री के जीवन-सुख की नीव थी। वही साधुकल्पना उसकी उपास्य थी। वह इस हृदय-कोष को, जहाँ यह अमूल्य रत्न सचित था, कुटिल आकाक्षाओ की दृष्टि से बचाती रहती थी। इसमे सदेह नही कि वह वस्त्राभूषणो से प्रेम रखती थी, उत्तम भोजन करती थी और सदैव प्रसन्न चित्त रहती थी, किन्तु इसका कारण उसकी विलासप्रियता नही, वरन् अपने सतीत्व का अभिमान था। उसे सयम और आचार का स्वांग भरने से घृणा थी। वह थिएटर भी देखती थी, आनदोत्सवो मे भी शरीक होती थी। आभरण, सुरुचि और मनोरजन की सामग्रियो का त्याग करने की वह आवश्यकता न समझती थी, क्योकि उसे अपनी चित्त-स्थिति पर विश्वास था। वह एकाग्र हो कर अपने इलाके का प्रबध करती थी।

जब उसके आँसू थमे तो वह इस दुर्घटना के कारण और उत्पत्ति पर विचार करने लगी, और शनै शनै उसे विदित होने लगा कि इस विषय मे मैं सर्वथा निरपराध नही

हूँ। ज्ञानशंकर कदापि यह दुस्साहस न कर सकते, यदि उन्हे मेरी दुर्बलता पर विश्वास न होता। उन्हें यह विश्वास क्योकर हुआ? मैं इन दिनो उनसे बहुत स्नेह करने लगी थी। यह अनुचित था। कदाचित् इसी सम्पर्क ने उनके मन मे यह भ्रम अकुरित किया। तब उसे वह बाते याद आती जो उन सगतो मे हुआ करती थी। उनका झुकाव उन्ही विषयो की ओर होता था, जिन्हे एकान्त और सकोच की जरूरत है। उस समय वह बाते सर्वथा दोष रहित जान पडती थी, पर अब उनके विचार से ही गायत्री को लज्जा आती थी। उसे अब ज्ञात हुआ कि मैं अज्ञान दशा मे धीरे-धीरे ढाल की ओर चली जाती थी, और अगर यह गहरी खाई सहसा न आ पडती, तो मुझे अपने पतन का अनुभव ही न होता। उसे आज मालूम हुआ कि मेरा पति-प्रेम-बधन जर्जर हो गया, नही तो मैं इन वार्ताओ के आकर्षण से सुरक्षित रहती। वह अधीर हो कर उठी, और अपने पति के सम्मुख जा कर खडी हो गयी। इस चित्र को वह सदैव अपने कमरे मे लटकाये रहती थी। उसने ग्लानिमय नेत्रो से चित्र को देखा, और तब काँपते हुए हाथो से उतार कर उसे छाती से लगाये देर तक खडी रोती रही। इस आत्मिक आलिंगन से उसे एक विचित्र सतोष प्राप्त हुआ। ऐसा मालूम हुआ मानो कोई तडपते हुए हृदय पर मरहम रख रहा है और कितने कोमल हाथो से। वह उस चित्र को अलग न कर सकी, उसे छाती से लगाये हुए बिछावन पर लेट गयी। उसका हृदय इस समय पति-प्रेम से आलोकित हो रहा था। वह एक समाधि की अवस्था मे थी। उसे ऐसा प्रतीत होता था कि यद्यपि पतिदेव यहाँ अदृश्य है, तथापि उनकी आत्मा अवश्य यहाँ भ्रमण कर रही है। शनै शनै उसकी कल्पना सचित्र हो गयी। वह भूल गयी कि मेरे स्वामी को मरे तीन वर्ष व्यतीत हो गये। वह अकुला कर उठ बैठी। उसे ऐसा जान पडा कि उनके वक्ष से रक्त स्रावित हो रहा है और कह रहे हैं, 'यह तुम्हारी कुटिलता का घाव है। तुम्हारी पवित्रता और सत्यता मेरे लिए रक्षास्त्र थी। वह ढाल आज टूट गयी और बेवफाई की कटार हृदय मे चुभ गयी। मुझे तुम्हारे सतीत्व पर अभिमान था। वह अभिमान आज चूर-चूर हो गया। शोक! मेरी हत्या उन्ही हाथो से हुई जो कभी मेरे गले मे पड़े थे। आज तुमसे नाता टूटता है, भूल जाओ कि मैं कभी तुम्हारा पति था।' गायत्री स्वप्न-दशा मे उसी कल्पित व्यक्ति के सम्मुख हाथ फैलाये हुए विनय कर रही थी। शका से उसके हाथ-पाँव फूल गये और वह चीख मार कर भूमि पर गिर पडी।

वह कई मिनट तक बेसुध पडी रही। जब होश आया तो देखा कि विद्या, लौडियाँ महरियाँ सब जमा हैं और डाक्टर को बुलाने के लिए आदमी दौड़ाया जा रहा है।

उसे आँखें खोलते देख कर विद्या झपट कर उसके गले से लिपट गयी और बोली, बहन, तुम्हे क्या हो गया था? और तो कभी ऐसा न हुआ था?

गायत्री—कुछ नही, एक बुरा स्वप्न देख रही थी। लाओ, थोडा-सा पानी पीऊँगी, गला सूख रहा है।

विद्या—थिएटर में कोई भयावना दृश्य देखा होगा।

गायत्री—नही, मैं भी तुम्हारे आने के थोड़ी ही देर पीछे चली आयी थी। जी

नही लगा। अभी थोडी ही रात गयी है क्या ? बाबू जी ध्रुपद अलाप रहे है।

विद्या—बारह तो कब के बज चुके, पर उन्हे किसी के मरने-जीने की क्या चिंता ? उन्हे तो अपने राग-रग से मतलब है। महरी ने जा कर तुम्हारा हाल कहा तो एक आदमी को डाक्टर के यहाँ दौडा दिया और फिर गाने लगे।

गायत्री—यह तो उनकी पुरानी आदत है, कोई नयी बात थोडे ही है। रम्मन बाबू का यहाँ बुरा हाल हो रहा था, और वह डिनर मे गये हुए थे। जब दूसरे दिन मैंने बातो-बातो मे इसकी चर्चा की तो बोले, मैं वचन दे चुका था और जाना मेरा कर्तव्य था। मैं अपने व्यक्तिगत विषयो को सार्वजनिक जीवन से बिलकुल पृथक रखना चाहता हूँ।

विद्या—उस साल जब अकाल पडा और प्लेग भी फैला, तब हम लोग इलाके पर गये। तुम गोरखपुर थी। उन दिनो बाबू जी की निर्दयता देख कर मेरे रोयें खडे हो जाते थे। असामियो से रुपये वसूल न होते और हमारे यहाँ नित्य नाच-रग होता रहता था। बाबू जी को उडाने के लिए रुपये न मिलते तो वह चिढ कर असामियो पर गुस्सा उतारते। सौ-सौ मनुष्यो को एक पाँति मे खडा करके हटर से मारने लगते। बेचारे तडप-तडप कर रह जाते, पर उन्हे तनिक भी दया न आती थी। इसी मार-पीट ने इन्हे निर्दय बना दिया हैं। जीवन-मरण तो परमात्मा के हाथ है, लेकिन मैं इतना अवश्य कहूँगी कि भैया की अकाल मृत्यु इन्ही दीनो की हाय का फल है।

गायत्री—तुम बाबू जी पर अन्याय करती हो। उनका कोई कसूर नही। आखिर रुपये कैसे वसूल होते ? निर्दयता अच्छी बात नहीं, किंतु जब इसके बिना काम ही न चले तो क्या किया जाय ? तुम्हारे जीजा कैसे सज्जन थे, द्वार पर से किसी भिक्षुक को निराश न लौटने देते। सत्कार्यो मे हजारो रुपये खर्च कर डालते थे। कोई ऐसा दिन न जाता कि सौ-पचास साधुओ को भोजन न कराते हो। हजारो रुपये तो चदे मे दे डालते थे। लेकिन उन्हे भी असामियो पर सख्ती करनी पडती थी। मैंने स्वय उन्हे असामियो की मुश्के कस के पिटवाते देखा है। जब कोई और उपाय न सूझता तो उनके घरो मे आग लगवा देते थे और अब मुझे भी वही करना पडता है। उस समय मैं समझती थी कि यह व्यर्थ इतना जुल्म करते हैं। उन्हे समझाया करती थी, पर जब अपने माथे पड गयी तो अनुभव हुआ कि यह नीच बिना मार खाये रुपये नही देते। घर मे रुपये रखे रहते हैं, पर जब तक दो-चार लात-घूँसे न खा ले, या गालियाँ न सुन ले, देने का नाम नही लेते। यह उनकी आदत है।

विद्या—मैं यह न मानूँगी। किसी को मार खाने की आदत नही हुआ करती।

गायत्री—लेकिन किसी को मारने की भी आदत नही होती। यह सम्बन्ध ही ऐसा है कि एक ओर तो प्रजा मे भय, अविश्वास और आत्महीनता के भावो को पुष्ट करता है और दूसरी ओर जमीदारो को अभिमानी, निर्दय और निरकुश बना देता है।

विद्या ने इसका कुछ जवाब न दिया। दोनो बहने एक ही पलग पर लेटी। गायत्री के मन मे कई बार इच्छा हुई कि आज की घटना को विद्या से बयान कर दूँ। उसके

हृदय पर एक बोझा-सा रखा हुआ था। इसे वह हल्का करना चाहती थी। ज्ञानशकर को विद्या की दृष्टि मे गिराना भी अभीष्ट था। यद्यपि उसका स्वय अपमान होता था, लेकिन ज्ञानशकर को लज्जित और निंदित करने के लिए वह इतना मूल्य देने पर तैयार थी, किंतु बात मुँह तक आ कर लौट जाती थी। और गायत्री को कोई बात न सूझती थी। अकस्मात् उसे एक विचार सूझ पडा। उसने विद्या को हिला कर कहा, क्या सोने लगी? मेरा जी चाहता है कि कलपरसो तक यहाँ से चली जाऊँ।

विद्या ने कहा, इतना जल्द! भला जब तक मैं रहूँ, तब तक तो रहो।

गायत्री—नही, अब यहाँ जी नही लगता। वहाँ काम-काज भी तो देखना है।

विद्या—लेकिन अभी तक तो तुमने बाबू जी से इसकी चर्चा भी नही की।

गायत्री—उनसे क्या कहना है? जाऊँ चाहे रहूँ, दोनो एक ही है।

विद्या—तो फिर मैं भी न रहूँगी, तुम्हारे साथ ही चली जाऊँगी।

गायत्री—तुम कहाँ जाओगी? अब यही तुम्हारा घर है। तुम्ही यहाँ की रानी हो। ज्ञान बाबू से कहो, इलाके का प्रबध करे। दोनो प्राणी यही सुखपूर्वक रहो।

विद्या—समझा तो मैने भी यही था, लेकिन विधाता की इच्छा कुछ और ही जान् पडती है। कई दिन से बराबर देख रही हूँ कि पडित परमानद नित्य आते है। चिंताराम भी आते जाते है। ये लोग कोई न कोई षड्यत्र रच रहे है। तुम्हारे चले जाने से इन्हे और भी अवसर मिल जायगा।

गायत्री—तो क्या बाबू जी को फिर विवाह करने की सूझी है क्या?

विद्या—मुझे तो ऐसा ही मालूम होता है।

गायत्री—अगर यह विचार उनके मन मे आया है तो वह किसी के रोके न रुकेंगे। मेरा लिहाज वे करते है, पर इस विषय मे वह शायद ही मेरी राय ले। उन्हे मालूम है कि मैं उन्हे क्या राय दूँगी।

विद्या—तुम रहती तो उन्हे कुछ न कुछ सकोच अवश्य होता।

गायत्री—मुझे इसकी आशा नही। वहाँ रहूँगी तो कम से कम वहाँ देख-रेख तो करती रहूँगी. तीन महीने हो गये, लोगो ने न जाने क्या क्या उपद्रव खडे किये होगे। एक दर्जन नातेदार द्वार पर डटे पडे रहते हैं। एक महाशय नाते मे मेरे मामू होते है, वे सुबह से शाम तक मछलियो का शिकार किया करते है। दूसरे महाशय मेरी फूफी के सुपुत्र है, वे मेरे ससुर के समय से ही वहाँ रहते है। उनका काम मुहल्ले भर की स्त्रियो को घूरना और उनसे दिल्लगी करना है। एक तीसरे महाशय, मेरी ननद के छोटे देवर है, रिश्वत के बाजार के दलाल हैं। इस काम से जो समय बचता है वह भग पीने-पिलाने मे लगाते है। इन लोगो मे बडा भारी गुण यह है कि सतोषी है। आनद से भोजन-वस्त्र मिलता जाय इसके सिवा उन्हे कोई चिंता नही। हाँ, जमीदारी का घमड सबको है, सभी असामियो पर रोब जमाना चाहते है, उनका गला दबाने के लिए सब तत्पर रहते है। बेचारे किसानो को, जो अपने परिश्रम की रोटियाँ खाते है, इन निठल्लो का अत्याचार केवल इसलिए सहना पडता है कि वह मेरे दूर के नातेदार हैं।

मुफ्तखोरी ने उन्हे इतना आत्मशून्य बना दिया है कि चाहे जितनी रुखाई से पेश आओ टलने का नाम न लेंगे। अधिक नही तो दस परिवार ऐसे होंगे जो मेरी मृत्यु का स्वप्न देखने मे जीवन के दिन काट रहे है। उनका बस चले तो मुझे विष दे दे। किसी के यहाँ से कोई सौगात आये, मैं उसे हाथ तक नही लगाती। उनका काम बस यही हैं कि बैठे-बैठे उत्पात किया करे, मेरे काम मे विघ्न डाला करें। कोई असामियो को फोडना है, कोई मेरे नौकर को तोडता है, कोई मुझे बदनाम करने पर तुला हुआ हैं। तुम्हें सुन कर हँसी आयेगी, कई महाशय विरासत की आशा मे डेवढे-दूने सूद पर ऋण लेकर पेट पालते हैं। कुछ नही बन पडता तो उपवास करते है, किंतु विरासत का अभिमान जीविका की कोई आयोजना नही करने देता। इन लोगो ने मेरी अनुपस्थिति मे न जाने क्या-क्या गुल खिलाये होंगे। अभी मुझे जाने दो। बाबू जी भी जल्द ही पहाड़ पर चले जायेंगे। यदि ऐसी ही कोई जरूरत आ पडे तो मुझे पत्र लिखना, चली आऊँगी।

दो दिन गायत्री ने किस प्रकार काटे। ज्ञानशंकर से फिर बात-चीत की नौबत नही आयी। तीसरे दिन वह विदा हुई। राय साहब स्टेशन तक पहुँचाने आये। ज्ञान-शंकर भी साथ थे। गायत्री गाडी मे बैठी। राय साहब खिडकी पर झुके हुए आम और खरबूजे, लीचियाँ और अंगूर ले-लेकर गाडी मे भरते जाते थे। गायत्री बार-बार कहती थी कि इतने फल क्या होंगे, कौन-सी बडी यात्रा है, किंतु राय साहब एक न सुनते थे। यह भी रियासत की एक आन थी। ज्ञानशंकर एक बेंच पर उदास बैठे हुए थे। गायत्री को उन पर दया आ गयी। वियोग के समय हम सहृदय हो जाते है। चलते-चलते हम किसी पर अपना ऋण चाहे छोड जायँ, किंतु ऋण लेकर जाना नही चाहते। जब गाडी ने सीटी दी, तो ज्ञानशंकर चौंक कर बेंच पर से उठे और गायत्री के सम्मुख आ कर उसे लज्जित और प्रार्थी नेत्रो से देखा। उनमे आँसू भरे हुए थे। पश्चात्ताप की सजीव मूर्ति थी। गायत्री भी खिडकी पर आयी, कुछ कहना चाहती थी, पर गाडी चलने लगी।

ज्ञानशंकर की विनय-मूर्ति रास्ते भर उसकी आँखो के सामने फिरती रही।

१२

गायत्री के जाने के बाद ज्ञानशंकर को भी वहाँ रहना दूभर हो गया। सौभाग्य उन्हे हवा के घोडे पर बैठाये ऋद्धि और सिद्धि के स्वर्ग मे लिए जाता था, किंतु एक ही ठोकर मे चमकते हुए नक्षत्र अदृश्य हो गये; वह प्राण-पोषक शीतल वायु, वह विस्तृत नभमंडल और सुखद कामनाएँ लुप्त हो गयी, और वह फिर उसी अंधकार मे निराश और विडम्बित पडे हुए थे। उन्हे लक्षणो से विदित होता जाता था कि राय साहब विवाह करने पर तुले हुए है और उनका दुर्बल क्रोध दिनो-दिन अदम्य होता जाता था। वह राय साहब की इंद्रिय-लिप्सा पर, क्षुद्रता पर झल्ला-झल्ला कर रह जाते थे। कभी-कभी अपने को समझाते कि मुझे बुरा मानने का कोई अधिकार नही, राय साहब अपनी जायदाद के मालिक है, उन्हे विवाह करने की पूर्ण स्वतंत्रता है, वह

अभी हृष्ट-पुष्ट हैं, उम्र भी ज्यादा नही। उन्हे ऐसी क्या पड़ी है कि मेरे लिए इतना त्याग करे। मेरे लिए यह कितनी लज्जा की बात है कि अपने स्वार्थ के लिए उनका बुरा चेतूं, उनके कुल के अंत होने की अमगल-कामना करूँ। यह मेरी घोर नीचता है। लेकिन विचारो को इस उद्देश्य मे हटाने का प्रयत्न एक प्रतिक्रिया का रूप धारण कर लेता था, जो अपने बहाव में धैर्य और संतोष के बाँध को तोड़ डालता था। तब उनका हृदय उस शुभ मुहूर्त्त के लिए विकल हो जाता था, जब यह अतुल सम्पत्ति अपने हाथों मे आ जायगी, जब वह यहाँ मेहमान के अस्थायी रूप से नही, स्वामी के स्थायी रूप से निवास करेंगे। वह नित इसी कल्पित सुख के भोगने मे मग्न रहते थे। प्रायः रात-रात भर जागते रह जाते और आनद के स्वप्न देखा करते। उन्नति और सुधार के कितने ही प्रस्ताव उनके मस्तिष्क मे चक्कर लगाया करते। सैर करने मे उनको अब कुछ आनद न मिलता, अधिकतर अपने कमरे मे ही पड़े रहते। यहाँ तक कि आशा और भय की अवस्था उनके लिए असह्य हो गयी। इस दुविधा मे पडे जेठ का महीना भी बीत गया और आषाढ़ आ पहुँचा।

राय साहब को अबकी पुत्र शोक के कारण पहाड़ पर जाने मे विलम्ब हो गया था। पहला छीटा पडते ही उन्होंने सफर की तैयारी शुरू कर दी। ज्ञानशंकर से अब जब्त न हो सका। सोचा, कौन जाने यह नैनीताल मे ही किसी नये विचारो की लेडी से विवाह कर लें। यहाँ कानोकान किसी को खबर भी न हो, अतएव उन्होंने इस शंका का अंत करने का निश्चय कर लिया।

सध्या हो गयी थी। वह मन को दृढ किये हुए राय साहब के कमरे मे गये, किंतु देखा तो वहाँ एक और महाशय विद्यमान थे। यह किसी कम्पनी का प्रतिनिधि था और राय साहब से उसके हिस्से लेने का अनुरोध कर रहा था। किंतु राय साहब की बातों से ज्ञात होता था कि वह हिस्से लेने को तैयार नही है। अंत मे एजेंट ने पूछा—आखिर आप को इतनी शंका क्यों है? क्या आप का विचार है कि कम्पनी की जड़ मजबूत नही है?

राय साहब—जिस काम मे सेठ जगतराम और मिस्टर मनचूरजी शरीक हो उसके विषय में यह सदेह नही हो सकता।

एजेंट—तो क्या आप समझते हैं कि कम्पनी का सचालन उत्तम रीति न होगा?

राय साहब—कदापि नही।

एजेंट—तो फिर आपको उसका साझीदार बनने मे क्या आपत्ति है? मैं आपकी सेवा मे कम से कम पाँच सौ हिस्सो की आशा ले कर आया था। जब आप ऐसे विचार-शील सज्जन व्यापारिक उद्योग से पृथक रहेंगे तो इस अभागे देश की उन्नति सदैव एक मनोहर स्वप्न ही रहेगी।

राय साहब—मैं ऐसी व्यापारिक सस्थाओ को देशोद्धार की कुंजी नही समझता।

एजेंट—(आश्चर्य से) क्यो?

राय साहब—इसलिए कि सेठ जगतराम और मिस्टर मनचूरजी का विभव देश

का विभव नहीं है। आपकी यह कम्पनी धनवानों को और भी धनवान बनायेगी, पर जनता को इससे बहुत लाभ पहुँचने की सम्भावना नहीं। निस्संदेह आप कई हजार कुलियों को काम में लगा देंगे, पर यह मजूरे अधिकांश किसान ही होंगे और मैं किसानों को कुली बनाने का कट्टर विरोधी हूँ। मैं नहीं चाहता कि वे लोभ के वश अपने बाल-बच्चों को छोड़ कर कम्पनी की छावनियों में जा कर रहें और अपना आचरण भ्रष्ट करें। अपने गाँव में उनकी एक विशेष स्थिति होती है। उनमें आत्म-प्रतिष्ठा का भाव जाग्रत रहता है। बिरादरी का भय उन्हें कुमार्ग से बचाता है। कम्पनी की शरण में जा कर वह अपने घर के स्वामी नहीं, दूसरे के गुलाम हो जाते हैं, और बिरादरी के बंधनों से मुक्त हो कर नाना प्रकार की बुराइयाँ करने लगते हैं। कम से कम मैं अपने किसानों को इस परीक्षा में नहीं डालना चाहता।

एजेंट—क्षमा कीजिएगा, आपने एक ही पक्ष का चित्र खींचा है। कृपा करके दूसरे पक्ष का भी अवलोकन कीजिए। हम कुलियों को जैसे वस्त्र, जैसा भोजन, जैसे घर देते हैं, वैसे गाँव में रह कर उन्हें कभी नसीब नहीं हो सकते। हम उनको दवा-दारू का, उनकी संतानों की शिक्षा का, उन्हें बुढ़ापे में सहारा देने का उचित प्रबंध करते हैं। यहाँ तक कि हम उनके मनोरंजन और व्यायाम की भी व्यवस्था कर देते हैं। वह चाहें तो टेनिस और फुटबाल खेल सकते हैं, चाहें तो पार्कों में सैर कर सकते हैं। सप्ताह में एक दिन गाने बजाने के लिए समय से कुछ पहले ही छुट्टी दे दी जाती है। जहाँ तक मैं समझता हूँ कि पार्कों में रहने के बाद कोई कुली फिर खेती करने की परवाह न करेगा।

राय साहब—नहीं, मैं इसे कदापि स्वीकार नहीं कर सकता। किसान कुली बन कर कभी अपने भाग्य-विधाता को धन्यवाद नहीं दे सकता, उसी प्रकार जैसे कोई आदमी व्यापार का स्वतंत्र सुख भोगने के बाद नौकरी की पराधीनता को पसंद नहीं कर सकता। सम्भव है कि अपनी दीनता उसे कुली बने रहने पर मजबूर करे, पर मुझे विश्वास है कि वह इस दासता से मुक्त होने का अवसर पाते ही तुरंत अपने घर की राह लेगा और फिर उसी टूटे-फूटे झोपड़े में अपने बाल-बच्चों के साथ रह कर संतोष के साथ कालक्षेप करेगा। आपको इसमें संदेह हो तो आप कृषक-कुलियों से एकांत में पूछ कर अपना समाधान कर सकते हैं। मैं अपने अनुभव के आधार पर यह बात कहता हूँ कि आप लोग इस विषय में यूरोपवालों का अनुकरण करके हमारे जातीय जीवन के सद्‌गुणों का सर्वनाश कर रहे हैं। यूरोप में इंडस्ट्रियलिज्म (औद्योगिकता) की जो उन्नति हुई उसके विशेष कारण थे। वहाँ के किसानों की दशा उस समय गुलामों से भी गयी-गुजरी थी, वह जमींदार के बंदी होते थे। इस कठिन कारावास के देखते हुए धनपतियों की कैद गनीमत थी। हमारे किसानों की आर्थिक दशा चाहे कितनी ही बुरी क्यों न हो, पर वह किसी के गुलाम नहीं हैं। अगर कोई उन पर अत्याचार करे तो वह अदालतों में उससे मुक्त हो सकते हैं। नीति की दृष्टि में किसान और जमींदार दोनों बराबर हैं।

एजेंट—मै श्रीमान से विवाद करने की इच्छा तो नही रखता, पर मैं स्वय छोटा-मोटा किसान हूँ और मुझे किसानो की दशा का यथार्थ ज्ञान है। आप योरोप के किसानो को गुलाम कहते हैं, लेकिन यहाँ के किसानो की दशा उससे अच्छी नही है। नैतिक बघनो के होते हुए भी जमीदार कृषको पर नाना प्रकार के अत्याचार करते हैं और कृषको की जीविका का और कोई द्वार हो तो वह इन आपत्तियो को भी कभी न झेल सकें।

राय साहब—जब नैतिक व्यवस्थाएँ विद्यमान है तो विदित है कि उनका उपयोग करने के लिए किसानो को केवल उचित शिक्षा की जरूरत है, और शिक्षा का प्रचार दिनो-दिन बढ रहा है। मैं मानता हूँ कि जमीदार के हाथो किसानो की बडी दुर्दशा होती है। मैं स्वय इस विषय मे सर्वथा निर्दोष नही हूँ, बेगार लेता हूँ, डाँड़-बीज भी लेता हूँ, बेदखली या इजाफा का कोई अवसर हाथ से नही जाने देता, असामियो पर अपना रोब जमाने के लिए अधिकारियो की खुशामद भी करता हूँ, साम, दाम, दड, भेद सभी से काम लेता हूँ, पर इसका कारण क्या है? वही पुरानी प्रथा, किसानो की मूर्खता और नैतिक अज्ञान। शिक्षा का यथेष्ट प्रचार होते ही जमीदारो के हाथ से यह सब मौके निकल जायँगे। मनुष्य स्वार्थी जीव है और यह असम्भव है कि जब तक उसे धीगा-धीगी के मौके मिलते रहे, वह उनसे लाभ न उठाये। आपका यह कथन सत्य है कि किसानो को यह विडम्बनाएँ इसलिए सहनी पडती हैं कि उनके लिए जीविका के और सभी द्वार बद है। निश्चय ही उनके लिए जीवन-निर्वाह के अन्य साधनो का अवतरण होना चाहिए, नही तो उनका पारस्परिक द्वेष और सघर्ष उन्हे हमेशा जमीदारो का गुलाम बनाये रखेगा, चाहे कानून उनकी कितनी ही रक्षा और सहायता क्यो न करे। किंतु यह साधन ऐसे होने चाहिए जो उनके आचार-व्यवहार को भ्रष्ट न करे। उन्हे घर से निर्वासित करके दुर्व्यसनो के जाल मे न फँसायें, उनके आत्माभिमान का सर्वनाश न करें! और यह उसी दशा मे हो सकता है जब घरेलू शिल्प का प्रचार किया जाय और वह अपने गाँव मे कुल और बिरादरी की तीव्र दृष्टि के सम्मुख अपना-अपना काम करते रहे।

एजेंट—आपका अभिप्राय काटेज इडस्ट्री (गृहउद्योग या कुटीर शिल्प) से है। समाचार-पत्रो मे कही-कही इनकी चर्चा भी हो रही है, किंतु इसका सबसे बडा पक्षपाती भी यह दावा नही कर सकता कि इसके द्वारा आप विदेशी वस्तुओ का सफलता के साथ अवरोध कर सकते है।

राय साहब—इसके लिए हमे विदेशी वस्तुओ पर कर लगाना पडेगा। यूरोपवाले दूसरे देशो से कच्चा माल ले जाते है, जहाज का किराया देते है, उन्हे मजदूरो को कड़ी मजूरी देनी पडती है, उस पर हिस्सेदारो को नफा खूब चाहिए। हमारा घरेलू शिल्प इन समस्त बाधाओ से मुक्त रहेगा और कोई कारण नही कि उचित सगठन के साथ वह विदेशी व्यापार पर विजय न पा सके। वास्तव मे हमने कभी इस प्रश्न पर ध्यान ही नही दिया। पूंजीवाले लोग इस समस्या पर विचार करते हुए डरते हैं। वे

जानते हैं कि घरेलू शिल्प हमारे प्रभुत्व का अंत कर देगा, इसीलिए वह इसका विरोध करते रहते हैं।

ज्ञानशंकर ने इस विवाद में भाग न लिया। राय साहब की युक्तियाँ अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों के प्रतिकूल थीं, पर इस समय उन्हें उनका खंडन करने का अवकाश न था। जब एजेंट ने अपनी दाल गलते न देखी तो विदा हो गये। राय साहब ज्ञानशंकर को उत्सुक देख कर समझ गये कि यह कुछ कहना चाहते हैं, पर संकोचवश चुप हैं। बोले, आप कुछ कहना चाहते हैं तो कहिए, मुझे फुर्सत है।

ज्ञानशंकर की जबान न खुल सकी। उन्हें अब ज्ञात हो रहा था कि मैं जो कथन करने आया हूँ, वह सर्वथा असंगत है, सज्जनता के बिल्कुल विरुद्ध। राय साहब को कितना दुःख होगा और वह मुझे मन में कितना लोभी और क्षुद्र समझेंगे। बोले, कुछ नहीं, मैं केवल यह पूछने आया था कि आप नैनीताल जाने का कब तक विचार करते हैं?

राय साहब—आप मुझसे उड़ रहे हैं। आपकी आँखें कह रही हैं कि आपके मन में कोई और बात है, साफ़ कहिए। मैं आपसे बिलकुल सचाई चाहता हूँ।

ज्ञानशंकर बड़े असमंजस में पड़े। अन्त में सकुचाते हुए बोले, यही तो मेरी भी इच्छा है, पर यह बात ऐसी भद्दी है कि आपसे कहते हुए लज्जा आती है।

राय साहब—मैं समझ गया। आपके कहने की जरूरत नहीं। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जिन गप्पों को सुन कर आपको यह शंका हुई है वह बिलकुल निस्सार हैं। मैं स्पष्टवादी अवश्य हूँ, पर अपने मुँह-देखे हितैषियों की अवज्ञा करना मेरी सामर्थ्य से बाहर है। पर जैसा आप से कह चुका हूँ, वह किम्वदन्तियाँ सर्वथा असार हैं। यह तो आप जानते हैं कि मैं पिंड-पानी का कायल नहीं और न यही समझता हूँ कि सन्तान के बिना मेरा संसार सूना हो जायगा। रहा इन्द्रिय-सुखभोग, उसके लिए मेरे पास इतने साधन हैं कि मैं पैरों में लोहे की बेड़ियाँ डाले बिना ही उसका आनंद उठा सकता हूँ। और फिर मैं कभी कामवासना का गुलाम नहीं रहा, नहीं तो इस अवस्था में आप मुझे इतना हृष्ट-पुष्ट न देखते। मुझे लोग कितना ही विलासी समझें पर वास्तव में मैंने युवावस्था से ही संयम का पालन किया है। मैं समझता हूँ कि इन बातों से आपकी शंका निवृत्त हो गयी होगी। लेकिन बुरा न मानिएगा, उड़ती खबरों को सुन कर इतना व्यस्त हो जाना मेरी दृष्टि में आपका सम्मान नहीं बढ़ाता। मान लीजिए, मैंने विवाह करने का निश्चय ही कर लिया हो तो यह आवश्यक नहीं कि उससे संतान भी हो और हो भी तो पुत्र ही, और पुत्र भी हो तो जीवित रहे। फिर मायाशंकर अभी अबोध बालक है। विधाता ने उसके भाग्य में क्या लिख दिया है, उसे हम या आप नहीं जानते। यह भी मान लीजिए कि वह वयस्क हो कर मेरा उत्तराधिकारी भी हो जाय तो यह आवश्यक नहीं कि वह इतना कर्त्तव्यपरायण और सच्चरित्र हो जितना आप चाहते हैं। यदि वह समझदार होता और उसके मन में यह शंकाएं पैदा होतीं तो मैं क्षम्य समझता, लेकिन आप जैसे बुद्धिमान मनुष्य का

एक निर्मूल कल्पित सम्भावना के पीछे अपना दाना-पानी हराम कर लेना बडे खेद की बात है।

इस कथन के पहले भाग से ज्ञानशकर को सतोष न हुआ था, अतिम भाग को सुन कर निराशा हुई। समझ गये कि यह चर्चा इन्हे अच्छी नही लगती और यद्यपि युक्तियो से यह मुझे शात करना चाहते है, पर वास्तव मे इन्होने विवाह करने का निश्चय कर लिया है। इतना ही नही, इन्हे यहाँ मेरा रहना अखर रहा है। मुझे यह अपना आश्रित न समझते तो मुझे कदापि इस तरह आडे हाथो न लेते। उनका गौरवशील हृदय प्रत्युत्तर देने के लिए विकल हो उठा, पर उन्होने जब्त किया। इस कड़वी दवा को पान कर लेना ही उचित समझा। मन मे कहा, आप मेरे साथ दोरगी चाल चल रहे है। मैं सावित कर दूंगा कि कम से कम इस व्यवहार मे मैं आपसे हेठा नही हूँ।

उन्होने कुछ जवाव न दिया। राय साहव को भी इन वातों के कहने का खेद हुआ। ज्ञानशकर का मन रखने के लिए इधर-उधर की वाते करने लगे। नैनीताल का भी जिक्र आ गया। उन्होने अपने साथ चलने को कहा। ज्ञानशकर राजी हो गये। इसमे दो लाभ थे। एक तो वह राय साहव को नजरवद कर सकेंगे, दूसरे वह उच्चाधिकारियो पर अपनी योग्यता का सिक्का विठा सकेंगे। सम्भव है, राय साहव की सिफारिश उन्हे किसी ऊँचे पद पर पहुँचा दे। यात्रा की तैयारियाँ करने लगे।

१२

यद्यपि गाँववालो ने गौस खाँ पर जरा भी आँच न आने दी थी, लेकिन ज्वालासिंह का उनके वर्ताव के विषय मे पूछ-ताछ करना उनके शान्ति-हरण के लिए काफी था। चपरासी, नाजिर, मुशी सभी चकित हो रहे थे कि इस अक्खड लौंडे ने डिप्टी साहब पर न जाने क्या जादू कर दिया कि उनकी काया ही पलट गयी। ईंधन, पुआल, हाँडी, वर्तन, दूध-दही, माँस-मछली, साग-भाजी सभी चीजें वेगार मे लेने को मना करते हैं। तव तो हमारा गुजर हो चुका। ऐसा भत्ता ही कौन वहुत मिलता है। यह लौंडा एक ही पाजी निकला। एक तो हमे फटकारें सुनायी, उस पर यह और रद्दा जमा गया। चल कर डिप्टी साहव से कह देना चाहिए। आज यह दुर्दशा हुई है, दूसरे गाँव मे इससे भी बुरा हाल होगा। हम लोग पानी को तरस जायेंगे। अतएव ज्योही ज्वालासिंह लौट कर आये सव के सव उनके सामने जा कर खड़े हो गये। ईजाद हुसेन को फिर उनका मुखपात्र वनना पडा।

ज्वालासिंह ने रुष्ट भाव से देख कर पूछा, कहिए आप लोग कैसे चले? कुछ कहना चाहते हैं? मीर साहव आपने इन लोगो को मेरा हुक्म सुना दिया है न?

ईजाद हुसेन—जी हाँ, यही हुक्म सुन कर तो यह लोग घबराये हुए आपकी खिदमत मे हाजिर हुए है। कल इस गाँव मे एक सख्त वारदात हो गयी। गाँव के लोग चपरासियो से लडने पर आमादा हो गये। ये लोग जान बचा कर चले न आये होते तो फौजदारी हो जाती। इन लोगो ने इसकी इत्तला करके हुजूर के आराम मे खलल

डालना मुनासिब नही समझा, लेकिन आज की मुमानियत सुन कर इनके होश उड गये हैं। पहले ही बेगार आसानी से न मिलती थी, अब जो लोग इस हुक्म की खबर पायेगे तो और भी शेर हो जायेंगे। कल जो हगामा हुआ उसका बानी-मबानी वही नौजवान था जो सुबह हुजूर की खिदमत मे हाजिर हुआ था। उसकी कुछ तबीह होनी निहायत जरूरी है।

ज्वालासिंह—उसकी बातो से तो मालूम होता था कि चपरासियो ने ही उसके साथ सख्ती की थी।

एक चपरासी—वह तो कहेगा ही, लेकिन खुदा गवाह है, हम लोग भाग न आये होते तो जान की खैर न थी। ऐसी जिल्लत आज तक कभी न हुई थी। हम लोग चार-चार पैसे के मुलाजिम है, पर हाकिमो के इकबाल से बडो-बडो की कोई हकीकत नही समझते।

गौस खाँ—हुजूर, वह लौंडा इन्तहा दर्जे का शरीर है। उसके मारे हम लोगो का गाँव मे रहना दुश्वार हो गया है। रोज एक न एक तूफान खडा किये रहता है।

दूसरा चपरासी—हुजूर ही लोगो की गुलामी मे उम्र कटी, लेकिन कभी ऐसी दुर्गति न हुई थी।

ईजाद हुसेन—हुजूर की रिआया-परवरी मे कोई शक नही। हुक्काम को रहम-दिल होना ही चाहिए, लेकिन हक तो यह है कि बेगार बद हो जाय तो इन टके के आदमियो का किसी तरह गुजर ही न हो।

ज्वालासिंह—नही, मैं इन्हे तकलीफ नही देना चाहता। मेरी मशा सिर्फ यह है कि रिआया पर बेजा सख्ती न हो। मैंने इन लोगो को जो हुक्म दिया है, उसमे इनकी जरूरतो का काफी लिहाज रखा है। मैं यह नही समझता कि सदर मे यह लोग जिन चीजो के बगैर गुजर कर सकते हैं उनकी देहात मे आ कर क्यो जरूरत पडती है।

चपरासी—हुजूर, हम लोगो को जैसे चाहे रखें, आपके गुलाम हैं पर इसमे हुजूर की बेरोबी होती है।

गौस खाँ—जी हाँ, यह देहाती लोग उसे हाकिम ही नही समझते जो इनके साथ नरमी मे पेश आये। हुजूर को हिन्दुस्तानी समझ कर ही यह लोग ऐसी दिलेरी करते हैं। अँगरेज हुक्काम आते है तो कोई चूँ भी नही करता। अभी दो हफ्ते होते हैं, पादरी साहब तशरीफ लाये थे और हफ्ते भर रहे, लेकिन सारा गाँव हाथ बाँधे खडा रहता था।

ईजाद हुसेन—आप बिल्कुल दुरुस्त फरमाते है। हिन्दुस्तानी हुक्काम को यह लोग हाकिम ही नही समझते, जब तक वह इनके साथ सख्ती न करें।

ज्वालासिंह ने अपनी मर्यादा बढाने के लिए ही अँगरेजी रहन-सहन ग्रहण किया था। वह अपने को किसी अँगरेज से कम न समझते थे। अँगरेजो से मिलने जाते तो टोपी हाथ मे ले लेते। जूते उतारने के अपमान से बच जाते। रेलगाडी मे अँगरेजो के ही साथ बैठते थे। लोग अपनी बोलचाल मे उन्हे साहब ही कहा करते थे। हिन्दुस्तानी समझना उन्हे गाली देना था। गौस खाँ और ईजाद हुसेन की बातें निशाने पर बैठ

गयी। अकड कर बोले, अच्छा यह बात है तो मैं भी दिखा देता हूँ कि मैं किसी अँगरेज से कम नही हूँ। यह लोग भी समझेगे कि किसी हिन्दुस्तानी हाकिम से काम पडा था। अब तक तो मै यही समझता था कि सारी खता हमी लोगो की है। अब मालूम हुआ कि यह देहातियो की शरारत है। अहलमद साहब, आप हल्के के सब-इन्स्पेक्टर को रूबकार लिखिए कि वह फौरन इस मामले की तहकीकात करके अपनी रिपोर्ट पेश करें।

चपरासी—ज्यादा नही तो हुजूर इन लोगो से मुचलका तो जरूर ही ले लिया जाय।

गौस खाँ—इस लौंडे की गोशमाली जरूरी है।

ज्वालासिंह—जब तक रिपोर्ट न आ जाय मैं कुछ नही करना चाहता।

परिणाम यह हुआ कि सन्ध्या समय बाबू दयाशकर जो फिर बहाल हो कर इसी हलके मे नियुक्त हुए थे लखनपुर आ पहुँचे। कई कान्स्टेबल भी साथ थे। इन लोगो ने चौपाल मे आसन जमाये। गाँव के सब आदमी जमा किये गये। मगर बलराज का पता न था। वह और रगी दोनो नील गायो को भगाने गये थे। दारोगा जी ने बिगड कर मनोहर से कहा, तेरा बेटा कहाँ है? सारे फिसाद की जड तो वही है, तूने कही भगा तो नही दिया? उसे जल्द हाजिर कर, नही तो वारट जारी कर दूंगा।

मनोहर ने अभी उत्तर नही दिया था कि किसी ने कहा, वह बलराज आ गया। सबकी आँखे उसकी ओर उठी। दो कान्स्टेबलो ने लपक कर उसे पकड लिया और दूसरे दो कान्स्टेबलो ने उसकी मुश्के कसनी चाही। बलराज ने दीन-भाव से मनोहर की ओर देखा। उसकी आँखो मे भयकर सकल्प तिलमिला रहा था।

वह कह रही थी कि यह अपमान मुझसे नही सहा जा सकता। मैं अब जान पर खेलता हूँ। आप क्या कहते हैं? मनोहर ने बेटे की यह दशा देखी तो रक्त खौल उठा। बावला हो गया। कुछ न सूझा कि मैं क्या कर रहा हूँ। बाज की तरह टूट कर बलराज के पास पहुँचा और दोनो कान्स्टेबलो को धक्का दे कर बोला, छोड दो, नही तो अच्छा न होगा।

इतना कहते-कहते उसकी जबान बद हो गयी और आँखो से आँसू निकल पडे। सुक्खू चौधरी मन मे फूले न समाते थे। उन्हे वह दिन निकट दिखायी दे रहा था, जब मनोहर के दसो बीघे खेत पर उनके हल चलेगे। दुखरन भगत काँप रहे थे कि मालूम नही क्या आफत आ गयी। डपटसिह सोच रहे थे कि भगवान करे मार-पीट हो जाय तो इन लोगो की खूब कुन्दी की जाय और बिसेसर साह थर-थर काँप रहे थे, केवल कादिर खाँ को मनोहर से सच्ची सहानुभूति थी। मनोहर की उद्दडता से उसके हृदय पर एक चोट-सी लगी। साचा, मार-पीट हो गयी तो फिर कुछ बनाये न बनेगी। तुरन्त जा कर दयाशकर के कानो मे कहा, हुजूर हमारे मालिक हैं। हम लोग आप ही की रिआया है। सिपाहियो को मने कर दे, नही तो खून हो जायगा। आप जो हुक्म देंगे उसके लिए मैं हाजिर हूँ। दयाशकर उन आदमियो मे न थे, जो खो कर भी कुछ नही सीखते। उन्हे अपने अभियोग ने एक बडी उपकारी शिक्षा दी थी। पहले वह

पर क्या गुजरती है। जाओ, कहो-सुनो, धिक्कारो, आँखे चार होने पर कुछ न कुछ मुरौवत आ ही जाती है।

विलासी—हाँ, अपनीवाली कर लो। आगे जो भाग मे बदा है वह तो होगा ही।

नौ वज चुके थे। प्रकृति कुहरे के सागर मे डूबी हुई थी। घरो के द्वार बन्द हो चुके थे। अलाव भी ठढे हो गये थे। केवल सुक्खू चौधरी के कोल्हाडे मे गुड पक रहा था। कई आदमी भट्ठे के सामने आग ताप रहे थे। गाँव की गरीब स्त्रियाँ अपने-अपने घडे लिए गर्म रस की प्रतीक्षा कर रही थी। इतने मे मनोहर आ कर सुक्खू के पास बैठ गया। चौधरी अभी चौपाल से लौटे थे और अपने मेलियो से दारोगा जी की सज्जनता की प्रशसा कर रहे थे। मनोहर को देखते ही बात बदल दी और बोले, आओ मनोहर, बैठो। मैं तो आप ही तुम्हारे पास आनेवाला था। कडाह की चासनी देखने लगा। इन लोगो को चासनी की परख नही है। कल एक पूरा ताव बिगड़ गया। दारोगा जी तो वहुत मुँह फैला रहे है। कहते है, सबसे मुचलका लेगे। उस पर सौ की थैली अलग माँगते है। हाकिमो के बीच मे बोलना जान जोखिम है। जरा-सी सुई का पहाड हो गया। मुचलका का नाम सुनते ही सब लोग थरथरा रहे है, अपने-अपने बयान बदलने पर तैयार हो रहे है।

मनोहर—तव तो बल्लू के फँसने मे कोई कसर ही नही रही।

सुक्खू—हाँ, बयान बदल जायँगे तो उसका बचना मुश्किल है। इसी मारे मैने अपना बयान न दिया था। खाँ साहब बहुत दम-भरोसा देते रहे, पर मैंने कहा, मैं न इधर हूँ, न उधर हूँ। न आपसे बिगाड करूँगा, न गाँव से बुरा बनूँगा। इस पर बुरा मान गये। सारा गाँव समझता है कि खाँ साहब से मिला हुआ हूँ, पर कोई बता दे कि उनसे मिलकर गाँव की क्या बुराई की? हाँ, उनके पास उठता-बैठता हूँ। इतने से ही जब मेरा बहुत-सा काम निकलता है तब व्यवहार क्यों तोडूँ? मेल से जो काम निकलता है वह बिगाड करने से नही निकलता। हमारा सिर जमीदार के पैरो तले रहता है। ऐसे देवता को राजी रखने ही मे अपनी भलाई है।

मनोहर—अब मेरे लिए कौन-सी राह निकालते हो?

सुक्खू—मैं क्या कहूँ, गाँव का हाल तो जानते ही हो। तुम्हारी खातिर मुचलका देने पर कौन राजी होगा? कोई न मानेगा। बस, या तो भगवान का भरोसा है या अपनी गाँठ का।

मनोहर ने सुक्खू से ज्यादा बातचीत नही की। समझ गया कि यह मुझे मुड़वाना चाहते है। कुछ दारोगा को देंगे, कुछ गौस खाँ के साथ मिल कर आप खा जायेंगे। इन दिनो उसका हाथ बिलकुल खाली था। नयी गोईं लेनी पडी, सब रुपये हाथ से निकल गये। खाँ साहब ने सिकमी खेत निकाल लिये थे। इसलिए रब्बी की भी आशा कम थी। केवल ऊख का भरोसा था, लेकिन बिसेसर साह के रुपये चुकाने थे और लगान भी बेबाक करना था। गुड से इससे अधिक और कुछ न हो सकता था। दूसरा ऐसा कोई महाजन न था जिससे रुपये उधार मिल सकते। वह यहाँ से उठ कर

डपटसिंह के घर की ओर चला, पर अभी तक कुछ निश्चय न कर सका था कि उनसे क्या कहूँगा। वह भटके हुए पथिक की भाँति एक पगडडी पर चला जा रहा था, बिलकुल बेखबर कि यह रास्ता मुझे कहाँ लिये जाता है, केवल इसलिए कि एक जगह खडे रहने से चलते रहना अधिक सन्तोषप्रद था। क्या हानि है, यदि लोग मुचलका देने पर राजी हो जायँ। यह विधान इतना दूरस्थ था कि वहाँ तक उसका विचार भी न पहुँच सकता था।

डपटसिंह के दालान मे एक मिट्टी के तेल की कुप्पी जल रही थी। भूमि पर पुआल बिछी हुई थी और कई आदमी और लडके एक मोटे टाट का टुकडा ओढ़े सिमटे पडे थे। एक कोने मे एक कुतिया बैठी हुई पिल्लो को दूध पिला रही थी। डपटसिह अभी सोये न थे। सोच रहे थे कि सुक्खू के कोल्हाडे से गर्म रस आ जाय तो पी कर सोये। उनके छोटे भाई झपटसिंह कुप्पी के सामने रामायण लिये आँखे गडा-गडा कर पढ़ने का उद्योग कर रहे थे। मनोहर को देख कर बोले, आओ महतो, तुम तो बड़े झमेले मे पड़ गये।

मनोहर—अब तो तुम्ही लोग बचाओ तो बच सकते है।

डपट—तुम्हे बचाने के लिए हमने कौनसी बात उठा रखी ? ऐसा बयान दिया कि बलराज पर कोई दाग नही आ सकता था, पर भाई मुचलका तो नही दे सकते। आज मुचलका दे दे, कल को गौस खाँ झूठो कोई सवाल दे दे तो सजा हो जाय।

मनोहर—नही भैया, मुचलका देने को मै आप ही न कहूँगा। डपटसिंह मनोहर के सदिच्छुक थे, पर इस समय उसे प्रकट न कर सकते थे। बोले, परमात्मा बैरी को भी कपूत सन्तान न दे। बलराज ने कल झूठ-मूठ बतबढ़ाव न किया होता तो तुम्हे क्यो इस तरह लोगो की चिरौरी करनी पडती।

हठात् कादिर खाँ की आवाज यह कहते हुए सुनाई दी, बडा न्याय करते हो ठाकुर। बलराज ने झूठ-मूठ बतबढाव किया था तो उसी घडी डाँट क्यो न दिया ? तब तो तुम भी बैठे मुस्कुराते रहे और आँखो से इस्तालुक देते रहे। आज जब बात बिगड़ गयी है तो कहते हो झूठ-मूठ बतबढ़ाव किया था। पहले तुम्ही ने अपनी लडकी का रोना रोया था, मैंने अपनी रामकहानी कही थी। यही सब सुन-सुन कर बलराज भरा बैठा था। ज्यो ही मौका मिला खुल पडा। हमने और तुमने रो-रो कर बेगार दी, पर डर के मारे मुँह न खोल सके। वह हिम्मत का जवान है, उससे बरदास न हुई। वह जब हम सभी लोगो की खातिर आगे बढा तो यह कहाँ का न्याय है कि मुचलके के डर से उसे आग मे झोक दे ?

डपटसिंह ने विस्मित हो कर कहा—तो तुम्हारी सलाह है कि मुचलका दे दिया जाय ?

कादिर—नही, मेरी सलाह नही है। मेरी सलाह है कि हम लोग अपने-अपने बयान पर डटे रहे। अभी कौन जानता है कि मुचलका देना ही पडेगा। लेकिन अगर ऐसा हो तो हमे पीठ न फेरनी चाहिए। भला सोचो, कितना बडा अधेर है कि हम

लोग मुचलके के डर से अपने बयान बदल दें। अपने ही लडके को कुएँ मे ढकेल दें।

मनोहर ने कादिर मियाँ को अश्रुपूर्ण नेत्रो से देखा। उसे ऐसा जान पडा मानो यह कोई देवता है। कादिर की सम्मति जो साधारण न्याय पर स्थिर थी उसे अलौकिक प्रतीत हुई। डपटसिंह को भी यह सलाह सयुक्तिक ज्ञात हुई। मुचलके की शका कुछ कम हुई। मन मे अपनी स्वार्थपरता पर लज्जित हुए, तिस पर भी मन से यह विचार न निकल सका कि प्रस्तुत विषय का सारा भार बलराज के सिर है। बोले—कादिर भाई, यह तो तुम नाहक कहते हो कि मैंने बलराज को इस्तालुक दिया। मैंने बलराज से कब कहा कि तुम लश्करवालो से तूलकलाम करना। यह रार तो उसने आप ही बढायी। उसका स्वभाव ही ऐसा कड़ा ठहरा। आज को सिपाहियो से उलझा है, कल को किसी पर हाथ ही चला दे तो हम लोग कहाँ तक उसकी हिमायत करते फिरेंगे?

कादिर—तो मैं तुमसे कब कहता हूँ कि उसकी हिमायत करो। वह बुरी राह चलेगा तो आप ठोकर खायेगा। मेरा कहना यही है कि हम लोग अपनी आँखो की देखी और कानो की सुनी बातो मे किसी के भय से उलट-फेर न करें। अपनी जान बचाने के लिए फरेब न करें। मुचलके की बात ही क्या, हमारा धरम है कि अगर सच कहने के लिए जेहल भी जाना पडे तो सच से मुँह न मोड़ें।

डपटसिंह को अब निकलने का कोई रास्ता न रहा, किन्तु फिर भी इस निश्चय को व्यावहारिक रूप मे मानने का कोई सम्भावित मार्ग निकल आने की आशा बनी हुई थी। बोले, अच्छा मान लो हम और तुम अपने बयान पर अड़े रहे, लेकिन बिसे-सर और दुखरन को क्या करोगे? वह किसी विध न मानेंगे।

कादिर—उनको भी खीचे लाता हूँ, मानेंगे कैसे नही। अगर अल्लाह का डर है तो कभी निकल ही नही सकते।

यह कह कर कादिर खाँ चले गये और थोड़ी देर मे दोनो आदमियों को साथ लिये हुए आ पहुँचे। बिसेसर साह ने तो आते ही डपटसिंह की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से आँखें नचा कर देखा, मानो पूछना चाहते थे कि तुम्हारी क्या सलाह है, और दुखरन भगत, जो दोनो जून मन्दिर मे पूजा करने जाया करते थे और जिन्हे रामचर्चा से कभी तृप्ति न होती थी, इस तरह सिर झुका कर बैठ गये, मानो उन पर वज्रपात हो गया है या कादिर खाँ उन्हे किसी गहरी खोह मे गिरा रहे है।

इन्हे यहाँ बैठा कर कादिर खाँ ने अपने पगडी से थोडी-सी तमाखू निकाली, अलाव से आग लाये और दो-तीन दम लगा कर चिलम को डपटसिंह की ओर बढाते हुए बोले, कहो भगत, कल दारोगा जी के पास चल कर क्या करना होगा?

दुखरन—जो तुम लोग करोगे वही मैं भी करूँगा। हाँ, मुचलका न देना पडे।

कादिर ने फिर उसी युक्ति से काम लिया, जो डपटसिंह को समाधान करने मे सफल हुई थी। सीधे किसान वितडावादी नही होते। वास्तव मे इन लोगो के ध्यान मे यह बात ही न आयी थी कि बयान का बदलना प्रत्यक्ष जाल है। कादिर खाँ ने इस विषय का निदर्शन किया तो उन लोगो की सरल सत्य-भक्ति जाग्रत हो गयी। दुखरन शीघ्र ही

उनसे सहमत हो गये। लेकिन बिसेसर पर उनके भाषण का कुछ असर न हुआ। साहजी के यहाँ शक्कर और अनाज का कारवार होता था। डेवढी-सवाई चलती थी, लेन-देन करते थे, दो हल की खेती होती थी, गाँजा-भाँग, चरस आदि का ठीका भी ले लिया था, पर उनका भेषभाव उन्हे अधिकारियो के पजे से बचाता रहता था। बोले, भाई, तुम लोगो का साथ देने मे मैं कही का न रहूँगा, चार पैसे का लेन-देन है। नरमी-गरमी, डाँट-डपट किये बिना काम नही चल सकता। रुपये लेते समय तो लोग सगे भाई बन जाते है, पर देने की बारी आती है तो कोई सीधे मुँह बात नही करता। यह रोजगार ही ऐसा है कि अपने घर की जमा दे कर दूसरों से वैर मोल लेना पडता है। आज मुचलका हो जाय, कल को कोई मामला खडा हो जाय, तो गाँव मे सफाई के गवाह तक न मिलेगे और फिर ससार मे रह कर अधर्म से कहाँ तक बचेगे ? यह तो कपट लोक है। अपने मतलब के लिये दगा, फरेब, जाल सभी कुछ करना पडता है। आज धरम का विचार करने लगूँ, तो कल ही सौ रुपये साल का टिकट बँध जाय, असामियो से कौडी न वसूल हो और सारा कारवार मिट्टी मे मिल जाय। इस जमाने मे जो रोजगार रह गया है इसी बेईमानी का रोजगार है। क्या हम हुए क्या तुम हुए सबका एक ही हाल है, सभी सन की गाँठो मे मिट्टी और लकडी भरते है, तेलहन और अनाज मे मिट्टी और ककर मिलाते है। क्या यह बेईमानी नही है ? अनुचित बात कहता होऊँ तो मेरे मुँह पर थप्पड मारो। तुम लोगो को जैसा गौ पडे वैसा करो, पर मैं मुचलका देने पर किसी तरह राजी नही हो सकता।

स्वार्थ-नीति का जादू निर्बल आत्माओ पर खूब चलता है। दुखरन और डपटसिंह को यह बातें अतिशय न्याय-सगत जान पडी। यही विचार उनके हृदय मे भी थे, पर किसी कारण से व्यक्त न हो सके थे। दोनो ने एक-दूसरे को मार्मिक दृष्टि से देखा। डपटसिंह बोले, भाई, बात तो सच्ची करते हो, ससार मे रह कर सीधी राह पर कोई नही चल सकता। अधर्म से बचना चाहे तो किसी जगल-पहाड मे जा कर बैठे। यहाँ निबाह नही।

कादिर खाँ समझ गये कि साहु जी पर धर्म और न्याय का कुछ बस न चलेगा। यह उस वक्त तक काबू मे न आयेंगे जब तक इन्हे यह न सूझेगा कि बयान बदलने मे कौन-कौन सी बाधाएँ उपस्थित हो सकती है। बोले, साहु जी, तुम जो बात कहते हो बेलाग कहते हो। ससार मे रह कर अधर्म से कहाँ तक कोई बचेगा ? रात-दिन तो छलकपट करते रहते है ! जहाँ इतने पापो का दड भोगना है, एक पाप और सही। लेकिन यहाँ धर्म का ही विचार नही है न। डर तो यह है कि बयान बदल कर हम लोग और किसी सकट मे न फँस जायँ। पुलिसवाले किसी के नही होते। हम लोगो का पहला बयान दरोगा जी के पास रखा हुआ है। उस पर हमारे दसखत और अँगूठे के निशान भी मौजूद है। दूसरा बयान ले कर वह हम लोगो को जालसा[illegible] गिरफ्तार कर ले तो सोचो कि क्या हो ? सात बरस से कम की सजा न होगी। न भैया, इससे तो मुचलका ही अच्छा। आँख से देख कर मक्खी क्यो निगलें ?

विसेसर साह की आँखें खुली। और लोग भी चकराए। कादिर खाँ की यह युक्ति काम कर गयी। लोग समझ गये कि हम लोग बुरे फँस गये हैं और किसी तरह निकल नही सकते। विसेसर का मुँह ऐसा लटक गया मानो रुपये की थैली गिर गयी हो। वोले, दारोगा जी ऐसे आदमी तो नही जान पडते। कितना ही है तो हमारे मालिक है, कुछ न कुछ मुलाहिजा तो करेंगे ही, लेकिन किसी के मन का हाल परमात्मा ही जान सकता है। कौन जाने, उनके मन मे कपट समा जाये। तव तो हमारा सत्यानाश ही हो जाये। तो यही सलाह पक्की कर लो कि न वयान वदलेंगे, न दारोगा जी के पास जायेंगे। अव तो जाल मे फँस गये है। फड़फडाने से फँदे और भी वद हो जायेंगे। चुपचाप राम आसरे बैठे रहना ही अच्छा है।

इस प्रकार आपस मे सलाह करके लोग अपने-अपने घर गये। कादिर खाँ की व्यवहार पटुता ने विजय पायी।

वावू दयाशकर नियमानुसार आठ वजे सो कर उठे और रात की खुमारी उतारने के वाद इन लोगो की राह देखने लगे। जव नौ वजे तक किसी की सूरत न दिखायी दी तो गौस खाँ से वोले, कहिए खाँ साहव, यह सव न आयेंगे क्या? देर वहुत हुई।

गौस खाँ—क्या जाने कल सवो मे क्या सिस्कौट हुई। क्यो सुक्खू, रात मनोहर तुम्हारे पास आया था न?

सुक्खू—हाँ आया तो था, पर कुछ मामले की वातचीत नही हुई। कादिर मियाँ वडी रात तक सव के घर-घर घूमते रहे। उन्होने सवो को मत्र दिया होगा।

गौस खाँ—जरूर उसकी शरारत है। कल पहर रात तक सव लोग वयान वदलने पर आमादा थे। मालूम होता है जव लोग यहाँ से गये है तो उसे पट्टी पढाने का मौका मिल गया। मैं जानता तो सवो को यही वुलाता। यह मलऊन कभी अपनी हरकत से वाज नही आता। हमेशा भाँजी मारा करता है।

दया—अच्छी वात है, तो मै अव रिपोर्ट लिख डालता हूँ। मुझे गाँववालो की तरफ से किसी किस्म की ज्यादती का सवूत नही मिलता।

गौस खाँ—हुजूर, खुदा के लिए ऐसी रिपोर्ट न लिखें, वरना यह सव और शेर हो जायेंगे। हुजूर, महज अफसर नही है, मेरे आका भी तो हैं। गुलाम ने वहुत दिनो तक हुजूर का नमक खाया है। ऐसा कुछ कीजिए कि यहाँ मेरा रहना दुस्वार न हो जाय। मैं तो हुजूर और वावू ज्ञानशकर को एक ही समझता हूँ। मैं यही चाहता हूँ कि वलराज को कम से कम एक माह की सजा हो जाय और वाकी से मुचलका ले लिया जाय। यह इनायत खास मुझ पर होगी। मेरी धाक वँध जायगी और आइदा से हुक्काम की वेगार मे जरा भी दिक्कत न होगी।

दयाशकर—आपका फरमाना वजा है, पर मैं इस वक्त न आपके पास आका की हैसियत मे हूँ और न मेरा काम हुक्काम के लिए वेगार पहुँचाना है। मैं तशखीश करने आया हूँ और किसी के साथ रू-रिआयत नही कर सकता। यह तो आप जानते ही हैं कि मैंने मुफ्त मे कलम उठाने का सवक नही पढा। किसी पर जब्र नही करता,

सख्ती नही करता, सिर्फ काम की मजदूरी चाहता हूँ और खुशी से जो मुझसे काम लेना चाहे उजरत पेश करे। और मुझे महज अपनी फिक्र तो नही मेरे मातहत और भी तो कितने ही छोटी-छोटी तनख्वाहो के लोग है। उनका गुजर कैसे हो ? गाँव मे आपकी धाक बँध जायगी, इससे मेरा फायदा ? आप असामियो को लूटेंगे, मेरी गरज ? गाँववालो से मेरी कोई दुश्मनी नही, बल्कि वह गरीब तो मेरे पुराने वफादार असामी है। मैं मच्छर नही कि डक मारता फिरूँ। कसम खा चुका हूँ, कि अब एक सौ से कम की तरफ निगाह न उठाऊँगा, यह रकम चाहे आप दे या काला चोर दे। मेरे सामने रकम आनी चाहिए। गुनाहे बेलज्जत नही कर सकता।

गौस खाँ ने बहुत मिन्नत समाअत की। अपनी हीन दशा का रोना रोया, अपनी दुरवस्था का पचडा गाया, पर दारोगा जी टस से मस न हुए। खाँ साहब ने लोगो को नीचा दिखाने का निश्चय किया था, इसी मे उनका कल्याण था। दारोगा जी के पूजार्पण के सिवा अन्य कोई उपाय न था। सोचा, जब मेरी धाक जम जायगी तो ऐसे-ऐसे कई सौ का वारा न्यारा कर दूँगा। कुछ रुपय अपने सन्दूक से निकाले, कुछ सुक्खू चौधरी से लिये और दारोगा जी की खिदमत मे पेश किये। यह रुपये उन्होंने अपने गाँव मे एक मसजिद बनवाने के लिए जमा किये थे। निकालते हुए हार्दिक वेदना हुई, पर समस्या ने विवश कर दिया था। दयाशकर ने काले-काले रुपयो का ढेर देखा तो चेहरा खिल उठा। बोले, अब आपकी फतह है, वह रिपोर्ट लिखता हूँ कि मिस्टर ज्वालासिह भी फडक जायँ। मगर आपने यह रुपये जमीन में दफन कर रखे थे क्या ?

गौस खाँ—अब हुजूर कुछ न पूछे। बरसो की कमाई है। ये पसीने के दाग हैं।

दयाशकर—(हँस कर) आपके पसीने के दाग तो न होगें, हाँ असामियो के खूने-जिगर के दाग हैं।

दस बजे रिपोर्ट तैयार हो गयी। दो दिन तक सारे गाँव मे कुहराम मचा रहा। लोग तलब हुए। फिर सबके बयान हुए। अन्त मे सबसे सौ-सौ रुपये के मुचलके ले लिये गये। कादिर खाँ का घर से बाहर निकलना मुश्किल हो गया।

शाम हो गयी थी। बाबू ज्वालासिह शिकार खेलने गये हुए थे। फैसला कल सुनाया जानेवाला था। गौस खाँ ईजाद हुसेन के पास आ कर बैठ गये और बोले, क्या डिप्टी साहब अभी शिकार से वापस नही आये ?

ईजाद हुसेन—कही घडी रात तक लौटेंगे। हुकूमत का मजा तो दौरे मे ही मिलता है। घटे आध घटे कचहरी की, बाकी सारे दिन मटरगश्ती करते रहे। रोजनामचा भरने को लिख दिया, परताल करते रहे।

गौस खाँ—आपको तो मालूम ही हुआ होगा, दारोगा जी ने मुझे आज खूब पथरा।

ईजाद—इन हिन्दुओ से खुदा समझे। यह बल के मतअस्सिब होते है। हमारे साहब बहादुर भी बडे मुन्सिफ बनते है, मगर जब कोई जगह खाली होती हैं तो वह हिन्दू को ही देते है। अर्दली चपरासी मजीद को आप जानते होगे। अभी हाल में

उसने जिल्दबन्दी की दुकान खोल ली, नौकरी से इस्तीफा दे दिया। आपने उसकी जगह पर एक गँवार अहीर को मुकर्रर कर लिया। है तो अर्दली चपरासी, पर उसका काम है गायें दुहना, उन्हे चारा-पानी देना। दौरे के चौकीदारों मे दो कहार रख लिये हैं। उनसे खिदमतगारी का काम लेते हैं। जब इन हथकडो से काम चलें तो बेगार की जरूरत ही क्या? हम लोगो को अलबत्ता हुक्म मिला है, बेगार न लिया करो।

सूर्य अस्त हुए। खाँ साहब को याद आ गया कि नमाज का वक्त गुजरा जाता है। वजू किया और एक पेड के नीचे नमाज पढ़ने लगे।

इतने मे बिसेसर साह ने रावटी के द्वार पर आकर अहलमद साहब को अदब से सलाम किया। स्थूल शरीर, गाढ़े की मिर्जई, उस पर गाढ़े की दोहर, सिर पर एक मैली-सी पगडी, नगे पाँव, मुख मलिन, स्वार्थपूर्ण विनय की मूर्ति बने हुए थे। एक चपरासी ने डाँट कर कहा, यहाँ कहाँ घुसे चले आते हो? कुछ अफसरो का अदब-लिहाज भी है।

बिसेसर साह दो-तीन पग पीछे हट गये और हाथ बाँध कर बोले, सरकार एक विनती है। हुक्म हो तो अरज करूँ।

ईजाद—क्या कहते हो? तुम लोगो के मारे तो दम मारने की भी फुर्सत नही। जब देखो, एक न एक आदमी शैतान की तरह सिर पर सवार रहता है।

बिसेसर—हुजूर बडी देर से खडा हूँ।

ईजाद—अच्छा, खैर अपना मतलब कहो।

बिसेसर—यही अरज है हुजूर कि मुझसे मुचलका न लिया जाय। बड़ा गरीब हूँ सरकार, मिट्टी मे मिल जाऊँगा।

अहलमद साहब के यहाँ ऐसे गरज के बावले, आँख के अन्धे गाँठ के पूरे नित्य ही आया करते थे। वह उनके कल-पुरजे खूब जानते थे। पहले मुँह फेरा, फिर अपनी विवशता प्रकट की पर भाव ऐसा शीलपूर्ण बनाये रखा कि शिकार हाथ से निकल न जाये। अन्त मे मामले पर आये। रुपये लेते हुए ऐसा मुँह बनाया, मानो दे रहे हो। साह जी को दिलासा देकर विदा किया।

चपरासी ने पूछा, क्या इससे मुचलका न लिया जायगा?

ईजाद—लिया क्यो न जायगा? फैसला लिखा हुआ तैयार है। इसके लिए जैसे सौ, वैसे एक सौ बीस। मैंने उससे यह हर्गिज नही कहा कि तुम्हे मुचलके से निजात दिला दूँगा। महज इतना कह दिया कि तुम्हारे लिए अपने इमकान भर कोशिश करूँगा। उसकी तसकीन इतने से ही हो गयी तो मुझे ज्यादा दर्द सर की क्या जरूरत थी? रिश्वत को लोग नाहक बदनाम करते हैं। इस वक्त मैं इससे रुपये न लेता, तो इसकी न जाने क्या हालत होती। मालूम नही, कहाँ-कहाँ दौडता और क्या-क्या करता? रुपये देकर इसके सिर का बोझ हलका हो गया और दिल पर से बोझ उतर गया। इस वक्त आराम से खायेगा और मीठी नीद सोयेगा। कल कह दूँगा, भाई, क्या करूँ, बहुत हाथ-पैर मारे, पर डिप्टी साहब राजी न हुए। मौका देखूँगा तो एक चाल और चलूँगा। कहूँगा, डिप्टी साहब को कुछ नजर दिये बिना काम पूरा न होगा। सौ

रुपये पेश करो तो तुम्हारा मुचलका रद्द करा दूं। यह चाल चल गयी तो पौ बारह है। इसी का नाम 'हम खुर्मा-व हम सवाव' है। मैंने कोई ज्यादती नही की, कोई जब्र नही किया। यह गैबी इमदाद है। इसीसे मै हिन्दुओ के मसलये तनीसुख का कायल हूँ। जरूर इससे पहले की जिन्दगी मे इस आदमी पर मेरे कुछ रुपये आते होगे। आये दिन ऐसे शिकार फँसा करते हैं, गोया उन्हे रुपयो से कोई चिढ है। दिल मे उनकी हिमाकत पर हँसता हूँ और अल्लाह का शुक्र अदा करता हूँ कि ऐसे बन्दे न पैदा करता तो हम जैसो का गुजर क्योकर होता।

१४

राय साहब को नैनीताल आये हुए एक महीना हो गया है। एक सुरम्य झील के किनारे हरे-भरे वृक्षो के कुज मे उनका बँगला स्थित है, जिसका एक हजार रुपया मासिक किराया देना पडता है। कई घोडे है, कई मोटर गाडियाँ, बहुत-से नौकर। यहाँ वह राजाओ की भाँति शान से रहते है। कभी हिमराशियो की सैर, कभी शिकार, कभी झील मे बजरो की बहार, कभी पोलो और गल्फ, कभी सरोद और सितार, कभी पिकनिक और पार्टियाँ, नित्य नये जल्से, नये प्रमोद होते रहते है। राय साहब बडी उमग के साथ इन विनोदो की बहार लूटते हैं। उनके बिना किसी महफिल, किसी जल्से का रग नही जमता। वह सभी बरातो के दूल्हे हैं। व्यवस्थापक सभा की बैठकें नियमित समय पर हुआ करती है, पर मेम्बरो के राग-रग को देख कर यह अनुमान करना कठिन है कि वह आमोद को अधिक महत्त्व का विषय समझते हैं या व्यवस्थाओ के सम्पादन को।

किंतु ज्ञानशकर के हृदय की कली यहाँ भी न खिली। राय साहब ने उन्हे यहाँ के समाज से परिचित करा दिया। उन्हे नित्य दावतो और जल्सो मे अपने साथ ले जाते, अधिकारियो से उनके गुणो की प्रशसा करते, यहाँ तक कि उन्हे लेडियो से भी इट्रोड्यूस कराया। इससे ज्यादा वह और क्या कर सकते थे? इस भित्ति पर दीवार उठाना उनका काम था, पर उनकी दशा उस पौधे की-सी थी जो प्रतिकूल परिस्थिति मे जाकर माली के सुव्यवस्था करने पर भी दिनो-दिन सूखता जाता है। ऐसा जान पडता था कि वह किसी गहन घाटी मे रास्ता भूल गये हैं। रत्न-जटित लेडियो के सामने वह शिष्टाचार के नियमो के ज्ञाता होने पर भी झेपने लगते थे। राय साहब उन्हे प्राय. एकान्त मे सभ्य व्यवहार के उपदेश किया करते। स्वय नमूना बन उन्हे सिखाते, पुरुषो से क्योकर बिना प्रयोजन ही मुस्कुरा कर बातें करनी चाहिए, महिलाओ के रूप-लावण्य की क्योकर सराहना करनी चाहिए, किन्तु अवसर पडने पर ज्ञानशकर का मतिहरण हो जाता था। उन्हे आश्चर्य होता था कि राय साहब इस वृद्धावस्था मे भी लेडियो के साथ कैसे घुल-मिल जाते हैं, किस अन्दाज से बातें करते हैं कि बनावट का ध्यान भी नही हो सकता, मानो इसी जलवायु मे उनका पालन-पोषण हुआ है।

एक दिन वह झील के किनारे एक बेंच पर बैठे हुए थे। कई लेडियाँ एक बजरे पर जल-क्रीड़ा कर रही थी। इन्हे पहचान कर उन्होने इशारे से बुलाया और सैर

करने की दावत दी। इस समय ज्ञानशंकर की मुखाकृति देखते ही बनती थी। उन्हें इन्कार करने के शब्द न मिले। भय हुआ कि कहीं असभ्यता न समझी जाय। झेंपते हुए बजरे में जा बैठे, पर सूरत बिगड़ी हुई, खेद और ग्लानि की सजीव मूर्ति। हृदय पर एक पहाड़ का बोझ रखा हुआ था। लेडियों ने उनकी यह दशा देखी, तो आड़े हाथों लिया और इतनी फब्तियाँ उड़ायीं, इतना बनाया कि इस समय कोई ज्ञानशंकर को देखता तो पहचान न सकता। मालूम होता था आकृति ही बिगड़ गयी है। मानो कोई बन्दर का बच्चा नटखट लड़कों के हाथों पड़ गया हो। आँखों में आँसू भरे एक कोने में दबके सिमटे बैठे हुए अपने दुर्भाग्य को रो रहे थे। बारे किसी तरह इस विपत्ति से मुक्ति हुई, जान में जान आई। कान पकड़े कि फिर लेडियों के निकट न जाऊँगा।

शनैः-शनैः ज्ञानशंकर को इन खेल-तमाशों से अरुचि होने लगी। अंगूर खट्टे हो गये। ईर्ष्या, जो अपनी क्षुद्रताओं की स्वीकृति है, हृदय का काँटा बन गयी। रात-दिन इसकी टीस रहने लगी। उच्चाकांक्षाएँ उन्हें पर्वत के पादस्थल तक ले गयीं, लेकिन ऊपर न ले जा सकीं। वहीं हिम्मत हार कर बैठ गये और उस धुन के पूरे, साहसी पुरुष की निन्दा करने लगे, जो गिरते-पड़ते ऊपर चढ़ते चले जाते थे। यह क्या पागलपन है! लोग ख्वाहमख्वाह अँगरेजियत के पीछे लट्ठ लिए फिरते हैं। थोड़ी-सी ख्याति और सत्ता के लिए इतना झंझट और इतने रंग-रोगन पर भी असलियत का कहीं पता नहीं। सब के सब बहुरूपिये मालूम होते हैं। अँगरेज लोग इनके मुँह पर चाहें न हँसे, पर मित्र-मंडली में सब इन पर तालियाँ बजाते होंगे। और तो और लोग लेडियों के साथ नाचने पर भी मरते हैं। कैसी निर्लज्जता है, कैसी बेहयाई, जाति के नाम पर धब्बा लगानेवाली। राय साहब भी विचित्र जीव हैं। इस अवस्था में आपको भी नाचने की धुन है। ऐसा मालूम होता है मानो उच्छृंखलता सदेह होकर दूसरों का मुँह चिढ़ा रही है। डाक्टर चन्द्रशेखर कहने को तो दर्शन के ज्ञाता हैं, पुरुष और प्रकृति जैसे गहन विषयों पर लच्छेदार वक्तृताएँ देते हैं, लेकिन नाचने लगते हैं तो सारा पाण्डित्य धूल में मिल जाता है। वह जो राजा साहब हैं इन्द्रकुमार सिंह, मटके की भाँति तोंद निकली हुई है, लेकिन आप भी अपना नृत्य-कौशल दिखाने पर उधार खाये हुए हैं और तुर्रा यह कि सब के सब जाति के सेवक और देश के भक्त बनते हैं। जिसे देखिए, भारत की दुर्दशा पर आँसू बहाता नजर आता है। यह लोग विलासमय होटलों में शराब और लेमोनेड पीते हुए देश की दरिद्रता और अधोगति का रोना रोते हैं। यह भी फैशन में दाखिल हो गया है।

इस भाँति ज्ञानशंकर की ईर्षा देशानुराग के रूप में प्रकट हुई। असफल लेखक समालोचक बन बैठा। अपनी असमर्थता ने साम्यवादी बना दिया। यह सभी रँगे हुए सियार हैं, लुटेरों का जत्था है। किसी को खबर नहीं कि गरीबों पर क्या बीत रही है? किसी के हृदय में दया नहीं। कोई राजा है, कोई ताल्लुकेदार, कोई महाजन, सभी गरीब का खून चूसते हैं, गरीबों के झोपड़ों में सेंध मारते हैं और यहाँ आ कर

देश की अवनति का पचडा गाते है। भला यही है कि अधिकारी वर्ग इन महानुभावो को मुँह नही लगाते। कही वह इनकी बातो मे आ जायँ और देश का भाग्य इनके हाथो मे दे दें तो जाति का कही नाम-निशान न रहे। यह सब दिन-दहाडे लूट खायँ। कोई इन भलेमानसो से पूछे, आप जा यहाँ लाखो रुपये सैर-सपाटो मे उडा रहे हैं, उससे जाति को क्या लाभ हो रहा है? यही धन यदि जाति पर अर्पण करते तो जाति तुम्हे धन्यवाद देती और तुम्हे पूजती, नही तो उसे खबर भी नही कि तुम कौन हो और क्या करते हो। उनके लिए तुम्हारा होना न होना दोनो बराबर है। प्रार्थी को इस बात से सन्तोष नही होता कि तुम दूसरो से सिफारिश करके उसे कुछ दिला दोगे, उसे सन्तोष होगा जब तुम स्वय अपने पास से थोड़ा सा निकाल कर उसे दे दो।

ये द्रोहात्मक विचार ज्ञानशकर के चित्त को मथने लगे। वाणी उन्हे प्रकट करने के लिए व्याकुल होने लगी। एक दिन वह डाक्टर चन्द्रशेखर से उलझ पड़े। इसी प्रकार एक दिन राजा इन्द्रकुमार से विवाद कर बैठे और मिस्टर हरिदास बैरिस्टर से तो एक दिन हाथापाई की नौबत आ गयी। परिणाम यह हुआ कि लोगो ने ज्ञानशकर का बहिष्कार करना शुरू किया; यहाँ तक कि राय साहब के बँगले पर आना भी छोड दिया। किंतु जब ज्ञानशकर ने अपने विचारो को एक प्रसिद्ध अँगरेजी पत्रिका मे प्रकाशित कराया तो सारे नैनीताल में हलचल मच गयी। जिसके मस्तिष्क से ऐसे उत्कृष्ट भाव प्रकट हो सकते थे, उसे झक्की या बक्की समझना असम्भव था। शैली ऐसी सजीव, चुटकियाँ ऐसी तीव्र, व्यग्य ऐसे मीठे और उक्तियाँ ऐसी मार्मिक थी कि लोगो को उसकी चोटों मे भी आनन्द आता था। नैनीताल का एक वृहत् चित्र था। चित्रकार ने प्रत्येक चित्र के मुख पर उसका व्यक्तित्व ऐसी कुशलता से अकित कर दिया था कि लोग मन ही मन कट कर रह जाते थे। लेख मे ऐसे कटाक्ष थे कि उसके कितने ही वाक्य लोगो की जबान पर चढ़ गये।

ज्ञानशकर को शका थी कि कही यह लेख छपते ही समस्त नैनीताल उनके सिर हो जायगा, किन्तु यह शका निस्सार सिद्ध हुई। जहाँ लोग उनका निरादर और अपमान करते थे, वहाँ अब उनका आदर और मान करने लगे। एक-एक करके लोगो ने उनके पास आ कर अपने अविनय की क्षमा माँगी। सब के सब एक दूसरे पर की गयी चोटों का आनन्द उठाते थे। डाक्टर चन्द्रशेखर और राजा इन्द्रकुमार मे बड़ी घनिष्ठता थी, किन्तु राजा साहब पर दो-मुँहे साँप की फबती डाक्टर महोदय को लोट-पोट कर देती थी। राजा साहब भी डाक्टर महाशय की प्रौढा से उपमा पर मुग्ध हो जाते थे। उनकी घनिष्ठता इस द्वेषमय आनन्द मे बाधक न होती थी। यह चोटे और चुटकियाँ सर्वथा निष्फल न हुईं। सैर-तमाशो मे लोगो का उत्साह कुछ कम हो गया। अगर अन्त करण से नही तो केवल ज्ञानशंकर को खुश करने के लिए लोग उनसे सार्वजनिक प्रस्तावों मे सम्मति लेने लगे। ज्ञानशकर का साहस और भी बढा। वह खुल्लम खुल्ला लोगो को फटकारें सुनाने लगे। निन्दक से उपदेशक बन बैठे। उनमे आत्मगौरव का

भाव उदय हो गया। अनुभव हुआ कि इन वडे-वडे उपाधिधारियो और अधिकारियो पर कितनी सुगमता से प्रभुत्व जमाया जा सकता है। केवल एक लेख ने उनकी धाक बिठा दी। सेवा और दया के जो पवित्र भाव उन्होने चित्रित किये थे, उनका स्वय उनकी आत्मा पर भी असर हुआ। पर शोक! इस अवस्था का शीघ्र ही अन्त हो गया। क्वार का आरम्भ होते ही नैनीताल से डेरे कूच होने लगे और आधे क्वार तक सब बस्ती उजाड हो गयी। ज्ञानशकर फिर उसी कुटिल स्वार्थ की उपासना करने लगे। उनका हृदय दिनो-दिन कृपण होने लगा। नैनीताल मे भी वह मन ही मन राय साहब की फजूलखर्चियो पर कुडवुडाया करते थे। लखनऊ आ कर उनकी सकीर्णता शब्दो मे व्यक्त होने लगी। जुलाहे का क्रोध दाढी पर उतरता। कभी मुख्तार से, कभी मुहर्रिर से, कभी नौकरो से उलझ पडते। तुम लोग रियासत लूटने पर तुले हुए हो, जैसे मालिक वैसे नौकर, सभी की आँखो मे सरसो फूली हुई है। मुफ्त का माल उडाते क्या लगता है? जब पसीना गार कर कमाते तो खर्च करते अखर होती। राय साहब रामलीला-सभा के प्रधान थे। इस अवसर पर हजारो रुपये खर्च करते, नौकरो को नयी-नयी वर-दियाँ मिलती, रईसो की दावत की जाती, राजगद्दी के दिन भोज किया जाता। ज्ञान-शकर यह धन का अपव्यय देख कर जलते रहते थे। दीपमालिका के उत्सव की तैयारियाँ देख कर वह ऐसे हताश हुए कि एक सप्ताह के लिए इलाके की सैर करने चले गये।

दिसम्बर का महीना था और क्रिसमस के दिन। राय साहब अँगरेज अधिकारियो को डालियाँ देने की तैयारियो मे तल्लीन हो रहे थे। ज्ञानशकर उन्हे डालियाँ सजाते देख कर इस तरह मुँह बनाते, मानो वह कोई महा घृणित काम कर रहे है। कभी-कभी दबी जवान से उनकी चुटकी भी ले लेते। उन्हे छेड कर तर्क वितर्क करना चाहते। राय साहब पर इन भावो का जरा भी असर न होता। वह ज्ञानशकर की मनोवृत्तियो से परिचित जान पडते थे। शायद उन्हे जलाने के लिए ही वह इस समय इतने उत्साह-शील हो गये थे। यह चिन्ता ज्ञानशकर की नीद हराम करने के लिए काफी थी। उस पर जब उन्हे विश्वस्त सूत्र से मालूम हुआ कि राय साहब पर कई लाख का कर्ज है तो वह नैराश्य से विह्वल हो गये। एक उद्विग्न दशा मे विद्या के पास आ कर बोले, मालूम होता है यह मरते दम तक कौडी कफन को न छोडेंगे। मैं आज ही इस विषय मे इनसे साफ-साफ बातें करूँगा और कह दूँगा कि यदि आप अपना हाथ न रोकेंगे तो मुझसे भी जो कुछ बन पडेगा कर डालूँगा।

विद्या—उनकी जायदाद है, तुम्हे रोक-टोक करने का क्या अधिकार है। कितना ही उडायेंगे तब भी हमारे खाने भर को बचा ही रहेगा। भाग्य मे जितना बदा है, उससे अधिक थोडे ही मिलेगा!

ज्ञान—भाग्य के भरोसे बैठ कर अपनी तबाही तो नही देखी जाती।

विद्या—भैया जीते होते तब?

ज्ञान—तब दूसरी बात थी। मेरा इस जायदाद से कोई सम्बन्ध न रहता। मुझको उसके बनने-बिगडने की चिंता न रहती। किसी चीज पर अपनेपन की छाप लगते

ही हमारा उनसे आत्मिक सम्बन्ध हो जाता है।

किन्तु हा दुर्दैव! ज्ञानशंकर की विषाद-चिन्ताओं का यही तक अन्त न था। अभी तक उनकी स्थिति एक आक्रमणकारी सेना की-सी थी। अपने घर का कोई खटका न था। अब दुर्भाग्य ने उनके घर पर छापा मारा। उनकी स्थिति रक्षाकारिणी सेना की सी हो गयी। उनके बड़े भाई प्रेमशंकर कई वर्ष से लापता थे। ज्ञानशंकर को निश्चय हो गया था कि वह अब संसार में नहीं है। फाल्गुन का महीना था। अनायास प्रेमशंकर का एक पत्र अमेरिका से आ पहुँचा कि मैं पहली अप्रैल को बनारस पहुँच जाऊँगा। यह पत्र पा कर पहले तो ज्ञानशंकर प्रेमोल्लास में मग्न हो गये। इतने दिनों के वियोग के बाद भाई से मिलने की आशा ने चित्त को गद्‌गद् कर दिया। पत्र लिए हुए विद्या के पास आ कर यह शुभ समाचार सुनाया। विद्या बोली, धन्य भाग! भाभी जी की मनोकामना ईश्वर ने पूरी कर दी! इतने दिनों कहाँ थे?

ज्ञान—वहीं अमेरिका में कृषिशास्त्र का अभ्यास करते रहे। दो साल तक एक कृषिशाला में काम भी किया है।

विद्या—तो आज अभी १५ तारीख है। हम लोग कल परसों तक यहाँ से चल दें। ज्ञानशंकर ने केवल इतना कहा, 'हाँ, और क्या' और बाहर चले गये। उनकी प्रफुल्लता एक ही क्षण में लुप्त हो गयी थी और नयी चिन्ताएँ आँखों के सामने फिरने लगी थीं, जैसे कोई जीर्ण रोगी किसी उत्तेजक औषधि के असर से एक क्षण के लिए चैतन्य हो कर फिर उसी जीर्णावस्था में विलीन हो जाता है। उन्होंने अब तक जो मनसूबे बाँधे थे, जीवन का जो मार्ग स्थिर किया था, उसमें अपने सिवा किसी अन्य व्यक्ति के लिए जगह न रखी थी। वह सब कुछ अपने लिए चाहते थे। अब इन व्यवस्थाओं में दो परिवारों का निर्वाह होना कठिन था। लखनपुर के दो हिस्से करने पड़ेंगे! ज्यों-ज्यों वह इस विषय पर विचार करते थे, समस्या और भी जटिल होती जाती थी, चिन्ताएँ और भी विषम होती जाती थीं। यहाँ तक कि शाम होते-होते उन्हें अपनी अवस्था असह्य प्रतीत होने लगी। वे अपने कमरे में उदास बैठे हुए थे कि राय साहब आ कर बोले, तुमने तो अभी कपड़े भी न पहने, क्या सैर करने न चलोगे?

ज्ञान—जी नहीं, आज जी नहीं चाहता।

राय—कैसरबाग में आज बैंड होगा। हवा कितनी प्यारी है!

ज्ञान—मुझे आज क्षमा कीजिए।

राय—अच्छी बात है, मैं भी न जाऊँगा। आजकल कोई लेख लिख रहे हो या नहीं?

ज्ञान—जी नहीं, इधर तो कुछ नहीं लिखा।

राय—तो अब कुछ लिखो। विषय और सामग्री मैं देता हूँ। सिपाही की तलवार में मोरचा न लगना चाहिए। पहला लेख तो इस साल के बजट पर लिख दो और दूसरा गायत्री पर।

ज्ञान—मैंने तो आजकल कोई बजट सम्बन्धी लेख आद्योपान्त पढ़ा नहीं, उस पर कलम क्योंकर उठाऊँ।

राय—अजी, तो उसमे करना ही क्या है ? बजट को कौन पढता है और कौन समझता है ? आप केवल शिक्षा के लिए और धन की आवश्यकता दिखाइए और शिक्षा के महत्त्व का थोडा-सा उल्लेख कीजिए, स्वास्थ्य-रक्षा के लिए और धन माँगिए और उसके मोटे-मोटे नियमो पर दो-चार टिप्पणियाँ कर दीजिए। पुलिस के व्यय मे वृद्धि अवश्य ही हुई होगी, मानी हुई बात है। आप उसमे कमी पर जोर दीजिए और नयी नहरे निकालने की आवश्यकता दिखा कर लेख समाप्त कर दीजिए। बस, अच्छी-खासी बजट की समालोचना हो गयी। लेकिन यह बाते ऐसे विनम्र शब्दो मे लिखिए और अर्थसचिव की योग्यता की और कार्यपटुता की ऐसी प्रशसा कीजिए की वह बुल-बुल हो जायँ और समझे कि मैने उसके मन्तव्यो पर खूब विचार किया है। शैली तो आपकी सजीव है ही, इतना यत्न और कीजिएगा कि एक-एक शब्द से मेरी बहुज्ञता और पाडित्य टपके। इतना बहुत है। हमारा कोई प्रस्ताव माना तो जायेगा नहीं, फिर बजट के लेखो को पढना और उस पर विचार करना व्यर्थ है।

ज्ञान—और गायत्री देवी के विषय मे क्या लिखना होगा ?

राय—बस, एक सक्षिप्त-सा जीवन वृत्तात हो। कुछ मेरे कुल का, कुछ उसके कुल का हाल लिखिए, उसकी शिक्षा का जिक्र कीजिए। फिर उसके पति की मृत्यु का वर्णन करने के बाद उसके सुप्रबन्ध और प्रजा-रजन का जरा बढा कर विस्तार के साथ उल्लेख कीजिए। गत तीन वर्षो मे विविध कामो मे उसने जितने चन्दे दिए है और अपने असामियो की सुदशा के लिए जो व्यवस्थाएँ की है, उनके नोट मेरे पास मौजूद है। उससे आपको बहुत मदद मिलेगी। उस ढाँचे को सजीव और सुन्दर बनाना आपका काम है। अन्त मे लिखिएगा कि ऐसी सुयोग्य और विदुषी महिला का अब तक किसी पद से सम्मानित न होना, शासन-कर्त्ताओ की गुणग्राहकता का परिचय नही देता है। सरकार का कर्तव्य है कि उन्हे किसी उचित उपाधि से विभूषित करके सत्कार्यों मे प्रोत्साहित करें, लेकिन जो कुछ लिखिए जल्द लिखिए, विलम्ब से काम विगड जायगा।

ज्ञान—बजट की समालोचना तो मै कल तक लिख दूंगा लेकिन दूसरे लेख मे अधिक समय लगेगा। मेरे बडे भाई, जो बहुत दिनो से गायब थे, पहली तारीख को घर आ रहे हैं। उनके आने से पहले हमे वहाँ पहुँच जाना चाहिए।

राय—वह तो अमेरिका चले गये थे ?

ज्ञान—जी हाँ, वही से पत्र लिखा है।

राय—कैसे आदमी है ?

ज्ञान—इस विषय मे क्या कह सकता हूँ ? आने पर मालूम होगा कि उनके स्वभाव मे क्या परिवर्तन हुआ है। यो तो बहुत शान्त प्रकृति और विचारशील थे।

राय—लेकिन आप जानते है कि अमेरिका की जलवायु बन्धु-प्रेम के भाव की पोषक नही है। व्यक्तिगत स्वार्थ वहाँ के जीवन का मूल तत्व है और आपके भाई साहब पर उसका असर जरूर ही पडा होगा।

ज्ञान—देखना चाहिए, मै अपनी तरफ से तो उन्हे शिकायत का मौका न दूंगा।

राय—आप दे या न दें, वह स्वय ढूंढ निकालेंगे। सम्भव है, मेरी शका निर्मूल हो। मेरी हार्दिक इच्छा है कि निर्मूल हो पर मेरा अनुभव है कि विदेश मे बहुत दिनो तक रहने से प्रेम का बन्धन शिथिल हो जाता है।

ज्ञानशकर अब अपने मनोभावो को छिपा न सके। खुल कर बोले—मुझे भी यही भय है। जब छ साल मे उन्होने घर पर एक पत्र तक नही लिखा तो विदित ही है कि उनमे आत्मीयता का आधिक्य नही है। आप मेरे पिता तुल्य है, आपसे पर्दा क्या है? इनके आने से मेरे सारे मन्सूबे मिट्टी मे मिल गये। मैं समझा था चाचा साहब से अलग हो कर दो-चार वर्षों मे मेरी दशा कुछ सुधर जायगी। मैंने ही चाचा साहब को अलग होने पर मजबूर किया, जायदाद की बॉट भी अपनी इच्छा के अनुसार की, जिसके लिए चाचा साहब की सन्तान मुझे सदैव कोसती रहेगी। किन्तु सब किया-कराया बेकार गया।

राय साहब—कही उन्होने गत वर्षो के मुनाफे का दावा कर दिया तो आप बडी मुश्किल मे फँस जायेंगे। इस विषय मे वकीलो की सम्मति लिए बिना आप कुछ न कीजिएगा।

इस भाँति ज्ञानशकर की शकाओ को उत्तेजित करने मे रायसाहब का आशय क्या था, इसका समझना कठिन है। शायद यह उनके हृद्गत भावो की थाह लेना चाहते थे अथवा उनकी क्षुद्रता और स्वार्थपरता का तमाशा देखने का विचार था। वह तो यह चिनगारी दिखा कर हवा खाने चल दिये। बेचारे ज्ञानशकर अग्नि-दाह मे जलने लगे। उन्हे इस समय नाना प्रकार की शकाएँ हो रही थी। उनका वह तत्क्षण समाधान करना चाहते थे। क्या भाई साहब गत वर्षों के मुनाफे का दावा कर सकते हैं? यदि वह ऐसा करे, तो मेरे लिए भी निकास का कोई उपाय है या नही? क्या राय साहब को अधिकार है कि वह रियासत पर ऋणो का बोझ लादते जायँ? उनकी फजूलखर्ची को रोकने की कोई कानूनी तदबीर हो सकती है या नही? इन प्रश्नो से ज्ञानशकर के चित्त मे घोर अशान्ति हो रही थी, उनकी मानसिक वृत्तियाँ जल रही थी। वह उठ कर राय साहब के पुस्तकालय मे गये और एक कानून की किताब निकाल कर देखने लगे। इस किताब से शका निवृत्त न हुई। दूसरी किताब निकाली, यहाँ तक कि थोडी देर मे मेज पर किताबो का ढेर लग गया। कभी इस पोथी के पन्ने उलटते थे, कभी उस पोथी के, किन्तु किसी प्रश्न का सन्तोषप्रद उत्तर न मिला। हताश हो कर वे इधर-उधर ताकने लगे। घडी पर निगाह पडी। दस बजना चाहते थे। किताब समेट कर रख दी। भोजन किया, लेटे, किन्तु नीद कहाँ? चित्त की चचलता निद्रा की बाधक है। अब तक वह स्वय अपने जीवन-सागर के रक्षा-तट थे। उनकी सारी आकाक्षाएँ इसी तट पर विश्राम किया करती थी। प्रेमशकर ने आकर इस रक्षा-तट को विध्वस कर दिया था और उन नौकाओ को डावाँडोल। भैया क्योकर काबू मे आयेंगे? खुशामद से? कठिन है, वह एक ही घाघ है। नम्रता और विनय से? असभव। नम्रता का

जवाब सद्व्यवहार हो सकता है, स्वार्थ त्याग नही। फिर क्या कलह और अपवाद से ? कदापि नही, इससे मेरा पक्ष और भी निर्बल हो जायेगा। इस प्रकार भटकते-भटकते उछल पड़े। वाह ! मैं भी कितना मन्द-बुद्धि हूँ। बिरादरी इन महाशय को घर मे पैर तो रखने देगी नही, यह बेचारे मुझसे क्या छेड छाड करेंगे ? आश्चर्य है, अब तक यह छोटी-सी बात भी मेरे ध्यान मे न आयी। राय साहब को भी न सूझी। बनारस आते ही लाला पर चारो ओर से बौछारें पडने लगेंगी, उनके वहाँ पैर भी न जमने पायेंगे। प्रकट मे मैं उनसे भ्रातृवत् व्यवहार करता रहूँगा, बिरादरी की सकीर्णता और अन्याय पर आँसू बहाऊँगा, लेकिन परोक्ष मे उसकी कील घुमाता रहूँगा। महीने दो महीने मे आप ही भाग खडे होगे। शायद श्रद्धा भी उनसे खिच जाय। उसे कुछ उत्तेजित करना पडेगा। धार्मिक प्रवृति की स्त्री है। लोकमत का असर उस पर अवश्य पडेगा। बस, मेरा मैदान साफ है। इन महाशय से डरने की कोई जरूरत नही। अब मैं निर्भय हो कर भ्रातृ-स्नेह आचरण कर सकता हूँ।

इस विचार से ज्ञानशकर इतने उत्फुल्ल हुए कि जी चाहा चल कर विद्या को जगाऊँ, पर जब्त से काम लिया। इस चिन्ता-सागर से निकल कर अब उन्हे शका होने लगी कि गायत्री की अप्रसन्नता भी मेरा भ्रम है। मैं स्त्रियो के मनोभावो से सर्वथा अपरिचित हूँ। सम्भव है, मैंने उतावलापन किया हो, पर यह कोई ऐसा अपराध न था कि गायत्री उसे क्षमा न करती। मेरे दुस्साहस पर अप्रसन्न होना उसके लिए स्वाभाविक बात थी। कोई गौरवशाली रमणी इतनी सहज रीति से वशीभूत नही हो सकती। अपने सतीत्व-रक्षा का विचार स्वभावत उसकी प्रेम वासना को दबा देता है। ऐसा न हो, तो भी वह अपनी उदासीनता और अनिच्छा प्रकट करने के लिए कठोरता का स्वाँग भरना आवश्यक समझती है। शायद इससे उसका अभिप्राय प्रेम-परीक्षा होता है। वह एक अमूल्य वस्तु है ! और अपनी दर गिराना नही चाहती। मैं अपनी असफलता से ऐसा दबा कि फिर सिर उठाने की हिम्मत ही न पडी। वह यहाँ कई दिन रही। मुझे जा कर उससे क्षमा माँगनी चाहिए थी। वह क्रुद्ध होती तो शायद मुझे झिडक देती। वह स्वय निर्दोष बनना चाहती थी और सारा दोष मेरे सिर रखती। मुझे यह वाक्प्रहार सहना चाहिए था और थोड़े दिनो मे मैं उसके हृदय का स्वामी होता। यह तो मुझसे हुआ नही, उलटे आप ही रूठ बैठा, स्वय उससे आँखें चुराने लगा। उसने अपने मन मे मुझे बोदा, साहसहीन, निरा बुद्धू समझा होगा। खैर, अब कसर पूरी हुई जाती है। यह मानो अन्त प्रेरणा है। इस जीवन-चरित्र के निकलते ही उसकी अवज्ञा और अभिमान का अन्त हो जायेगा। मान-प्रतिष्ठा पर जान देती है। राय साहब स्वय स्त्री के भेष मे अवतरित हुए हैं। उसकी यह आकाक्षा पूरी हुई तो फूली न समायेगी और जो कही रानी की पदवी मिल गयी तो वह मेरा पानी भरेगी। भैया के झमेले से छुट्टी पाऊँ तो यह खेल शुरू करूँ। मालूम नही, अपने पत्रो मे कुछ मेरा कुशल-समाचार भी पूछती है या नही। चलूँ, विद्या से पूछूँ। अबकी वह इस प्रबल इच्छा को न रोक सके। विद्या बगल के कमरे मे सोती थी। जा कर उसे जगाया।

चौक कर उठ वैठी और वोली, क्या है ? अभी तक सोये नही ?

ज्ञान—आज नीद ही नही आती। वाते करने को जी चाहता है। राय साहव शायद अभी तक नही आये।

विद्या—वह वारह वजे के पहले कभी आते है कि आज ही आ जायेंगे ! कभी-कभी एक-दो वज जाते है।

ज्ञान—मुझे जरा सी झपकी आ गयी थी। क्या देखता हूँ कि गायत्री सामने खडी है, फूट-फूट कर रो रही है, आँखे खुल गयी। तव से करवटे वदल रहा हूँ। उनकी चिट्ठियाँ तो तुम्हारे पास आती है न ?

विद्या—हाँ, सप्ताह मे एक चिट्ठी जरूर आती है, वल्कि मैं जवाव देने मे पिछड जाती हूँ।

ज्ञान—कभी कुछ मेरा हालचाल भी पूछती है ?

विद्या—वाह, ऐसा कोई पत्र नही होता जिसमे तुम्हारी क्षेम-कुशल न पूछती हो।

ज्ञान—वुलाती तो एक वार उनमे जा कर मिल आता।

विद्या—तुम जाओ तो वह तुम्हारी पूजा करे। तुमसे उन्हे वडा प्रेम है।

ज्ञानशकर को अव भी नीद नही आयी, किन्तु सुख-स्वप्न देख रहे थे!

१५

प्रात काल था। ज्ञानशकर स्टेशन पर गाड़ी का इन्तजार कर रहे थे। अभी गाडी के आने मे आध घटे की देर थी। एक अँगरेजी पत्र ले कर पढना चाहा पर उसमें जी न लगा। दवाओ के विज्ञापन अधिक मनोरजक थे। दस मिनट मे उन्होने सभी विज्ञापन पढ डाले। चित्त चचल हो रहा था। वेकार वैठना मुश्किल था। इसके लिए वडी एकाग्रता की आवश्यकता होती है। आखिर खोचे की चाट खाने मे उनके चित्त को शान्ति मिली। वेकारी मे मन वहलाने का यही सवसे सुगम उपाय है।

जव वह फिर प्लेटफार्म पर आये तो सिगनल डाउन हो चुका था। ज्ञानशकर का हृदय धडकने लगा। गाडी आते ही पहले और दूसरे दरजे की गाडियो मे झाँकने लगे, किन्तु प्रेमशकर इन कमरो मे न थे। तीसरे दर्जे की सिर्फ दो गाडियाँ थी। वह इन्ही गाडियो के कमरे मे वैठे हुए थे। ज्ञानशकर को देखते ही दौड कर उनके गले लिपट गये। ज्ञानशकर को इस समय अपने हृदय मे आत्मवल और प्रेमभाव प्रवाहित होता जान पडता था। सच्चे भ्रातृ-स्नेह ने मनोमालिन्य को मिटा दिया। गला भर आया और अश्रुजल वहने लगा। दोनो भाई दो-तीन मिनट तक इसी भाँति रोते रहे। ज्ञानशकर ने समझा था कि भाई साहव के साथ वहुत-सा आडम्वर होगा, ठाट-वाट के साथ आते होगे, पर उनके वस्त्र और सफर का सामान वहुत मामूली था। हाँ, उनका शरीर पहले से कही हृष्ट-पुष्ट था और यद्यपि वह ज्ञानशकर से पाँच साल वडे थे, पर देखने मे उनसे छोटे मालूम होते थे, और चेहरे पर स्वास्थ्य की कान्ति झलक रही थी।

ज्ञानशकर अभी तक कुलियो को पुकार ही रहे थे कि प्रेमशकर ने अपना सव सामान उठा लिया और वाहर चले। ज्ञानशकर सकोच के मारे पीछे हट गये कि किसी

जान-पहचान के आदमी से भेंट न हो जाय।

दोनो आदमी ताँगे पर बैठे; तो प्रेमशकर बोले, छह साल के बाद आता हूँ, पर ऐसा मालूम होता है कि यहाँ से गये थोड़े ही दिन हुए है। घर पर तो सब कुशल है न ?

ज्ञान—जी हाँ, सब कुशल है। आपने तो इतने दिन हो गये, एक पत्र भी न भेजा, बिल्कुल भुला दिया। आप के ही वियोग मे बाबू जी के प्राण गये।

प्रेम—वह शोक समाचार तो मुझे यहाँ के समाचार पत्र से मालूम हो गया था, पर कुछ ऐसे ही कारण थे कि आ न सका। "हिन्दुस्तान रिव्यू" मे तुमने नैनीताल के जीवन पर जो लेख लिखा था, उसे पढ कर मैंने आने का निश्चय किया। तुम्हारे उन्नत विचारो ने ही मुझे खीचा, नही तो सम्भव है, मैं अभी कुछ दिन और न आता। तुम पालिटिक्स (राजनीति) मे भाग लेते हो न ?

ज्ञान—(सकोच भाव से) अभी तक तो मुझे इसका अवसर नही मिला। हाँ, उसकी स्टडी (अध्ययन) करता रहता हूँ।

प्रेम—कौन-सा प्रोफेशन (पेशा) अख्तियार किया ?

ज्ञान—अभी तो घर के ही झझटो से छुट्टी नही मिली। जमीदारी के प्रबध के लिए मेरा घर रहना जरूरी था। आप जानते है यह जजाल है। एक न एक झगडा लगा ही रहता है। चाहे उससे लाभ कुछ न हो पर मन की प्रवृत्ति आलस्य की ओर हो जाती है। जीवन के कर्म-क्षेत्र मे उतरने का साहस नही होता। यदि यह अवलम्बन न होता तो अब तक मैं अवश्य वकील होता।

प्रेम—तो तुम भी मिल्कियत के जाल मे फँस गये और अपनी बुद्धि-शक्तियो का दुरुपयोग कर रहे हो ? अभी जायदाद के अन्त होने मे कितनी कसर है ?

ज्ञान—चाचा साहब का बस चलता तो कभी का अन्त हो चुका होता, पर शायद अब जल्द अन्त न हो। मैं चाचा साहब से अलग हो गया हूँ।

प्रेम—खेद के साथ ? यह तुमने क्या किया। तब तो उनका गुजर बडी मुश्किल से होता होगा ?

ज्ञान—कोई तकलीफ नही है। दयाशकर पुलिस मे है और जायदाद से दो हजार मिल जाते है।

प्रेम—उन्हे अलग होने का दुःख तो बहुत हुआ होगा। वस्तुत मेरे भागने का मुख्य कारण उन्ही का प्रेम था। तुम तो उस वक्त शायद स्कूल मे पढते थे, मै कालेज से ही स्वराज्य आन्दोलन मे अग्रसर हो गया। उन दिनो नेतागण स्वराज्य के नाम से कॉपते थे। इस आन्दोलन मे प्राय नवयुवक ही सम्मिलित थे। मैंने साल भर बडे उत्साह से काम किया। पुलिस ने मुझे फँसाने का प्रयास करना शुरू किया। मुझे ज्यो ही मालूम हुआ कि मुझ पर अभियोग चलाने की तैयारियाँ हो रही है, त्यो ही मैंने जान ले कर भागने मे ही कुशल समझी। मुझे फँसे देख कर बाबू जी तो चाहे धैर्य से काम लेते, पर चचा साहब निस्सन्देह आत्म-हत्या कर लेते। इसी भय से मैंने पत्र-व्यवहार भी बन्द कर दिया कि ऐसा न हो, पुलिस यहाँ लोगो को तग करे। बिना

देशाटन किये अपनी पराधीनता का यथेष्ट ज्ञान नही होता। जिन विचारो के लिए मैं यहाँ राजद्रोही समझा जाता था, उससे कही स्पष्ट बाते अमेरिकावाले अपने शासकों को नित्य सुनाया करते है, बल्कि वहाँ शासन की समालोचना जितनी ही निर्भीक हो, उतनी ही आदरणीय समझी जाती है। इस बीच मे यहाँ भी विचार-स्वातत्र्य की कुछ वृद्धि हुई है। तुम्हारा लेख इसका उत्तम प्रमाण है। इन्ही सुव्यवस्थाओ ने मुझे आने पर प्रोत्साहित किया और सत्य तो यह है कि अमेरिका से दिनो दिन अभक्ति होती जाती थी। वहाँ धन और प्रभुत्व की इतनी क्रूर लीलाएँ देखी कि अन्त मे उनसे घृणा हो गयी। यहाँ के देहातो और छोटे शहरो का जीवन उससे कही सुख कर है। मेरा विचार भी सरल जीवन व्यतीत करने का है। हाँ, यथासाध्य कृषि की उन्नति करना चाहता हूँ।

ज्ञान—यह रहस्य आज खुला। अभी तक मैं और घर के सभी लोग यही समझते थे कि आप केवल विद्योपार्जन के लिए गये हे। मगर आज कल तो स्वराज्यान्दोलन बहुत शिथिल पड गया है। स्वराज्यवादियो की जबान ही बन्द कर दी गयी है।

प्रेम—यह तो कोई बुरी बात नही, अब लोग बातें करने की जगह काम करेंगे। हमे बाते करते एक युग बीत गया। मुझे भी शब्दो पर विश्वास नही रहा। हमे अब सगठन की, परस्पर प्रेम-व्यवहार की और सामाजिक अन्याय को मिटाने की जरूरत है। हमारी आर्थिक दशा भी खराब हो रही है। मेरा विचार कृषि विधान मे सशोधन करने का है। इसलिए मैंने अमेरिका मे कृषिशास्त्र का अध्ययन किया है।

यो बातें करते हुए दोनो भाई मकान पर पहुँचे। प्रेमशकर को अपना घर बहुत छोटा दिखाई दिया। उनकी आँखे अमेरिका की गगनस्पर्शी अट्टालिकाओ के देखने को आदी हो रही थी। उन्हे कभी अनुमान ही न हुआ था कि मेरा घर इतना पस्त है। कमरे मे आये तो उसकी दशा देख कर और भी हताश हो गये। जमीन पर फर्श तक न था। दो-तीन कुर्सियाँ जरूर थी, लेकिन बाबा आदम के जमाने की, जिन पर गर्द जमी हुई थी। दीवारो पर तस्वीरे नयी थी, लेकिन बिलकुल भद्दी और अस्वाभाविक। यद्यपि वह सिद्धान्त रूप से विलास-वस्तुओ की अवहेलना करते थे, पर अभी तक रुचि उनकी ओर से न हटी थी।

लाला प्रभाशकर उनकी राह देख रहे थे। आ कर उनके गले से लिपट गये और फूट-फूट कर रोने लगे। महल्ले के और सज्जन भी मिलने आ गये। दो-ढाई घटो तक प्रेमशकर उन्हे अमेरिका के वृत्तान्त सुनाते रहे। कोई वहाँ से हटने का नाम न लेता था। किसी को यह ध्यान न होता था कि ये बेचारे सफर करके आ रहे है, इनके नहाने खाने का समय आ गया है, यह बाते फिर सुन लेंगे। आखिर ज्ञानशकर को साफ-साफ कहना पडा कि आप लोग कृपा करके भाई साहब को भोजन करने का समय दीजिए, बहुत देर हो रही है।

प्रेमशकर ने स्नान किया, सन्ध्या की और ऊपर भोजन करने गये। इन्हे आशा थी कि श्रद्धा भोजन परसेगी, वही उससे भेंट होगी, खूब बाते करूँगा। लेकिन यह

आशा पूरी न हुई। एक चौकी पर कालीन बिछा हुआ था, थाल परसा रखा था, पर श्रद्धा वहाँ उनका स्वागत करने के लिए न थी। प्रेमशकर को उसकी इस प्रेम शून्यता पर बडा दु ख हुआ। उनके लौटने का एक मुख्य कारण श्रद्धा से प्रेम था। उसकी याद इन्हे हमेशा तडपाया करती थी, उसकी प्रेम-मूर्ति सदैव उनके हृदय नेत्रो के सामने रहती थी। उन्हे प्रेम के बाह्याडम्बर से घृणा थी। वह अब भी स्त्रियो की श्रद्धा, पति-भक्ति, लज्जाशीलता और प्रेमानुराग पर मोहित थे। उन्हे श्रद्धा को नीचे दीवानखाने मे देख कर खेद होता, पर उसे यहाँ न देख कर उनका हृदय व्याकुल हो गया। यह लज्जा नही, हया नही, प्रेम शैथिल्य है। इतने मर्माहत हुए कि जी चाहा इसी क्षण यहाँ से चला जाऊँ और फिर आने का नाम न लूँ पर धैर्य से काम लिया। भोजन पर बैठे। ज्ञानशकर से बोले, आओ भाई बैठो। माया कहाँ है, उसे भी बुलाओ, एक मुद्दत के बाद आज सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

ज्ञानशकर ने सिर नीचा करके कहा—आप भोजन कीजिए, मैं फिर खा लूंगा।

प्रेम—ग्यारह तो बज रहे है, अब कितनी देर करोगे? आओ, बैठ जाओ। इतनी चीजें मैं अकेले कहाँ तक खाऊँगा? मुझे अब धैर्य नही है। बहुत दिनो के बाद चपातियो के दर्शन हुए हैं। हलुआ, समोसे, खीर आदि का तो स्वाद ही मुझे भूल गया। अकेले खाने मे आनन्द नही आता। यह कैसा अतिथि सत्कार है कि मैं तो यहाँ भोजन करूँ और तुम कही और। अमेरिका मे तो मेहमान इसे अपना घोर अपमान समझता।

ज्ञान—मुझे तो इस समय क्षमा ही कीजिए। मेरी पाचन-शक्ति दुर्बल है, बहुत पथ्य से रहता हूँ।

प्रेमशकर भूल ही गये थे कि समुद्र मे जाते ही हिन्दू-धर्म घुल जाता है। अमेरिका से चलते समय उन्हे ध्यान भी न था कि बिरादरी मेरा बहिष्कार करेगी, यहाँ तक कि मेरा सहोदर भाई भी मुझे अछूत समझेगा। पर इस समय जब उनके बराबर आग्रह करने पर भी ज्ञानशकर उनके साथ भोजन करने नही बैठे और एक न एक बहाना करके टालते रहे तो उन्हे वह भूली हुई बात याद आ गयी। सामने के बर्तनो ने इस विचार को पुष्ट कर दिया, फूल या पीतल का कोई बर्तन न था। सब बर्तन चीनी के थे और गिलास शीशे का। शकित भाव से बोले, आखिर यह बात क्या है कि तुम्हे मेरे साथ बैठने मे इतनी आपत्ति है? कुछ छूत-छात का विचार तो नही है?

ज्ञानशकर ने झेपते हुए कहा, अब मैं आपसे क्या कहूँ?, हिन्दुओ को तो आप जानते ही हैं, कितने मिथ्यावादी होते है। आपके लौटने का समाचार जब से मिला है, सारी बिरादरी मे एक तूफान सा उठा हुआ है। मुझे स्वय विदेश यात्रा मे कोई आपत्ति नही है। मैं देश और जाति की उन्नति के लिए इसे जरूरी समझता हूँ और स्वीकार करता हूँ कि इस नाकेबदी से हमको बडी हानि हुई है, पर मुझे इतना साहस नही है कि बिरादरी से विरोध कर सकूं।

प्रम—अच्छा यह बात है! आश्चर्य है कि अब तक क्यो मेरी आँखो पर परदा

पडा रहा ? अब मैं ज्यादा आग्रह न करूँगा। भोजन करता हूँ, पर खेद यह है कि तुम इतने विचारशील हो कर बिरादरी के गुलाम बने हुए हो, विशेषकर जब तुम मानते हो कि इस विषय मे बिरादरी का बन्धन सर्वथा असगत है। शिक्षा का फल यह होना चाहिए कि तुम बिरादरी के सूत्रधार बनो, उसको सुधारने का प्रयास करो, न यह कि उसके दबाव से अपने सिद्धातो को बलिदान कर दो। यदि तुम स्वाधीन भाव से समुद्र यात्रा को दूषित समझते तो मुझे कोई आपत्ति न होती। तुम्हारे विचार और व्यवहार अनुकूल होते। लेकिन अन्त करण से किसी बात से कायल हो कर केवल निन्दा या उपहास के भय से उसका व्यवहार न करना तुम जैसे उदार पुरुष को शोभा नही देता। अगर तुम्हारे धर्म मे किसी मुसाफिर की बातो पर विश्वास करना मना न हो तो मैं तुम्हे यकीन दिलाता हूँ कि अमेरिका मे मैंने कोई ऐसा कर्म नही किया जिसे हिन्दू-धर्म निषिद्ध ठहराता हो। मैंने दर्शन शास्त्रो पर कितने ही व्याख्यान दिये, अपने रस्म-रिवाज और वर्णाश्रम धर्म का समर्थन करने मे सदैव तत्पर रहा, यहाँ तक कि पर्दे की रस्म की भी सराहना करता रहा, और मेरा मन इसे कभी नही मान सकता कि यहाँ किसी को मुझे विधर्मी समझने का अधिकार है। मैं अपने धर्म और मत का वैसा ही भक्त हूँ, जैसा पहले था—बल्कि उससे ज्यादा। इससे अधिक मैं अपनी सफाई नही दे सकता।

ज्ञान—इस सफाई की तो कोई जरूरत ही नही, क्योकि यहाँ लोगो को विदेश-यात्रा पर जो अश्रद्धा है, वह किसी तर्क या सिद्धान्त के अधीन नही है। लेकिन इतना तो आपको भी मानना पड़ेगा कि हिन्दू-धर्म कुछ रीतियो और प्रथाओ पर अवलम्बित है और विदेश मे आप उनका पालन समुचित रीति से नही कर सकते। आप वेदो से इन्कार कर सकते है, ईसा या मूसा के अनुयायी बन सकते है, किन्तु इन रीतियो को नही त्याग सकते। इसमे सन्देह नही कि दिनो-दिन यह बन्धन ढीले होते जाते हैं और इसी देश मे ऐसे कितने ही सज्जन हैं जो प्रत्येक व्यवहार का भी उल्लघन करके भी हिन्दू बने हुए है, किन्तु बहुमत उनकी उपेक्षा करता है और उनको निन्द्य समझता है। इसे आप मेरी आत्मभीरुता या अकर्मण्यता समझे, किन्तु मैं बहुमत के साथ चलना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। मैं बलप्रयुक्त सुधार का कायल नही हूँ। मेरा विचार है कि हम बिरादरी मे रह कर उससे कही अधिक सुधार कर सकते हैं जितना स्वाधीन हो कर।

प्रेमशकर ने इसका कुछ जवाब न दिया। भोजन करके लेटे तो अपनी परिस्थिति पर विचार करने लगे। मैंने समझा था यहाँ शान्तिपूर्वक अपना काम करूँगा, कम से कम अपने घर मे कोई मुझसे विरोध न करेगा, किन्तु देखता हूँ, यहाँ कुछ दिन घोर अशान्ति का सामना करना पडेगा। ज्ञानशकर के उदारतापूर्ण लेख ने मुझे भ्रम मे डाल दिया। खैर कोई चिंता नही। बिरादरी मेरा कर ही क्या सकती है ? उसमे रह कर मुझमे कौन से सुर्खाब के पर लग जायेंगे। अगर कोई मेरे साथ नही खाता तो न खाय, मैं भी उसके साथ न खाऊँगा। कोई मुझसे [illegible]वास नही करता, न करे, मै भी [illegible]

रहूँगा। वाह ! परदेश क्या गया, मानो कोई पाप किया; पर पापियो को तो कोई बिरादरी से च्युत नही करता। धर्म बेचनेवाले, ईमान बेचनेवाले, सन्तान बेचनेवाले बगले बजाते हैं, कोई उनकी ओर कडी आँख से देख नही सकता। ऐसे पतितो, ऐसे भ्रष्टाचारियो मे रहने के लिए मैं अपनी आत्मा का सर्वनाश क्यो करूँ ?

अकस्मात् उन्हे ध्यान आया, कही श्रद्धा भी मेरा बहिष्कार न कर रही हो ! इन अनुदार भावो का उस पर भी असर न पड़ा हो ! फिर तो मेरा जीवन नष्ट हो जायगा। इस शका ने उन्हे घोर चिन्ता मे डाल दिया और तीसरे पहर तक उनकी व्यग्रता इतनी बढी कि वह स्थिर न रह सके। माया से श्रद्धा का कमरा पूछ कर ऊपर चढ गये।

श्रद्धा इस समय अपने द्वार पर इस भाँति खडी थी, जैसे पथिक रास्ता भूल गया हो। उसका हृदय आनन्द से नही, एक अव्यक्त भय से काँप रहा था। यह शुभ दिन देखने के लिए उसने तपस्या की थी। यह आकाक्षा उसके अन्धकारमय जीवन का दीपक, उसकी डूबती हुई नौका की लगर थी। महीने के तीस दिन और दिन के चौबीस घटे यही मनोहर स्वप्न देखने मे कटते थे। विडम्बना यह थी कि वे आकाक्षाएँ और कामनाएँ पूरी होने के लिए नही, केवल तडपाने के लिए थी। वह दाह और सतोष शान्ति का इच्छुक न था। श्रद्धा के लिए प्रेमशकर केवल एक कल्पना थे। इसी कल्पना पर वह प्राणार्पण करती थी। उसकी भक्ति केवल उनकी स्मृति पर थी, जो अत्यन्त मनोरम, भावमय और अनुरागपूर्ण थी। उनकी उपस्थिति ने इस सुखद कल्पना और मधुर स्मृति का अन्त कर दिया। वह जो उनकी याद पर जान देती थी, अब उनकी सत्ता से भयभीत थी, क्योकि वह कल्पना धर्म और सतीत्व की पोषक थी, और यह सत्ता उनकी घातक। श्रद्धा को सामाजिक अवस्था और समयोचित आवश्यकताओ का ज्ञान था। परम्परागत बन्धनो को तोडने के लिए जिस विचार स्वातत्र्य और दिव्य ज्ञान की जरूरत थी उससे वह रहित थी। वह एक साधारण हिंदू अबला थी। वह अपने प्राणो से, अपने प्राणप्रिय स्वामी के हाथ धो सकती थी, किंतु अपने धर्म की अवज्ञा करना अथवा लोक-निंदा को सहन करना उसके लिए असभव था। जब से उसने सुना था कि प्रेमशकर घर आ रहे है, उसकी दशा उस अपराधी की सी हो रही थी, जिसके सिर पर नगी तलवार लटक रही हो। आज जब से वह नीचे आ कर बैठे थे उसके आँसू एक क्षण के लिए भी न थमते थे। उसका हृदय काँप रहा था कि कही वह ऊपर न आते हो, कही वह आ कर मेरे सम्मुख खडे न हो जायँ, मेरे अग को स्पर्श न कर लें ! मर जाना इससे कही आसान था। मैं उनके सामने कैसे खडी हूँगी, मेरी आँखे क्योकर उनसे मिलेगी, उनकी बातो का क्योकर जवाब दूँगी ? वह इन्ही जटिल चिंताओ मे मग्न खड़ी थी कि इतने मे प्रेमशकर उसके सामने आ कर खडे ही हो गये। श्रद्धा पर अगर बिजली गिर पडती, भूमि उसके पैरो के नीचे से सरक जाती अथवा कोई सिंह आ कर खड़ा हो जाता तो भी वह इतनी असावधान हो कर अपने कमरे मे भाग न जाती। वह तो भीतर जा कर एक कोने मे खड़ी हो गयी। भय से उसका एक-एक रोम काँप रहा था। प्रेमशकर सन्नाटे मे आ

गये। कदाचित् आकाश सामने से लुप्त हो जाता तो भी उन्हे इतना विस्मय न होता। वह क्षण भर मूर्तिवत खड़े रहे और एक ठडी साँस ले कर नीचे की ओर चले। श्रद्धा के कमरे मे जाने, उससे कुछ पूछने या कहने का उन्हे साहस न हुआ। इस दुरनुराग ने उनका उत्साह भग कर दिया, उन काव्यमय स्वप्नो का नाश कर दिया जो बरसों से उनकी चैतन्यावस्था के सहयोगी बने हुए थे। श्रद्धा ने किवाड़ की आड से उन्हे जीने की ओर जाते देखा। हा! इस समय उसके हृदय पर क्या बीत रही थी, कौन जान सकता है? उसका प्रिय पति जिसके वियोग मे उसने सात वर्ष रो-रो कर काटे थे सामने से भग्न हृदय, हताश चला जा रहा था और वह इस भाँति सशक खड़ी थी मानो आगे कोई बृहद जलागार है। धर्म पैरों को बढ़ने न देता था। प्रेम उन्मत्त तरगों की भाँति बार-बार उमड़ता था, पर धर्म की शिलाओ से टकरा कर लौट आता था। एक बार वह अधीर हो कर चली कि प्रेमशकर का हाथ पकड कर फेर लाऊँ, द्वार तक आयी, पर आगे न बढ़ सकी। धर्म ने ललकार कर कहा, प्रेम नश्वर है, निस्सार है, कौन किसका पति और कौन किसकी पत्नी? यह सब माया-जाल है। मैं अविनाशी हूँ, मेरी रक्षा करो। श्रद्धा स्तम्भित हो गयी। मन मे स्थिर किया जो स्वामी सात समुन्दर पार गया; वहाँ न जाने क्या खाया, क्या पीया, न जाने किसके साथ रहा, अब उससे क्या नाता? किन्तु प्रेमशंकर जीने से नीचे उतर गये तब श्रद्धा मूर्छित हो कर गिर गयी। उठती हुई लहरे टीले को न तोड़ सकी, पर तटो को जल मग्न कर गयी।

१६

प्रेमशकर यहाँ दो सप्ताह ऐसे रहे, जैसे कोई जल्द छूटनेवाला कैदी। जरा भी जी न लगता था। श्रद्धा की धार्मिकता से उन्हे जो आघात पहुँचा था उसकी पीडा एक क्षण के लिए भी शान्त न होती थी। बार-बार इरादा करते कि फिर अमेरिका चला जाऊँ और फिर जीवन पर्यन्त आने का नाम न लूँ। किन्तु यह आशा कि कदाचित देश और समाज की अवस्था का ज्ञान श्रद्धा में सद्विचार उत्पन्न कर दे, उनका दामन पकड लेती थी। दिन के दिन दीवानखाने मे पड़े रहते, न किसी से मिलना, न जुलना, कृषि-सुधार के इरादे स्थगित हो गये। उस पर विपत्ति यह थी कि ज्ञानशकर बिरादरीवालो के षड्यन्त्रो के समाचार ला कर उन्हे और भी उद्विग्न करते रहते थे। एक दिन खबर लाये कि लोगो ने एक महती सभा करके आपको समाज-च्युत करने का प्रस्ताव पास कर दिया। दूसरे दिन ब्राह्मणो की एक सभा की खबर लाये, जिसमे उन्होने निश्चय किया था कि कोई प्रेमशंकर के घर पूजा-पाठ करने न जाय। इसके एक दिन पीछे श्रद्धा के पुरोहित जी ने आना छोड़ दिया। ज्ञानशंकर बातो-बातो मे यह भी जना दिया करते थे कि आपके कारण मैं भी बदनाम हो रहा हूँ और शका है कि लोग मुझे भी त्याग दे। भाई के साथ तो यह व्यवहार था, और बिरादरी के नेताओं के पास आ कर प्रेमशकर के झूठे आक्षेप करते—वह देवताओ को गालियाँ देते हैं, कहते हैं, माँस सब एक है, चाहे किसी का हो। खाना खा कर कभी हाथ-मुँह तक नहीं

धोते। कहते है, चमार भी कर्मानुसार ब्राह्मण हो सकता है। यह बाते सुन-सुन कर बिरादरीवालो की द्वेषाग्नि और भी भडकती थी, यहाँ तक कि कई मनचले नवयुवक तो इस पर उद्यत थे कि प्रेमशकर को कही अकेले पा जायँ तो उनकी अच्छी तरह खबर ले। 'तिलक' एक स्थानीय पत्र था। उसमे इस विषय पर खूब जहर उगला जाता था। ज्ञानशकर नित्य वह पत्र ला कर अपने भाई को सुनाते और यह सब केवल इसलिए कि वह निराश और भयभीत हो कर यहाँ से भाग खडे हो और मुझे जायदाद मे हिस्सा न देना पडे। प्रेमशकर साहस और जीवट के आदमी थे, इन धमकियो की उन्हे परवाह न थी, लेकिन उन्हे मजूर न था कि मेरे कारण ज्ञानशकर पर आँच आये। श्रद्धा की ओर से भी उनका चित्त फटता जाता था। इस चिन्तामय अवस्था का अन्त करने के लिए वह कही जा कर शान्ति के साथ रहना और अपने जीवनोद्देश्य को पूरा करना चाहते थे। पर जायँ कहाँ? ज्ञानशकर से एक बार लखनऊ मे रहने की इच्छा प्रकट की थी, पर उन्होने इतनी आपत्तियाँ खडी की, कष्टो और असुविधाओ का ऐसा चित्र खीचा कि प्रेमशकर उनकी नीयत को ताड गये। वह शहर के निकट ही थोडी सी ऐसी जमीन चाहते थे, जहाँ एक कृषिशाला खोल सकें। इसी धुन मे नित्य इधर-उधर चक्कर लगाया करते थे। स्वभाव मे सकोच इतना कि किसी से अपने इरादे जाहिर नही करते। हाँ, लाला प्रभाशकर का पितृवत प्रेम और स्नेह उन्हे अपने मन का विचार प्रकट करने पर बाध्य कर देता था। लाला जी को जब अवकाश मिलता, वह प्रेमशकर के पास आ बैठते और अमेरिका के वृत्तान्त बडे शौक से सुनते। प्रेमशकर दिनो-दिन उनकी सज्जनता पर मुग्ध होते जाते थे। ज्ञानशकर तो सदैव उनका छिद्रान्वेषण किया करते पर उन्होने कभी भूल कर भी ज्ञानशकर के खिलाफ जबान नही खोली। वह प्रेमशकर के विचार से सहमत न होते थे, यही सलाह दिया करते कि कही सरकारी नौकरी कर लो।

एक दिन प्रेमशकर को उदास और चिन्तित देख कर लाला जी बोले, क्या यहाँ जी नही लगता?

प्रेम—मेरा विचार है कि कही अलग मकान ले कर रहूँ। यहाँ मेरे रहने से सबको कष्ट होता है।

प्रभा—तो मेरे घर उठ चलो, वह भी तुम्हारा ही घर है। मैं भी कोई बेगाना नही हूँ। वहाँ तुम्हे कोई कष्ट न होगा। हम लोग इसे अपना धन्य भाग समझेंगे। कही नौकरी के लिए लिखा?

प्रेम—मेरा इरादा नौकरी करने का नही है।

प्रभा—आखिर तुम्हे नौकरी से क्यो इतनी नफरत है? नौकरी कोई बुरी चीज है?

प्रेम—जी नही, मै उसे बुरा नही कहता। पर मेरा मन उससे भागता है।

प्रभा—तो मन को समझाना चाहिए न? आज सरकारी नौकरी का जो मान-सम्मान है, वह और किस का है? और फिर आमदनी अच्छी, काम कम, छुट्टी ज्यादा। व्यापार मे नित्य हानि का भय, जमीदारी मे नित्य अधिकारियो की खुशामद

और असामियो के बिगडने का खटका। नौकरी इन पेशो से उत्तम है। खेती-बारी का शौक उस हालत मे भी पूरा हो सकता है। यह तो रईसो के मनोरजन की सामग्री है। अन्य देशो के हालात तो नही जानता, पर यहाँ किसी रईस के लिए खेती करना अपमान की बात है। मुझे भूखो मरना कबूल है, पर दूकानदारी या खेती करना कबूल नही।

प्रेम—आपका कथन सत्य है, पर मैं अपने मन से मजबूर हूँ। मुझे थोड़ी सी जमीन की तलाश है, पर इधर कही नजर नही आती।

प्रभा—अगर इसी पर मन लगा है तो करके देख लो। क्या करूँ, मेरे पास शहर के निकट जमीन नही है, नही तुम्हे हैरान न होना पडता। मेरे गाँव मे करना चाहो तो जितनी जमीन चाहो मिल सकती है; मगर दूर है।

इसी हैस-बैस मे चैत का महीना गुजर गया। प्रेमशकर ने कृषि-प्रयोगशाला की आवश्यकता की ओर रईसो का ध्यान आकर्षित करने के लिए समाचार-पत्रो मे कई, विद्वत्तापूर्ण लेख छपवाये। इन लेखो का बडा आदर हुआ। उन्हे पत्रो ने उद्धृत किया, उन पर टीकाएँ की और कई अन्य भाषाओ मे उनके अनुवाद भी हुए। इसका फल यह हुआ कि तालुकेदार एसोसिएशन ने अपने वार्षिकोत्सव के अवसर पर प्रेमशकर को कृषि-विषयक एक निबन्ध पढने के लिए निमन्त्रित किया। प्रेमशकर आनन्द से फूले न समाये। बडी खोज और परिश्रम से एक निबन्ध लिखा और लखनऊ आ पहुँचे। कैसरबाग मे इस उत्सव के लिए एक विशाल पडाल बनाया गया था। राय कमलानन्द इस सभा के मन्त्री चुने गये थे। मई का महीना था। गरमी खूब पडने लगी थी। मैदानो मे सन्ध्या समय तक लू चला करती थी। घर मे बैठना नितान्त दुरूह था। रात के आठ बजे प्रेमशकर राय साहब के निवास स्थान पर पहुँचे। राय साहब ने तुरन्त उन्हे अन्दर बुलाया। वह इस समय अपने दीवनखाने के पीछे की ओर एक छोटी सी कोठरी मे बैठे हुए थे। ताक पर एक धुंधला सा दीपक जल रहा था। गर्मी इतनी थी कि जान पडता था अग्निकुड है। पर इस आग की भट्टी मे राय साहब एक मोटा ऊनी कम्बल ओढे हुए थे। उनके मुख पर विलक्षण तेज था और नेत्रो से दिव्य प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा था। प्रतिभा और सौम्य की सजीव मूर्ति मालूम होते थे। उनका शारीरिक गठन और दीर्घकाय किसी पहलवान को भी लज्जित कर सकता था। उनके गले में एक रुद्राक्ष की माला थी, बगल मे एक चाँदी का प्याला और गडुवा रखा हुआ था। तख्ते के एक ओर दो मोटे ताजे जवान बैठे पंजा लडा रहे थे और उसकी दूसरी ओर तीन कोमलांगी रमणियाँ वस्त्राभूषणो से सजी हुई विराज रही थी। इन्द्र का अखाड़ा था, जिसमे इन्द्र, काले देव और अप्सराएँ सभी अपना-अपना पार्ट खेल रहे थे।

प्रेमशकर को देखते ही राय साहब ने उठ कर बड़े तपाक से उनका स्वागत किया। उनके बैठने को एक कुर्सी मँगायी और बोले, क्षमा कीजिए, मैं इस समय देवोपासना कर रहा हूँ, पर आपसे मिलने के लिए ऐसा उत्कठित था कि एक क्षण का विलम्ब

भी न सह सका। आपको देख कर चित्त प्रसन्न हो गया। सारा ससार ईश्वर का विराट् स्वरूप है। जिसने ससार को देख लिया, उसने ईश्वर के विराट्- स्वरूप का दर्शन कर लिया। यात्रा अनुभूत ज्ञान प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन है। कुछ जल-पान के लिए मँगाऊँ ?

प्रेम—जी नही, अभी जलपान कर चुका हूँ।

राय साहब—समझ गया, आप भी जवानी मे बूढ़े हो गये। भोजन-आहार का यही पथ्यापथ्य-विचार बुढ़ापा है। जवान वह है जो भोजन के उपरान्त फिर भोजन करे, ईंट-पत्थर तक भक्षण कर ले। जो एक बार जलपान करके फिर नही खा सकता, जिसके लिए कुम्हडा वादी है, करेला गर्म, कटहल गरिष्ठ, उसे मैं बूढ़ा ही समझता हूँ। मैं सर्वभक्षी हूँ और इसी का फल है कि साठ वर्ष की आयु होने पर भी मैं जवान हूँ।

यह कह कर राय साहब ने लोटा मुँह से लगाया और कई घूँट गट-गट पी गये, फिर प्याले मे से कई चमचे निकाल कर खाये और जीभ चटकाते हुए बोले, यह न समझिए कि मैं स्वादेन्द्रिय का दास हूँ। मैं इच्छाओ का दास नही, स्वामी बन कर रहता हूँ। यह दमन करने का साधन मात्र है। तैराक वह है जो पानी मे गोते लगाये। योद्धा वह है जो मैदान मे उतरे। बवा से भाग कर बवा से बचने का कोई मूल्य नही। ऐसा आदमी बवा की चपेट मे आ कर फिर नही बच सकता। वास्तव मे रोग-विजेता वही है जिसकी स्वाभाविक अग्नि, जिसकी अन्तरस्थ ज्वाला, रोग-कीटो को भस्म कर दे। इस लोटे में आग की चिनगारियाँ हैं, पर मेरे लिए शीतल जल है। इस प्याले मे वह पदार्थ है, जिसका एक चमचा किसी योगी को भी उन्मत्त कर सकता है, पर मेरे लिए सूखे साग के तुल्य है। आजकल यही मेरा आहार है। मैं गर्मी मे आग खाता हूँ और आग ही पीता हूँ; मैं शिव और शक्ति का उपासक हूँ। विष को दूध-घी समझता हूँ। जाड़े मे हिमकणो का सेवन करता हूँ और हिमालय की हवा खाता हूँ। हमारी आत्मा ब्रह्म का ज्योतिस्वरूप है। उसे मैं देश तथा इच्छाओ और चिन्ताओ सें मुक्त रखना चाहता हूँ। आत्मा के लिए पूर्ण अखड स्वतत्रता सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। मेरे किसी काम का कोई निर्दिष्ट समय नही। जो इच्छा होती है, करता हूँ। आपको कोई कष्ट तो नही है, आराम से बैठिए।

प्रेम—बहुत आराम से बैठा हूँ।

राय साहब—आप इस मूर्ति को देख कर चौंकते होगे। पर मेरे लिए यह मिट्टी के खिलौने हैं। विषयासक्त आँखें इनके रूप लावण्य पर मिटती हैं, मैं उस ज्योति को देखता हूँ जो इनके घट मे व्यापक है। वाह्यरूप कितना ही सुन्दर क्यों न हो, मुझे विचलित नही कर सकता। वह भकुए हैं, जो गुफाओ और कन्दराओं मे बैठ कर तप और ध्यान के स्वाँग भरते हैं। वे कायर हैं, प्रलोभनो से मुँह छिपानेवाले, तृष्णाओ से जान बचानेवाले। वे क्या जानें कि आत्म-स्वातंत्र्य क्या वस्तु है ? चित्त की दृढ़ता और मनोबल का उन्हें अनुभव ही नही हुआ। वह सूखी पत्तियाँ हैं जो हवा के एक

झोके से जमीन पर गिर पडती है। योग कोई दैहिक क्रिया नही है, आत्म-शुद्धि, मनोबल और इन्द्रिय-दमन ही सच्चा योग, सच्ची तपस्या है। वासनाओ मे पड़ कर अविचलित रहना ही सच्चा वैराग्य है। उत्तम पदार्थों का सेवन कीजिए, मधुर गान का आनन्द उठाइए, सौदर्य की उपासना कीजिए; परन्तु मनोवृत्तियो का दास न बनिए; फिर आप सच्चे वैरागी हैं। (दोनो पहलवानो से) पडा जी! तुम बिलकुल बुद्धू ही रहे। यह महाशय अमेरिका का भ्रमण कर आये है, हमारे दामाद हैं। इन्हे कुछ अपनी कविता सुनाओ, खूब फडकते हुए कवित्त हों।

दोनो पंडे खडे हो गये और स्वर मिला कर एक कवित्त पढ़ने लगे। कवित्त क्या था, अपशब्दो का पोथा और अश्लीलता का अविरल प्रवाह था। एक-एक शब्द बेहयायी और बेशर्मी मे डूबा हुआ था। मुँहफट भाँड भी लज्जास्पद अगो का ऐसा नग्न, ऐसा घृणोत्पादक वर्णन न कर सकते होगे। कवि ने समस्त भारतवर्ष के कबीर और फाग का इत्र, समस्त कायस्थ समाज की वैवाहिक गजलो का सत, समस्त भारतीय नारि-वृन्द की प्रथा-प्रणीत गालियो का निचोड़ और समस्त पुलिस विभाग के कर्मचारियो के अपशब्दो का जौहर खीच कर रख दिया था, और वह गन्दे कवित्त इन पडो के मुँह से ऐसी सफाई से निकल रहे थे, मानो फूल झड़ रहे है। राय साहब मूर्तिवत् बैठे थे, हँसी का तो कहना ही क्या, ओठो पर मुस्कराहट का चिह्न भी न था। तीनों वेश्याओ ने शर्म से सिर झुका लिया, किन्तु प्रेमशकर हँसी को न रोक सके। हँसते-हँसते उनके पेट मे बल पड़ गये।

पडो के चुप होते ही समाजियो का आगमन हुआ। उन्होने अपने साज मिलाये, तबले पर थाप पड़ी, सारगियो ने स्वर मिलाया और तीनो रमणियाँ एक ध्रुपद अलापने लगी। प्रेमशंकर को स्वर-लालित्य का वही आनन्द मिल रहा था जो किसी गँवार को उज्ज्वल रत्नो के देखने से मिलता है। इस आनन्द मे रसज्ञता न थी; किन्तु मर्मज्ञ राय साहब मस्त हो-हो कर झूम रहे थे और कभी-कभी स्वय गाने लगते थे।

आधी रात तक मधुर अलाप की ताने उठती रही। जब प्रेमशकर ऊँघ-ऊँघ कर गिरने लगे तब सभा विसर्जित हुई। उन्हे राय साहब की बहुज्ञता और प्रतिभा पर आश्चर्य हो रहा था। इस मनुष्य मे कितना बुद्धि-चमत्कार, कितना आत्मबल, कितनी सिद्धि, कितनी सजीवता है और जीवन का कितना विलक्षण आदर्श!

दूसरे दिन प्रेमशकर सो कर उठे तो आठ बजे थे। मुँह-हाथ धो कर बरामदे में टहलने लगे कि सामने से राय साहब एक मुश्की घोड़े पर सवार आते दिखायी दिये। शिकारी वस्त्र पहने हुए थे। कन्धे पर बन्दूक थी। पीछे-पीछे शिकारी कुत्तो का झुंड चला आ रहा था। प्रेमशकर को देख कर बोले, आज किसी भले आदमी का मुँह देखा था। एक बार भी खाली नही गया। निश्चय कर लिया था कि जलपान के समय तक लौट जाऊँगा। आप कुछ अनुमान कर सकते हैं कितनी दूर से आ रहा हूँ? पूरे बीस मील का धावा किया है। तीन घटे से ज्यादा कभी नही सोता। मालूम है न, आज तीन बजे से जलसा शुरू होगा।

प्रेम—जी हाँ, डेलीगेट लोग (प्रतिनिधिगण) आ गये होंगे?

राय—(हँस कर) मुझे अभी तक कुछ खबर नहीं और मैं ही स्वागतकारिणी समिति का प्रधान हूँ। मेरे मुख्तार साहब ने सब प्रबन्ध कर दिया होगा। अभी तक मैंने कुछ भी नही सोचा कि वहाँ क्या कहूँगा? बस मौके पर जो कुछ मुँह में आवेगा, बक डालूँगा।

प्रेम—आपकी सूझ बहुत अच्छी होगी?

राय—जी हाँ, मेरे एसोसिएशन मे ऐसा कोई नही है, जिसकी सूझ अच्छी न हो। इस गुण मे एक से एक बढ कर हैं। कोषाध्यक्ष महाशय को आय-व्यय का पता नही पर सभा के सामने वह पूरा ब्योरा दिखा देंगे। यही हाल औरों का भी है। जीवन इतना अल्प है कि आदमी को अपने ही ढोल पीटने से छुट्टी नही मिलती, जाति का मजीरा कौन बजाये?

प्रेम—ऐसी संस्थाओ से देश का क्या उपकार होगा?

राय—उपकार क्यो नही क्या आपके विचार मे जाति का नेतृत्व निरर्थक वस्तु है? आज-कल तो यही उपाधियो का सदर दरवाजा हो रहा है। सरल भक्तो का श्रद्धास्पद बनना क्या कोई मामूली बात है? बेचारे जाति के नाम पर मरनेवाले सीधे-सादे लोग दूर-दूर से हमारे दर्शनो को आते हैं। हमारी गाड़िया खींचते हैं, हमारी पदरज को माथे पर चढ़ाते हैं। क्या यह छोटी बात है? और फिर हममें कितने ही जाति के सेवक ऐसे भी हैं जो सारा हिसाब मन में रखते हैं, उनसे हिसाब पूछिए तो वह अपनी तौहीन समझेंगे और इस्तीफे की धमकी देंगे। इसी संस्था के सहायक मन्त्री की वकालत बिलकुल नही चलती; पर अभी उन्होंने बीस हजार का एक बँगला मोल लिया है। जाति से ऐसे भी लेना है, वैसे भी लेना है, चाहे इस बहाने से लीजिए, चाहे उस बहाने से लीजिए!

प्रेम—मुझे अपना निबन्ध पढ़ने का समय कब मिलेगा?

राय—आज तो मिलता नहीं। कल गार्डन पार्टी है। हिज एक्सेलेन्सी और अन्य अधिकारी वर्ग निमन्त्रित हैं। सारा दिन उसी तैयारी में लग जायगा। परसों सब चिड़ियाँ उड़ जायेंगी, कुछ गिने-गिनाये लोग रह जायँगे, तब आप शौक से अपना लेख सुनाइएगा।

यही बातें हो रही थी कि राजा इन्द्रकुमारसिंह का आगमन हुआ। राय साहब ने उनका स्वागत करके पूछा, नैनीताल कब तक चलिएगा?

राजा साहब—मैं तो सब तैयारियाँ करके चला हूँ। यही से हिज एक्सेलेन्सी के साथ चला जाऊँगा। क्या मिस्टर ज्ञानशंकर नही आये?

प्रेम—जी नही, उन्हे अवकाश नहीं मिला।

राजा—मैंने समाचार-पत्रो मे आप के लेख देखे थे। इसमे सन्देह नही कि आप कृषि-शास्त्र के पंडित हैं, पर आप जो प्रस्ताव कर रहे हैं वह यहाँ के लिए कुछ बहुत उपयुक्त नहीं जान पड़ता। हमारी सरकार ने कृषि की उन्नति के लिए कोई बात उठा नहीं रखी। जगह-जगह पर प्रयोगशालाएँ खोली, सस्ते दामों में बीज बेचती है, कृषि

सम्बन्धी आविष्कारो का पत्रो द्वारा प्रचार करती है। इस काम के लिए कितने ही निरीक्षक नियुक्त किये है, कृषि के बडे-बडे कालेज खोल रखे हैं, पर उनका फल कुछ न निकला। जब वह करोडो रुपये व्यय करके कृतकार्य न हो सकी तो आप दो लाख की पूंजी से क्या कर लेंगे? आपके बनाये हुए यत्र कोई सेंत भी न लेगा। आपकी रासायनिक खादे पडी सडेगी। बहुत हुआ, आप पाँच सात सैकडे मुनाफे दे देंगे। इससे क्या होता है? जब हम दो-चार कुएँ खोदवा कर, पटवारी से मिल कर, कर्मचारियो का सत्कार करके आसानी से अपनी आमदनी बढा सकते हैं, तो यह झझट कौन करे।

प्रेम—मेरा उद्देश्य कोई व्यापार खोलना नही है। मैं तो केवल कृषि की उन्नति के लिए धन चाहता हूँ। सम्भव है आगे चल कर लाभ हो, पर अभी तो मुनाफे की कोई आशा नही।

राजा—समझ गया, यह केवल पुण्य-कार्य होगा।

प्रेम—जी हाँ, यही मेरा उद्देश्य है। मैंने अपने उन लेखो मे और इस निबन्ध मे भी यही बात साफ-साफ कह दी है।

राजा—तो फिर आपने श्रीगणेश करने मे ही भूल की। आपको पहले इस विषय मे लाट साहब की सहानुभूति प्राप्त करनी चाहिए थी। तब दो की जगह आपको दस लाख बात की बात मे मिल जाते। बिना सरकारी प्रेरणा के यहाँ ऐसे कामो मे सफलता नही होती। यहाँ आप जितनी सस्थाएँ देख रहे है, उनमे किसी का जन्म स्वाधीन रूप से नही। यहाँ की यही प्रथा है। राय साहब यदि आपको हिज एक्सेलेन्सी से मिला दे और उनकी आप पर कृपादृष्टि हो जाय तो कल ही रुपये का ढेर लग जाय।

राय—मैं बडी खुशी से तैयार हूँ।

प्रेम—मैं इस सस्था को सरकारी सम्पर्क से अलग रखना चाहता हूँ।

राजा—ऐसी दशा मे आप इस एसोसिएशन से सहायता की आशा न रखें। कम से कम मेरा यही विचार है; क्यो राय साहब?

राय—आप का कहना व्यर्थ है।

प्रेम—तो फिर मेरा निबन्ध पढना व्यर्थ है।

राजा—नही, व्यर्थ नही है। सम्भव है, आप इसके द्वारा आगे चल कर सरकारी सहायता पा सकें। हाँ, राय साहब, प्रधान जी का जुलूस निकालने की तैयारी हो रही है न? वह तीसरे पहर की गाडी से आनेवाले है।

प्रेमशकर निराश हो गये। ऐसी सभा मे अपना निबन्ध पढना अन्धों के आगे रोना था। वह तीन दिन लखनऊ रहे और एसोसिएशन के अधिवेशन मे शरीक होते रहे, किन्तु न तो अपना लेख पढा और न किसी ने उनसे पढने के लिए जोर दिया। वहाँ तो सभी अधिकारियो के सेवा-सत्कार मे ऐसे दत्तचित्त थे, मानो बरात आयी हो। बल्कि उनका वहाँ रहना सबको अखरता था। सभी समझते थे कि यह महाशय मन मे हमारा तिरस्कार कर रहे है। लोगो को किसी गुप्त रीति से यह भी मालूम हो गया था कि यह स्वराज्यवादी हैं। इस कारण से किसी ने उनसे निबन्ध पढने के लिए आग्रह नही

किया, यहाँ तक कि गार्डन पार्टी मे उन्हे निमन्त्रण भी न दिया। यह रहस्य लोगो पर उनके आने के एक दिन पीछे खुला था; नही तो कदाचित् उनके पास लेख पढने का आदेश-पत्र भी न भेजा जाता। प्रेमशंकर ऐसी दशा मे वहाँ क्योकर ठहरते? चौथे दिन घर चले आये। दो-तीन दिन तक उनका चित्त बहुत खिन्न रहा, किन्तु इसलिए नही कि उन्हे आशातीत सफलता न हुई, बल्कि इसलिए कि उन्होने सहायता के लिए रईसो के सामने हाथ फैला कर अपने स्वाभिमान की हत्या की। यद्यपि अकेले पड़े-पड़े उनका जी बहुत उकताता था, पर इसके साथ ही यह अवस्था आत्म-चिन्तन के बहुत अनुकूल थी। नि.स्वार्थ सेवा करना मेरा कर्त्तव्य है। प्रयोगशाला स्थापित करके मैं कुछ स्वार्थ भी सिद्ध करना चाहता था। कुछ लाभ होता, कुछ नाम होता। परमात्मा ने उसी का मुझे यह दड दिया है। सेवा का क्या यही एक साधन है? मैं प्रयोगशाला के ही पीछे क्यो पड़ा हुआ हूँ? विना प्रयोगशाला के भी कृषि-सम्बन्धी विषयो का प्रचार किया जा सकता है। रोग-निवारण क्या सेवा नही है? इन प्रश्नो ने प्रेमशकर के सदुत्साह को ` कर दिया। वह प्राय. घर से निकल जाते और आस-पास के देहातो मे जा कर किसानो से खेती-वारी के विषय मे वार्त्तालाप करते। उन्हे अब मालूम हुआ कि यहाँ के किसानो को जितना मूर्ख समझा जाता है, वे उतने मूर्ख नही है! उन्हे किसानो से कितनी ही नयी वातो का ज्ञान हुआ। शनै-शनै. वह दिन-दिन भर घर से बाहर रहने लगे। कभी-कभी दूर के देहातो मे चले जाते, दो-दो तीन-तीन दिनो तक न लौटते।

१७

जेठ का महीना था। आकाश से आग बरसती थी। राज्याधिकारी वर्ग पहाड़ो पर ठढी हवा खा रहे थे। भ्रमण करनेवाले कर्मचारियो के दौरे भी बन्द थे; पर प्रेमशकर की तातील न थी। उन्हे बहुधा दोपहर का समय पेड़ो की छाँह मे काटना पड़ता, कभी दिन का दिन निराहार बीत जाता, पर सेवा की धुन ने उन्हें शारीरिक सुखो से विरक्त कर दिया था। किसी गाँव मे हैजा फैलने की खबर मिलती, कही कीड़े ऊख के पौदे का सर्वनाश किये डालते थे, कही आपस मे लठियाव होने का समाचार मिलता। प्रेमशकर डाकियो की भाँति इन सभी स्थानो पर जा पहुँचते और यथासाध्य कष्ट-निवारण का प्रयास करते। कभी-कभी लखनपुर तक का धावा मारते। जब आषाढ़ मे मेह बरसा तो प्रेमशकर को अपने काम मे बडी असुविधा होने लगी। वह एक विशेष प्रकार के धानो का प्रचार करना चाहते थे। तरकारियों के बीज भी वितरण करने के लिए मँगा रखे थे। उन्हे बोने और उपजाने की विधि बतलानी भी जरूरी थी। इसीलिए उन्होने शहर से चार पाँच मील पर वरणा किनारे हाजीगज मे रहने का निश्चय किया। गाँव से बाहर फूस का एक झोपड़ा पड़ गया। दो-तीन खाटे आ गयी। गाँववालों की उन पर असीम भक्ति थी। उनके निवास को लोगो ने अहोभाग्य समझा। उन्हे सब लोग अपना रक्षक, अपना इष्टदेव समझते थे और उनके इशारे पर जान देने को तैयार रहते थे।

यद्यपि प्रेमशकर को यहाँ बडी शान्ति मिलती थी, पर श्रद्धा की याद कभी-कभी

विकल कर देती थी। वह सोचते, यदि वह भी मेरे साथ होती तो कितने आनन्द से जीवन व्यतीत होता। उन्हे यह ज्ञात हो गया था कि ज्ञानशकर ने ही मेरे विरुद्ध उसके कान भरे है, अतएव उन्हे अब उस पर क्रोध के बदले दया आती थी। उन्हे एक बार उससे मिलने और उसके मनोगत भावो के जानने की बडी आकाक्षा होती थी। कई बार इरादा किया कि उसे एक पत्र लिखूँ पर यह सोच कर कि जवाब दे या न दे, टाले जाते थे। इस चिन्ता के अतिरिक्त अब धनाभाव से भी कष्ट होता था। अमेरिका से जितने रुपये लाये थे, वह इन चार महीनो मे खर्च हो गये थे और यहाँ नित्य ही रुपयो का काम लगा रहता था। किसानो से अपनी कठिनाइयाँ बयान करते हुए इन्हे सकोच होता था। वह अपने भोजनादि का बोझ भी उन पर डालना पसन्द न करते थे और न शहर के किसी रईस से ही सहायता माँगने का साहस होता था। अन्त मे उन्होने निश्चय किया कि ज्ञानशकर से अपने हिस्से का मुनाफा माँगना चाहिए। उन्हे मेरे हिस्से की पूरी रकम उडा जाने का क्या अधिकार है? श्रद्धा के भरण-पोषण के लिए वह अधिक से अधिक मेरा आधा हिस्सा ले सकते है। तब भी मुझे एक हजार के लगभग मिल जायँगे। इस वक्त काम चलेगा, फिर देखा जायगा। निस्सन्देह इस आमदनी पर मेरा कोई हक नही है, मैंने उसका अर्जन नही किया, लेकिन मैं उसे अपने भोग-विलास के निमित्त तो नही चाहता, उसे लेकर परमार्थ मे खर्च करना आपत्तिजनक नही हो सकता। पहले प्रेमशकर की निगाह इस तरफ कभी नही गयी थी, वह इन रुपयो को ग्रहण करना अनुचित समझते थे। पर अभाव बहुधा सिद्धान्तों और धारणाओ का बाधक है। सोचा था कि पत्र मे सब कुछ साफ-साफ लिख दूँगा, पर लिखने बैठे तो केवल इतना लिखा कि मुझे रुपयो की बडी जरूरत है। आशा है, मेरी कुछ सहायता करेगे। भावो को लेखबद्ध करने मे हम बहुत विचारशील हो जाते हैं।

ज्ञानशकर को यह पत्र मिला तो जामे से बाहर हो गये। श्रद्धा को सुना कर बोले, यह तो नही होता कि कोई उद्यम करे, बैठे-बैठे सुकीर्ति का आनन्द उठाना चाहते हैं। जानते होगे कि यहाँ रुपये बरस रहे हैं। बस बिना हर्रे-फिटकरी के मुनाफा हाथ आ जाता है। और यहाँ अदालत के खर्च के मारे कचूमर निकला जाता है। एक हजार रुपये कर्ज ले कर खर्च कर चुका और अभी पूरा साल पड़ा है। एक बार हिसाब-किताब देख लें तो आँखें खुल जायँ; मालूम हो जाय कि जमीदारी परोसा हुआ थाल नही है। सैकडो रुपये साल कर्मचारियो की नजर-नियाज मे उड जाते हैं।

यह कहते हुए उसी गुस्से मे पत्र का उत्तर लिखने नीचे गये। उन्हे अपनी अवस्था और दुर्भाग्य पर क्रोध आ रहा था। राय कमलानन्द की चेतावनी बार-बार याद आती थी। वही हुआ, जो उन्होने कहा था।

सध्या हो गयी थी। आकाश पर काली घटा छायी हुई थी। प्रेमशकर सोच रहे थे, बडी देर हुई, अभी तक आदमी जवाब ले कर नही लौटा। कही पानी न बरसने लगे, नही तो इस वक्त आ भी न सकेगा। देखूँ क्या जवाब देते हैं? सूखा जवाब तो क्या देंगे, हाँ, मन मे अवश्य झुंझलायेगे। अब मुझे भी निस्संकोच हो कर लोगों से सहायता

माँगनी चाहिए, अपने बल पर यह बोझ मैं नही सँभाल सकता। थोडी सी जमीन मिल जाती, मैं स्वय कुछ पैदा करने लगता तो यह दशा न रहती। जमीन तो यहाँ बहुत कम है। हाँ, पचास बीघे का यह ऊसर अलबत्ता है, लेकिन जमीदार साहब से सौदा पटना कठिन है। वह ऊसर के लिए २०० रुपये बीघे नजराना माँगेगे। फिर इसकी रेह निकालने और पानी के निकास के लिए नालियाँ बनाने मे हजारो का खर्च है। क्या बताऊँ, ज्ञानू ने मेरे सारे मसूबे चौपट कर दिये, नही लखनपुर यहाँ से कौन बहुत दूर था? मैं पन्द्रह-बीस बीघे की सीर भी कर लेता तो मुझे किसी की मदद की दरकार न होती।

यह इन्ही विचारो मे डूबे थे कि सामने से एक एक्का आता हुआ दिखायी दिया। पहले तो कई आदमियो ने एक्केवान को ललकारा। क्यो खेत मे एक्का लाता है? आँखें फूटी हुई हैं? देखता नही, खेत बोया हुआ है? पर जब एक्का प्रेमशकर के ... की ओर मुडा तो लोग चुप हो गये। इस पर लाला प्रभाशकर और उनके दोनो ... पद्मशकर और तेजशकर बैठे हुए थे। प्रेमशकर ने दौड कर उनका स्वागत किया। प्रभाशकर ने उन्हें छाती से लगा लिया और पूछा, अभी तुम्हारा आदमी ज्ञानू का जवाब ले कर तो नही आया?

प्रेम— जी नही, अभी तो नहीं आया, देर बहुत हुई।

प्रभा—मेरे ही हाथ बाजी रही। मैं उसके एक घटा पीछे चला हूँ। यह लो, बडी बहू ने यह लिफाफा और यह सन्दूकची तुम्हारे पास भेजी है। मगर यह तो बताओ, यह वनवास क्यो कर रहे हो? तुम्हारे एक छोड दो-दो घर है। उनमे न रहना चाहो तो तुम्हारे कई मकान किराये पर उठे हुए हैं, उनमे से जिसे कहो खाली करा दूँ। आराम से शहर मे रहो। तुम्हे इस दशा मे देख कर मेरा हृदय फटा जाता है। यह फूस का झोपड़ा, बीहड स्थान, न कोई आदमी न आदमजाद! मुझसे तो यहाँ एक क्षण भी न रहा जाये। हफ्तो घर की सुधि नही लेते। मैं तुम्हे यहाँ न रहने दूँगा। हम तो महल मे रहे और तुम यो वनवास करो। (सजल नेत्र हो कर) यह सब मेरा दुर्भाग्य है। मेरे कलेजे के टुकडे हुए जाते हैं। भाई साहब जब तक जीवित रहे, मैं अपने ऊपर गर्व करता था। समझता था कि मेरी बदौलत एका बना हुआ है। लेकिन उनके उठते ही घर की श्री उठ गयी। मैं दो-चार साल भी उस मेल को न निभा सका। वह भाग्यशाली थे, मैं अभागा हूँ और क्या कहूँ।

प्रेमशकर ने बडी उत्सुकता से लिफाफा खोला और पढने लगे। लाला जी की तरफ उनका ध्यान न था।

'प्रिय प्राणपति, दासी का प्रणाम स्वीकार कीजिए। आप जब तक विदेश मे थे, वियोग के दुःख को धैर्य के साथ सहती रही, पर आपका यह एकान्त निवास नही सहा जाता। मैं यहाँ आपसे बोलती न थी, आपसे मिलती न थी, पर आपको ~~आँखोसे देखती~~ तो थी, आपकी सेवा तो कर सकती थी। आपने यह सुअवसर भी मुझसे छीन लिया। मुझे तो ससार की हँसी का डर था, आपको भी ससार की हँसी का डर है? मुझे आपसे

मिलते हुए अनिष्ट की आशका होती है। धर्म को तोड कर कौन प्राणी सुखी रह सकता है? आपके विचार तो ऐसे नही, फिर आप क्यो मेरी सुधि नही लेते?

यहाँ लोग आपके प्रायश्चित्त करने की चर्चा कर रहे हैं। मैं जानती हूँ, आपको बिरादरी का भय नही है, पर यह भी जानता हूँ कि आप मुझपर दया और प्रेम रखते हैं। क्या मेरी खातिर इतना न कीजिएगा?—मेरे धर्म को न निभाइएगा?

इस सन्दूकची मे मेरे कुछ गहने और रुपये हैं। गहने अब किसके लिए पहनूं? कौन देखेगा? यह तुच्छ भेट है, इसे स्वीकार कीजिए। यदि आप न लेंगे, तो समझूंगी कि आपने मुझसे नाता तोड दिया। —आपकी अभागिनी, श्रद्धा।'

प्रेमशकर के मन मे पहले विचार हुआ कि सन्दूकची को वापस कर दूं और लिख दूं कि मुझे तुम्हारी मदद की जरूरत नही। क्या मैं ऐसा निर्लज्ज हो गया कि जो स्त्री मेरे पास इतनी निष्ठुरता से पेश आये उसी के सामने मदद के लिए हाथ फैलाऊँ? लेकिन एक ही क्षण मे यह विचार पलट गया। उसके स्थान पर यह शका हुई कि कही इसने मन मे कुछ और तो नही ठान ली है? यह पत्र किसी विषम संकल्प का सूचक तो नही है? वह अस्थिर चित्त हो कर इधर-उधर टहलने लगे। सहसा लाला प्रभाशकर से बोले, आपको तो मालूम होगा ज्ञानशकर का बर्ताव उसके साथ कैसा है?

प्रभा—बेटा, यह बात मुझसे मत पूछो। हाँ, इतना कहूँगा कि तुम्हारे यहाँ रहने से बहुत दुखी है। तुम्हे मालूम है कि उसको तुमसे कितना प्रेम है। तुम्हारे लिए उसने बडी तपस्या की है। उसके ऊपर तुम्हारी अकृपा नितान्त अनुचित है।

प्रेम—मुझे वहाँ रहने मे कोई उज्र नही है। हाँ, ज्ञानशकर के कुटिल व्यवहार से दु:ख होता है और फिर वहाँ बैठकर यह काम न होगा। किसानो के साथ रह कर मैं उनकी जितनी सेवा कर सकता हूँ, अलग रह कर नही कर सकता। आपसे केवल यह प्रार्थना करता हूँ कि आप उसे बुला कर उसकी तस्कीन कर दीजिएगा। मेरे विचार से उसका व्यवहार कितना ही अनुचित क्यो न हो, पर मैं उसे निरपराध समझता हूँ। यह दूसरो के बहकाने का फल है। मुझे शका होती है कि वह जान पर न खेल जाय।

प्रभा—मगर तुम्हे वचन देना होगा कि सप्ताह मे कम से कम एक बार वहाँ अवश्य जाया करोगे।

प्रेम—इसका पक्का वादा करता हूँ।

प्रभाशकर ने लौटना चाहा, पर प्रेमशकर ने उन्हे साग्रह रोक लिया। हाजीगज मे एक सज्जन ठाकुर भवानीसिंह रहते थे। उनके यहाँ भोजन का प्रबन्ध किया गया। पूरियाँ मोटी थी और भाजी भी अच्छी न बनी थी, किन्तु दूध बहुत स्वादिष्ट था। प्रभाशकर ने मुस्करा कर कहा, यह पूरियाँ हैं या लिट्टी? मुझे तो दो-चार दिन भी खानी पडे तो काम तमाम हो जाय। हाँ, दूध की मलाई अच्छी है।

प्रेम—मैं तो यहाँ रोटियाँ बना लेता हूँ। दोपहर को दूध पी लिया करता हूँ।

प्रभा—तो यह कहो तुम योगाभ्यास कर रहे हो। अपनी रुचि का भोजन न मिले तो फिर जीवन का सुख ही क्या रहा?

प्रेम—क्या जाने, मैं तो रोटियो से ही सतुष्ट हो जाता हूँ। कभी-कभी तो मैं शाक या दाल भी नही बनाता। सूखी रोटियाँ बहुत मीठी लगती है। स्वास्थ्य के विचार से भी रूखा-सूखा भोजन उत्तम है।

प्रभा—यह सब नये जमाने के ढकोसले है। लोगो की पाचन शक्ति निर्बल हो गयी है। इसी विचार से अपने को तस्कीन दिया करते है। मैंने तो आजीवन चटपटा भोजन किया है, पर कभी कोई शिकायत नही हुई।

भोजन करने के बाद कुछ इधर-उधर की बातें होने लगी। लाला जी थके थे, सो गये, किन्तु दोनो लड़को को नीद नही आती थी। प्रेमशकर बोले, क्यो तेजशकर, क्या नीद नही आती? मैट्रिक मे हो न? इसके बाद क्या करने का विचार है?

तेजशकर—मुझे क्या मालूम? दादा जी की जो राय होगी, वही करूँगा?

प्रेम—और तुम क्या करोगे पद्मशकर?

पद्म—मेरा तो पढने मे जी नही लगता। जी चाहता है, साधु हो जाऊँ।

प्रेम—(मुस्करा कर) अभी से?

पद्म—जी हाँ, खूब पहाड़ो पर विचरूँगा। दूर-दूर के देशो की सैर करूँगा। भैया भी तो साधु होने को कहते है।

प्रेम—तो तुम दोनो साधु हो जाओगे और गृहस्थी का सारा बोझ चाचा साहब के सिर पर छोड दोगे?

तेज—मैंने कब साधु होने को कहा पद्मू? झूठ बोलते हो।

पद्म—रोज तो कहते हो, इस वक्त लजा रहे हो।

तेज़—बड़े झूठे हो।

पद्म—अभी तो कल ही कह रहे थे कि पहाडों पर जा कर योगियो से मन्त्र जगाना सीखेंगे।

प्रेम—मन्त्र जगाने से क्या होगा?

पद्म—वाह! मन्त्र मे इतनी शक्ति है कि चाहे तो अभी गायब हो जायँ, जमीन मे गडा हुआ धन देख लें। एक मन्त्र तो ऐसा है कि चाहे तो मुरदों को जिला दें। बस, सिद्धि चाहिए। खूब चैन रहेगा। यहाँ तो बरसो पढेंगे, तब जा कर कही नौकरी मिलेगी। और वहाँ तो एक मन्त्र भी सिद्ध हो गया तो फिर चाँदी ही चाँदी है।

प्रेम—क्यो जी तेजू, तुम भी इन मिथ्या बातो पर विश्वास करते हो?

तेज—जी नही, यह पद्मू यो ही वाही-तबाही बकता फिरता है, लेकिन इतना कह सकता हूँ कि आदमी मन्त्र जगा कर बड़े-बड़े काम कर सकता है। हाँ, डर न जाय, नही तो जान जाने का डर रहता है।

प्रेम—यह सब गपोड़ा है। खेद है, तुम विज्ञान पढ़ कर इन गपोडो पर विश्वास करते हो। संसार मे सफलता का सबसे जागता हुआ मन्त्र अपना उद्योग, अध्यवसाय और दृढ़ता है, इसके सिवा और सब मन्त्र झूठे है।

दोनों लडकों ने इसका कुछ उत्तर न दिया। उनके मन मे मन्त्र की बात बैठ गयी

थी और तर्क द्वारा उन्हे कायल करना कठिन था।

इनके सो जाने के बाद प्रेमशकर ने सन्दूकची खोल कर देखा। गहने सभी सोने के थे। रुपये गिने तो पूरे एक हजार थे। इस समय प्रेमशकर के सम्मुख श्रद्धा एक देवी के रूप मे खडी मालूम होती थी। उसकी मुखश्री एक विलक्षण ज्योति से प्रदीप्त थी। त्याग और अनुराग की विशाल मूर्ति थी, जिसके कोमल नेत्रो मे भक्ति और प्रेम की किरणें प्रस्फुटित हो रही थी। प्रेमशकर का हृदय विह्वल हो गया। उन्हे अपनी निष्ठुरता पर बडी ग्लानि उत्पन्न हुई। श्रद्धा की भक्ति के सामने अपनी कटुता और अनुदारता अत्यन्त निन्द्य प्रतीत होने लगी। उन्होंने सन्दूकची बन्द करके खाट के नीचे रख दी और लेटे तो सोचने लगे, इन गहनो को क्या करूँ ? कुल सम्पत्ति पाँच हजार से कम की नही है। इसे मैं ले लूं तो श्रद्धा निरवलम्ब हो जायेगी। लेकिन मेरी दशा सदैव ऐसी ही थोडे रहेगी। अभी ऋण समझ कर ले लूँ, फिर कभी सूद समेत चुका दूंगा। पचीस बीघे ऊसर लूँ तो दो ढाई हजार मे तय हो जाय। एक हजार खाद डालने और रेह निकालने मे लग जायँगे। एक हजार मे बैलो की गोइयाँ और दूसरी सामग्रियाँ आ जायेंगी। दस बीघे मे एक सुन्दर बाग लगा दूं, पन्द्रह बीघे में खेती करूँ। दो साल तो चाहे उपज कम हो, लेकिन आगे चल कर दो-ढाई हजार वार्षिक की आय होने लगेगी। अपने लिए मुझे २०० रु० साल भी बहुत है, शेष रुपये अपने जीवनोद्देश्य के पूरे करने मे लगेंगे। सम्भव है, तब तक कोई सहायक भी मिल जाय। लेकिन उस दशा मे कोई सहायता भी न करे तो मेरा काम चलता रहेगा। हाँ, एक बात का ध्यान ही न रहा। मैं यह ऊसर ले लूं तो फिर इस गाँव मे गोचर भूमि कहाँ रहेगी ? यही ऊसर तो यहाँ के पशुओ का मुख्य आधार है। नही, इसके लेने का विचार छोड देना चाहिए। अब तो हाथ मे रुपये आ गये है, कही न कही जमीन मिल ही जायेगी। हाँ, अच्छी जमीन होगी तो इतने रुपयो मे दस बीघे से ज्यादा न मिल सकेगी। दस बीघे मे मेरा काम कैसे चलेगा ?

प्रेमशकर इसी उधेड-बुन मे पड़े हुए थे। मूसलाधार मेह बरस रहा था। सहसा उनके कानो मे बादलो के गर्जने की सी आवाज आने लगी, मानो किसी बड़े पुल पर से रेलगाडी चली जा रही हो। लेकिन जब देर तक इस ध्वनि का तार न टूटा, और थोडी देर मे गाँव की ओर से आदमियो के चिल्लाने और रोने की आवाजें आने लगी, तो वह घबड़ा कर उठे और गाँव की तरफ नजर दौड़ायी। गाँव मे हलचल मची हुई थी। लोग हाथो मे सन और अरहर के डठलो की मशालें लिए इधर-उधर दौड़ते फिरते थे। कुछ लोग मशाले लिये नदी की तरफ दौडते जाते थे। एक क्षण मे मशालो का प्रतिबिम्ब सा दीखने लगा, जैसे गाँव मे पानी लहरे मार रहा हो। प्रेमशकर समझ गये कि बाढ आ गयी।

अब विलम्ब करने का समय न था। वह तुरन्त गाँव की तरफ चले। थोडी ही दूर चल कर वह घुटनो तक पानी मे पहुँचे। बहाव मे इतना वेग था कि उनके पाँव मुश्किल से सँभल सकते थे। कई बार वह गड्ढो में गिरते-गिरते बचे। जल्दी में जल

थाहने के लिए कोई लकडी भी न ले सके थे। जी चाहता था कि गाँव मे उड कर जा पहुँचूं और लोगो की यथासाध्य मदद करूँ, लेकिन यहाँ एक-एक पग रखना दुस्तर था। चारो तरफ घना अँधेरा, ऊपर मूसलाधार वर्षा, नीचे वेगवती लहरो का सामना, राह-बाट का कही पता नही। केवल मशालो को देखते चले जाते थे। कई बार घरो के गिरने का धमाका सुनायी दिया। गाँव के निकट पहुँचे तो हाहाकार मचा हुआ था। गाँव के समस्त प्राणी, युवा, वृद्ध, बाल मन्दिर के चबूतरे पर खडे यह विध्वसकारी मेघलीला देख रहे थे। प्रेमशकर को देखते ही लोग चारो ओर से आ कर खडे हो गये। स्त्रियाँ रोने लगी।

प्रेमशकर—बाढ क्या अब की ही आयी है या और भी कभी आयी थी?

भवानीसिंह—हर दूसरे-तीसरे साल आ जाती है। कभी-कभी तो साल मे दो-दो बेर आ जाती है।

प्रेमशकर—इसके रोकने का कोई प्रयत्न नही किया गया?

भवानीसिंह—इसका एक ही उपाय है। नदी के किनारे बाँध बना दिया जाय। लेकिन कम से कम तीन हजार का खर्च है, वह हमारे किये नहीं हो सकता। इतनी सामर्थ्य ही नही। कभी बाढ आती है, कभी सूखा पडता है। धन कहाँ से आये?

प्रेमशकर—जमीदार से इस विषय मे तुम लोगो ने कुछ नही कहा?

भवानी—उनके कभी दर्शन ही नही होते; किससे कहें? सेठ जी ने यह गाँव उन्हे पिंड-दान मे दे दिया था। बस, आप तो गया जी मे बैठे रहते हैं। साल मे दो बार उनका मुन्शी आ कर लगान वसूल कर ले जाता है। उससे कहो तो कहता है, हम कुछ नही जानते पडा जी जानें। हमारे सिर पर चाहे जो पडे, उन्हे अपने नफे से काम है।

प्रेमशकर—अच्छा इस वक्त क्या उपाय करना चाहिए? कुछ बचा या सब डूब गया?

भवानी—अँधेरे मे सब कुछ सूझ तो नही पड़ता, लेकिन अटकल से जान पड़ता है कि घर एक भी नही बचा। कपडे-लत्ते, बर्तन-भाँड़े, खाट-खटोले सब बह गये। इतनी मुहलत ही नही मिली कि अपने साथ कुछ लाते। जैसे बैठे थे वैसे ही उठ कर भागे। ऐसी बाढ़ कभी नही आयी थी, जैसे आँधी आ जाय, बल्कि आँधी का हाल भी कुछ पहले मालूम हो जाता है, यहाँ तो कुछ पता ही न चला।

प्रेमशकर—मवेशी भी बह गये होगे?

भवानी—राम जाने, कुछ तुड़ा कर भागे होंगे, कुछ बह गये होंगे, कुछ बदन तक पानी मे खड़े होगे। पानी दस-पाँच अगुल और चढा तो उनका भी पता न लगेगा।

प्रेमशकर—कम से कम उनकी रक्षा तो करनी चाहिए।

भवानी—हमे तो असाध्य जान पडता है।

प्रेमशकर—नही, हिम्मत न हारो। भला कुल कितने मर्द यहाँ होगे?

भवानी—(आँखो से गिन कर) यही कोई चालीस-पचास।

प्रेम—तो पाँच-पाँच आदमियो की एक-एक टुकडी बना लो और सारे गाँव का

एक चक्कर लगाओ। जितने जानवर मिलें उन्हे बटोर लो और मेरे झोपडे के सामने ले चलो। वहाँ जमीन बहुत ऊँची है, पानी नही जा सकता। मैं भी तुम लोगो के साथ चलता हूँ। जो लोग इस काम के लिए तैयार हो, सामने निकल आयें।

प्रेमशकर के उत्साह ने लोगो को उत्साहित किया। तुरन्त पचास-साठ आदमी निकल आये सबके हाथो मे लाठियाँ थी। प्रेमशकर को लोगो ने रोकना चाहा, लेकिन वह किसी तरह न माने। एक लाठी हाथ मे ले ली और आगे-आगे चले। पग-पग पर बहते हुए झोपडो, गिरे हुए वृक्षो तथा बहती हुई चारपाइयो से टकराना पड़ता था। गाँव का नाम-निशान भी न था। गाँववालो को अपने-अपने घरो का भी पता न चलता था। हाँ, जहाँ-तहाँ भैसो और बैलो के डकारने की आवाज सुन पड़ती थी। कही-कही पशु बहते हुए भी मिलते थे। यह रक्षक-दल सारी रात पशुओ के उद्धार का प्रयत्न करता रहा। उनका साहस अदम्य और उद्योग अविश्रान्त था। प्रेमशकर अपनी टुकडी के साथ बारी-बारी से अन्य दलो की सहायता करते रहते थे। उनका धैर्य और परिश्रम देख कर निर्बल हृदय वाले भी प्रोत्साहित हो जाते थे। जब दिन निकला और प्रेमशकर अपने झोपडे पर पहुँचे तब दो सौ से अधिक पशुओ को आनन्द से बैठे जुगाली करते हुए देखा। लेकिन इतनी कडी मेहनत कभी न की थी। ऐसे थक गये थे कि खडा होना मुश्किल था। अग-अग मे पीडा हो रही थी। आठ बजते-बजते उन्हे ज्वर हो आया। लाला प्रभाशकर ने यह वृत्तान्त सुना तो असन्तुष्ट होकर बोले, बेटा, परमार्थ करना बहुत अच्छी बात है, लेकिन इस तरह प्राण दे कर नही। चाहे तुम्हे अपने प्राण का मूल्य इन जानवरो से कम जान पडता हो, लेकिन हम ऐसे-ऐसे लाखो पशुओ का तुम्हारे ऊपर बलिदान कर सकते है। श्रद्धा सुनेगी तो न जाने उसका क्या हाल होगा? यह कहते-कहते उनकी आँखे भर आयी।

तीन दिन तक प्रेमशकर ने सिर न उठाया और न लाला प्रभाशकर उनके पास से उठे। उनके सिरहाने बैठे हुए कभी विनयपत्रिका के पदो का पाठ करते, कभी हनुमान चालीसा पढते। हाजीपुर मे दो ब्राह्मण भी थे। वह दोनो झोपडे मे बैठे दुर्गा-पाठ किया करते। अन्य लोग तरह-तरह की जडी-बूटियाँ लाते। आस पास के देहातो मे भी जो उनकी बीमारी की खबर पाता, दौडा हुआ देखने आता। चौथे दिन ज्वर उतर गया, आकाश भी निर्मल हो गया और बाढ उतर गयी।

प्रभात का समय था। लाला प्रभाशकर ब्राह्मणो को दक्षिणा दे कर घर चले गये थे। प्रेमशकर अपनी चारपाई पर तकिये के सहारे बैठे हुए हाजीपुर की तरफ चिंतामय नेत्रों से देख रहे थे। चार दिन पहले जहाँ एक हरा-भरा लहलहाता हुआ गाँव था, जहाँ मीलो तक खेतो मे सुखद हरियाली छायी हुई थी, जहाँ प्रात काल गाय भैसो के रेवड के रेवड चरते दिखायी देते थे, जहाँ झोपडो से चक्कियो की मधुर ध्वनि उठती थी और बालवृन्द मैदानो मे खेलते कूदते दिखायी देते थे, वहाँ एक निर्जन मरुभूमि थी। गाँव के अधिकाश प्राणी दूसरे गाँव मे भाग गये थे, और कुछ लोग प्रेमशंकर के झोपडे के सामने सिरकियाँ डाले पडे थे। न किसी के पास भोजन था, न वस्त्र। बडा

शोकमय दृश्य था। प्रेमशंकर सोचने लगे, कितनी विषम समस्या है! इन दीनों का कोई सहायक नहीं। आये दिन इन पर यही विपत्ति पड़ा करती है और ये बेचारे इसका निवारण नहीं कर सकते। साल-दो-साल मे जो कुछ तन-पेट काट कर सचय करते हैं वह जलदेव को भेंट कर देते हैं। कितना धन, कितने जीव इस भँवर मे समा जाते हैं, कितने घर मिट जाते है, कितनी गृहस्थियो का सर्वनाश हो जाता है और यह केवल इसलिए कि इनको गाँव के किनारे एक सुदृढ बाँध बनाने का साहस नही है। न इतना धन है, न वह सहमति और सुसगठन है जो धन का अभाव होने पर भी बड़े-बड़े कार्य सिद्ध कर देता है। ऐसा बाँध यदि बन जाय तो उससे इसी गाँव की नहीं, आस-पास के कई गाँवो की रक्षा हो सकती है। मेरे पास इस समय चार पाँच हजार रुपये है। क्यो न इस बाँध मे हाथ लगा दूँ? गाँव के लोग धन न दे सकें, मेहनत तो कर सकते है। केवल उन्हे सगठित करना होगा। दूसरे गाँव के लोग भी निस्सन्देह इस काम मे सहायता देंगे। ओह, कहीं यह बाँध तैयार हो जाय तो इन गरीबो का कितना कल्याण हो!

यद्यपि प्रेमशकर बहुत अशक्त हो रहे थे, पर इन विचारो ने उन्हे इतना उत्साहित किया कि तुरन्त उठ खड़े हुए और लोगो के बहुत रोकने पर भी हाथ मे डडा ले कर नदी की ओर बाँध-स्थल का निरीक्षण करने चल खड़े हुए। जेब मे पेंसिल और कागज भी रख लिया। कई आदमी साथ हो लिये। नदी के किनारे खड़े-खड़े वह बहुत देर तक रस्सी से नाप-नाप कर कागज पर बाँध का नक्शा खींचते और उसकी लम्बाई, चौडाई, गर्भ आदि का अनुमान करते रहे। उन्हे उत्साह के वेग मे यह काम सहज जान पडता था, केवल काम छेड देने की जरूरत थी। उन्होंने वहीं खडे-खडे निश्चय किया कि वर्षा समाप्त होते ही श्री गणेश कर दूंगा। ईश्वर ने चाहा तो जाडे मे बाँध तैयार हो जायगा। बाँध के साथ-साथ गाँव को भी पुनर्जीवित कर दूंगा। बाढ का भय तो न रहेगा, दीवारें मजबूत बनाऊँगा और उस पर फूस की जगह खपरैला का छाज रखूंगा।

भवानीसिंह ने कहा—बाबू जी, यह काम हमारे मान का नही है।

प्रेमशकर—है क्यों नही; तुम्हीं लोगो से यह काम पूरा कराऊँगा। तुमने इसे असाध्य समझ लिया है, इसी कारण इतनी मुसीबतें झेलते हो।

भवानी—गाँव मे आदमी कितने हैं?

प्रेम—दूसरे गाँववाले तुम्हारी मदद करेंगे, काम शुरू तो होने दो।

भवानी—जैसा बाँध आप सोच रहे हैं, पाँच-छह हजार से कम मे न बनेगा।

प्रेम—रुपयो की कोई चिन्ता नही। कातिक आ रहा है, बस काम शुरू कर दो। दो तीन महीने मे बाँध तैयार हो जायगा। रुपयो का प्रवन्ध जो कुछ मुझसे हो सकेगा मैं कर दूंगा।

भवानी—आपका ही भरोसा है।

प्रेम—ईश्वर पर भरोसा रखो।

भवानी—मजदूरों की मदद मिल जाय तो अगहन मे ही बाँध तैयार हो सकता है:

प्रेम—इसका मैं वचन दे सकता हूँ। यहाँ साठ-सत्तर बीघे का अच्छा चक निकल आयेगा।

भवानी—तब हम आपका झोपडा भी यही बना देगे। वह जगह ऊँची है, लेकिन कभी-कभी वहाँ भी बाढ आ जाती है।

प्रेम—तो आज ही भागे हुए लोगो को सूचना दे दो और पडोस के गाँवो मे भी खबर भेज दो।

१८

गायत्री उन महिलाओ मे थी जिनके चरित्र मे रमणीयता और लालित्य के साथ पुरुषो का साहस और धैर्य भी मिला होता है। यदि वह कभी और आईने पर जान देती थी तो कच्ची सडको के गर्द और धूल से भी न भागती थी। प्यानो पर मोहित थी तो देहातियो के बेसुरे अलाप का आनन्द भी उठा सकती थी। सरस साहित्य पर मुग्ध होती थी तो खसरा और खतौनी से भी जी न चुराती थी। लखनऊ से आये हुए उसे दो साल हो गये। लेकिन एक दिन भी अपने विशाल भवन मे आराम से न बैठी। कभी इस गाँव जाती, कभी उस छावनी मे ठहरती, कभी तहसील आना पडता, कभी सदर जाना पडता, बार-बार अधिकारियो से मिलने की जरूरत पडती। उसे अनुभव हो रहा था कि दूसरो पर शासन करने के लिए स्वय झुकना पडता है। उसके इलाके मे सर्वत्र लूट मची हुई थी, कारिन्दे आसामियो को नोचे खाते थे। सोचती, क्या इन सब मुख्तारो और कारिन्दो को जवाब दे दूँ? मगर काम कौन करेगा? और यही क्या मालूम है कि इनकी जगह जो नये लोग आयेंगे, वे इनसे ज्यादा नेकनीयत होगे? मुश्किल तो यह है कि प्रजा को इस अत्याचार से उतना कष्ट भी नही होता, जितना मुझे होता है। कोई शिकायत नही करता, कोई फरियाद नही करता, उन्हे अन्याय सहने का ऐसा अभ्यास हो गया है कि वह इसे भी जीवन की एक साधारण दशा समझते हैं। उससे मुक्त होने का कोई यत्न भी हो सकता है इसका उन्हे ध्यान भी नही होता।

इतना ही नही था। प्रजा गायत्री की सच्चेष्टाओ को सन्देह की दृष्टि से देखती थी। उनको विश्वास ही न होता था कि उनकी भलाई के लिए कोई जमीदार अपने नौकरों को दड दे सकता है। वर्तमान अन्याय उनका ज्ञात विषय था, इसका उन्हे भय न था। सुधार के मन्तव्यो से भयभीत होते थे, यह उनके लिए अज्ञात विषय था। उन्हे शका होती थी कि कदाचित् यह लोगो को निचोड़ने की कोई नयी विधि है। अनुभव भी इस शका को पुष्ट करता था। गायत्री का हुक्म था कि किसानो को नाम-मात्र सूद पर रुपये उधार दिये जायँ, लेकिन कारिन्दे महाजनो से भी ज्यादा सूद लेते थे। उसने ताकीद कर दी थी कि बखारो से असामियो को अष्टाश पर अनाज दिया जाय। लेकिन वहाँ अष्टाश न दे कर लोग दूसरो से सवाई-डेवढ़े पर अनाज लाते थे। वह अपने इलाके भर मे सफाई का प्रबध भी करना चाहती थी। गोबर बटोरने के लिए गाँव से बाहर

खत्ते बनवा दिये थे। मोरियो को साफ करने के लिए भगी लगा दिये थे। लेकिन प्रजा इसे 'मुदाखलत बेजा' समझती थी और डरती थी कि कही रानी साहिबा हमारे घरो और खत्तो पर तो हाथ नही बढा रही हैं।

जाडो के दिन थे। गायत्री राप्ती नदी के किनारो के गाँवो मे दौरा कर रही थी। अब की बाढ मे कई गाँव डूब गये थे। कृषको ने छूट की प्रार्थना की थी। सरकारी कर्मचारियो ने इधर-उधर देख कर लिख दिया था, छूट की जरूरत नही है। गायत्री अपनी आँखो से इन ग्रामो की दशा देख कर यह निर्णय करना चाहती थी कि कितनी छूट होनी चाहिए। सध्या हो गयी थी। वह दिन भर की थकी-माँदी थी, बिन्दापुर की छावनी मे उदास पडी हुई थी। सारा मकान खंडहर हो गया था। इस छावनी की मरम्मत के लिए उसने कारिन्दो को सैकडो रुपये दिये थे, लेकिन उसकी दशा देखने से ज्ञात होता था कि बरसो से खपरैल भी नही बदला गया। दीवारे गिर गयी थी, कडियो के टूट जाने से जगह-जगह छत बैठ गयी थी। आँगन मे कूडे के ढेर लगे हुए थे। यहाँ के कारिन्दो को वह बहुत ईमानदार समझती थी। उसके कुटिल व्यवहार पर चित्त बहुत खिन्न हो रहा था। सामने चौकी पर पूजा के लिए आसन बिछा हुआ, लेकिन उसका उठने का जी न चाहता था कि इतने मे एक चपरासी ने आ कर कहा, सरकार, कानूनगो साहब आये हैं।

गायत्री उठ कर आसन पर जा बैठी और इस भय से कि कही कानूनगो साहब चले न जाये, शीघ्रता से सध्या समाप्त की और परदा कराके कानूनगो साहब को बुलाया।

गायत्री—कहिए खाँ साहब! मिजाज तो अच्छा है? क्या आजकल पडताल हो रही है?

कानूनगो—जी हाँ, आजकल हुजूर के ही इलाके का दौरा कर रहा हूँ।

गायत्री—आपके विचार मे बाढ़ से खेती को कितना नुकसान हुआ?

कानूनगो—अगर सरकार के तौर पर पूछती है तो रुपये मे एक आना, निज के तौर पर पूछती है तो रुपये मे बारह आने।

गायत्री—आप लोग यह दोरगी चाल क्यो चलते है? आप जानते नही कि इसमे प्रजा का कितना नुकसान होता है?

कानूनगो—हुजूर यह न पूछे। दोरगी चाल न चले और असली बात लिख दे तो एक दिन मे नालायक बना कर निकाल दिये जायँ। हम लोगो से सच्चा हाल जानने के लिए तहकीकत नही करायी जाती, बल्कि उसको छिपाने के लिए। पेट की बदौलत सब कुछ करना पडता है।

गायत्री—पेट को गरीबो की हाय से भरना तो अच्छा नही। अगर अपनी तरफ से प्रजा की कुछ भलाई न कर सके तो कम से कम अपने हाथो उनका अहित तो न करना चाहिए। इलाके का क्या हाल है?

कानूनगो—आपको सुन कर रज होगा। सारन मे हुजूर की कई बीघे सीर असामियो ने जोत ली है, जगरांव के ठाकुरों ने हुजूर के नये बाग को जोत कर खेत बना

लिया है, मेडे खोद डाली है। जब तक फिर से पैमाइश न हो कुछ पता नही चल सकता कि अपकी कितनी जमीन उन्होने खायी है।

गायत्री—क्या वहाँ का कारिन्दा सो रहा है ? मेरा तो इन झगडो से नाकोदम है।

कानूनगो—हुजूर की जानिब से पैमाइश की एक दरख्वास्त पेश हो जाय, बस बाकी काम मैं कर लूंगा। हाँ, सदर कानूनगो साहब की कुछ खातिर करनी पडेगी। मैं हुजूर का गुलाम हूँ, ऐसी सलाह हर्गिज न दूंगा जिससे हुजूर को नुकसान हो। इतनी अर्ज और करूँगा कि हुजूर एक मैनेजर रख ले। गुस्ताखी माफ, इतने बडे इलाके का इन्तजाम करना हुजूर का काम नही है।

गायत्री—मैनेजर रखने की तो मुझे भी फिक्र है, लेकिन लाऊँ कहाँ से ? कहीं वह महाशय भी कारिन्दो से मिल गये तो रही-सही बात भी बिगड जायेगी। उनका यह अन्तिम आदेश था कि मेरी प्रजा को कोई कष्ट न होने पाये। उसी आशा को पालन करने के लिए मैं यों अपनी जान खपा रही हूँ। आपकी दृष्टि मे कोई ऐसा ईमानदार और चतुर आदमी हो, जो मेरे सिर से यह भार उतार ले तो बतलाइए।

कानूनगो—बहुत अच्छा, मैं ख्याल रखूंगा। मेरे एक दोस्त है। ग्रेजुएट, बडे लायक और तजरबेकार। खानदानी आदमी हैं। मैं उनसे जिक्र करूँगा। तो मुझे क्या हुक्म होता है ? सदर कानूनगो साहब से बात-चीत करूँ ?

गायत्री—जी हाँ, कह तो रही हूँ। वही लाला साहब हैं न ? लेकिन वह तो बेतरह मुँह फैलाते हैं।

कानूनगो—हुजूर खातिर जमा रखे, मैं उन्हे सीधा कर लूंगा। औरो के साथ वह चाहे कितना मुँह फैलाये, यहाँ उनकी दाल न गलने पायेगी। बस हुजूर के पाँच सौ रुपये खर्च होंगे। इतने मे ही दोनो गाँवो की पैमाइश करा दूंगा।

गायत्री—(मुस्कुरा कर) इसमे कम से कम आधा तो आपके हाथ जरूर लगेगा।

कानूनगो—मुआजल्लाह, जनाब यह क्या फरमाती हैं ? मैं मरते दम तक हुजूर को मुगालता न दूंगा। हाँ, काम पूरा हो जाने पर हुजूर जो कुछ अपनी खुशी से अदा करेगी वह सिर आँखो पर रखूंगा।

गायत्री—तो यह कहिए, पाँच सौ के ऊपर कुछ और भी आपको भेंट करना पडेगा। मैं इतना मँहगा सौदा नही करती।

यही बाते हो रही थी कि पडित लेखराज जी का शुभागमन हुआ। रेशमी अचकन, रेशमी पगडी, रेशमी चादर, रेशमी धोती, पाँव मे दिल्ली का सलेमशाही कामदार जूता, माथे पर चन्द्रविन्दु, अधरो पर पान की लाली, आँखो पर सुनहरी ऐनक; केवडो मे बसे हुए आ कर कुर्सी पर बैठ गये।

गायत्री—पडित जी महाराज को पालागन करती हूँ।

लेखराज—आशीर्वाद ! आज तो सरकार को बहुत कष्ट हुआ।

गायत्री—क्या करूँ मेरे पुरखो ने भी बिना खेती की खेती, बिना जमीन की जमीदारी, बिना धन की महाजनी प्रथा निकाली होती, तो मैं भी आपकी ही तरह

चैन करती।

लेखराज—(हँस कर) कानूनगो साहब! आप सुनते है सरकार की बाते। ऐसी चुन कर कह देती है कि उसका जवाव ही न वन पडे। सरकार को परमात्मा ने रानी वनाया है, हम तो सरकार के द्वार के भिक्षुक है। सरकार ने धर्मशाला के शिलारोपण का शुभ मुहुर्त्त पूछा था वह मैने विचार लिया है। इसी पक्ष की एकादशी को प्रात काल सरकार के हाथ से नीव पड जानी चाहिए।

गायत्री—यह सुकीर्ति मेरे भाग मे नही लिखी है। आपने किसी रईस को अपने हाथो सार्वजनिक इमारतो का आधार रखते देखा है? लोग अपने रहने के मकानो की नींव अधिकारियो से रखवाते है। मै इस प्रथा को क्योकर तोड सकती हूँ? जिलाधीश को शिलारोपण के लिए निमन्त्रित करूँगी। उन्ही के नाम पर धर्मशाला का नामकरण होगा। किसी ठीकेदार से भी आपने वातचीत की?

लेखराज—जी हाँ, मैंने एक ठीकेदार ठीक कर लिया है। सज्जन पुरुष है। इस शुभ कार्य को विना लाभ के करना चाहता है। केवल लागत-मात्र लेगा।

गायत्री—आपने उसे नकशा दिखा दिया है न? कितने पर इस काम का ठीका लेना चाहता है?

लेखराज—वह कहता है, दूसरा ठीकेदार जितना माँगे उससे मुझे सौ रुपये कम दिये जायँ।

गायत्री—तो अब एक दूसरा ठीकेदार लगाना पडा। वह कितना तखमीना करता है?

लेखराज—उसके हिसाव से ६० हजार पडेगे। माल-मसाला अब अव्वल दर्जे का लगायेगा। ६ महीने मे काम पूरा कर देगा!

गायत्री ने इस मकान का नकशा लखनऊ मे बनवाया था। वहाँ इसका तखमीना ४० हजार किया गया था। व्यग-भाव से बोली, तब तो वास्तव मे आपका ठीकेदार वडा सज्जन पुरुष है। इसमे कुछ न कुछ तो आपके ठाकुर जी पर जरूर ही चढाये जायेंगे।

लेखराज—सरकार तो दिल्लगी करती है। मुझे सरकार से यो ही क्या कम मिलता है कि ठीकेदार से कमीशन ठहराता? कुछ इच्छा होगी तो माँग लूँगा, नीयत क्यो विगाडूँ?

गायत्री—मै इसका जवाव एक सप्ताह मे दूँगी।

कानूनगो—और मुझे क्या हुक्म होता है? पडित जी, आपने भी तो देखा होगा, सारन और जगराँव मे हुजूर की कितनी जमीन दव गयी है?

पडित—जी हाँ, क्यो नही, सौ बीघे से कम न दवी होगी।

गायत्री—मै जमीन देख कर आपको इत्तला दूँगी। अगर आपस के समझौते से काम चल जाय तो रार वढाने की जरूरत नही।

दोनो महानुभाव निराश हो कर विदा हुए। दोनो मन ही मन गायत्री को कोस रहे थे। कानूनगो ने कहा, चालाक औरत है, वडी मुश्किल से हत्थे पर चढती है।

लेखराज बोले, एक-एक पैसा दाँत से पकडती है। न जाने बटोर कर क्या करेगी ? कोई आगे-पीछे भी तो नही है।

अँधेरा हो चला था। गायत्री सोच रही थी, इन लुटेरो से क्योकर बचूँ ? इनका बस चले तो दिन-दहाड़े लूट लें। इतने नौकर हैं, लेकिन ऐसा कोई नही, जिसे इलाके की उन्नति का ध्यान हो। ऐसा सुयोग्य आदमी कहाँ मिलेगा ? मैं अकेली ही कहाँ-कहाँ दौड सकती हूँ। ठीके पर दे दूँ तो इससे अधिक लाभ हो सकता है। सब झझटो से मुक्त हो जाऊँगी, लेकिन असामी मर मिटेंगे। ठीकेदार इन्हे पीस डालेगा। कृष्णार्पण कर दूँ, तो भी वही हाल होगा। कही ज्ञानशकर राजी हो जायँ तो इलाके के भाग जग उठें। कितने अनुभवशील पुरुष हैं, कितने मर्मज्ञ, कितने सूक्ष्मदर्शी। वह आ जायँ तो इन लुटेरो से मेरा गला छूट जाय। सारा इलाका चमन हो जाय। लेकिन मुसीबत तो यह है कि उनकी बातें सुन कर मेरी भक्ति और धार्मिक विश्वास डावाँडोल हो जाते हैं। अगर उनके साथ मुझे दो-चार महीने और लखनऊ रहने का अवसर मिलता तो मैं अब तक फैशनेबुल लेडी बन गयी होती। उनकी वाणी मे विचित्र प्रभाव है। मैं तो उनके सामने बावली सी हो जाती हूँ। वह मेरा इतना अदब करते तो भी परछाईं की तरह उनके पीछे-पीछे लगी रहती थी, छेड़ छाड किया करती थी। न जाने उनके मन मे मेरी ओर से क्या-क्या भावनाएँ उठी हो। पुरुषो मे यह बड़ा अवगुण है कि हास्य और विनोद को कुवृत्तियो से अलग नही रख सकते। इसका पवित्र आनन्द उठाना उन्हे आता ही नही। स्त्री जरा हँस कर बोली और उन्होने समझ लिया कि वह मुझ पर लट्टू हो गयी। उन्हे जरा-सी उँगली पकडने को मिल जाय, फिर तो पहुँचा पकडते देर नही लगती। अगर ज्ञानशकर यहाँ आने पर तैयार हो गये तो उन्हे यही रखूँगी। यही से वह इलाके का प्रबन्ध करेंगे। जब कोई विशेष काम होगा तो शहर जायेंगे। वहाँ भी मैं उनसे दूर-दूर रहूँगी। भूल कर भी घर मे न बुलाऊँगी। नही, अब उन्हे उतनी धृष्टता करने का साहस ही न होगा। बेचारा कितना लज्जित था, मेरे सामने ताक न सकता था। स्टेशन पर मुझे बिदा करने आया था, मगर दूर बैठा रहा, जबान तक न खोली।

गायत्री इन्ही विचारो मे मग्न थी कि एक चपरासी ने आज की डाक उसके सामने रख दी। डाक घर यहाँ से तीन कोस पर था। प्रति दिन एक बेगार डाक लेने जाया करता था।

गायत्री ने पूछा—वह आदमी कहाँ है ? क्यो रे, अपनी मजूरी पा गया ?

बेगार—हाँ सरकार, पा गया।

गायत्री—कम तो नही है ?

बेगार—नही सरकार, खूब खाने भर को मिल गया।

गायत्री—कल तुम जाओगे कि कोई दूसरा आदमी ठीक किया जाय ?

बेगार—सरकार, मैं तो हाजिर ही हूँ, दूसरा क्यो जायगा ?

गायत्री चिट्ठियाँ खोलने लगी। अधिकाश चिट्ठियाँ सुगन्धित तेल और अन्य औष-

धियो के विज्ञापनो की थी। गायत्री ने उन्हे उठा कर रद्दी की टोकरी मे डाल दिया। एक पत्र राय कमलानन्द का था। इसे उसने उत्सुकता से खोला और पढते ही उसकी आँखें आनन्दपूर्ण गर्व से चमक उठी, मुखमडल नव पुष्प के समान खिल गया। उसने तुरन्त वह पैकेट खोला जिसे वह अब तक किसी औषधालय का सूचीपत्र समझ रही थी। पूर्व पृष्ठ खोलते ही उसे अपना चित्र दिखाई दिया। पहले लेख का शीर्षक था 'गायत्री देवी'। लेखक का नाम था ज्ञानशकर बी० ए०। गायत्री अँगरेजी कम जानती थी, लेकिन स्वाभाविक बुद्धिमत्ता से वह साधारण पुस्तकों का आशय समझ लेती थी। उसने बडी उत्सुकता से लेख को पढ़ना शुरू किया और यद्यपि बीस पृष्ठो से कम न थे, पर उसने आध घटे मे ही सारा लेख समाप्त कर दिया और तब गौरवोन्मत्त नेत्रो से इधर उधर देख कर एक लम्बी सांस ली। ऐसा आनन्दोन्माद उसे अपने जीवन मे शायद ही प्राप्त हुआ हो। उसका मान-प्रेम कभी इतना उल्लसित न हुआ था। ज्ञानशकर ने गायत्री के चरित्र, उसके सद्गुणो और सत्कार्यों का इतनी कुशलता से उल्लेख किया था कि भक्ति की जगह लेख मे ऐतिहासिक गम्भीरता का रग आ गया था। इसमे सन्देह नही कि एक-एक शब्द से श्रद्धा टपकती थी, किन्तु वाचक को यह विवेक-हीन प्रशसा नही, ऐतिहासिक उदारता प्रतीत होती थी। इस शैली पर वाक्य-नैपुण्य सोने मे सुगन्ध हो गया था। गायत्री बार-बार आईने मे अपना स्वरूप देखती थी, उसके हृदय मे एक असीम उत्साह प्रवाहित हो रहा था, मानो वह विमान पर बैठी हुई स्वर्ग को जा रही हो। उसकी धमनियों मे रक्त की जगह उच्च भावो का सचार होता हुआ जान पडता था। इस समय उसके द्वार पर भिक्षुओ की एक सेना भी होती तो निहाल हो जाती। कानूनगो साहब अगर आ जाते तो पाँच सौ के बदले पाँच हजार ले भागते और पडित लेखराज का तखमीना दूना भी होता हो तो स्वीकार कर लिया जाता। उसने कई दिन से यहाँ के कारिन्दे से बात न की थी, उससे रूठी हुई थी। इस समय उसे अपराधियो की भाँति खडे देखा तो प्रसन्न मुख हो कर बोली, कहिए, मुन्शी जी आजकल तो कच्चे घडे की खूब छनती होगी।

मुन्शी जी धीरे धीरे सामने आ कर बोले, हुजूर, जनेऊ की सौगन्ध है, जब से सरकार ने मना कर दिया मैंने उसकी सूरत तक न देखी।

यह कहते हुए उन्होने अपने साहित्य-प्रेम का परिचय देने के लिए पत्रिका उठा ली और पन्ने उलटने लगे। अकस्मात् गायत्री का चित्र देख कर उछल पड़े। बोले, सरकार, यह तो आपकी तस्वीर है। कैसा बनाया है कि अब बोली, अब बोली। क्या कुछ सरकार का हाल भी लिखा है?

गायत्री ने बेपरवाही से कहा, हाँ, तस्वीर है तो हाल क्यो न होगा? कारिन्दा दौड़ा हुआ बाहर गया और यह खबर सुनायी। कई कारिन्दे और चपरासी भोजन बना रहे थे, कोई भंग पीस रहा था, कोई गा रहा था। सब के सब आकर तस्वीर पर टूट पडे। छीना-झपटी होने लगी, पत्रिका के कई पन्ने फट गये। यो गायत्री किसी को अपनी किताबें छूने नही देती थी, पर इस समय जरा भी न बोली।

एक मुँहलगे चपरासी ने कहा, सरकार, कुछ हम लोगो को भी सुना दें।

गायत्री—यह मुझसे न होगा। सारा पोथा भरा हुआ है, कहाँ तक सुनाऊँगी? दो-चार दिन मे इसका अनुवाद हिन्दी पत्र मे छप जायगा, तब पढ लेना।

लेकिन जब आदमियो ने एक स्वर होकर आग्रह करना शुरू किया तो गायत्री विवश हो गयी। इधर-उधर से कुछ अनुवाद करके सुनाया। यदि उसे अँगरेजी की अच्छी योग्यता होती तो कदाचित् वह अक्षरशः सुनाती।

एक कारिन्दे ने कहा, पत्रवालो को न जाने यह सब हाल कैसे मिल जाते हैं।!

दूसरे कारिन्दे ने कहा, उनके गोइन्दे सब जगह विचरते रहते हैं। कही कोई बात हो, चट उनके पास पहुँच जाती है।

गायत्री को इन वार्ताओ मे असीम आनन्द आ रहा था। प्रात.काल उसने ज्ञानशकर को एक विनयपूर्ण पत्र लिखा। इस लेख की चर्चा न करके केवल अपनी विडम्बनाओ का वृत्तान्त लिखा और साग्रह निवेदन किया कि आप आ कर मेरे इलाके का प्रबन्ध अपने हाथ मे ले, इस डूबती हुई नौका को पार लगाये। उसका मनोमालिन्य मिट गया था। खुशामद अभिमान का सिर नीचा कर देती है। गायत्री अभिमान की पुतली थी। ज्ञानशकर ने अपने श्रद्धाभाव से उसे वशीभूत कर लिया।

१६

ज्ञानशंकर को गायत्री का पत्र मिला तो फूले न समाये। हृदय मे भाँति-भाँति की मनोहर सुखद कल्पनाएँ तरंगे मारने लगी। सौभाग्य देवी जीवन-संकल्प की भेट लिये उनका स्वागत करने को तैयार खडी थी। उनका मधुर स्वप्न इतनी जल्दी फलीभूत होगा इसकी उन्हे आशा न थी। विधाता ने एक बडी रियासत के स्वामी बनने का अवसर प्रदान कर दिया था। यदि अब भी वह इससे लाभ न उठा सके तो उनका दुर्भाग्य।

किन्तु गोरखपुर जाने के पहले लखनपुर की ओर से निश्चिन्त हो जाना चाहते थे। जब से प्रेमशकर ने उनसे अपने हिस्से का नफा माँगा था उनके मन मे नाना प्रकार की शकाएँ उठ रही थी। लाला प्रभाशकर का वहाँ आना-जाना और भी खटकता था। उन्हे सदेह होता था कि वह बुड्ढा घाघ अवश्य कोई न कोई दाँव खेल रहा है। यह पितृवत् प्रेम अकारण नही। प्रेमशकर चतुर हो, लेकिन इस चाणक्य के सामने अभी लौंडे है। इनकी कुटिल कामना यही होगी कि उन्हे फोड कर लखनपुर के आठ आने अपने लडको के नाम हिब्बा करा ले या किसी दूसरे महाजन के यहाँ बय कराके बीच मे दस-पाँच हजार की रकम उडा लें। जरूर यही बात है, नही तो जब अपनी ही रोटियो के लाले पड़े हैं तो यह पकवान बन-बन कर न जाते। अब तो श्रद्धा ही मेरी हारी हुई बाजी का फर्जी है। अब उसे यह पढाऊँ कि तुम अपने गुजारे के लिए आधा लखनपुर अपने नाम करा लो। उनकी कौन चलाये; अकेले हैं ही, न जाने कब कहाँ चल दें तो तुम कही की न रही। यह चाल सीधी पड जाय तो अब भी लखन-

पुर अपना हो सकता है। श्रद्धा को तीर्थयात्रा करने के लिए भेज दूंगा। एक न एक दिन मर ही जायेगी। जीती भी रही तो हरद्वार मे बैठी गगा स्नान करती रहेगी। लखनपुर की ओर से मुझे कोई चिन्ता न रहेगी।

यो निश्चय करके ज्ञानशंकर अन्दर गये; दैवयोग से श्रद्धा उनकी इच्छानुसार अपने कमरे में अकेली बैठी हुई मिल गयी। माया को कई दिन से ज्वर आ रहा था, विद्या अपने कमरे में बैठी हुई उसे पंखा झल रही थी।

ज्ञानशंकर चारपाई पर बैठ कर श्रद्धा से बोले, देखी चचा साहब की धूर्तता! वह तो मैं पहले ही ताड़ गया था कि यह महाशय कोई न कोई स्वाँग रच रहे हैं। सुना लखनपुर के वय करने की बात-चीत हो रही है।

श्रद्धा—(विस्मित हो कर) तुमसे किसने कहा? चचा साहब को मैं इतना नीच नही समझती। मुझे पूरा विश्वास है कि वह केवल प्रेमवश वहाँ आते-जाते हैं।

ज्ञान—यह तुम्हारा भ्रम है। यह लोग ऐसे निःस्वार्थ प्रेम करनेवाले जीव नही है। जिसने जीवन-पर्यन्त दूसरो को ही मूँडा हो वह अब अपना गँवा कर भला क्या प्रेम करेगा? मतलब कुछ और ही है। भैया का माल है, चाहे बेचें या रखें, चाहे चचा साहब को दे दें या लुटा दें, इसका उन्हे पूरा अधिकार है, मैं बीच मे कूदनेवाला कौन होता हूँ? हाँ इतना अवश्य है कि तुम फिर कही की न रहोगी।

श्रद्धा—अगर तुम्हारा ही कहना ठीक हो तो मेरा इसमे क्या वस है?

ज्ञान—वस क्यों नही है? आखिर तुम्हारे गुजारे का भार तो उन्ही पर है। तुम आठ आने लखनपुर अपने नाम लिखा सकती हो। भैया को कोई आपत्ति नही हो सकती। तुम्हें संकोच हो तो मैं स्वयं जा कर उनसे मामला तै कर सकता हूँ। मुझे विश्वास है कि भैया इन्कार न करेंगे और करे तो भी मैं उन्हे कायल कर सकता हूँ। जब तुम्हारे नाम हो जायगा तब उन्हे वय करने का अधिकार न रहेगा और चचा साहब की दाल भी न गलेगी।

श्रद्धा विचार मे डूब गयी। जब उसने कई मिनट तक सिर न उठाया तब ज्ञानशकर ने पूछा, क्या सोचती हो? इसमे कोई हर्ज है? जायदाद नष्ट हो जाय, वह अच्छा है या घर मे बनी रहे, वह अच्छा है?

अब श्रद्धा ने सिर उठाया और गौरव-पूर्ण भाव से बोली—मैं ऐसा नही कर सकती। उनकी जो इच्छा हो वह करे, चाहे अपना हिस्सा बेच दें या रखें। वह स्वय बुद्धिमान हैं, जो उचित समझेंगे वह करेंगे। मैं उनके पाँव मे बेडी क्यों डालूँ!

ज्ञानशंकर ने रुष्ट हो कर उत्तर दिया, लेकिन यह सोचा है कि जायदाद निकल गयी तो तुम्हारा निर्वाह क्यो कर होगा? वह कल ही फिर अमेरिका की राह लें तो?

श्रद्धा—मेरी कुछ चिन्ता न करो! वह मेरे स्वामी हैं, जो कुछ करेंगे उसी मे मेरी भलाई है। मुझे विश्वास ही नहीं होता कि वह मुझे निरवलम्ब छोड जायेंगे।

ज्ञान—तुम्हारी जैसी इच्छा। मैंने ऊँच-नीच सुझा दिया; अगर पीछे से कोई बात बने-बिगड़े तो मेरे सिर दोष न रखना।

ज्ञानशकर बाहर आये, उनका चित्त उद्विग्न हो रहा था। श्रद्धा के सन्तोष और पतिभक्ति ने उन्हे एक नयी उलझन मे डाल दिया। यह तो उन्हे मालूम था कि श्रद्धा मेरे प्रस्ताव को सुगमता से स्वीकार न करेगी, लेकिन उसमे इतना दृढ त्याग-भाव है इसका उन्हे पता न था। अपने मानव-प्रकृति ज्ञान पर उन्हे घमड था, श्रद्धा के त्याग भाव ने उसे चूर कर दिया। ओह! स्त्रियाँ कितनी अविवेकिनी होती हैं। मैंने महीनो इसे तोते की भाँति पढाया, उसका यह फल! वह अपने कमरे मे देर तक बैठे सोचते रहे कि क्योकर यह गुत्थी सुलझे? वह आज ही इस दुविधा का अन्त करना चाहते थे। यदि वह श्रद्धा का भार मुझ पर छोडना चाहते हैं, तो उन्हे लखनपुर उसके नाम लिखना पड़ेगा। मैं उन्हे मजबूर करूँगा। खूब खुली-खुली बाते होगी। इसी असमजस मे वह घर से निकले और हाजीपुर की ओर चले। रास्ते भर वह इसी चिन्ता मे पडे रहे। यह सकोच भी होता था कि इतने दिनो के बाद मिलने भी चला तो स्वार्थ-वश हो कर। जब से प्रेमशकर हाजीपुर रहने लग गये थे, ज्ञानबाबू ने एक बार भी वहाँ जाने का कष्ट न उठाया था। कभी-कभी अपने घर पर ही उनसे मुलाकात हो जाती थी। मगर इधर तीन-चार महीनो से दोनो भाइयो से भेट ही न हुई थी।

ज्ञानशकर हाजीपुर पहुँचे, तो शाम हो गयी थी। पूस का महीना था। खेतों मे चारो ओर हरियाली छायी हुई थी। सरसो, मटर, कुसुम, अल्सी के नीले-पीले फूल अपनी छटा दिखा रहे थे। कही चचल तोतो के झुड थे, कही उचक्के कौवे के गोल। जगह-जगह पर सारस के जोड़े अहिंसापूर्ण विचार मे मग्न खडे थे। युवतियाँ सिरो पर घडे रखे नदी से पानी ला रही थी, कोई खेत मे बथुआ का साग तोड़ रही थी, कोई बैलो को खिलाने के लिए हरियाली का गट्ठा सिर पर रखे चली आती थी। सरल शान्तिमय जीवन का पवित्र दृश्य था। शहर की चिल्ल-पो, दौड धूप के सामने यह शान्ति अतीव सुखद प्रतीत होती थी।

ज्ञानशकर एक आदमीके साथ प्रेमशकर के झोपड़े मे आये तो वहाँ की सुरम्य शोभा देख कर चकित हो गये। नदी के किनारे एक ऊँचे और विस्तृत टीले पर लताओ और बेलो से सजा हुआ ऐसा जान पड़ता था, मानो किसी उच्चात्मा का सन्तोषपूर्ण हृदय है। झोपडे के सामने जहाँ तक निगाह जाती थी, प्रकृति की पुष्पित और पल्लवित छटा दिखायी देती थी। प्रेमशकर झोपडे के सामने खडे बैलो को चारा डाल रहे ज्ञानशकर को थे। देखते ही बडे प्रेम से गले मिले और घर का कुशल-समाचार पूछने के बाद बोले, तुम तो जैसे मुझे भूल ही गये। इधर आने की कसम खा ली।

ज्ञानशकर ने लज्जित हो कर कहा, यहाँ आने का विचार तो कई दिन से था, पर अवकाश ही नहीं मिलता था। इसे अपने दुर्भाग्य के सिवा और क्या कहूँ? आप मुझसे इतने समीप हैं, फिर भी हमारे बीच मे सौ कोस का अन्तर है। यह मेरी नैतिक दुर्बलता और बिरादरी का लिहाज है। मुझे बिरादरी के हाथो जितने कष्ट झेलने पड़े, वह मैं ही जानता हूँ। यह स्थान तो बड़ा रमणीक है। यह खेत किसके हैं?

प्रेमशकर—इसी गाँव के असामियों के है। तुम्हे तो मालूम होगा, सावन मे यहाँ

बाढ आ गयी थी। सारा गाँव डूब गया था, कितने ही बैल बह गये, यहाँ तक कि झोपडों का भी पता न चला। तब से लोगो को सहकारिता की जरूरत मालूम होने लगी है। सब असामियो ने मिल कर यह बाँध बना लिया है और यह साठ-बीघे का चक निकल आया। इसके चारो ओर ऊँची मेड़े खीच दी है। जिसके जितने बीघे खेत हैं, उसी परते से बाँट दी जायेगी। मुझे लोगो ने प्रबन्धकर्त्ता बना रखा है। इस ढग से काम करने से बडी किफायत होती है। जो काम दस मजूर करते थे वही काम छह सात मजदूरो से पूरा हो जाता है। जुताई और सिंचाई भी उत्तम रीति से हो सकती है। तुमने गायत्री देवी का वृत्तान्त खूब लिखा है, मैं पढ कर मुग्ध हो गया।

ज्ञानशकर—उन्होने मुझे अपनी रियासत का प्रबन्ध करने को बुलाया है। मेरे लिए यह बड़ा अच्छा अवसर है। लेकिन जाऊँ कैसे? माया और उनकी माँ को तो साथ ले जा सकता हूँ; किन्तु भाभी किसी तरह जाने पर राजी नही हो सकती। शिकायत नही करता, लेकिन चाची से आजकल उनका बडा मेल जोल है। चाची और उनकी बहू दोनो ही उनके कान भरती हैं। उनका सरल स्वभाव है। दूसरों की बातो मे आ जाती हैं। आजकल दोनो महिलाएँ उन्हे दम दे रही है कि लखनपुर का आधा हिस्सा अपने नाम करा लो। कौन जाने, तुम्हारे पति फिर विदेश की राह ले तो तुम कही की न रहो। चचा साहब भी उसी गोष्ठी मे हैं। आज ही कल मे वह लोग यह प्रस्ताव आपके सामने लायेंगे। इसलिए आप से मेरी विनीत प्रार्थना है कि इस विषय मे आप जो करना चाहते हो उससे मुझे सूचित कर दे। आपके ही फैसले पर मेरे जीवन की सारी आशाएँ निर्भर है। यदि आपने अपने हिस्से को बय करने का निश्चय कर लिया हो, तो मैं अपने लिए कोई और राह निकालूँ।

प्रेमशकर—चचा साहब के विषय मे तुम्हे जो सदेह है, वह सर्वथा निर्मूल है। उन्होने आज तक कभी मुझसे तुम्हारी शिकायत नही की। उनके हृदय मे सतोष है और चाहे उनकी अवस्था अच्छी न हो, पर वह उससे असन्तुष्ट नही जान पडते। रहा लखनपुर के सम्बन्ध मे मेरा इरादा। मैं यह सुनना ही नही चाहता कि मैं उस गाँव का जमीदार हूँ। तुम मेरी ओर से निश्चिन्त रहो। यही समझ लो कि मैं हूँ ही नही। मैं अपने श्रम की रोटी खाना चाहता हूँ। बीच का दलाल नही बनना चाहता। अगर सरकारी पत्रो मे मेरा नाम दर्ज हो गया हो तो मैं इस्तीफा देने को तैयार हूँ। तुम्हारी भाभी के जीवन-निर्वाह का भार तुम्हारे ऊपर रहेगा। मुझसे भी जो कुछ बन पडेगा तुम्हारी सहायता करता रहूँगा।

ज्ञानशकर भाई की बातें सुन कर विस्मित हो गये। यद्यपि इन विचारो मे मौलिकता न थी। उन्होने साम्यवाद के ग्रन्थो मे इसका विवरण देखा था, लेकिन उनकी समझ मे यह केवल मानव-समाज का आदर्श-मात्र था। इस आदर्श को व्यावहारिक रूप मे देख कर उन्हे आश्चर्य हुआ। वह अगर इस विषय पर तर्क करना चाहते तो अपनी सबल युक्तियो से प्रेमशकर को निरुत्तर कर देते। लेकिन यह समय इन विचारो के समर्थन करने का था, न कि अपनी वाक्पटुता दिखाने का। बोले, भाई साहब! यह

समाज-सगठन का महान् आदर्श है, और मुझे गर्व है कि आप केवल विचार से नही, व्यवहार से भी उसके भक्त है। अमेरिका की स्वतन्त्र भूमि मे इन भावो का जाग्रत होना स्वाभाविक है। यहाँ तो घर से बाहर निकलने की नौबत ही नही आयी। आत्म-बल और बुद्धि-सामर्थ्य से भी वचित हूँ। मेरे सकल्प इतने पवित्र और उत्कृष्ट क्योकर हो सकते है! मेरी सकीर्ण दृष्टि मे तो यही जमीदारी, जिसे आप (मुस्करा कर) बीच की दलाली समझते है, जीवन का सर्वश्रेष्ठ रूप है। हाँ, सम्भव है आगे चल कर आपके सत्सग से मुझमे भी सद्विचार उत्पन्न हो जायँ।

प्रेम—तुम अपने ही मन मे विचार करो। यह कहाँ का न्याय है कि मिहनत तो कोई करे, उसकी रक्षा का भार किसी दूसरे पर हो, और रुपये उगाहें हम?

ज्ञान—बात तो यथार्थ है, लेकिन परम्परा से यह परिपाटी ऐसी चली आती है। इसमे किसी प्रकार का सशोधन करने का ध्यान ही नही होता।

प्रेम—तो तुम्हारा गोरखपुर जाने का कब तक इरादा है?

ज्ञान—पहले आप मुझे इसका पूरा विश्वास दिला दे कि लखनपुर के सम्बन्ध मे आपने जो कहा है वह निश्चयात्मक है।

प्रेम—उसे तुम अटल समझो। मैने तुमसे एक बार अपने हिस्से का मुनाफा माँगा था। उस समय मेरे विचार इतने पक्के न थे। मेरा हाथ भी तग था। उस पर मैं बहुत लज्जित हूँ। ईश्वर ने चाहा तो अब तुम मुझे इस प्रतिज्ञा पर दृढ पाओगे।

ज्ञान—तो मैं होली तक गोरखपुर चला जाऊँगा। कोई हर्ज न हो तो आप भी घर चले। माया आपको बहुत पूछा करता है।

प्रेम—आज तो अवकाश नही, फिर कभी आऊँगा।

ज्ञानशकर यहाँ से चले तो उनका चित्त बहुत प्रसन्न था। बहुत दिनो के बाद मेरे मन की अभिलाषा पूरी हुई। अब मैं पूरे लखनपुर का स्वामी हूँ। यहाँ अब कोई मेरा हाथ पकडनेवाला नही। जो चाहूँ निर्विघ्न कर सकता हूँ। भैया वचन के पक्के है, वह अब कदापि दुलख नही सकते। वह इस्तीफा लिख देते तो बात और पक्की हो जाती, लेकिन इस पर जोर देने से मेरी क्षुद्रता प्रकट होगी। अभी इतना ही बहुत है, आगे चल कर देखा जायगा।

२०

ज्ञानशकर लगभग दो बरस से लखनपुर पर इजाफा लगान करने का इरादा कर रहे थे, किंतु हमेशा उनके सामने एक न एक बाधा आ खडी होती थी। कुछ दिन तो अपने चचा से अलग होने मे लगे। जब उधर से बेफिक्र हुए तो लखनऊ जाना पडा। इधर प्रेमशकर के आ जाने से एक नयी समस्या उपस्थित हो गयी। इतने दिनो के बाद अब उन्हें मनोनीत सुअवसर हाथ लगा। कागज-पत्र पहले से ही तैयार थे। नालिशो के दायर होने मे विलम्ब न हुआ।

लखनपुर के लोग मुचलके के कारण बिगडे हुए थे ही, यह नयी विपत्ति सिर पर

पडी तो और भी झल्ला उठे। मुचलके की मियाद इसी महीने मे समाप्त होनेवाली थी। वह स्वच्छन्दता से जवावदेही कर सकते थे। सारे गाँव मे एका हो गया। आग-सी लग गयी। बूढे कादिर खाँ भी, जो अपनी सहिष्णुता के लिए बदनाम थे, धीरता से काम न ले सके। भरी हुई पचायत मे, जो जमीदार का विरोध करने के उद्देश्य से बैठी थी, बोले, इसी धरती मे सब कुछ होता है और सब कुछ इसी मे समा जाता है। हम भी इसी धरती से पैदा हुए है और एक दिन इसी मे समा जायेंगे। फिर यह चोट क्यो सहे? धरती के ही लिए छत्रधारियो के सिर गिर जाते है, हम भी अपना सिर गिरा देगे। इस काम मे सहायता करना गाँव के सब प्राणियो का धर्म है, जिससे जो कुछ हो सके दे। सब लोगो ने एक स्वर से कहा, हम सब तुम्हारे साथ हैं, जिस रास्ते कहोगे चलेंगे और इस धरती पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देगे।

निस्सन्देह गाँववालो को मालूम था कि जमीदार को इजाफा करने का पूरा अधिकार है, लेकिन वह यह भी जानते थे कि यह अधिकार उसी दशा मे होता है, जब जमीदार अपने प्रयत्न से भूमि की उत्पादक शक्ति वढा दे। इस निर्मूल इजाफे को सभी अनर्थ समझते थे।

ज्ञानशकर ने गाँव मे यह एका देखा तो चौंके, लेकिन कुछ तो अपने दबाव और कुछ हाकिम परगना मिस्टर ज्वालासिंह के सहवासी होने के कारण उन्हे अपनी सफलता मे विशेष सशय न था। लेकिन जव दावे की सुनवायी हो चुकने के वाद जवाबदेही शुरू हुई तो ज्ञानशकर को विदित हुआ कि मैं अपनी सफलता को जितना सुलभ समझता था उससे कही अधिक कष्टसाध्य है। ज्वालासिंह कभी-कभी ऐसे प्रश्न कर वैठते और असामियो के प्रति ऐसा दया-भाव प्रकट करते कि उनकी अभिरुचि का साफ पता चल जाता था। दिनो-दिन अवस्था ज्ञानशकर के विपरीत होती जाती थी। वह स्वय तो कचहरी न जाते, लेकिन प्रतिदिन का विवरण बड़े ध्यान से सुनते थे। ज्वालासिंह पर दाँत पीस कर रह जाते। ये महापुरुष मेरे सहपाठियो मे हैं। हम वह बरषो तक साथ-साथ खेले है। हँसी दिल्लगी, धौल-धप्पा सभी कुछ होता था। आज जो जरा अधिकार मिल गया तो ऐसे तोते की भाँति आँखें फेर ली, मानो कभी का परिचय ही नही है।

अन्त मे जब उन्होने देखा कि अब यत्न न किया तो काम बिगड जायगा तब उन्होंने एक दिन ज्वालासिंह से मिलने का निश्चय किया। कौन जाने मुझ पर रोब जमाने के ही लिए यह जाल फैला रहे हो। यद्यपि यह जानते थे कि ज्वालासिंह किसी मुकदमे की जाँच की अवधि मे वादियो से वहुत कम मिलते थे तथापि स्वार्थपरता की धुन मे उन्हे इसका भी ध्यान न रहा। सन्ध्या समय उनके वँगले पर जा पहुँचे।

ज्वालासिंह को इन दिनो सितार का शौक हुआ था। उन्हे अपनी शिक्षा मे यह विशेष त्रुटि जान पडती थी। एक गत बजाने की बार-बार चेष्टा करते, पर तारो का स्वर न मिलता था। कभी यह कील घुमाते, कभी वह कील ढीली करते कि ज्ञानशकर ने कमरे मे प्रवेश किया। ज्वालासिंह ने सितार रख दिया और उनसे गले मिल कर

बोले, आइए भाई जान, आइए। कई दिनो से आपकी याद आ रही थी। आजकल तो आपका लिटरेरी उमग बढा हुआ है। मैंने गायत्री देवी पर आपका लेख देखा। बस, यही जी चाहता था, आपकी कलम चूम लूँ। यहाँ सारी कचहरी मे उसी की चर्चा है। ऐसा ओज, ऐसा प्रसादगुण, इतनी प्रतिभा, इतना प्रवाह बहुत कम किसी लेख मे दिखायी देता है। कल मैं साहब बहादुर से मिलने गया था। उन की मेज पर वही पत्रिका पडी हुई थी। जाते ही जाते उसी लेख की चर्चा छेड दी। ये लोग बडे गुणग्राही होते है। यह कहाँ से ऐसे चुने हुए शब्द और मुहावरे ला कर रख देते है, मानो किसी ने सुदर फूलो का गुलदस्ता सजा दिया हो!

ज्वालासिंह की प्रशसा उस रईस की प्रशसा थी जो अपने कलावन्त के मधुर गान पर मुग्ध हो गया हो। ज्ञानशकर ने सकुचाते हुए पूछा, साहब क्या कहते थे?

ज्वाला—पहले तो पूछने लगे, यह है कौन आदमी? जब मैंने कहा, यह मेरे सहपाठी और साथ के खिलाडी हैं तब उसे और भी दिलचस्पी हुई। पूछे, क्या करते है, कहाँ रहते है? मेरी समझ मे देहाती बैंको के सम्बन्ध मे आपने जो रिमार्क किये हैं उनका उन पर बडा असर हुआ।

ज्ञान—(मुस्करा कर) भाई जान, आपसे क्या छिपाये। वह टुकडा मैंने एक अँगरेजी पत्रिका से कुछ काट-छाँट कर नकल कर लिया था (सावधान हो कर) कम से कम यह विचार मेरे न थे।

ज्वाला—आपको हवाला देना चाहिए था।

ज्ञान—विचारो पर किसी का अधिकार नही होता। शब्द तो अधिकाश मेरे ही थे।

ज्वाला—गायत्री देवी तो बहुत प्रसन्न हुई होगी। कुछ वरदान देगी या नही?

ज्ञान—उनका एक पत्र आया है। अपने इलाके का प्रबन्ध मेरे हाथो मे देना चाहती हैं।

ज्वाला—वाह, क्या कहने! वेतन भी ५०० रु० से कम न होगा।

ज्ञान—वेतन का तो जिक्र न था। शायद इतना न दे सके।

ज्वाला—भैया, अगर वहाँ ३०० रु० भी मिले तो आप हम लोगो से अच्छे रहेंगे। खूब सैर-सपाटे कीजिए, मोटर दौडाते फिरिए, और काम ही क्या है? हम लोगो की भाँति कागज का एक पुलिन्दा तो सिर पर लाद कर घर न लाना पडेगा। वहाँ कब तक जाने का विचार है?

ज्ञान—जाने को मैं तैयार हूँ, लेकिन जब आप गला छोडे।

ज्वालासिंह ने बात काट कर कहा, फैमिली को भी साथ ले जाइएगा न? अवश्य ले जाइए। मैंने भी एक सप्ताह हुए स्त्री को बुला लिया है। इस ऊजड़ मे भूत की तरह अकेला पडा रहता था।

ज्ञान—अच्छा तो भाभी आ गयी? बडा आनन्द रहेगा। कालेज मे तो आप परदे के बड़े विरोधी थे?

ज्वाला—अब भी हूँ, पर विपत्ति यह है कि अन्य पुरुष के सामने आते हुए उनके

प्राण निकल से जाते है। अरदली और नौकर से निस्सकोच बातें करती है, लेकिन मेरे मित्रो की परछाई से भी भागती हैं। खीच-खाँच के लाऊँ भी तो सिर झुका कर अपराधियो की भाँति खडी रहेगी।

ज्ञान—अरे, तो क्या मेरी गिनती उन्ही मित्रो मे है?

ज्वाला—अभी तो आपसे भी झिझकेगी। हाँ, आपसे दो-चार बार मुलाकात हो, आपके घर की स्त्रियाँ भी आने लगें तो सम्भव है सकोच न रहे। क्यो न मिसेज ज्ञानशकर को कल यहाँ भेज दीजिए? गाडी भेज दूँगा। आपकी वाइफ को तो कोई आपत्ति न होगी?

ज्ञान—जी नही, वह बड़े शौक से आयेगी।

ज्ञानशकर को अपने मुकदमे के सम्बन्ध मे और कुछ कहने का अवसर न मिला, लेकिन वहाँ से चले तो बहुत खुश थे। स्त्रियो के मेल-जोल से इन महाशय की नकेल मेरे हाथो मे आ जायगी। जिस कल को चाहूँ घुमा सकता हूँ। उन्हे अब अपनी सफलता मे कोई सशय न रहा। लेकिन जब घर पर आ कर उन्होने विद्या से यह चर्चा की तो वह बोली, मुझे तो वहाँ जाते झेंप होती है, न कभी की जान-पहचान, न रीति न व्यवहार। मैं वहाँ जा कर क्या बातें करूँगी? गूँगी बनी बैठी रहूँगी। तुमने मुझसे न पूछा-ताछा, वादा कर आये?

ज्ञान—मिसेज ज्वालासिंह बडी मिलनसार है। उनसे मिल कर तुम्हे बडा आनन्द आयेगा।

विद्या—अच्छा, और मुन्नी को (छोटी लडकी का नाम था) क्या करूँगी? यह वहाँ रोये-चिल्लाय और उन्हे बुरा लगे तो?

ज्ञान—महरी को साथ लेते जाना। वह लडकी को बाहर बगीचे मे बहलाती रहेगी।

विद्या बहुत कहने-सुनने से अन्त मे जाने पर राजी हो गयी। प्रातःकाल ज्वाला-सिंह की गाडी आ गयी। विद्या बडे ठाट से उनके घर गयी। दस बजते-बजते लौटी। ज्ञानशकर ने बडी उत्सुकता से पूछा, कैसे मिली?

विद्या—बहुत अच्छी तरह। स्त्री क्या है देवी है। ऐसी हँसमुख, स्नेहमयी स्त्री तो मैंने देखी ही नही। छोडती ही न थी। बहुत जिद की तो आने दिया। मुझे विदा करने लगी तो उनकी आँखो से आँसू निकलने लगे। मैं भी रो पडी। उर्दू, अँगरेजी सब पढ़ी हुई हैं। बडा सरल स्वभाव है। महरियो तक को तू नही कहती। शीलमणि नाम है।

ज्ञान—कुछ मेरी चर्चा भी हुई?

विद्या—हाँ, हुई क्यो नही? कहती थी मेरे बाबूजी के पुराने दोस्त है। तुम्हे उस दिन चिक की आड़ से देखा था। तुम्हारी अचकन उन्हे पसन्द नही। हँसकर बोली, अचकन क्या पहनते है, मुसलमानो का पहनावा है। कोट क्यो नही पहनते?

ज्ञानशकर की आशा और उद्दीप्त हुई, लेकिन जब मुकदमा फिर तारीख पर पेश हुआ तो ज्वालासिंह के व्यवहार मे जरा भी अन्तर न था। बार-बार मुद्दई के गवाहो

से अविश्वास सूचक प्रश्न करते, मुद्दई के वकील के प्रश्नों पर शंकाएँ करते। ज्ञानशंकर ने शाम को यह समाचार सुना तो चकित हो गये। यह तो विचित्र आदमी है। इधर भी चलता है, उधर भी। मुझे नचाना चाहता है। यह पद पा कर दोरंगी चाल चलना सीख गया है। जी में आया, चल कर साफ-साफ कह दूँ, मित्रों से यह ~~व्यवहार~~ अच्छा नहीं। या तो दुश्मन बन जाओ या दोस्त बने रहो। यह क्या कि मन में कुछ और मुख में कुछ और। इसी असमंजस में एक सप्ताह गुजर गया। दूसरी तारीख निकट आती जाती थी। ज्ञानशंकर का चित्त बहुत उद्विग्न था। उन्होंने मन में निश्चय कर लिया था कि अगर इन्होंने फिर दोरंगी चाल चली तो अपना मुकदमा किसी दूसरे इजलास में उठा ले जाऊँगा। दबूँ क्यों?

लेकिन जब दूसरी तारीख को ज्वालासिंह ने लखनपुर जा कर मौके की जाँच करने के लिए फिर तारीख बढ़ा दी तो ज्ञानशंकर झुँझला उठे। क्रोध में भरे हुए विद्या से बोले, देखी तुमने इनकी शरारत? अब मौके की जाँच करने जा रहे हैं! अब नहीं रहा जाता। जाता हूँ, जरा दो दो बातें कर आऊँ।

विद्या—तुम इतना अधीर क्यों हो रहे हो? क्या जाने वह दूसरों को दिखाने के लिए यह स्वाँग भर रहे हों। अपनी बदनामी को सभी डरते हैं।

ज्ञान—तो आखिर कब तक मैं फैसले का इन्तजार करता रहूँ? यहाँ बैठे-बैठे मेरी कई सौ रुपये महीने की हानि हो रही है।

ज्ञानशंकर ने अभी तक विद्या से गायत्री के अनुरोध की जरा भी चर्चा न की थी। इस समय सहसा मुँह से बात निकल गयी। विद्या ने चौंक कर पूछा, हानि कैसी हो रही है?

ज्ञानशंकर ने देखा, अब बातें बनाने से काम न चलेगा और फिर कब तक छिपाऊँगा। बोले, मुझे याद आता है, मैंने तुमसे गायत्री देवी के पत्र का जिक्र किया था। उन्होंने मुझे अपनी रियासत का मैनेजर बनाने का प्रस्ताव किया है और जल्द बुलाया है।

विद्या—तुमने स्वीकार भी कर लिया?

ज्ञान—क्यों न करता, क्या कोई हानि थी?

विद्या—जब तुम्हें स्वयं इतनी मोटी-सी बात भी नहीं सूझती तो मैं और क्या कहूँ। भला सोचो तो दुनिया क्या कहेगी। लोग यही समझेंगे कि अबला विधवा है, नातेदार जमा हो कर लूट खाते हैं। तुम चाहे कितने ही निःस्पृह भाव से काम करो, लेकिन बदनामी से न बच सकोगे, अभी वह तुम्हारी बड़ी साली हैं, तुमसे कितना प्रेम करती हैं, कितनी ही बार तुम्हारी चारपाई तक बिछा दी है। इस उच्चासन से गिर कर अब तुम उनके नौकर हो जाओगे और मुझे भी बहिन के पद से गिरा कर नौकरानी बना दोगे। मान लिया कि वह भी तुम्हारी खातिर करेंगी, लेकिन वह मृदुभाव कहाँ? लोग उनसे तुम्हारी जा-बेजा शिकायतें करेंगे। मुलाहिजे के मारे वह तुमसे कुछ न कह सकेंगी, मन ही मन कुढ़ेंगी। मैं तुम्हें नौकरी के विचार से जाने की कभी सलाह न दूँगी।

ज्ञान—कह चुकी या और कहना है।

विद्या—कहने-सुनने की बात नही है, मुझे तुम्हारा वहाँ जाना सर्वथा अनुचित जान पड़ता है।

ज्ञान—अच्छा तो अब मेरी बात सुनो। मुझे वर्त्तमान और भविष्य की अवस्था का विचार करके यही उचित जान पडता है कि इस अवसर को हाथ से न जाने दूं। जब मैं जी तोड कर काम करूँगा, दो की जगह एक खर्च करूँगा, एक की जगह दो जमा करके दिखाऊँगा; तो गायत्री बावली नही है कि अनायास मुझपर सन्देह करने लगे। और फिर मैं केवल नौकरी के इरादे से नही जाता, मेरे विचार कुछ और ही हैं।

विद्या ने सशंक दृष्टि से ज्ञानशंकर को देख कर पूछा, और क्या विचार है?

ज्ञान—मैं इस समृद्धिपूर्ण रियासत को दूसरे के हाथ मे नही देखना चाहता। गायत्री के बाद जब उस पर दूसरो का ही अधिकार होगा तो मेरा क्यो न हो?

विद्या ने कुतूहल से देख कर कहा, तुम्हारा क्या हक है?

ज्ञान—मैं अपना हक जमाया चाहता हूँ। अब चलता हूँ जरा ज्वालासिंह से निबटता आऊँ।

विद्या—उनसे क्या निबटोगे? उन्होने कोई रिश्वत ली है?

ज्ञान—तो फिर इतना मित्रभाव क्यों दिखाते हैं।

विद्या—यह उनकी सज्जनता है। यह आवश्यक नही कि वह आपके लिए दूसरो पर अन्याय करे।

ज्ञान—यही बात मैं उनके मुँह से सुनना चाहता हूँ। इसका मुँहतोड़ जवाब मेरे पास है।

विद्या—अच्छा तो जाओ, जो जी मे आये करो। फिर क्यों सलाह लेते हो?

ज्ञान—तुमसे सलाह नही लेता, इतनी ही बुद्धि होती तो फिर रोना काहे का था? स्त्रियाँ बडे-बडे काम कर दिखाती हैं। तुमसे इतना भी न हो सका कि शीलमणि से इस मुकदमे के सम्बन्ध मे कुछ बातचीत करती, तुम्हारी तो जरा-जरा सी बात मे मान हानि होने लगती है।

विद्या—हाँ, मुझसे यह सब नहीं हो सकता। अपना स्वभाव ही ऐसा नही है।

ज्ञान—क्यो, इसमें क्या हर्ज था, अगर तुम एक बार हँसी-हँसी में कह देती कि तुम्हारे बाबूजी हमारी हजारों रुपये साल की क्षति कराये देते हैं, जरा उनको समझा क्यो नहीं देती?

विद्या—मुझे यह बातें बनानी नहीं आतीं, क्या करूँ? मैं इस विषय में शीलमणि से कुछ कह नही सकती।

ज्ञान—चाहे दावा खारिज हो जाय?

विद्या—चाहे जो कुछ हो।

ज्ञानशंकर बाहर आये तो सामने एक नयी समस्या आ खड़ी हुई। विद्या को कैसे राजी करूँ? मानता हूँ कि सम्बन्धियो के यहाँ नौकरी से कुछ हेठी अवश्य होती है

लेकिन इतनी नही कि कोई उसके लिए चिरकाल के मन्सूबो को मिटा दे। विद्या की यह बुरी आदत है कि जिस बात पर अड़ जाती है उसे किसी तरह से नही छोड़ती। मैं उधर चला जाऊँ और इधर यह रायसाहब से मेरी शिकायत कर दे तो बना-बनाया काम बिगड़ जाय। अब यह पहले की-सी सरला नहीं है। इसमें दिनो-दिन आत्म-सम्मान की मात्रा बढ़ती जाती है। इसे नाराज करने का यह अवसर नहीं।

वह इस चिन्ता मे बैठे हुए थे कि शीलमणि की सवारी आ पहुँची। ज्ञानशकर ने निश्चय किया, स्वयं चल कर उससे अपना समाचार कहूँ। अभी तीनो महिलाएँ कुशल समाचार ही पूछ रही थी कि वह कुछ झिझकते हुए ऊपर आये और कमरे के द्वार पर चिलमन के सामने खड़े हो कर शीलमणि से बोले, भाभी जी को प्रणाम करता हूँ।

विद्या उनका आशय समझ गयी। लज्जा से उसका मुखमडल अरुण वर्ण हो गया। वह वहाँ से उठ कर ज्ञानशकर को अवहेलनापूर्ण नेत्रो से देखते हुए दूसरे कमरे मे चली गयी। श्रद्धा मध्यस्थ का काम देने के लिए रह गयी।

ज्ञानशकर बोले, भाई साहब तो पर्दे के भक्त नही हैं, और जब हम लोगो मे इतनी घनिष्ठता हो गयी है तो यह हिसाब उठ जाना चाहिए। मुझे आपसे कितनी ही बाते कहनी हैं। परमात्मा ने आपको शील और विनय के गुणो से विभूषित किया है, इसी लिए मुझे आपसे निज के मामलो मे जबान खोलने का साहस हुआ है। मुझे विश्वास है कि आप उसकी अवज्ञा न करेंगी। मेरा एक इजाफा लगान का मुकदमा भाई साहब के इजलास मे दो महीनो से पेश है। मैं उनका इतना अदब करता हूँ कि इस विषय मे उनसे कुछ कहते हुए सकोच होता है। यद्यपि मुझे वह भाई समझते हैं, लेकिन किसी कारण से उन्हे भ्रम होता हुआ जान पडता है कि मेरा दावा झूठा है, और मुझे भय है कि कही वह खारिज न कर दें। इसमे सन्देह नही कि दावे को खारिज करने का उन्हे बहुत दु.ख होगा, लेकिन शायद उन्हे अब तक मेरी वास्तविक दशा का ज्ञान नही है। वह यह नही जानते कि इससे मेरा कितना अपमान और कितना अनिष्ट होगा। आजकल की जमीदारी एक बला है। जीवन की सामग्रियाँ दिनो-दिन महँगी होती जाती हैं और मेरी आमदनी आज भी वही है जो तीस वर्ष पहले थी। एसी अवस्था मे मेरे उद्धार का इसके सिवा और क्या उपाय है कि असामियो पर इजाफा लगान करूँ। अन्न मोतियो के मोल बिक रहा है। कृषको की आमदनी दुगनी, बल्कि तिगुनी हो गयी है। यदि मैं उनकी बढी हुई आमदनी मे से एक हिस्सा माँगता हूँ तो क्या अन्याय करता हूँ? अगर मेरी जीत हुई तो सहज मे ही मेरी आमदनी एक हजार बढ जायेगी। हार हुई तो असामियो की निगाह मे गिर जाऊँगा। वह शेर हो जायेंगे और बात-बात पर मुझसे उलझेंगे। तब मेरे लिए इसके सिवा और मार्ग न रहेगा कि जमीदारी से इस्तीफा दे दूँ और मित्रो के सिर जा पड़ूँ। (मुस्करा कर) आप ही के द्वार पर अड्डा जमाऊँगा और यदि आप मार-मार कर हटायें, तो भी हटने का नाम न लूँगा।

शीलमणि ने यह विवरण ध्यानपूर्वक सुना और श्रद्धा से बोली, आप ... हे

कह दें, मुझे यह सुन कर बड़ा खेद हुआ। आपने पहले इसका जिक्र क्यों नहीं किया? विद्या ने भी कभी इसकी चर्चा नहीं की, नहीं तो अब तक आपकी डिगरी हो गयी होती। किन्तु आप निश्चिंत रहें। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि अपनी ओर से आपकी सिफारिश करने में कोई बात उठा न रखूँगी।

ज्ञान—मुझे आपसे ऐसी ही आशा थी। दो-चार दिन में भाई साहब मौका देखने जायेंगे। इसलिए उनसे जल्द ही इसकी चर्चा कर दें।

शील—मैं आज जाते ही जाते कहूँगी। आप इतमीनान रखें।

२१

प्रभात का समय था। चैत का सुखद पवन प्रवाहित हो रहा था। बाबू ज्वालासिंह बरामदे में आरामकुर्सी पर लेटे हुए घोड़े का इन्तजार कर रहे थे। उन्हें आज मौका देखने के लिए लखनपुर जाना था। किन्तु इस मार्ग में एक बड़ी बाधा खड़ी हो गयी थी। कल सन्ध्या समय शीलमणि ने उनसे ज्ञानशंकर के मुकदमे की बात कही थी और तभी से वह बड़े असमंजस में पड़े हुए थे। सामने एक जटिल समस्या थी न्याय या प्रणय, कर्त्तव्य या स्त्री की मान रक्षा। वह सोचते थे, मुझसे बड़ी भूल हुई कि इस मुकदमे को अपने इजलास में रखा। लेकिन मैं यह क्या जानता था कि ज्ञानशंकर यह कूटनीति ग्रहण करेंगे। बड़ा स्वार्थी मनुष्य है। इसी अभिप्राय से उसने स्त्रियों में मेल-जोल बढ़ाया।

शीलमणि यह चालें क्या जाने शील में पड़ कर वचन दे आयी। अब यदि उनकी बात नहीं रखता तो वह रो-रो कर जान ही दे देगी। उसे क्या मालूम कि इस अन्याय से मेरी आत्मा को कितना दुःख होगा। अभी तक जितनी गवाहियाँ सामने आयी हैं उनसे तो यही सिद्ध होता है कि ज्ञानशंकर ने असामियों को दबाने के लिए यह मुकदमा दायर किया है और कदाचित् बात भी यही है। बड़ा ही बना हुआ आदमी है। लेख तो ऐसा लिखता है कि मानो दीन-रक्षा के भावों में पगा हुआ है किन्तु पक्का मतलबी है। गायत्री की रियासत का मैनेजर हो जायगा तो अन्धेर मचा देगा। नहीं, मुझसे यह अन्याय न हो सकेगा, देख कर मक्खी न निगली जायगी। शीलमणि रूठेगी तो रूठे। उसे स्वयं समझना चाहिए था कि मुझे ऐसा वचन देने का कोई अधिकार नहीं था। लेकिन मुश्किल तो यह है कि वह केवल रो कर ही मेरा पिंड न छोड़ेगी। बात-बात पर ताने देगी। कदाचित् मैके की तैयारी भी करने लगे। यही उसकी बुरी आदत है कि या तो प्रेम और मृदुलता की देवी बन जायगी या बिगड़ेगी तो भालों से छेदने लगेगी। ज्ञानशंकर ने मुझे ऐसे संकट में डाल रखा है कि उससे निकलने का कोई मार्ग ही नहीं दीखता।

ज्वालासिंह इसी हैस-बैस में पड़े हुए थे कि अचानक ज्ञानशंकर सामने पैरगाड़ी पर आते दिखायी दिए। ज्वालासिंह तुरन्त कुर्सी से उठ खड़े हुए और साईस को जोर से पुकारा कि घोड़ा ला। साईस घोड़े को कसे हुए तैयार खड़ा था। यह हुक्म पाते

ही घोडा सामने ला कर खडा कर दिया। ज्वालासिंह उस पर कूद कर सवार हो गये। ज्ञानशकर ने समीप आ कर कहा, कहिए भाई साहब, आज सवेरे-सवेरे कहाँ चले?

ज्वाला—जरा लखनपुर जा रहा हूँ। मौका देखना है?

ज्ञान—धूप हो जायेगी।

ज्वाला—कोई परवाह नही।

ज्ञान—मैं भी साथ चलूं?

ज्वाला—मुझे रास्ता मालूम है।

यह कहते हुए उन्होने घोडे को एड लगायी और हवा हो गये। ज्ञानशकर समझ गये कि मेरा मन्त्र अपना काम कर रहा है। यह अकृपा इसी का लक्षण है। ऐसा न होता तो आज भी वही मीठी-मीठी बाते होती। चलूं, जरा शीलमणि को और पक्का कर आऊँ। यह इरादा करके वह ज्वालासिंह के कमरे मे जा बैठे। अरदली ने कहा, सरकार बाहर गये है।

ज्ञान—मैं जानता हूँ। मुझसे मुलाकात हो गयी। जरा घर मे मेरी इत्तला कर दो।

अरदली—सरकार का हुक्म नही है।

ज्ञान—मुझे पहचानते हो या नही?

अरदली—पहचानता क्यो नही हूँ।

ज्ञान—तो चौखट पर जा कर कहते क्यो नही?

अरदली—सरकार ने मना कर दिया है।

ज्ञानशकर को अब विश्वास हो गया कि मेरी चाल ठीक पडी, ज्वालासिंह ने अपने को पक्षपात-रहित सिद्ध करने के लिए ही यह षड्यन्त्र रचा है। वह सोच ही रहे थे कि शीलमणि से क्योकर मिलूं कि इतने मे महरी किसी काम से बाहर आयी और ज्ञानशकर को देखते ही जा कर शीलमणि से कहा। शीलमणि ने तुरन्त उनके लिए पान भेजा और उन्हे दीवानखाने मे बैठाया। एक क्षण के बाद वह खुद आ कर पर्दे की आड मे खडी हो गयी और महरी से कहलाया, मैंने बाबू जी से आपकी सिफारिश कर दी है।

ज्ञानशकर ने धन्यवाद देते हुए कहा, मुझे अब आप ही का भरोसा है।

शीलमणि बोली, आप घबराये नही मैं उन्हे एकदम चैन न लेने दूंगी। ज्ञानशकर ने ज्यादा ठहरना उचित न समझा। खुशी-खुशी विदा हुए।

उधर बाबू ज्वालासिंह ने घोडा दौडाया तो चार मील पर रुके। उन्हे एक सिगार पीने की इच्छा हुई। जेब से सिगार-केस निकाला, लेकिन देखा तो दियासलाई न थी। उन्हे सिगार से बडा प्रेम था। अब क्या हो? इधर-उधर निगाह दौडायी तो सामने कुछ दूरी पर एक बहली जाती हुई दिखाई दी। घोडे को बढा कर बहली के पास आ पहुँचे। देखा तो उस पर प्रेमशकर बैठे हुए थे। ज्वालासिंह का उनसे परिचय था। कई बार उनकी कृषिशाला की सैर करने गये थे और उनके सरल, सन्तोषमय जीवन का आदर करते थे। पूछा, कहिए महाशय, आज इधर कहाँ चले?

प्रेम—मैं लखनपुर जा रहा हूँ, और आप?

ज्वाला—मैं भी वही चलता हूँ।

प्रेम—अच्छा साथ हुआ। क्या कोई मुकदमा है?

ज्वालासिंह ने सिगार जला कर मुकदमे का वृत्तान्त कह सुनाया।

प्रेमशंकर गौर से सुनते रहे, फिर बोले, आपने उन्हे समझाया नही कि गरीबो को क्यों तंग करते हो?

ज्वाला—मैं इस विषय मे उनसे क्योकर कुछ कहता? हां, स्त्रियो मे जो बाते हुई उनसे मालूम होता है कि वह अपनी जरूरतो से मजबूर है, उनका खर्च नही चलता।

प्रेम—दो हजार साल की आमदनी तीन-चार प्राणियों के लिए तो कम नही होती।

ज्वाला—लेकिन इसमे आधा तो आपका है।

प्रेम—जी नही, मेरा कुछ नही है। मैने उनसे साफ-साफ कह दिया है कि मैं इस जायदाद मे हिस्सा नही लेना चाहता।

ज्वालासिंह—(आश्चर्य से) क्या आपने उनके नाम हिब्बा कर दिया?

प्रेम—जी नहीं, लेकिन हिब्बा ही समझिए। मेरा सिद्धांत है कि मनुष्य को अपनी मेहनत की कमाई खानी चाहिए। यही प्राकृतिक नियम है। किसी को यह अधिकार नही है कि वह दूसरो की कमाई को अपनी जीवन-वृत्ति का आधार बनाये।

ज्वाला—तो यह कहिए कि आप जमीदारी के पेशे को ही बुरा समझते है।

प्रेम—हां, मैं इसका भक्त नही हूँ। भूमि उसकी है जो उसको जोते। शासक को उसकी उपज मे भाग लेने का अधिकार इसलिए है कि वह देश मे शान्ति और रक्षा की व्यवस्था करता है, जिसके बिना खेती हो ही नही सकती। किसी तीसरे वर्ग का समाज मे कोई स्थान नही है।

ज्वाला—महाशय, इन विचारो से तो आप देश मे क्रान्ति मचा देंगे। आपके सिद्धान्त के अनुसार हमारे बडे-बडे जमीदारो, ताल्लुकेदारो और रईसो का समाज मे कोई स्थान ही नहीं है। सब के सब डाकू है।

प्रेम—इसमें उनका कोई दोष नहीं, प्रथा का दोष है। इस प्रथा के कारण देश की कितनी आत्मिक और नैतिक अवनति हो रही है, इसका अनुमान नही किया जा सकता। हमारे समाज का वह भाग जो बल, बुद्धि, विद्या मे सर्वोपरि है, जो हृदय और मस्तिष्क के गुणो से अलकृत है, केवल इसी प्रथा के वश आलस्य, विलास और अविचार के बन्धनो मे जकडा हुआ है।

ज्वालासिंह—कहीं आप इन्हीं बातों का प्रचार करने तो लखनपुर नही जा रहे है कि मुझे पुलिस की सहायता न मांगनी पडे।

प्रेम—हा, शान्ति भंग कराने का अपराध मुझ पर हो तो जरूर पुलिस की सहायता लीजिए।

ज्वालासिंह—मुझे अब आप पर कडी निगाह रखनी पड़ेगी। मैं भी छोटा-मोटा जमीदार हूं। आपसे डरना चाहिए। इस समय लखनपुर ही जाइएगा या आगे

जाने का इरादा है?

प्रेम—इरादा तो यहीं से लौट आने का है, आगे जैसी जरूरत हो। इधर आस-पास के देहातों में एक महीने से प्लेग का प्रकोप हो रहा है। कुछ दवाएँ साथ लेता आया हूँ। जरूरत होगी तो उसे बाँट दूँगा, कौन जाने मेरे ही हाथों दो-चार जाने बच जायें।

इसी प्रकार बातें करते हुए दोनों आदमी लखनपुर पहुँचे। गाँव खाली पड़ा था। लोग बागों में झोपड़ियाँ डाले पड़े हुए थे। उस छोटी-सी बस्ती में खूब चहल-पहल थी। उन दारुण दुःखों का चिह्न कहीं न दिखायी देता था, जिनसे लोगों के हृदय विदीर्ण हो गये थे। छप्परों के सामने महुए सुखाए जा रहे थे। चक्कियों की गरज, छाछ की तड़प, ओखली और मूसल की धमक उस जीवन-संग्राम की सूचना दे रही थी जो प्लेग के भीषण हत्याकांड की भी परवाह न करता था। लड़के आमों पर ढेले चला रहे थे। कोई स्त्री बरतन माँजती थी, कोई पड़ोसी के घर से आग लिए आती थी। कोई आदमी निठल्ला बैठा नजर न आता था।

प्रेमशंकर तो बस्ती में आते ही बहली से उतर पड़े और एक झोपड़े के सामने खाट पर बैठ गये। ज्वालासिंह घोड़े से न उतरे। खाट पर बैठना अपमान की बात थी। जोर से बोले, कहाँ है मुखिया? जा कर पटवारी को बुला लाये; हम मौका देखना चाहते है।

यह हुक्म सुनते ही कई आदमी झोपड़ों में मरीजों को छोड़-छोड़ कर निकल आये। चारों ओर भगदड़-सी पड़ गयी। दो-तीन आदमी चौपाल की तरफ कुर्सी लेने दौड़े, दो-तीन आदमी पटवारी की तलाश में भागे और गाँव के मान्य गण ज्वालासिंह को घेर कर खड़े हो गये। प्रेमशंकर की ओर किसी ने ध्यान भी न दिया। इतने में कादिर खाँ अपनी झोपड़ी से निकले और सुक्खू के कान में कुछ कहा। सुक्खू ने दुखरन भगत से कानाफूसी की, तब बिसेसर साह से सायँ-सायँ बातें हुई, मानो लोग किसी महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विचार कर रहे हो। दस मिनट के बाद सुक्खू चौधरी एक थाल लिए हुए आये। उसमें अक्षत, दही और कुछ रुपये रखे हुए थे। गाँव के पुरोहित जी ने प्रेमशंकर के माथे पर दही-चावल का टीका लगाया और थाल उनके सामने रख दिया।

ज्वालासिंह कुर्सी पर बैठते हुए बोले, लीजिए, आपकी तो बोहनी हो गयी, घाटे में हम ही रहे। उस पर भी आप जमींदारी के पेशे की निन्दा करते हैं।

प्रेमशंकर ने कहा, देवी के नाम से ईंट-पत्थर भी तो पूजे जाते है।

कादिर खाँ—हम लोगों के धनभाग थे कि दोनों मालिकों के एक साथ दर्शन हो गये।

प्रेम—यहाँ बीमारी कुछ कम हुई या अभी वही हाल है?

कादिर—सरकार, कुछ न पूछिए, कम तो न हुई और बढ़ती जाती है। कोई दिन नागा नहीं जाता कि एक न एक घर पर बिजली न गिरती हो। नदी यहाँ से छह कोस है। कभी-कभी तो दिन में दो-दो तीन-तीन बेर जाना पड़ता है। उस पर कभी

आँधी, कभी पानी, कभी आग। खेतो मे अनाज सडा जाता है। कैसे काटे, कहाँ रखे ? बस, भोर को घरो मे एक बेर चूल्हा जलता है। फिर दिन भर कही आग नही जलती। चिलम को तरस कर रह जाते है। हजूर, रोते नही बनता, दुर्दशा हो रही है। उस पर मालिको की निगाह भी टेढी हो गयी है। सौ काम छोड कर कचहरी दौडना पडता है। कभी-कभी तो घर मे लाश छोड कर जाना पडता है। क्या करे, जो सिर पर पडी है उसे झेलते है। हजूर का एक गुलाम था। अच्छा पट्ठा था। सारी गृहस्थी सँभाले हुए था। तीन घडी मे चल बसा। मुँह से बोल तक न निकली। मुक्खू चौधरी का तो घर ही सत्यानाश हो गया। बस, अब अकेले इन्ही का दम रह गया है। बेचारे डपटसिंह का छोटा लडका कल मरा है, आज बडा लडका बिमार है। अल्ला ही बचाये तो बचे। जुबान बन्द हो गयी है। लाल-लाल आँखे निकाले खाट पर पडा हाथ-पैर पटक रहा है। कहाँ तक गिनाये, खुदा-रसूल, देवी-देवता सभी की मन्नते मानते है पर कोई नही सुनता। अब तक तो जैसे बन पडा मुकदमे की उजर-दारी की। अब वह हिम्मत भी नही रही। किसके लिए यह सब करे ? इतने पर भी मालिको को दया नही आती।

प्रेमशकर—जरा मैं डपटसिह के लडके को देखना चाहता हूँ।

कादिर—हाँ हजूर, चलिए मैं चलता हूँ।

ज्वालासिह—जरा सावधान रहिएगा, यह रोग सक्रामक होता है।

प्रेमशकर ने इसका कुछ उत्तर न दिया। औषधियो का बेग उठाया और कादिर खाँ के पीछे-पीछे चले। डपटसिह के झोपडे पर पहुँचे तो आदमियो की बडी भीड लगी हुई थी। एक आम के पेड के नीचे रोगी की खाट पडी हुई थी। डपटसिह और उनके छोटे भाई झपटसिह सिरहाने खडे पखे झल रहे थे। दो स्त्रियाँ पाँयते की ओर खडी रो रही थी प्रेमशकर को देखते ही दोनो अन्दर चली गयी। दोनो भाइयो ने उनकी ओर दीन भाव से देखा और अलग हट गये। उन्होने उष्णता-मापक यत्र से देखा तो रोगी का ज्वर १०७ दरजे पर था। त्रिदोष के लक्षण प्रकट थे। समझ गये कि यह अब दम भर का और मेहमान है। अभी वह बेग से औषधि निकाल ही रहे थे कि मरीज एक बार जोर से चीख मार कर उठा और फिर खाट पर गिर पडा। आँखे पथरा गयी। स्त्रियो मे पिट्टस पड गयी। डपटसिह शोकातुर हो कर मृत शरीर से लिपट गया और रो कर बोला, बेटा ! हाय बेटा !

यह कहते-कहते उसकी आँखे रक्त वर्ण हो गयी। उन्माद-सा छा गया, गीली लकडी पहली आँच मे रसती है, दूसरी आँच मे जल कर भस्म हो जाती है। डपट-सिंह शोक-सताप से विह्वल हो गया। खडा हो कर बोला, कोई इस घर मे आग क्यो नही लगा देता ? अब इसमे क्या रखा है ? कैसी दिल्लगी है ! बाप बैठा रहे और बेटा चल दे ! इन्हीं हाथो से मैंने इसे गोद मे खिलाया था। इन्ही हाथो से चिता की गोद मे कैसे बिठा दूँ ! कैसा रुला कर चल दिया मानो हमसे कोई नाता ही नही है। कहता था, दादा तुम बूढ़े हुए, अब बैठे-बैठे राम-राम करो, हम तुम्हारी परवस्ती

करेंगे। मगर दोनो के दोनो चल दिये। किसी को मुझ पर दया न आयी! लो राम-राम करता हूँ। अब परवस्ती करो कि वातो के ही घनी थे।

यह कहते-कहते वह शव के पास से हट कर दूसरे पेड के नीचे जा बैठे। एक क्षण के बाद फिर बोले, अब इस माया-जाल को तोड दूंगा। बहुत दिन इसने मुझे उँगलियो पर नचाया, अब मैं इसे नचाऊँगा। तुम दोनो चल दिये, बहुत अच्छा हुआ। मुझे माया-जाल से छुडा दिया। इस माया के कारण कितने पाप किये, कितने झूठ बोले, कितनो का गला दबाया, कितनो के खेत काटे। अब सब पाप-दोष का कारण मिट गया। वह मरी हुई माया सामने पडी है। कौन कहता है मेरा बेटा था? नही, मेरा दुश्मन था, मेरे गले का फन्दा था, मेरे पैरो की बेडी था। फन्दा छूट गया, बेडी कट गयी। लाओ, इस घर मे आग लगा दो, सब कुछ भस्म कर दो। बलराज, खडा आंसू क्या बहाता है? कही आग नही है? लाके लगा दे।

सब लोग खडे रो रहे थे। प्रेमशकर भी करुणातुर हो गये। डपटसिंह के पास जा कर बोले, ठाकुर धीरज धरो। ससार का यही दस्तूर है। तुम्हारी यह दशा देख कर बेचारी स्त्रियाँ और भाई रो रहे है। उन्हे समझाओ।

डपटसिंह ने प्रेमशकर को उन्मत्त नेत्रो से देखा और व्यग भाव से बोले, ओहो आप तो हमारे मालिक है। क्या जाफा वसूल करने आये हैं? उसी से लीजिए जो वहाँ धरती पर पडा हुआ है, वह आपकी कौडी-कौडी चुका देगा। गौस खाँ से कह दीजिए, उसे पकड ले जाये, बाँधे, मारे, मैं न बोलूँगा। मेरा खेती-बारी से, घर-द्वार से इस्तीफा है।

कादिर खाँ ने कहा, भैया डपट, दिल मजबूत करो। देखते हो, घर-घर यही आग लगी हुई है। मेरे सिर भी तो वही विपत्ति पडी है। इस तरह दिल छोटा करने से काम न चलेगा, उठो। कुछ कफन-कपडे की फिकिर करो, दोपहर हुआ जाता है।

डपटसिंह को होश आ गया। होश के साथ आँसू भी आये। रो कर बोले, दादा, तुम्हारा-सा कलेजा कहाँ से लाये? किसी तरह धीरज नही होता। हाय! दोनो के दोनो चल दिये, एक भी बुढापे का सहारा न रहा। सामने यह लाश देख कर ऐसा जी चाहता है, गले पर गडाँसा मार लूं। दादा, तुम जानते हो कि कितना सुशील लडका था। अभी उस दिन मुग्दर की जोडी के लिए हठ कर रहा था। मैंने सैकडो गालियाँ दी, मारने उठा। बेचारे ने जबान तक न हिलायी। हाँ, खाने-पीने को तरसता रह गया। उसकी कोई मुराद पूरी न हुई। न भर पेट खा सका, न तन भर पहन सका। धिक्कार है मेरी जिन्दगानी पर! अब यह घर नही देखा जाता। झपट, अपना घर-द्वार सँभालो, मेरे भाग्य मे ठोकर खाना लिखा हुआ है। भाई लोगो! राम-राम, मालिक को राम-राम, सरकार को राम-राम! अब यह अभागा देश से जाता है, कही-सुनी माफ करना!

यह कह कर डपटसिंह उठ कर कदम बढाते हुए एक तरफ चले। जब कई आदमियो ने उन्हे पकडना चाहा तो वह भागे। लोगो ने उनका पीछा किया, पर कोई

उनकी गर्द को भी न पहुँचा। जान पड़ता था हवा मे उडे जाते है। लोगो के दम फूल गये, कोई यह रहा, कोई वहाँ गिरा। अकेले बलराज ने उनका पीछा न छोडा, यहाँ तक कि डपटसिंह बेदम हो कर जमीन पर गिर पडे। बलराज दौड़कर उनकी छाती से लिपट गया और तब अपने अँगोछे से उन्हे हवा करने लगा। जब उन्हे होश आया तो हाथ पकडे हुए घर लाया।

ज्वालासिंह की करुणा भी जाग्रत हो गयी। प्रेमशकर मे बोले बाबू साहब बडा शोकमय दृश्य है।

प्रेमशकर—कुछ न पूछिए, कलेजा मुंह को आया जाता है।

कई आदमी बाँस काटने लगे, लेकिन तीसरे पहर तक लाश न उठी।

प्रेमशकर ने कादिर से पूछा—देर क्यों हो रही है?

कादिर—हुजूर, क्या कहे? घर मे रुपये नही है। बेचारा झपट रुपये के लिए इधर-उधर दौड रहा है, लेकिन कही नहीं मिलते। हमारी जो दशा है सरकार, हमी जानते है। जाफा लगान के मुकदमे ने पहले ही हाँडी तावा गिरो रखवा दिया था। इस बीमारी ने रही-सही कसर भी पूरी कर दी। अब किसी के घर मे कुछ नही रहा। प्रेमशकर ने ठडी साँस लेकर ज्वालासिंह से कहा, देखी आपने इनकी हालत? घर मे कौडी कफन को नहीं।

ज्वालासिंह—मुझे अफसोस आता है कि इनसे पिछले साल मुचलका क्यो लिया! मैं अब तक न जानता था कि इनकी दशा इतनी हीन है।

प्रेम—मुझे खेद है कि मकान से कुछ रुपये ले कर न चला।

ज्वाला—रुपये मेरे पास है, पर मुझे देते हुए सकोच होता है। शायद इन्हे बुरा लगे? आप ले कर दे दें, तो अच्छा हो।

प्रेमशकर ने २० रु० का नोट ले लिया और कादिर खाँ को चुपके से दे दिया। एक आदमी तुरन्त कफन लेने को दौड़ा। लाश उठाने की तैयारी होने लगी। स्त्रियो मे फिर कोहराम मचा। जब तक शव घर मे रहता है, घरवालो को कदाचित् कुछ आशा लगी रहती है। उसका घर से उठना पार्थिव वियोग का अन्त है। वह आशा के अन्तिम सूत्र को तोड देता है।

तीसरे पहर लाश उठी। सारे गाँव के पुरुष साथ चले। पहले कादिर खाँ ने कन्धा दिया।

ज्वालासिंह को सरकारी काम था, वह लौट पडे। लेकिन प्रेमशंकर ने दो-चार दिन वहाँ रहने का निश्चय किया।

२२

एक पखवारा बीत गया। सन्ध्या समय था। शहर मे बर्फ की दूकानो पर जमघट होने लगा था। हुक्के और सिगरेट से लोगो को अरुचि होती जाती थी। ज्वालासिंह लखनपुर मे मौके की जाँच करके लौटे थे और कुर्सी पर बैठे ठडा शर्बत पी रहे थे कि

शीलमणि ने आ कर पूछा, दोपहर को कहाँ रह गये थे ?

ज्वाला—बाबू प्रेमशकर का मेहमान रहा। वह अभी देहात मे ही है।

शील—अभी तक बीमारी का जोर कम नही हुआ ?

ज्वाला—नही, अब कम हो रहा है। वह पूरे पन्द्रह दिन से देहातो मे दौरे कर रहे है। एक दिन भी आराम से नही बैठे। गाँव की जनता उनको पूजती है। बडे-बडे हाकिम का भी इतना सम्मान न होगा। न जाने इस तपन मे उनमे कैसे वहाँ रहा जाता है। न पखा, न टट्टी, न शर्बत, न बर्फ। बस, पेड के नीचे एक झोपडे मे पडे रहते है। मुझमे तो वहाँ एक दिन भी न रहा जाय।

शील—परोपकारी पुरुष जान पडते है। क्या हुआ, तुमने मौका देखा ?

ज्वाला—हाँ, खूब देखा। जिस बात का सन्देह था वही सच्ची निकली। ज्ञानशकर का दावा बिलकुल निस्सार है। उसके मुख्तार और चपरासियो ने मुझे बहुत कुछ चकमा देना चाहा, लेकिन मैं इन लोगो के हथकडो को खूब जान गया हूं। बस हाकिमो को धोखा दे कर अपना मतलब निकाल लेते है। जरा इस भलमसाहत को देखो कि असामियो के तो जान के लाले पडे हुए है और इन्हे अपने प्याले भर खून की धुन सवार है। इतना भी नही हो सकता कि जरा गाँव मे जा कर गरीबो की तसल्ली तो करते। इन्ही का भाई है कि जमीदारी पर लात मार कर दीनो की निःस्वार्थ सेवा कर रहा है, अपनी जान हथेली पर लिए फिरता है। और एक यह महापुरुष है कि दीनो की हत्या करने से भी नही हिचकते। मेरी निगाह मे तो अब इनकी आधी इज्जत भी नही रही, खाली ढोल है।

शील—तुम जिनकी बुराई करने लगते हो, उसकी मिट्टी पलीद कर देते हो। मैं भी आदमी पहचानती हूँ। ज्ञानशकर देवता नही, लेकिन जैसे सब आदमी होते हैं वैसे ही वह भी है। खामख्वाह दूसरो से बुरे नही।

ज्वाला—तुम उन्हे जो चाहो समझो, पर मैं तो उन्हे क्रूर और दुरात्मा समझता हूँ।

शील—तब तुम उनका दावा अवश्य ही खारिज कर दोगे ?

ज्वाला—कदापि नही, मैं यह सब जानते हुए भी उन्ही की डिग्री करूँगा, चाहे अपील से मेरा फैसला मन्सूख हो जाय।

शील—(प्रसन्न हो कर) हाँ, बस मैं भी यही चाहती हूँ, तुम अपनी-सी कर दो, जिसमे मेरी बात बनी रहे।

ज्वाला—लेकिन यह सोच लो कि तुम अपने ऊपर कितना बड़ा बोझ ले रही हो। लखनपुर मे प्लेग का भयकर प्रकोप हो रहा है। लोग तबाह हुए जाते है, खेत काटने की भी किसी को फुरसत नही मिलती। कोई घर ऐसा नही, जहाँ से शोक-विलाप की आवाज न आ रही हो। घर के घर अँधेरे हो गये, कोई नाम लेनेवाला भी न रहा। उन गरीबो मे अब अपील करने की सामर्थ्य नही। ज्ञानशकर डिग्री पाते ही जारी कर देंगे। किसी के बैल नीलाम होगे, किसी के घर बिकेंगे, किसी की फसल खेत मे खडी-खडी कौडियो के मोल नीलाम हो जायगी। यह दीनो की हाय किस पर पडेगी ? यह

खून किस की गर्दन पर होगा? मैं बदनामी से नहीं डरता, लेकिन अन्याय और अनर्थ से मेरे प्राण कांपते हैं।

शीलमणि यह व्याख्यान सुन कर कांप उठी। उसने इस मामले को इतना महत्त्व-पूर्ण न समझा था। उसका मौन-व्रत टूट गया, बोली, यदि यह हाल है तो आप वही कीजिए जो न्याय और सत्य कहे। मैं गरीबों की आह नहीं लेना चाहती। मैं क्या जानती थी कि जरा-से दावे का यह भीषण परिणाम होगा?

ज्वालासिंह के हृदय पर से एक बोझ सा उतर गया। शीलमणि को अब तक वह न समझे थे। बोले, विद्यावती के सामने कौन-सा मुँह ले कर जाओगी?

शीलमणि—विद्यावती ऐसे क्षुद्र विचारों की स्त्री नहीं है, और अगर वह इस तरह मुझसे रूठ भी जाय तो मुझे चिन्ता नहीं। मैत्री के पीछे क्या गरीबों का गला काट लिया जाय? मैं तो समझती हूँ वह ज्ञानशंकर से चिढ़ती हैं। जब कभी उन्होंने मुझसे इस दावे की चर्चा की है वह मेरे पास से उठ कर चली गई हैं। उनकी माया-लिप्सा उसे एक आँख नहीं भाती। दावा खारिज होने की खबर सुन कर वह मन में प्रसन्न होंगी।

ज्वाला—इस पर आप का दावा है कि गायत्री के इलाके का प्रबन्ध करेंगे। उनकी इनसे एक दिन भी न निभेगी। वह बड़ी दयावती है।

शीलमणि—दावा खारिज करने पर वह अपील कर दें तो?

ज्वाला—हाँ, बहुत सम्भव है, अवश्य करेंगे।

शील—और वहाँ से इनका दावा बहाल हो सकता है?

ज्वाला—हाँ, हो सकता है।

शील—तब तो वह गरीब खेतिहरों को और भी पीस डालेंगे।

ज्वाला—हाँ, यह तो उनकी प्रकृति ही है।

शील—तुम खेतिहरों की कुछ मदद नहीं कर सकते?

ज्वाला—न, यह मेरे अख्तियार से बाहर है।

शील—किसानों को कहीं से धन की सहायता मिल जाय तब तो वह न हारेंगे?

ज्वाला—हार-जीत तो हाकिम के निश्चय पर निर्भर है। हाँ, उन्हें मदद मिल जाय तो वह अपने मुकदमे की पैरवी अच्छी तरह कर सकेंगे।

शील—तो तुम कुछ रुपये क्यों नहीं दे देते?

ज्वाला—वाह, जिस अन्याय से भागता हूँ, वही करूँ।

शील—प्रेमशंकर जी बड़े दयालु हैं। उनके पास रुपये हों तो वह खेतिहरों की मदद करें।

ज्वाला—मेरे विचार से वह इस न्याय के लिए अपने भाई से वैर न करें।

इतने में बाहर कई मित्र आ गये। ग्वालियर का एक नामी जलतरंगिया आया हुआ था। क्लब में उसका गाना होनेवाला था। लोग क्लब चल दिये।

दूसरी तारीख पर ज्ञानशंकर का मुकदमा पेश हुआ। ज्वालासिंह ने फैसला सुना दिया। उनका दावा खारिज हो गया। ज्ञानशंकर उस दिन स्वयं कचहरी में मौजूद थे।

यह फैसला सुना तो दाँत पीस कर रह गये। क्रोध मे भरे हुए घर आये और विद्या पर जले दिल के फफोले फोडे। आज बहुत दिनो के बाद लाला प्रभाशकर के पास गये और उनसे भी इस असद्व्यवहार का रोना रो आये। एक सप्ताह तक यही क्रम चलता रहा। शहर मे ऐसा कोई परिचित आदमी न था, जिससे उन्होने ज्वालासिह के कपट व्यवहार की शिकायत न की हो। यहाँ तक कि रिश्वत का दोषारोपण करने मे भी सकोच न किया और उन्हे शब्दाघातो से ही तस्कीन न हुई। कलम की तलवार से भी चोटें करनी शुरू की। कई दैनिक पत्रो मे ज्वालासिह की खबर ली। जिस पत्र मे देखिए उसी मे उनके विरुद्ध कालम के कालम भरे रहते थे। ऐंग्लो-इण्डियन पत्रो को हिन्दुस्तानियो की अयोग्यता पर टिप्पणी करने का अच्छा अवसर हाथ आया। एक महीने तक यही रौला मचा रहा। ज्वालासिह के जीवन का कोई अग कलक और अपवाद से न बचा। एक सपादक महाशय ने तो यहाँ तक लिख मारा कि उनका मकान शहर भर के रसिक जनो का अखाडा है। ज्ञानशकर के रचना कौशल ने उनके मनोमालिन्य के साथ मिल कर ज्वालासिह को अत्याचार और अविचार का काला देव बना दिया। बेचारे लेखो को पढते थे और मन ही मन ऐंठ कर रह जाते थे। अपनी सफाई देने का अधिकार न था। कानून उनका मुँह बन्द किये हुए था। मित्रो मे ऐसा कोई न था जो पक्ष मे कलम उठाता। पत्रो की मिथ्यावादितापर कुढ-कुढ कर रह जाते थे, जो सत्यासत्य का निर्णय किये बिना अधिकारियो पर छीटें उडाने मे ही अपना गौरव समझते थे। घर से निकलना मुश्किल हो गया। शहर मे जहाँ देखिए यही चर्चा थी। लोग उन्हे आते-जाते देख कर खुले बन्दो उनका उपहास करते थे। अफसरो की निगाह भी बदल गयी। जिलाधीश से मिलने गये। उसने कहला भेजा मुझे फुरसत नही है। कमिश्नर एक बगाली सज्जन थे। उनके पास फरियाद करने गये। उन्होने सारा वृत्तात बडी सहानुभूति के साथ सुना, लेकिन चलते समय बोले, यह असम्भव है कि इस हलचल का आप पर कोई असर न हो। मुझे शका है कि कही यह प्रश्न व्यवस्थापक सभा मे न उठ जाय। मैं यथा शक्ति आप पर आँच न आने दूँगा। लेकिन आपको न्यायोचित समर्थन करने के लिए कुछ नुकसान उठाने पर तैयार रहना चाहिए, क्योकि सन्मार्ग फूलो की सेज नही है।

एक दिन ज्वालासिह इन्ही चिन्ताओ मे मग्न बैठे हुए थे कि प्रेमशकर आये। ज्वालासिह दौड कर उनके गले लिपट गये। आँखे सजल हो गयी, मानो अपने किसी परम हितैषी से भेंट हुई हो। कुशल समाचार के बाद पूछा, देहात से कब लौटे?

प्रेमशकर—आज ही आया हूँ। पूरे डेढ महीने लग गये। दो तीन दिन का इरादा करके घर से चला था। हाजीगजवाले बार-बार बुलाने न जाते तो मैं जेठ भर वहाँ और रहता।

ज्वाला—बीमारी की क्या हालत है?

प्रेमशकर—शान्त हो गयी है। यह कहिए, समाचार पत्रो मे क्या हरबोग मचा हुआ है? मैंने तो आज देखा। दुनिया मे क्या हो रहा है इसकी कुछ खबर ही न थी।

यह मछली तो बेतरह आपके पीछे पडी हुई है।

ज्वाला—उनकी कृपा है और क्या कहूँ ?

प्रेम—मैं तो देखते ही समझ गया कि यह ज्ञानशकर के दावे को खारिज कर देने का फल है।

ज्वाला—बाबू ज्ञानशकर से कभी ऐसी आशा न थी कि मुझे अपना कर्त्तव्य पालन करने का यह दण्ड दिया जायगा। अगर वह केवल मेरी न्याय और अधिकार-सबधी बातो पर आघात करते तब भी मुझे खेद न होता। मुझे अत्याचारी कहते, जुल्मी कहते, निरकुश सिद्ध करते—हम इन आक्षेपो के आदी होते है। दु:ख इस बात का है कि मेरे चरित्र को कलकित किया गया है। मुझे अगर किसी बात का घमण्ड है तो वह अपने आचरण का है। मेरे कितने ही रसिक मित्र मुझे वैरागी कहकर चिढाते है। यहाँ मैं कभी थियेटर देखने नही गया, कभी मेला तमाशा तक नही देखा। बाबू ज्ञानशकर इस बात से भली-भाँति परिचित है। लेकिन मुझे सारे शहर के छैलो का नेता बनाने मे उन्हे लेश-मात्र सकोच न हुआ। इन आक्षेपो से मुझे इतना दु:ख हुआ है कि उसे प्रकट नही कर सकता। कई बार मेरी इच्छा हुई कि विष खा लूँ। आपसे मेरा परिचय बहुत थोडा है, लेकिन मालूम नही क्यो जी चाहता है कि आपके सामने हृदय निकाल कर रख दूँ। मैंने कई बार जहर खाने का इरादा किया, किन्तु यह सोच कर कि कदाचित् इससे इन आक्षेपो की पुष्टि हो जायगी, रुक गया। यह भय भी था कि शीलमणि रो-रो कर प्राण न त्याग दे। सच पूछिए, तो उसी के श्रद्धामय प्रेम ने अब तक मेरी प्राण-रक्षा की है, अगर वह एक क्षण के लिए भी मुझसे विमुख हो जाती तो मैं अवश्य ही आत्म-घात कर लेता। ज्ञानशकर मेरे स्वभाव को जानते हैं। मैं और वह बरसो तक भाइयो की भाँति रहे हैं। उन्हें मालूम है कि मेरे हृदय मे मर्मस्थान कहाँ है। इसी स्थान को उन्होंने अपनी कलम से बेधा और मेरी आत्मा को सदा के लिए निर्बल बना दिया।

प्रेम—मैं तो आपको यही सलाह दूँगा कि इन पत्रो पर मान-हानि का अभियोग चलाइए। इसके सिवा अपने को निर्दोष सिद्ध करने का कोई उपाय नही है। मुझे इसकी जरा भी परवाह नही कि ज्ञानशकर पर इसका क्या असर पड़ेगा। उन्हे अपने कर्मों का दड मिलना चाहिए। मैं स्वय सहिष्णुता का भक्त हूँ लेकिन यह असभव है कि कोई चरित्र पर मिथ्या कलक लगाये और मैं मौन धारण किये बैठा रहूँ। आप वकीलो से सलाह ले कर अवश्य मान-हानि का मुकदमा चलाइए।

ज्वालासिंह कुछ सोच कर बोले, और भी बदनामी होगी।

प्रेम—कदापि नही। आपको इन मिथ्याक्षेपो के प्रतिवाद करने का अवसर मिलेगा और जनता की दृष्टि मे आपका सम्मान बढ जायगा। ऐसी दशा मे आपका चुप रह जाना अक्षम्य ही नही, दूषित है। यह न समझिए कि मुझे ज्ञानशकर से द्वेष या अपवाद से प्रेम है: मैं इस मामले को केवल सिद्धात की निष्पक्ष दृष्टि से देखता हूँ। मान-रक्षा हमारा धर्म है।

ज्वाला—मैं नतीजे को सोच कर कातर हो जाता हूँ। बाबू ज्ञानशकर का फँस जाना निश्चित है। मुमकिन है, जेल की नौबत आये। वह आत्मिक कष्ट मेरे लिए इससे कही असह्य होगा। जिसमे बरसो तक भ्रातृवत् प्रेम रहा, जिसमे दाँत काटी रोटी थी उससे मैं इतना कठोर नही हो सकता। मैं तो इस विचार-मात्र ही से काँप उठता हूँ। इन आक्षेपो से मेरी केवल इतनी हानि होगी कि यहाँ से तबदील हो जाऊँगा या अधिक से अधिक पदच्युत हो जाऊँगा, परन्तु ज्ञानशकर तबाह हो जायेंगे। मैं अपने दुरावेशो को पूरा करने के लिए उनके परिवार का सर्वनाश नही कर सकता।

प्रेमशकर ने ज्वालासिंह को श्रद्धापूर्ण नेत्रो से देखा। इस आत्मोत्सर्ग के सामने उनका सिर झुक गया, हृदय सदनुराग से परिपूर्ण हो गया। ज्वालासिंह के पैरो पर गिर पडे और सजल नेत्र हो कर बोले, भाई जी, आपको परमात्मा ने देवस्वरूप बनाया है। मुझे अब तक न मालूम था कि आपके हृदय मे ऐसे पवित्र और निर्मल भाव छिपे हुए है।

ज्वालासिंह झिझक कर पीछे हट गये और बोले, भैया, भैया, ईश्वर के लिए यह अन्याय न कीजिए। मैं तो अपने को इस योग्य भी नही पाता कि आपके चरणारविंद अपने माथे से लगाऊँ। आप मुझे काँटो मे घसीट रहे हैं।

प्रेमशकर—यदि आप की इच्छा हो तो मैं उन्ही पत्रो मे इन आक्षेपो का प्रतिवाद कर दूँ।

ज्वालासिंह वास्तव मे प्रतिवाद की आवश्यकता को स्वीकार करते थे, किन्तु इस भय से कि कही मेरी सम्मति मुझे उस उच्च पद से गिरा न दे, जो मैंने अभी प्राप्त किया है, इन्कार करना ही उचित जान पडा। बोले, जी नही, इसकी भी जरूरत नही।

प्रेमशकर के चले जाने के बाद ज्वालासिंह को खेद हुआ कि प्रतिवाद का ऐसा उत्तम अवसर हाथ से निकल गया। अगर इनके नाम से प्रतिवाद निकलता तो यह सारा मिथ्या-जाल मकडी के जाल के सदृश कट जाता। पर अब तो जो हुआ सो हुआ। एक साधु पुरुष के हृदय मे स्थान तो मिल गया।

प्रेमशकर घर तक जाने का विचार करके हाजीपुर से चले थे। महीनो से घर का कुशल-समाचार न मिला था, लेकिन यहाँ से उठे तो नौ बज गये थे, जेठ की लू चलने लगी थी। घर से हाजीपुर लौट जाना दुस्तर था। इसलिए किसी दूसरे दिन का इरादा करके लौट पडे।

लेकिन ज्ञानशकर को चैन कहाँ। उन्हे ज्यो ही मालूम हुआ कि भैया देहात से लौट आये है, वह उनसे मिलने के लिए उत्सुक हो गये। ज्वालासिंह को उनकी नजरो मे गिराना आवश्यक था। सन्ध्या समय था। प्रेमशकर अपने झोपडे के सामनेवाले गमलों मे पानी दे रहे थे कि ज्ञानशकर आ पहुँचे और बोले, क्या मजूर कही चला गया हे क्या ?

प्रेमशकर—मै भी तो मजूर ही हूँ। घर पर सब कुशल है न ?

ज्ञान—जी हाँ, सब आपकी दया हे। आपके यहाँ तो कई मजूर हलवाहे होगे।

क्या वह इतना भी नही कर सकते कि इन गमलो को सीच दे? आपको व्यर्थ कष्ट उठाना पडता है।

प्रेम—मुझे उनसे काम लेने का कोई अधिकार नही है। वह मेरे निज के नौकर नही हैं। मैं तो केवल यहाँ का निरीक्षक हूँ और फिर मैंने अमेरिका मे तो हाथो से वर्तन धोये है, होटलों की मेजे साफ की है, सडको पर झाड़ू दी है, यहाँ आ कर मै कोई और तो नही हो गया। मैंने यहाँ कोई खिदमतगार नही रखा है। अपना सब काम कर लेता हूँ।

ज्ञान—तब तो आपने हद कर दी। क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आप क्यो अपनी आत्मा को इतना कष्ट देते है।

प्रेम—मुझे कोई कष्ट नही होता। हाँ, इसके विरुद्ध आचरण करने मे अलबत्ता कष्ट होगा। मेरी आदत ही ऐसी पड गयी है।

ज्ञान—यह तो आप मानते है कि आत्मिक उन्नति की भिन्न-भिन्न कक्षाएँ होती है।

प्रेम—मैंने इस विपय मे कभी विचार नही किया और न अपना कोई सिद्धान्त स्थिर कर सकता हूँ। उस मुकदमे की अपील अभी दायर की या नही?

ज्ञान—जी हाँ दायर कर दी। आपने ज्वालासिंह की सज्जनता देखी? यह महाशय मेरे बनाये हुए हैं। मैंने ही इन्हे रट-रटा के किसी तरह बी० ए० कराया। अपना हर्ज करता था, पर पहले इनकी कठिनाइयो को दूर कर देता था। इस नेकी का इन्होने यह बदला दिया। ऐसा कृतघ्न मनुष्य मैंने नही देखा।

प्रेम—पत्रो मे उनके विरुद्ध जो लेख छपे थे। वह तुम्ही ने लिखे थे?

ज्ञान—जी हाँ। जब वह मेरे साथ ऐसा व्यवहार करते है, तब मैं क्यो उनसे रियायत करूँ?

प्रेम—तुम्हारा व्यवहार बिलकुल न्याय-विरुद्ध था। उन्होने जो कुछ किया न्याय समझ कर किया। उनका उद्देश्य तुम्हे नुकसान पहुँचाना न था। तुमने केवल उनका अनिष्ट करने के लिए यह आक्षेप किया।

ज्ञान—जब आपस मे अदावत हो गयी तब सत्यता का विवेचन कौन करता है? धर्म-युद्ध का समय अब नही रहा।

प्रेम—तो यह सब तुम्हारी मिथ्या कल्पना है?

ज्ञान—जी हाँ, आपके सामने, लेकिन दूसरो के सामने

प्रेम—(बात काट कर) वह मान हानि का दावा कर दें तो?

ज्ञान—इसके लिए बडी हिम्मत चाहिए और उनमे हिम्मत का नाम नही। यह सब रोब-दाब दिखाने को ही है। अपील का फैसला मेरे अनुकूल हुआ, तो अभी उनकी और खबर लूँगा। जाते कहाँ हैं? और कुछ न हुआ हो बदनामी के साथ तबदील तो हो ही जायँगे। अबकी तो आपने लखनपुर की खूब सैर की, असामियो ने मेरी खूब शिकायत की होगी?

प्रेम—हाँ, शिकायत सभी कर रहे हैं।

ज्ञान—लड़ाई-दंगे का तो कोई भय नही है?

प्रेम—मेरे विचार मे तो इसकी सम्भावना नही है।

ज्ञान—अगर उन्हे मालूम हो जाय कि इस विषय मे हम लोगो के मतभेद हैं—और यह स्वाभाविक ही है, क्योकि आप अपने मनोगत भावो को छुपा नही सकते—तो वह और भी शेर हो जायेंगे।

प्रेम—(हँस कर) तो इससे हानि क्या होगी?

ज्ञान— आपके सिद्धान्त के अनुसार तो कोई हानि न होगी, पर मैं कही का न रहूँगा। इस समय मेरे हित के लिए यह अत्यावश्यक है कि आप उधर आना-जाना कम कर दें।

प्रेम—क्या तुम्हे सन्देह है कि मै असामियो को उभाड कर तुमसे लडाता हूँ? मुझे तुमसे कोई दुश्मनी है? मुझे लखनपुर के ही नही, सारे देश के कृषको से सहानुभूति है। लेकिन इसका यह आशय नही कि मुझे जमीदारो से कोई द्वेष है, हाँ, अगर तुम्हारी यही इच्छा है कि मैं उधर न जाऊँ तो यही सही। अब से कभी न जाऊँगा।

ज्ञानशकर को इतमीनान तो हुआ, पर वह इसे प्रकट न कर सकने मे लज्जित थे। अपने भाई की रजोवृत्ति के सामने उन्हे अपनी तमोवृत्ति बहुत ही निकृष्ट प्रतीत होती थी। वह कुछ देर तक कपास और मक्का के खेतो को देखते रहे, जो यहाँ बहुत पहले ही बो दिये गये थे। फिर घर चले आये। श्रद्धा के बारे मे न प्रेमशकर ने कुछ पूछा और न उन्होने कुछ कहा। श्रद्धा अब उनकी प्रेयसी नही, उपास्य देवी थी।

दूसरे दिन दस बजे डाकिये ने उन्हे एक रजिस्टर्ड लिफाफा दिया। उन्होने विस्मित हो कर लिफाफे को देखा। पता साफ लिखा हुआ था। खोला तो ५०० रु० का एक करेन्सी नोट निकला। एक पत्र भी था, जिसमे लिखा हुआ था—

'लखनपुरवालो की सहायता के लिए यह रुपये आपके पास भेजे जाते है। यह आप अपील की पैरवी करने के लिए उन्हे दे दें। इस कष्ट के लिए क्षमा कीजिएगा।'

प्रेमशकर सोचने लगे, इसका भेजनेवाला कौन है? यहाँ मुझे कौन जानता है? कौन मेरे विचारो से अवगत है? किसे मुझ पर इतना विश्वास है? इन सब प्रश्नो का उत्तर मिलता था, 'ज्वालासिंह' किन्तु मन इस उत्तर को स्वीकर न करता था।

अब उन्हे यह चिन्ता लगी कि यह रुपये क्योकर भेजूँ? ज्ञानशकर को मालूम हो गया तो वह समझेंगे मैंने स्वय असामियो को सहायता दी है। उन्हे कभी विश्वास न आयेगा कि यह किसी अन्य व्यक्ति की अमानत है। यदि असामियो को न दूँ तो महान् विश्वासघात होगा। इसी हैस-बैस मे शाम हो गयी और लाला प्रभाशकर का शुभागमन हुआ।

२३

ज्ञानशकर को अपील के सफल होने का पूरा विश्वास था। उन्हे मालूम था कि किसानो मे धनाभाव के कारण अब बिल्कुल दम नही है। लेकिन जब उन्होंने ...

काश्तकारो की ओर से भी मुकदमे की पैरवी उत्तम रीति से की जा रही है तो उन्हे अपनी सफलता मे कुछ कुछ सन्देह होने लगा। उन्हे विस्मय होता था कि इनके पास रुपये कहाँ से आ गये? गौस खाँ तो कहता था कि बीमारी ने सभी को मटियामेट कर दिया है, कोई अपील की पैरवी करने भी न जायगा, एकतरफा डिगरी होगी। यह कायापलट क्यो कर हुई? अवश्य इनको कही न कही से मदद मिली है। कोई महाजन खडा हो गया है। शहर मे तो कोई ऐसा नही दीख पडता, लखनपुर ही के आस पास का होगा। खैर, कभी तो रहस्य खुलेगा, तब बच्चू से समझूँगा। फैसले के दिन वह स्वय कचहरी गये। अपील खारिज हो गयी। सबसे पहले गौस खाँ सामने आये। उनसे डपट कर बोले, क्यो जनाब, आप तो फरमाते थे इन सबो के पास कौडी कफन को नही है, यह वकील क्या यो ही आ गया?

गौस खाँ ने भी गर्म हो कर कहा, मैंने हजूर से बिलकुल सही अर्ज किया था, लेकिन मैं क्या जानता था कि मालिको मे ही इतनी निफाक है। मुझे पता लगता है कि हुजूर के बडे भाई साहब ने एक हफ्ता हुआ कादिर को अपील की पैरवी के लिए एक हजार रुपये दिये है।

ज्ञानशकर स्तम्भित हो गये। एक क्षण के बाद बोले, बिलकुल झूठ है।

गौस खाँ—हर्गिज नही। मेरे चपरासियो ने कादिर खाँ को अपनी जबान से यह कहते सुना है। उससे पूछा जाय तो वह आपसे भी साफ-साफ कह देगा, या आप अपने भाई साहब से खुद पूछ सकते है।

ज्ञानशकर निरुत्तर हो गये। उसी समय पैरगाडी सँभाली, झल्लाये हुए घर आये और श्रद्धा से तीव्र स्वर मे बोले, भाभी, तुमने देखी भैया की करामात! आज पता चला कि आपने लखनपुरवालो को अपील की पैरवी करने के लिए एक हजार दिये हैं। इसका फल यह हुआ कि मेरी अपील खारिज हो गयी, महीनो की दौड़-धूप और हजारो रुपयो पर पानी फिर गया। एक हजार सालाना का नुकसान हुआ और रोब-दाब बिल्कुल मिट्टी मे मिल गया। मुझे उनसे ऐसी कूटनीति की आशका न थी। अब तुम्ही बताओ उन्हे दोस्त समझूँ या दुश्मन?

श्रद्धा ने सशयात्मक भाव से कहा, तुम्हे किसी ने बहका दिया होगा। भला उनके पास इतने रुपये कहाँ होगे?

ज्ञान—नही, मुझे पक्की खबर मिली है। जिन लोगो ने रुपये पाये है वे खुद अपनी जबान से कहते है।

श्रद्धा—तुमसे तो उन्होने वादा किया था कि लखनपुर से मेरा कोई सम्बन्ध नही है, मैं वहाँ कभी न जाऊँगा।

ज्ञान—हाँ, कहा तो था और मैंने उन पर विश्वास कर लिया था, लेकिन आज विदित हुआ कि कुछ लोग ऐसे भी है जो सारे ससार के मित्र होते है, पर अपने घर के शत्रु। जरूर इसमे चचा साहब का भी हाथ है।

श्रद्धा—पहले उनसे पूछ तो लो। मुझे विश्वास नही आता कि उनके पास

इतने रुपये होंगे।

ज्ञान—उनकी कपट नीति ने मेरे सारे मनसूबो को मिट्टी मे मिला दिया। जब उनको मुझसे इतना वैमनस्य है तो मैं नही समझता कि मैं उन्हे अपना भाई कैसे समझूँ? बिरादरीवालो ने उनका जो तिरस्कार किया वह असगत नही था। विदेश-निवास आत्मीयता का नाश कर देता है।

श्रद्धा—तुम्हे भ्रम हुआ है।

ज्ञान—फिर वही बच्चो की-सी बातें करती हो। तुम क्या जानती हो कि उनके पास रुपये थे या नही?

श्रद्धा—तो जरा वहाँ तक चले ही क्यो नही जाते?

ज्ञान—अब नही जा सकता। मुझे उनकी सूरत से घृणा हो गयी। उन्होने असामियो का पक्ष लिया है तो मैं भी दिखा दूंगा कि मैं क्या कर सकता हूँ। जमीदार के बावन हाथ होते है। लखनपुर वालो को ऐसा कुचलूंगा कि उनकी हड्डियो का पता न लगेगा। भैया के मन की बात मैं जानता हूँ। तुम सरल स्वभावा हो, उनकी तह तक नही पहुँच सकती। उनका उद्देश्य इसके सिवा और कुछ नही है कि मुझे तग करे, असामियो को उभाडकर मुसल्लम गाँव हथिया लें और हम-तुम कही के न रहे। अब उन्हे खूब पहचान गया। रँगे हुए सियार हैं—मन मे और—मुँहमे और। और फिर जिसने अपना धर्म खो दिया वह जो कुछ न करे वह थोडा है। इनसे तो बेचारा ज्वालासिह फिर भी अच्छा है। उसने जो कुछ किया न्याय समझ कर किया, मेरा अहित न करना चाहता था। एक प्रकार से मैंने उसके साथ बडा अन्याय किया, उसे देश भर मे बदनाम कर दिया। उन बातो को याद करने से ही दु ख होता है।

श्रद्धा—उनकी तो यहाँ से बदली हो गयी। शीलमणि की महरी आज आयी थी। कहती थी, तीन-चार दिन मे चले जायँगे। दर्जा भी घटा दिया गया है।

ज्ञानशकर ने चौक कर कहा—सच!

श्रद्धा—शीलमणि कल आनेवाली है। विद्या बडे सकोच मे पडी हुई है।

ज्ञान—मुझसे बडी भूल हुई। इसका शोक जीवन-पर्यन्त रहेगा। मुझे तो अब इसका विश्वास हो जाता है कि भैया ने उनके कान भी भर दिये थे। जिस दिन वह मौका देखने गये थे उसी दिन भैया भी लखनपुर पहुँचे। बस, इधर तो ज्वालासिह को पट्टी पढायी, उधर गाँववालो को पक्का-पोढा कर दिया। मैं कभी कल्पना भी न कर सकता था कि वह इतनी दूर की कौडी लायेंगे, नही तो मै पहले से ही चौकन्ना रहता।

श्रद्धा ने ज्ञानशकर को अनादर की दृष्टि से देखा और वहाँ से उठ कर चली गयी।

दूसरे दिन शीलमणि आयी और दिन भर वहाँ रही। चलते समय विद्या और श्रद्धा से गले मिल कर खूब रोयी।

ज्वालासिह पाँच दिन और रहे। ज्ञानशकर रोज उनसे मिलने का विचार करते, लेकिन समय आने पर कातर हो जाते थे। भय होता, कही उन्होने उन आक्षेपपूर्ण लेखो की चर्चा छेड दी तो क्या जवाब दूंगा? धाँधली तो कर सकता हूँ, साफ मुकर

जाऊँ कि मैने कोई लेख नही लिखा, मेरे नाम से तो कोई लेख छपा नही किन्तु शका होती थी कि कही इस प्रपच से ज्वालासिह की आँखो मे और न गिर जाऊँ।

पाँचवे दिन ज्वालासिह यहाँ से चले। स्टेशन पर मित्र-जनो की अच्छी सख्या थी। प्रेमशकर भी मौजूद थे। ज्वालासिह मित्रो के साथ मिल-मिल कर विदा होते थे। गाडी के छूटने मे एक-दो मिनट ही बाकी थे कि इतने मे ज्ञानशकर लपके हुए प्लेटफार्म पर आये और पीछे की श्रेणी मे खडे हो गये। आगे बढ कर मिलने की हिम्मत न पडी। ज्वालासिह ने उन्हे देखा और गाडी से उतर कर उनके पास आये और गले से लिपट गये। ज्ञानशकर की आँखो से आँसू बहने लगे। ज्वालासिह रोते थे कि चिर-काल की मैत्री का ऐसा शोकमय अन्त हुआ, ज्ञानशकर रोते थे कि हाय! मेरे हाथो ऐसे सच्चे, निश्छल, नि स्पृह मित्र का अमगल हुआ।

गार्ड ने झडी दिखायी तो ज्ञानशकर ने कम्पित स्वर मे कहा, भाई जान, मैं अत्यन्त लज्जित हूँ।

ज्वालासिह बोले, उन बातो को भूल जाइए।

ज्ञान—ईश्वर ने चाहा तो इसका प्रतिकार कर दूंगा।

ज्वाला—कभी-कभी पत्र लिखते रहिएगा, भूल न जाइएगा।

लोगो को दोनो मित्रो के इस सद्व्यवहार पर कुतूहल हुआ। उनके विचार मे उस घाव का भरना दुस्तर था। सबसे ज्यादा आश्चर्य प्रेमशकर को हुआ, जो ज्ञानशकर को उससे कही असज्जन समझते थे, जितने वह वास्तव मे थे।

२४

अपील खारिज होने के बाद ज्ञानशकर ने गोरखपुर की तैयारी की। सोचा, इस तरह तो लखनपुर से आजीवन गला न छूटेगा, एक न एक उपद्रव मचा ही रहेगा। कही गोरखपुर मे रग जम गया तो दो-तीन वर्सो मे ऐसे कई लखनपुर हाथ आ जायंगे। विद्या भी स्थिति का विचार करके सहमत हो गयी। उसने सोचा, अगर दोनो भाइयो मे यो ही मनमुटाव रहा तो अवश्य ही बँटवारा हो जायगा और तब एक हजार सालाना आमदनी मे निर्वाह हो न सकेगा। इनसे और काम तो हो सकेगा नहीं। बला से जो काम मिलता है वही सही। अतएव जन्माष्टमी के उत्सव के बाद गोरखपुर जा पहुँचे। प्रेमशकर से मुलाकात न की।

प्रभात का समय था। गायत्री पूजा पर थी कि दरबान ने ज्ञानशकर के आने की सूचना दी। गायत्री ने तत्क्षण तो उन्हे अन्दर न बुलाया, हाँ, जो पूजा नौ बजे समाप्त होती थी, वह सात ही बजे समाप्त कर दी। तब अपने कमरे मे आ कर उसने एक सुन्दर साडी पहनी, बिखरे हुए केश सँवारे और गौरव के साथ मसनद पर जा बैठी। लौडी को इशारा किया कि ज्ञानशकर को बुला लाय। वह अब रानी थी। यह उपाधि उसे हाल मे ही प्राप्त हुई थी। वह ज्ञानशकर से यथोचित आरोह से मिलना चाहती थी।

ज्ञानशकर बुलाने की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हे यहाँ का ठाट-बाट देख कर विस्मय हो रहा था। द्वार पर दो दरबान वरदी पहने टहल रहे थे। सामने की अँगनाई मे एक घण्टा लटका हुआ था। एक ओर अस्तबल मे कई बडी रास के घोडे बँधे हुए थे। दूसरी ओर एक टीन के झोपडे मे दो हवागाडियाँ थी। दालान मे पिंजडे लटकते थे, किसी मे मैना थी, किसी मे पहाड़ी श्यामा, किसी मे सफेद तोता। विलायती खरहे अलग कटघरे मे पले हुए थे। भवन के सम्मुख ही एक बँगला था, जो फर्श और मेज-कुर्सियो से सजा हुआ था। यही दफ्तर था। यद्यपि अभी बहुत सवेरा था, पर कर्मचारी लोग अपने-अपने काम मे लगे हुए थे। वह दीवानखाना था। उसकी सजावट बडे सलीके के साथ की गयी थी। ऐसी बहुमूल्य कालीनें और ऐसे बडे-बडे आइने उनकी निगाह से न गुजरे थे।

कई दलानो और आँगनो से गुजरने के बाद जब वह गायत्री की बैठक मे पहुँचे तब उन्हे अपने सम्मुख विलासमय सौन्दर्य की एक अनुपम मूर्ति नजर आयी जिसके एक-एक अग से गर्व और गौरव आभासित हो रहा था। यह वह पहले की-सी प्रसन्न-मुख सरल प्रकृति विनय पूर्ण गायत्री न थी।

ज्ञानशकर ने सिर झुकाये सलाम किया और कुर्सी पर बैठ गये। लज्जा ने सिर न उठाने दिया। गायत्री ने कहा, आइए महाशय, आइए! क्या विद्या छोड़ती ही न थी? और तो सब कुशल है?

ज्ञान—जी हाँ, सब लोग अच्छी तरह हैं। माया तो चलते समय बहुत जिद कर रहा था कि मैं भी मौसी के घर चलूंगा, लेकिन अभी बुखार से उठे हुए थोडे ही दिन हुए हैं, इसी कारण साथ न लाया। आपको नित्य याद करता है।

गायत्री—मुझे भी उसकी प्यारी-प्यारी भोली सूरत याद आती है। कई बार इच्छा हुई कि चलूँ, सबसे मिल आऊँ, पर रियासत के झमेले से फुरसत ही नही मिलती। यह बोझ आप सँभालें तो मुझे जरा साँस लेने का अवकाश मिले। आपके लेख का तो बडा आदर हुआ। (मुस्करा कर) खुशामद करना कोई आप से सीख ले।

ज्ञान—जो कुछ था वह मेरी श्रद्धा का अल्पाश था।

गायत्री ने गुणज्ञता के भाव से मुस्करा कर कहा—जब थोडा-सा पाप बदनाम करने को पर्याप्त हो तो अधिक क्यो किया जाय? कार्तिक मे हिज एक्सेलेन्सी यहाँ आने वाले है। उस अवसर पर मेरे उपाधि-प्रदान का जल्सा करना निश्चय किया है। अभी तक केवल गजट मे सूचना छपी है। अब दरबार मे मैं यथोचित समारोह और सम्मान के साथ उपाधि से विभूषित की जाऊँगी।

ज्ञान—तब तो अभी से दरबार की तैयारी होनी चाहिए।

गायत्री—आप बहुत अच्छे अवसर पर आये। मडप मे अभी से हाथ लगा देना चाहिए। मेहमानो का ऐसा सत्कार किया जाय कि चारो ओर धूम मच जाय। रुपये की जरा भी चिन्ता मत कीजिए। आप ही इस अभिनय के सूत्रधार है, आपके ही हाथो इसका सूत्रपात होना चाहिए। एक दिन मैंने जिलाधीश से आप का जिक्र किया था।

पूछने लगे, उनके राजनीतिक विचार कैसे हैं। मैंने कहा, बहुत ही विचारशील, शान्त प्रकृति के मनुष्य हैं। यह सुन कर बहुत खुश हुए और कहा, वह आ जायें तो एक बार जल्से के सम्बन्ध मे मुझसे मिल ले।

इसके बाद गायत्री ने इलाके की सुव्यवस्था और अपने संकल्पो की चर्चा शुरू की। ज्ञानशंकर को उसके अनुभव और योग्यता पर आश्चर्य हो रहा था। उन्हे भय होता कि कदाचित् मैं इन कार्यों को उत्तम रीति से सम्पादन न कर सकूँ। उन्हे देहाती बैंक का बिलकुल ज्ञान न था। निर्माण कार्य से परिचित न थे, कृषि के नये आविष्कारो से कोरे थे. किन्तु इस समय अपनी अयोग्यता प्रकट करना नितान्त अनुचित था। वह गायत्री की बातो पर ऐसी मर्मज्ञता से सिर हिलाते थे और बीच-बीच मे टिप्पणियाँ करते थे, मानो इन विषयो मे पारंगत हो। उन्हे अपनी बुद्धिमत्ता और चातुर्य पर भरोसा था। इसके बल पर वह कोई काम हाथ मे लेते हुए न हिचकते थे।

ज्ञानशंकर को दो-चार दिन भी शान्ति से बैठ कर काम को समझने का अवसर न मिला। दूसरे ही दिन से दरबार की तैयारियों मे दत्तचित्त होना पड़ा। प्रात.काल से सन्ध्या तक सिर उठाने की फुरसत न मिलती। बारम्बार अधिकारियों से राय लेनी पड़ती, सजावट की वस्तुओं को एकत्र करने के लिए बार-बार रईसो की सेवा मे दौड़ना पड़ता। ऐसा जान पड़ता था कि यह कोई सरकारी दरबार है। लेकिन कर्त्तव्यशील उत्साही पुरुष थे। काम से घबराते न थे। प्रत्येक काम को पूरी जिम्मेदारी से करते थे। वह संकोच और अविश्वास जो पहले किसी मामले मे अग्रसर न होने देता था अब दूर होता जाता था। उनकी अध्यवसाय शीलता पर लोग चकित हो जाते थे। दो महीनो के अविश्रान्त उद्योग के बाद दरबार का इन्तजाम पूरा हो गया। जिलाधीश ने स्वयं आ कर देखा और ज्ञानशंकर की तत्परता और कार्यदक्षता की खूब प्रशंसा की। गायत्री से मिले तो ऐसे सुयोग्य मैनेजर की नियुक्ति पर उसे बधाई दी। अभिनन्दन पत्र की रचना का भार भी ज्ञानशंकर पर ही था। साहब बहादुर ने उसे पढ़ा तो लोट पोट हो गये और नगर के मान्य जनो से कहा, मैंने किसी हिन्दुस्तानी की कलम मे यह चमत्कार नही देखा।

अक्टूबर मास की १५ तारीख दरबार के लिए नियत थी। लोग सारी रात जागते रहे। प्रात.काल से सलामी की तोपें दगने लगी, अगर उस दिन की कार्यवाही का संक्षिप्त वर्णन किया जाय तो एक ग्रंथ बन जाय। ऐसे अवसरों पर उपन्यासकार अपनी कल्पना को समाचार पत्रों के सम्वाददाताओ के सुपुर्द कर देता है। लेडियो के भूषणालकारो की बहार, रईसो की सजधज की छटा देखनी हो, दावत की चटपटी, स्वाद युक्त सामग्रियों का मजा चखना हो और शिकार के तड़प-झड़प का आनन्द उठाना हो तो अखबारो का पन्ना उलटिए। वहाँ आपको सारा विवरण अत्यन्त सजीव, चित्रमय शब्दों मे मिलेगा। प्रेसिडेन्ट रूजवेल्ट शिकार खेलने अफ्रिका गये थे तो सम्वाददाताओं की एक मण्डली उनके साथ गयी थी। सम्राट जार्ज पंचम जब भारतवर्ष आये थे तब सम्वाददाताओ की पूरी सेना उनके जुलूस में थी। यह दरबार इतना महत्त्वपूर्ण न था,

तिस पर भी पत्रो मे महीनो तक इसकी चर्चा होती रही। हम इतना ही कह देना काफी समझते है कि दरबार विधिपूर्वक समाप्त हुआ, कोई त्रुटि न रही, प्रत्येक कार्य निर्दिष्ट समय पर हुआ, किसी प्रकार की अव्यवस्था न होने पायी। इस विलक्षण सफलता का सेहरा ज्ञानशकर के सिर था। ऐसा मालूम होता था कि सभी कठपुतलियाँ उन्ही के इशारे पर नाच रही हैं। गवर्नर महोदय ने विदाई के समय उन्हे धन्यवाद दिया। चारो तरफ वाह्-वाह् हो गयी।

सन्ध्या समय था। दरबार समाप्त हो चुका था। ज्ञानशकर नगर के मान्य जनो के साथ गर्वनर को स्टेशन तक बिदा करके लौटे थे और एक कोच पर आराम से लेटे सिगार पी रहे थे। आज उन्हे सारा दिन दौडते गुजरा था, जरा भी दम लेने का अवकाश न मिला था। वह कुछ अलसाये हुए थे, पर इसके साथ ही हृदय पर वह उल्लास छाया हुआ था जो किसी आशातीत सफलता के बाद प्राप्त होता है। वह इस समय जब अपने कृत्यो का सिंहावलोकन करते थे तो उन्हे अपनी योग्यता पर स्वय आश्चर्य होता था। अभी दो-ढाई मास पहले मैं क्या था? एक मामूली आदमी, केवल दो हजार सालाना का जमीदार! शहर मे कोई मेरी बात भी न पूछता था, छोटे-छोटे अधिकारियो से भी दबता था और उनकी खुशामद करता था। अब यहाँ के अधिकारी वर्ग मुझसे मिलने की अभिलाषा रखते है। शहर के मान्य गण अपना नेता समझते हैं। बनारस मे तो सारी उम्र बीत जाती तब भी यह सम्मान-पद न लाभ होता। आज गायत्री का मिजाज भी आसमान पर होगा। मुझे जरा भी आशा न थी कि वह इस तरह बेघडक मच पर चली आयेगी। वह मच पर आयी तो सारा दरबार जगमगाने लगा था। उसके कुन्दन वर्ण पर अगरई साड़ी कैसी छटा दिखा रही थी! उसके सौन्दर्य की आभा ने रत्नो की चमक-दमक को भी मात कर दिया था। विद्या इससे कही रूपवती है, लेकिन उसमे यह आकर्षण कहाँ, यह उत्तेजक शक्ति कहाँ, यह सगर्विता कहाँ, यह रसिकता कहाँ? इसके सम्मुख आ कर आँखो पर, चित्त पर, जबान पर काबू रखना कठिन हो जाता है। मैंने चाहा था कि इसे अपनी ओर खीचूँ, इससे मान करूँ किन्तु कोई शक्ति मुझे बलात् उसकी ओर खीचे लिए जाती है। अब मैं रुक नही सकता। कदाचित् वह मुझे अपने समीप आते देख कर पीछे हटती है, मुझसे स्वामिनी और सेवक के अतिरिक्त और कोई सम्बन्ध नही रखना चाहती। वह मेरी योग्यता का आदर करती है और मुझे अपनी सम्मान तृष्णा का साधन-मात्र बनाना चाहती है। उसके हृदय मे अब अगर कोई अभिलाषा है तो वह सम्मान-प्रेम है। यही अब उसके जीवन का मुख्य उद्देश्य है। मैं इसी का आवाहन करके यहाँ पहुँचा हूँ और इसी की बदौलत एक दिन मैं उसके हृदय मे प्रेम का बीज अकुरित कर सकूँगा।

ज्ञानशकर इन्ही विचारो मे मग्न थे कि गायत्री ने अन्दर बुलाया और मुस्करा कर कहा, आज के सारे आयोजन का श्रेय आपको है। मैं हृदय से आपकी अनुग्रहीत हूँ। साहब बहादुर ने चलते समय आपकी बडी प्रशसा की। आपने मजदूरो की मजदूरी तो दिला दी है? मैं इस आयोजन मे बेगार ले कर किसी को दुखी नही करना चाहती।

ज्ञान—जी हाँ, मैंने मुख्तार से कह दिया था।

गायत्री—मेरी ओर से प्रत्येक मजदूर को एक-एक रुपया इनाम दिला दीजिए।

ज्ञान—पाँच सौ मजदूरो से कम न होगे।

गायत्री—कोई हर्ज नही, ऐसे अवसर रोज नही आया करते। जिस ओवरसियर ने पण्डाल बनवाया है, उसे १०० रु० इनाम दे दीजिए।

ज्ञान—वह शायद स्वीकार न करे।

गायत्री—यह रिश्वत नही, इनाम है। स्वीकार क्यो न करेगा? फर्राशो-आतशबाजो को भी कुछ मिलना चाहिए।

ज्ञान—तो फिर हलवाई और बावर्ची, खानसामे और खिदमतगार क्यों छोडे जायँ?

गायत्री—नही, कदापि नही, उन्हे २०)-२०) से कम न मिलें।

ज्ञान—(हँस कर) मेरी सारी मितव्ययिता निष्फल हो गयी।

गायत्री—वाह, उसी की बदौलत तो मुझे हौसला हुआ है। मजूर को मजूरी कितनी ही दीजिए खुश नही होगा, लेकिन इनाम पा कर खुशी से फूल उठता है। अपने नौकरो को भी यथायोग्य कुछ न कुछ दिलवा दीजिए।

ज्ञान—जी, हाँ, जब बाहरवाले लूट मचायें तो घरवाले क्यो गीत गाये?

गायत्री—नही घरवालो को पहला हक है जो आठो पहर के गुलाम है। सब आदमियों को यही बुलाइए, मैं अपने हाथ से उन्हे इनाम दूँगी। इसमे उन्हें विशेष आनन्द मिलेगा।

ज्ञान—घंटो की झंझट है। बारह बज जायँगे।

गायत्री—यह झझट नही है। यह मेरी हार्दिक लालसा है। अब मुझे कई बड़े-बड़े अनुष्ठान करने हैं। यह मेरे जड़ाऊ कगन हैं। यह विद्या के भेंट है, कल इसका पारसल भेज दीजिए और ५०० रु० नकद।

ज्ञान—(सिर झुका कर) इसकी क्या जरूरत है? कौन सा मौका है?

गायत्री—और कौन सा मौका होगा? मेरे लडके-लडकियाँ भी तो नही है कि उनके विवाह मे दिल के अरमान निकालूंगी। यह कगन उसे पसन्द भी था। पिछले साल इटाली से मँगवाया था। अब आपसे भी मेरी एक प्रार्थना है। आप मुझसे छोटे हैं। आप भी अपना हक वसूल कीजिए और निर्दयता के साथ।

ज्ञानशकर ने शर्माते हुए कहा—मेरे लिए आपकी कृपा-दृष्टि ही काफी है। इस अवसर पर मुझे जो कीर्ति प्राप्त हुई है वही मेरा इनाम है।

गायत्री—जी नही, मैं न मानूँगी। इस समय सकोच छोडिए और सूद खानेवालों की भाँति कठोर बन जाइए। यह आपकी कलम है, जिसने मुझे इस पद पर पहुँचाया है, नही तो जिले मे मेरी जैसी कितनी ही स्त्रियाँ है, कोई उनकी बात भी नही पूछता। इस कलम की यथायोग्य पूजा किये बिना मुझे तस्कीन न होगी।

ज्ञान—इसकी जरूरत तो तब होती जब मुझे उससे कम आनन्द प्राप्त होता, जितना आप को हो रहा है।

गायत्री—मैं यह तर्क-वितर्क एक भी न सुनूँगी। आप स्वय कुछ नही कहते इस-लिए आपकी ओर से मैं ही कहे देती हूँ। आप अपने लिए बनारस मे अपने घर से मिला हुआ एक सुन्दर बँगला बनवा लीजिए। चार कमरे हो और चारो तरफ बरामदे। बरामदो पर विलायती खपरैल हो और कमरो पर लदाव की छत। छत पर बरसात के लिए एक हवादार कमरा बना लीजिए। खुश हुए?

ज्ञानशकर ने कृतज्ञतापूर्ण भाव से देख कर कहा, खुश तो नही हूँ अपने ऊपर ईर्षा होती है।

गायत्री—बस, दीपमालिका से आरम्भ कर दीजिए। अब बतलाइए, माया को क्या दूँ?

ज्ञान—माया को अभी कुछ न चाहिए। उसका इनाम अपने पास अमानत रहने दीजिए।

गायत्री—आप नौ नकद न तेरह उधारवाली मसल भूल जाते हैं।

ज्ञान—अमानत पर तो कुछ न कुछ ब्याज मिलता है।

गायत्री—अच्छी बात है; पर इस समय उसके लिए कलकत्ते के किसी कारखाने से एक छोटा-सा टडम मँगा दीजिए और मेरा टाँघन जो ताँगे मे चलता है, बनारस भेज दीजिए। छोटी लडकी के लिए हार बनवा दीजिए जो ५०० रु० से कम का न हो।

ज्ञानशकर यहाँ से चले तो पैर धरती पर न पडते थे। बँगले की अभिलाषा उन्हे चिरकाल से थी। वह समझते थे, यह मेरे जीवन का मधुर स्वप्न ही रहेगी, लेकिन सौभाग्य की एक ही दृष्टि ने वह चिरसचित अभिलाषा पूर्ण कर दी।

आरम्भ उत्साह वर्द्धक हुआ, देखें अन्त क्या होता है?

२५

आय मे वृद्धि और व्यय मे कमी, यह ज्ञानशकर के सुप्रबन्ध का फल था। यद्यपि गायत्री भी सदैव किफायत पर निगाह रखती थी, पर उनकी किफायत अशर्फियों की लूट और कोयलो पर मोहर को चरितार्थ करती थी। ज्ञानशकर ने सारी व्यवस्था ही पलट दी। कारिन्दो की बेपरवाही से इलाके मे जमीन के बड़े-बडे टुकडे परती पडे थे। हजारो बीघे की सीर होती थी पर अनाज का कही पता न चलता था, सब का सब सिपाही, प्यादो की खुराक मे उठ जाता था। पटवारी की साजिश और कारिन्दो की बेईमानी से कितनी ही उर्वरा भूमि ऊसर दिखायी जाती थी। सीर की सारी आमदनी राज्या-धिकारियो के आदर-सत्कार के लिए भेट हो जाती थी। नौकर भी जरूरत से ज्यादा पडे हुए थे। ज्ञानशंकर ने कागज-पत्र देखा तो उन्हे बडा गोल-माल दिखायी दिया। बहुत दिनो से इजाफा लगान न हुआ था। खेतो की जमाबदी भी किसी निश्चित नियम के अधीन न थी। हजारो रुपये प्रति वर्ष बट्टा खाते चले जाते थे। बडे-बडे टुकडे मौरूसी हो गये थे। ज्ञानशकर ने इन सभी मामलो की छानबीन शुरू की। सारे इलाके मे हल-चल मच गयी। गायत्री के पास शिकायतें पहुँचने लगी और यद्यपि गायत्री असामियो

के साथ नर्मी का बर्ताव करना पसद करती थी, पर जब ज्ञानशकर ने उसे हिसाब का ब्यौरा समझाया तो उसकी आँखे खुल गयी। हजार से ज्यादा ऐसे असामी थे, जिन पर तत्काल बेदखली न दायर की जाती तो वे सदा के लिए जमीदार के काबू से बाहर हो जाते और २० हजार सालाना की क्षति होती। इजाफा लगान से आमदनी सवायी हुई जाती थी। जिस रियासत से दो लाख सालाना भी न निकला था, उससे बिना किसी अड़चन के तीन लाख की निकासी होती नजर आती थी। ऐसी दशा में गायत्री अपने सुयोग्य मैनेजर से क्यो न सहमत होती?

तीन वर्ष तक सारी रियासत मे हाहाकार मचा रहा। ज्ञानशकर को नाना प्रकार के प्रलोभन दिये गये, यहाँ तक कि मार डालने की धमकियाँ भी दी गयी, पर वह अपने कर्मपथ से न हटे। यदि वह चाहते तो इन परिस्थितियों को अपरिमित धन सचय का साधन बना सकते थे, पर सम्मान और अधिकार ने अब उन्हे क्षुद्रताओ से निवृत्त कर दिया था।

किन्तु जो मन्सूबे बांध कर ज्ञानशकर यहाँ आये थे वे अभी तक पूरे होते नजर न आते थे। गायत्री उनका लिहाज करती थी, प्रत्येक विषय मे उन्ही की सलाह पर चलती थी, लेकिन इसके साथ ही वह उनसे कुछ खिंची रहती थी। उन्हे प्राय नित्य ही उससे मिलने का अवसर प्राप्त होता था। वह इलाके के दूरवर्ती स्थानो से भी मोटर पर लौट आया करते थे, लेकिन यह मुलाकात कार्य-सम्बन्धी होती थी। यहाँ प्रेमत्व-दर्शन का मौका न मिलता, दो-चार लौडियाँ खडी ही रहती, निराश हो कर लौट आते थे। वह आग जो उन्होने हाथ सेंकने के लिए जलायी थी, अब उनके हृदय को भी गर्म करने लगी थी। उनकी आँखे गायत्री के दर्शनो की भूखी रहती थी, उसका मधुर भाषण सुनने के लिए विकल। यदि किसी दिन मजबूर हो कर उन्हे देहात मे ठहरना पड़ता या किसी कारण गायत्री से भेंट न होती तो वह उस अफीमची की भाँति अस्थिर-चित्त हो जाते थे, जिसे समय पर अफीम न मिले।

एक दिन गायत्री ने प्रात.काल ज्ञानशकर को अन्दर बुलाया। आजकल मकान की सफाई और सुफेदी हो रही थी। दीपमालिका का उत्सव निकट था। गायत्री बगीचे मे बैठी हुई चिडियो को दाना चुगा रही थी। कोई लौडी न थी। ज्ञानशकर का हृदय चिड़ियो की भाँति फुदकने लगा। आज पहली बार उन्हे ऐसा अवसर मिला। गायत्री ने उन्हे देख कर कहा, आज आपको बहुत जरूरी काम तो नही है? मैं आपसे एक खास मामले मे कुछ राय लेना चाहती हूँ।

ज्ञानशकर—कुछ हिसाव-किताव देखना था, लेकिन कोई ऐसा जरूरी काम नही है।

गायत्री—मेरे स्वामी ने अन्तिम समय मुझे वसीयत की थी कि अपने बाद यह इलाका धर्मार्पण कर देना और इसकी निगरानी और प्रबन्ध के लिए एक ट्रस्ट बना देना। मेरी अब इच्छा होती है कि उनकी वसीयत पूरी कर दूँ। जिन्दगी का कोई भरोसा नही, न जाने कब सन्देशा आ पहुँचे। कही बिना लिखा-पढी किये मर गयी

तो रियासत का बाँट बखरा हो जायगा और वसीयत पानी की रेखा की भाँति मिट जायगी। मैं चाहती हूँ कि आप इस समस्या को हल कर दें, इससे अच्छा अवसर फिर न मिलेगा।

ज्ञानशकर की आँखो के सामने अँधेरा छा गया। उनकी अभिलाषाओ के त्रिभुज का आधार ही लुप्त हुआ जाता था। बोले, वसीयत लेख-बद्ध हो गयी है?

गायत्री—उनकी इच्छा मेरे लिए हजारो लेखो से अधिक मान्य है। यदि उन्हे मेरी फिक्र न होती तो अपने जीवनकाल मे ही रियासत को धर्मार्पण कर जाते। केवल मान रखने के लिए उन्होने इस विचार को स्थगित कर दिया। जब उन्हे मेरा इतना लिहाज था तो मैं भी उनकी इच्छा को देववाणी समझती हूँ।

ज्ञानशकर समझ गये कि इस समय कूटनीति से काम लेने की आवश्यकता है। अनुमोदन से विरोध का काम लेना चाहिए। बोले, अवश्य, लेकिन पहले यह निश्चय कर लेना चाहिए कि इस परमार्थ का स्वरूप क्या होगा?

गायत्री—आप इस सम्बन्ध मे लखनऊ जा कर पिता जी से मिलिए। अपने बड़े भाई साहब से राय लीजिए।

प्रेमशकर की चर्चा सुनते ही ज्ञानशकर के तेवरो पर बल पड गये। उनकी ओर से इनके हृदय मे गाँठ-सी पड गयी थी। बोले, राय साहब से सम्मति लेनी तो आवश्यक है, वह बुद्धिमान् है, लेकिन भाई साहब को मैं कदापि इस योग्य नही समझता। जो मनुष्य इतना विचारहीन हो कि अपनी स्त्री को त्याग दे, मिथ्या सिद्धान्त-प्रेम के घमण्ड मे बिरादरी का अपमान करे और अपनी असाधुता को प्रजा-भक्ति का रग दे कर भाई की गरदन पर छुरी चलाने मे सकोच न करे, उससे इस धार्मिक विषय मे कुछ पूछना व्यर्थ है। उनकी बदौलत मेरी एक हजार सालाना की हानि हो गयी और तीन साल गुजर जाने पर भी गाँव मे शान्ति नही होने पायी, बल्कि उपद्रव बढता ही चला जाता है। श्रद्धा इन्ही अविचारो के कारण उनसे घृणा करती है।

गायत्री—मेरी समझ मे तो यह श्रद्धा का अन्याय है। जिस पुरुष के साथ विवाह हो गया, उसके साथ निर्वाह करना प्रत्येक कर्मनिष्ठ नारी का धर्म है।

ज्ञान—चाहे पुरुष नास्तिक और विधर्मी हो जाय?

गायत्री—हाँ, मैं तो ऐसा ही समझती हूँ। विवाह स्त्री-पुरुष के अस्तित्व को सयुक्त कर देता है। उनकी आत्माएँ एक दूसरे मे समाविष्ट हो जाती हैं।

ज्ञान—पुराने जमाने मे लोगो के विचार ऐसे रहे हो, पर नया युग इसे नही मानता। वह स्त्री को सम्पूर्णतः स्वाधीन ठहराता है। वह मनसा, वाचा, कर्मणा किसी के अधीन नही है। परमात्मा से आत्मा का जो घनिष्ठ सम्बन्ध है उसके सामने मानवकृत सम्बन्ध की कोई हस्ती नही हो सकती। पश्चिम के देशो मे आये दिन धार्मिक मतभेद के कारण तलाक होते रहते है।

गायत्री—उन देशों की बात न चलाइए, वहाँ के लोग तो विवाह को केवल सामाजिक सम्बन्ध समझते है। आपने ही एक बार कहा था कि वहाँ कुछ ऐसे लोग

भी हैं जो विवाह-संस्कार को मिथ्या समझते हैं। उनके विचार में स्त्री-पुरुषों की अनुमति ही विवाह है, लेकिन भारतवर्ष में कभी इन विचारों का आदर नहीं हुआ।

ज्ञान—स्मृतियों में तो इसकी व्यवस्था स्पष्ट रूप से की गयी है।

गायत्री—की गयी है, मुझे मालूम है; लेकिन कभी उसका प्रचार नहीं हुआ और क्यों होता जब कि हमारे यहाँ स्त्री-पुरुष दोनों एक साथ रह कर अपने मतानुसार परमात्मा की उपासना कर सकते हैं? पुरुष वैष्णव है, स्त्री शैव है, पुरुष आर्य समाज में है, स्त्री अपने पुरातन सनातनधर्म को मानती है, वह ईश्वर को भी नहीं मानता, स्त्री ईंट और पत्थरों तक की पूजा अर्चना करती है। लेकिन इन भेदों के पीछे पति-पत्नी में अलगाव नहीं हो जाता। ईश्वर वह कुदिन यहाँ न लाये जब लोगों में विचार-स्वातन्त्र्य का इतना प्रकोप हो जाय।

ज्ञान—इसका कारण यही है कि हम भीरु प्रकृति हैं, यथार्थ का सामना न करके मिथ्या आदर्श-प्रेम की आड़ में अपनी कमजोरी छिपाते हैं।

गायत्री—मैंने आपका आशय नहीं समझा।

ज्ञान—मेरा आशय केवल यही है कि लोक-निन्दा के भय से अपने प्रेम या अरुचि को छिपाना अपनी धार्मिक स्वाधीनता को खाक में मिलाना है। मैं उस स्त्री को सराहनीय नहीं समझता जो एक दुराचारी पुरुष से केवल इसलिए भक्ति करती है कि वह उसका पति है। वह अपने उस जीवन को, जो सार्थक हो सकता है, नष्ट कर देती है। यही बात पुरुषों पर भी घटित हो सकती है। हम संसार में रोने और झींकने के ही लिए नहीं आये हैं और न आत्म-दमन हमारे जीवन का ध्येय है।

गायत्री—तो आपके कथन का निष्कर्ष यह है कि हम अपनी मनोवृत्तियों का अनुसरण करें, जिस ओर इच्छाएँ ले जायँ उसी ओर आँखें बन्द किये चले जायँ। उसके दमन की चेष्टा न करें। आपने पहले भी एक बार यही विचार प्रकट किया था। तब से मैंने इस पर अच्छी तरह गौर किया है, लेकिन हृदय इसे किसी प्रकार स्वीकार नहीं करता। इच्छाओं को जीवन का आधार बनाना बालू की दीवार बनाना है। धर्म-ग्रन्थों में आत्म-दमन और संयम की अखंड महिमा कही गयी है; बल्कि इसी को मुक्ति का साधन बताया गया है। इच्छाओं और वासनाओं को ही मानव-पतन का मुख्य कारण सिद्ध किया गया है और मेरे विचार में यह निर्विवाद है। ऐसी दशा में पश्चिमवालों का अनुसरण करना नादानी है। प्रथाओं की गुलामी इच्छाओं की गुलामी से श्रेष्ठ है।

ज्ञानशंकर को इस कथन में बड़ा आनन्द आ रहा था। इससे उन्हें गायत्री के हृदय के भेद्य और अभेद्य स्थलों का पता मिल रहा था, जो आगे चलकर उनकी अभीष्ट-सिद्धि में सहायक हो सकता था। वह कुछ उत्तर देना ही चाहते थे कि एक लौंडी ने तार का लिफाफा ला कर उसके सामने रख दिया। ज्ञानशंकर ने चौंक कर लिफाफा खोला। लिखा था, 'जल्द आइए, लखनपुरवालों से फौजदारी होने का भय है।'

ज्ञानशंकर ने अन्यमनस्क भाव से लिफाफे को जमीन पर फेंक दिया। गायत्री ने

पूछा, घर पर तो सब कुशल है न?

ज्ञानशकर—लखनपुर से आया है, वहाँ फौजदारी हो गयी है। इस गाँव ने मेरी नाक मे दम कर दिया। सब ऐसे दुष्ट है कि किसी तरह कावू मे नही आते। यह सब भाई साहब की करतूत है।

गायत्री—तब तो आपको जाना पडेगा। कही मामला तूल न पकड़ गया हो।

ज्ञान—अबकी हमेशा के लिए निबटारा कर दूंगा। या तो गाँव से इस्तीफा दे दूंगा या सारे गाँव को ही जला दूंगा। वे लोग भी क्या याद करेगे कि किसी से पाला पडा था।

गायत्री—लौटते हुए माया को जरूर लाइएगा, उसे देखने को बहुत जी चाहता है। विद्या को भी घसीट लायें तो क्या कहना! मैं तो लिखते-लिखते हैरान हो गयी।

ज्ञान—यह वही प्रथा की गुलामी है, जिसका आप बखान करती हैं। बहिन के घर जाने का साधारणत. रिवाज नही है, वह इसे क्योकर तोड़ सकती है! कदाचित् इसी कारण आप भी वहाँ नही जा सकती।

गायत्री—(लजा कर) मैं इन बातो की परवाह नही करती, लेकिन यहाँ तो आप देखते है सिर उठाने की फुरसत नही।

ज्ञान—यही बहाना वह भी कर सकती है।

गायत्री—खैर, वह न आये न सही, लेकिन माया को जरूर लाइएगा और वहाँ का समाचार लिखते रहिएगा। अवकाश मिलते ही चले आइएगा।

गायत्री का अन्तिम वाक्य ऐसा आकाक्षा-सूचक था कि ज्ञानशकर के हृदय मे गुदगुदी सी पैदा हो गयी। उन्हे यहाँ रहते तीन साल से ऊपर हो गये थे, कितनी ही बार बनारस आये, लेकिन गायत्री ने कभी लौटने के लिए ऐसा भावपूर्ण आग्रह न किया था। दिल ने कहा, शायद मेरा जादू कुछ असर करने लगा। बोले, तब भी तो दो सप्ताह से कम क्या लगेगे?

गायत्री चिन्तित स्वर से बोली—दो सप्ताह?

ज्ञानशकर को अपने विचार की पुष्टि हो गयी। ९ बजे वह डाकगाडी से रवाना हुए और ५ बजते-बजते बनारस पहुँच गये।

२६

जिस समय ज्ञानशकर की अपील खारिज हुई, लखनपुर के लोगो पर विपत्ति की घटा छायी हुई थी। कितने ही घर प्लेग से उजड गये। कई घरो मे आग लग गयी। कई चोरियाँ हुईं। उन पर दैविक घटना अलग हुई। कभी आँधी आती, कभी पानी बरसता। फाल्गुन के महीने मे एक दिन ओले पड गये। सारी खेती नष्ट हो गयी। अब गाँववालो के लिए कोई सहारा न था। बिसेसर साह ने भी जमीदार के मुकाबले में सहायता देने से इन्कार किया। स्त्रियो के गहने पहले ही निकल चुके थे। अब सुक्खू चौधरी के सिवा और कोई न था जो अपील की पैरवी कर सकता था। लोग भाग्य पर

भरोसा किये बैठे थे। बकसी की दशा मे प्रेमशकर के भेजे हुए रुपयो ने बडा काम किया। मुर्दे जाग पडे। कादिर खाँ दृढ़ प्रतिज्ञ हो कर उठ खडा हुआ और जी तोड कर मुकदमे की पैरवी करने लगा। लेकिन किसानो की नैतिक विजय वास्तविक पराजय से कम न थी। ज्ञानशकर असामियो को इस दु.साहस का दड देने के लिए उधार खाये बैठे थे। अभी गाँव के लोग झोपड़ी मे ही थे कि गौस खाँ अपने तीनो चपरासियो को लिए हुए आये और झोपड़ो मे आग लगवा दी। बाग की भूमि जमीदार की थी। असामियो को वहाँ झोपड़े बनवाने का कोई अधिकार न था। चपरासियो मे दो बिलकुल नये थे फैजू और कर्तार। दोनो लकडी चलाने मे कुशल थे, कई बार सजा पाये हुए। उनके हृदय मे दया और शील का नाम न था। पुराने आदमियो मे केवल बिन्दा महाराज अपनी कुटिल नीति की बदौलत रह गये थे। अभी तक ताऊन की ज्वाला शान्त न हुई थी कि लोगो को विवश हो कर बस्ती मे आना पडा, जिसका फल यह हुआ कि दूसरे ही दिन ठाकुर झपटसिंह प्लेग के झोके मे आ गये और कल्लू अहीर मरते-मरते बच गया। जितनी आरजू मिन्नत हो सकती थी वह सब की गयी, लेकिन अत्याचारियो पर कुछ असर न हुआ। झपट के मर जाने पर डपट भी मरने के लिए तैयार हुआ। लट्ठ चला कर बोला, गौस को आज जीता न छोडूँगा। अब क्या भय है? लेकिन कादिर खाँ उसके पैरो पर गिर पड़ा और समझा-बुझा कर घर लौटाया।

लखनपुर मे एक बहुत बडा तालाब था। गाँव भर के पशु उसमे पानी पीते थे। नहाने-धोने का काम भी उससे चलता था।

जून का महीना था, कुओ का पानी पाताल तक चला गया था। आस-पास के सब गढे और तालाब सूख गये थे। केवल इसी बड़े तालाब मे पानी रह गया था। ठीक उसी समय गौस खाँ ने उस तालाब का पानी रोक दिया। दो चपरासी किनारे आ कर डट गये और पशुओ को मार-मार कर भगाने लगे। गाँववालो ने सुना तो चकराये। क्या सचमुच जमीदार तालाब का पानी भी बन्द कर देगा। यह तालाब सारे गाँव का जीवन-स्रोत था। लोगो को कभी स्वप्न मे भी अनुमान न हुआ था कि जमीदार इतनी जबरदस्ती कर सकता है। उनका चिरकाल से इस पर अधिकार था। पर आज उन्हे ज्ञात हुआ कि इस जल पर हमारा स्वत्व नही है। यह जमीदार की कृपा थी कि वह इतने दिनों तक चुप रहा, किन्तु चिरकालीन कृपा भी स्वत्व का रूप धारण कर लेती है। गाँव के लोग तुरन्त तालाब के तट पर जमा हो गये और चपरासियो से वाद-विवाद करने लगे। कादिर खाँ ने देखा कि बात बढा चाहती है तो वहाँ से हट जाना उचित समझा। जानते थे कि मेरे पीछे और लोग टल जायेंगे, किन्तु दो ही चार पग चले थे कि सहसा सुक्खू चौधरी ने उसका हाथ पकड लिया और बोले, कहाँ जाते हो कादिर भैया! जब तक यहाँ कोई निबटारा न हो जाय, तुम जाने न पाओगे। जब जा-बेजा हरएक मामले मे इसी तरह दबना है, तो गाँव के सरगना काहे को बनते हो?

कादिर खाँ—तो क्या कहते हो लाठी चलाऊँ?

सुक्खू—और लाठी है किस दिन के लिए?

कादिर—किसके बूते पर लाठी चलेगी? गाँव मे रह कौन गया है? अल्लाह ने पट्ठो को चुन लिया।

सुक्खू—पट्ठे नही है न सही, बूढे तो है? हम लोग की जिन्दगानी किस रोज काम आयेगी?

गौस खाँ को जब मालूम हुआ कि गाँव के लोग तालाव के तट पर जमा हैं तो वह भी लपके हुए आ पहुँचे और गरज कर बोले, खबरदार! कोई तालाब की तरफ कदम न रखे। सुक्खू आगे बढ आये और कडक कर बोले, किसकी मजाल है जो तालाव का पानी रोके! हम और हमारे पुरखा इसी से अपना निस्तार करते चले आ रहे है। जमीदार नही ब्रह्मा आ कर कहे तब भी इसे न छोडेंगे, चाहे इसके पीछे सरबस लुट जाय।

गौस खाँ ने सुक्खू चौधरी को विस्मित नेत्रो से देखा और कहा, चौधरी, क्या इस मौके पर तुम भी दगा दोगे? होश मे आओ।

सुक्खू—तो क्या आप चाहते कि जमीदार की खातिर अपने हाथ कटवा लूं? पैरो मे कुल्हाडी मार लूं? खैरख्वाही के पीछे अपना हक नही, छोड सकता।

करतार चपरासी ने हँसी करते हुए कहा, अरे तुमका का पडी है, है कोऊ आगे पीछे? चार दिन मे हाथ पसारे चले जैहो। ई ताल तुमरे सँग न जाई।

वृद्धजन मृत्यु का व्यग नही सह सकते। सुक्खू ऐंठ कर बोले—क्या ठीक है कि हम ही पहले चले जायेंगे? कौन जाने हमसे पहले तुम्ही चले जाओ। जो हो, हम तो चले जायेंगे, पर गाँव तो हमारे साथ न चला जायगा?

गौस खाँ—हमारे सलूको का यही वदला है?

सुक्खू—आपने हमारे साथ सलूक किये है तो हमने भी आपके साथ सलूक किये है और फिर कोई सलूक के पीछे अपने हक-पद को नही छोड सकता।

फैजू—तो फौजदारी करने का अरमान है?

सुक्खू—फौजदारी क्यो करे, क्या हाकिम का राज नही है? हाँ, जब हाकिम न सुनेगा तो जो तुम्हारे मन मे है वह भी हो जायगा। यह कह कर सुक्खू ताल के किनारे से चले आये और उसी वक्त बैलगाडी पर बैठ कर अदालत चले। दूसरे दिन दावा दायर हो गया।

लाला मौजीलाल पटवारी की साक्षी पर हार-जीत निर्भर थी। उनकी गवाही गाँव वालो के अनुकूल हुई। गौस खाँ ने उन्हे फोडने मे कोई कसर न उठा रखी, यहाँ तक कि मार-पीट की भी धमकी दी। पर मौजीलाल का इकलौता बेटा इसी ताऊन मे मर चुका था। इसे वह अपने पूर्व सचित पापो का फल समझते थे। सन्मार्ग से विचलित न हुए। बेलाग साक्षी दी। सुक्खू चौधरी की डिगरी हो गयी और यद्यपि उनके कई सौ रुपये खर्च हुए पर गाँव मे उनकी खोयी प्रतिष्ठा फिर जम गयी। धाक बैठ गयी। सारा गाँव उनका भक्त हो गया। इस विजय का आनन्दोत्सव मनाया गया। सत्य-नारायण की कथा हुई, ब्राह्मणो का भोज हुआ और तालाब के चारो ओर पक्के घाट

की नींव पड़ गयी। गौस खाँ के भी सैकड़ो रुपये खर्च हो गये। ये काँटे उन्होंने ज्ञानशंकर से बिना पूछे ही बोये थे। इसलिए इसका फल भी उन्ही को खाना पडा। हराम का धन हराम की भेंट हो गया।

गौस खाँ यह चोट खा कर बौखला उठे। सुक्खू चौधरी उनकी आँखो मे काँटे की तरह खटकने लगा। दयाशंकर इस हल्के से बदल गये थे। उनकी जगह पर नूर आलम नाम के एक दूसरे महाशय नियुक्त हुए थे। गौस खाँ ने इनसे राह-रस्म पैदा करना शुरू किया। दोनों आदमियो मे मित्रता हो गयी और लखनपुर पर नयी-नयी विपत्तियो का आक्रमण होने लगा।

वर्षा के दिन थे। किसानो को ज्वार और बाजरे की रखवाली से दम मारने का अवकाश न मिलता। जिधर देखिए हा-हू की ध्वनि आती थी। कोई ढोल बजाता था, कोई टीन के पीपे पीटता था। दिन को तोतो के झुंड-के-झुंड टूटते थे, रात को गीदड के गोल; उस पर धान की क्यारियो मे पौधे बिठाने पड़ते थे। पहर रात रहे ताल मे जाते और पहर रात गये आते थे। मच्छरों के डंक से लोगो की देह मे छाले पड़ जाते थे। किसी का घर गिरता था, किसी के खेत मे मेड़ें कटी जाती थी। जीवन-संग्राम की दोहाई मची हुई थी। इसी समय दारोगा नूर आलम ने गाँव पर छापा मारा। सुक्खू चौधरी ने कभी कोकीन का सेवन नही किया था, उसकी सूरत नही देखी थी, उसका नाम नही सुना था, लेकिन उनके घर मे एक तोला कोकीन बरामद हुई। फिर क्या था, मुकदमा तैयार हो गया। माल के निकलने की देर थी, हिरासत मे आ गये। उन्हें विश्वास हो गया कि मैं बरी न हो सकूँगा। उन्होंने स्वयं कई आदमियो को इसी भाँति सजा दिलायी थी। हिरासत मे आने के एक क्षण पहले वह घर से गये और एक हाँड़ी लिए हुए आये। गाँव के सब आदमी जमा थे। उनसे बोले, भाइयो, राम-राम! अब तुमसे विदा होता हूँ। कौन जाने फिर भेंट हो या न हो! बूढ़े आदमी की जिन्दगानी का क्या भरोसा। ऐसे ही भाग होंगे तो भेंट होगी। इस हाँडी मे पाँच हजार रुपये हैं। यह कादिर भाई को सौंपता हूँ। तालाब का घाट बनवा देना। जिन लोगों पर मेरा जो कुछ आता है वह सब छोड़ता हूँ। यह देखो, सब कागज-पत्र अब तुम्हारे सामने फाड़े डालता हूँ। मेरा किसी के यहाँ कुछ बाकी नही, सब भर पाया।

दारोगा जी वहीं उपस्थित थे। रुपयो की हाँडी देखते ही लार टपक पडी। सुक्खू को बुला कर कान मे कहा, कैसे अहमक हो कि इतने रुपये रख कर भी बचने की फिक्र नही करते?

सुक्खू—अब बच कर क्या करना है! क्या कोई रोनेवाला बैठा है?

नूर आलम—तुम इस गुमान मे होगे कि हाकिम को तुम्हारे बुढापे पर तरस आ जायगा और वह तुमको बरी कर देगा। मगर इस धोखे मे न रहना। वह डट कर रिपोर्ट लिखूँगा और ऐसी मोतबिर शहादत पेश करूँगा कि कोई बैरिस्टर भी जबान न खोल सकेगा। पाँच हजार नहीं पाँच लाख भी खर्च करोगे तो भी मेरे पंजे मे न

निकल सकोगे। मैं दयाशकर नही हूँ, मेरा नाम नूर आलम है। चाहूँ तो एक बार खुदा को भी फँसा दूँ।

सुक्खू ने फिर उदासीन भाव से कहा, आप जो चाहे करे। अब जिन्दगी मे कौन सा सुख है कि किसी का ठेगा सिर पर लूँ? गौस खाँ का दया-स्रोत उबल पड़ा। फैजू और कर्तार भी बुलबुला उठे और बिन्दा महाराज तो हाँडी की ओर टकटकी लगाये ताक रहे थे।

सबने अलग-अलग और फिर मिल कर सुक्खू को समझाया; लेकिन वह टस से मस न हुए। अन्त मे लोगो ने कादिर को घेरा। नूर आलम ने उन्हे अलग ले जा कर कहा, खाँ साहब, इस बूढे को जरा समझाओ, क्यो जान देने पर तुला हुआ है? दो साल से कम की सजा न होगी। अभी मामला मेरे हाथ मे है। सब कुछ हो सकता है। हाथ से निकल गया तो कुछ न होगा। मुझे उसके बुढ़ापे पर तरस आता है।

गौस खाँ बोले—हाँ, इस वक्त उस पर रहम करना चाहिए। अब की ताऊन ने बेचारे का सत्यानाश कर दिया।

कादिर खाँ जा कर सुक्खू को समझाने लगे। बदनामी का भय दिखाया, कारावास की कठिनाइयाँ बयान की, किन्तु सुक्खू जरा भी न पसीजा। जब कादिर खाँ ने बहुत आग्रह किया और गाँव के सब लोग एक स्वर से समझाने लगे तो सुक्खू उदासीन भाव से बोला, तुम लोग मुझे क्या समझाते हो? मैं कोई नादान बालक नही हूँ। कादिर खाँ से मेरी उम्र दो ही चार दिन कम होगी। इतनी बडी जिन्दगानी अपने बन्धुओ का बुरा करने मे कट गयी। मेरे दादा मरे तो घर मे भूनी भाँग तक न थी। कारिन्दो से मिल कर मैं आज गाँव का मुखिया बन बैठा हूँ। चार आदमी मुझे जानते है और मेरा आदर करते हैं, पर अब आँखो के सामने से परदा हट गया। उन कर्मों का फल कौन भोगेगा? भोगना तो मुझी को है, चाहे यहाँ भोगूँ, चाहे नरक मे। यह सारी हाँडी मेरे पापो से भरी हुई है। इसी ने मेरे कुल का सर्वनाश कर दिया। कोई एक चुल्लू पानी देनेवाला न रहा। यह पाप की कमाई पुण्य कार्य मे लग जाय तो अच्छा है। घाट बनवा देना, अगर कुछ और लगे तो अपने पास से लगा देना। मैं जीता बचा तो कौडी-कौडी चुका दूँगा।

दूसरे दिन सुक्खू का चालान हुआ। फैजू और कर्तार ने पुलिस की ओर से साक्षी दी। माल बरामद हो ही गया था। कई हजार रुपयो का घर से निकलना पुष्टिकारक प्रमाण हो गया। कोई वकील भी न था। पूरे दो साल की सजा हो गयी। निरपराध निर्दोष सुक्खू गौस खाँ के वैमनस्य और ईर्ष्या का लक्ष्य बन गया।

सारा गाँव थर्रा उठा। इजाफा लगान के खारिज होने से लोगो ने समझा था कि अब किसी बात की चिंता नही, मानो ईश्वर ने अभय प्रदान कर दिया। पर अत्याचार के यह नये हथकडे देख कर सबके प्राण सूख गये। जब सुक्खू चौधरी जैसा शक्तिशाली मनुष्य दम के दम मे तबाह हो गया तो दूसरो का कहना ही क्या? किन्तु गौस खाँ को अब भी सन्तोष न हुआ। उनकी यह लालसा कि सारा गाँव मेरा गुलाम

हो जाय, मेरे इशारे पर नाचे, अभी तक पूरी न हुई थी। मौरूसी काश्तकारों मे अभी तक कई आदमी बचे हुए थे। कादिर खाँ अब भी था, बलराज और मनोहर अब भी आँखो मे खटकते थे। यह सब इस बाग के काँटे थे। उन्हें निकाले बिना सैर करने का आनन्द कहाँ?

लखनपुर शहर से दस ही मील की दूरी पर था। हाकिम लोग आते और जाते यहाँ जरूर ठहरते। अगहन का महीना लगा ही था कि पुलिस के एक बूढ़े अफसर का लश्कर आ पहुँचा। तहसीलदार स्वयं रसद का प्रबन्ध करने के लिए आये। चपरासियो की एक फौज साथ थी। लश्कर में सौ सवा-सौ आदमी थे। गाँव के लोगो ने यह जमघट देखा तो समझा कि कुशल नही है। मनोहर ने बलराज को ससुराल भेज दिया और ससुरालवालो को कहला भेजा कि इसे चार-पाँच दिन न आने देना। लोग अपनी-अपनी लकड़ियाँ और भूसा उठा-उठा कर घरो मे रखने लगे। लेकिन बोवनी के दिन थे, इतनी फुरसत किसे थी?

प्रातःकाल बिसेसर साह दूकान खोल ही रहे थे कि अरदली के दस-बारह चपरासी दूकान पर आ पहुँचे। बिसेसर ने आटे दाल के बोरे खोल दिये; जिन्सें तौली जाने लगी। दोपहर तक यही ताँता लगा रहा। घी के कनस्तर खाली हो गये। तीन पडाव के लिए जो सामग्री एकत्र की थी, अभी समाप्त हो गयी। बिसेसर के होश उड गये। फिर आदमी मडी दौड़ाये। बेगार की समस्या इससे कठिन थी। पाँच बडे-बडे घोडो के लिए हरी घास छीलना सहज नही था। गाँव के सब चमार इस काम मे लगा दिये गये। कई नोनिये पानी भर रहे थे। चार आदमी नित्य सरकारी डाक लेने के लिए सदर दौडाये जाते थे। कहारो को कर्मचारियो की खिदमत से सिर उठाने की फुरसत न थी। इसलिए जब दो बजे साहब ने हुक्म दिया कि मैदान मे घास छील कर टेनिस कोर्ट तैयार किया जाय तो वे लोग भी पकडे गये जो अब तक अपनी वृद्धावस्था या जाति-सम्मान के कारण बचे हुए थे। चपरासियो ने पहले दुखरन भगत को पकडा। भगत ने चौक कर कहा, क्यो मुझसे क्या काम है? चपरासी ने कहा, चलो लश्कर मे घास छीलनी है।

भगत—घास चमार छीलते है, यह हमारा काम नही है।

इस पर एक चपरासी ने उनकी गरदन पकड़ कर आगे ढकेला और कहा, चलते हो या यहाँ कानून बघारते हो?

भगत—अरे तो ऐसा क्या अन्धेर है? अभी ठाकुर जी का भोग तक नही लगाया।

चपरासी—एक दिन मे ठाकुर जी भूखो न मर जायँगे।

भगत ने वाद विवाद करना उचित न समझा, झपट कर सिपाहियो के बीच से निकल गये और भीतर जा कर किवाड बन्द कर दिये। सिपाहियो ने धडाधड किवाड पीटना शुरू किया। एक सिपाही ने कहा, लगा दें आग, वही भुन जाय। दुखरन ने भीतर से कहा, बैठो, भोग लगा कर आ रहा हूँ। चपरासियो ने खपरैल फोडने शुरू किये। इतने मे कई चपरासी कादिर खाँ आदि को साथ लिए आ पहुँचे। डपटसिंह

पहर रात रहे घर से गायब हो गयें थे। कादिर ने कहा, भगत, घर मे क्यो घुसे बैठे हो? चलो, हम लोग भी चलते है। भगत ने द्वार खोला और बाहर निकल आये। कादिर हँस कर बोले, आज हमारी बाजी है। देखे कौन ज्यादा घास छीलता है। भगत ने कुछ उत्तर न दिया। सब लश्कर के मैदान मे आये और घास छीलने लगे।

मनोहर ने कहा—खाँ साहब के कारण हम भी चमार हो गये।

दुखरन—भगवान की इच्छा। जो कभी न किया, वह आज करना पडा।

कादिर—जमीदार के असामी नही हो? खेत नही जोतते हो?

मनोहर—खेत जोतते है तो उसका लगान नही देते हैं? कोई भकुआ एक पैसा भी तो नही छोडता।

कादिर—इन बातो मे क्या रक्खा है? गुड खाया है तो कान छिदाने पडेगे। कुछ और बात-चीत करो। कल्लू, अब की तुम ससुराल मे बहुत दिन तक रहे। क्या-क्या मार लाये?

कल्लू—मार लाया? यह कहो जान ले कर आ गया। यहाँ से चला तो कुल साढे तीन रुपये पास थे। एक रुपये की मिठाई ली, आठ आने रेल का किराया दिया, दो रुपये पास रख लिये। वहाँ पहुँचते ही बडे साले ने अपना लडका ला कर मेरी गोद मे रख दिया। बिना कुछ दिये उसे गोद मे कैसे लेता? कमर से एक रुपया निकाल कर उसके हाथ मे रख दिया। रात को गाँव भर की औरतो ने जमा हो कर गाली गायी। उन्हे भी कुछ नेग-दस्तूर मिलना ही चाहिए था। एक ही रुपये की पूंजी थी, वह उनकी भेट की। न देता तो नाम हँसाई होती। मैंने समझा यहाँ रुपयो का और काम ही क्या है और चलती बेर कुछ न कुछ बिदाई मिल ही जायेगी। आठ दिन चैन से रहा। जब चलने लगा तो सामने एक मटका खाँड, एक टोकरी ज्वार की बाल और एक थैली मे कुछ खटाई भर कर दी। पहुँचाने के लिए एक आदमी साथ कर दिया। बस बिदाई हो गयी। अब बडी चिन्ता हुई कि घर तक कैसे पहुँचूंगा? जान न पहचान, माँगूं किससे? उस आदमी के साथ टेसन तक आया। इतना बोझ ले कर पैदल घर तक आना कठिन था। बहुत सोचते समझते सूझी कि चल कर ज्वार की बाल कही बेच दूं। आठ आने भी मिल जायँगे तो काम चल जायगा। बाजार मे आ कर एक दूकानदार से पूछा, बाले, लोगे? उसने दाम पूछा। मेरे मुँह से निकला, दाम तो मैं नही जानता, आठ आने दो, ले लो। बनिये ने समझा चोरी का माल है। थैला पटका, बाले सब रखवा ली और कहा चुपके से चले जाओ, नही तो चौकीदार को बुला कर थाने भिजवा दूंगा। तो भैया क्या करता? सब कुछ वही छोड कर भागा। दिन भर का भूखा-प्यासा पहर रात गये घर आया। कान पकडे कि अब ससुराल न जाऊँगा।

कादिर—तुम तो सस्ते ही छूट गये। एक बेर मै भी ससुराल गया था। जवानी की उमर थी। दिन भर धूप मे चला तो रतौंधी हो गयी। मगर लाज के मारे किसी से कहा तक नही। खाना तैयार हुआ तो साली दालान मे बुला कर भीतर चली गयी।

दालान मे अँधेरा था। मै उठा तो कुछ सूझा ही नही कि किधर जाऊँ। न किसी को पुकारते बने, न पूछते। इधर-उधर टटोलने लगा। वही एक कोने मे मेढा बँधा हुआ था। मैं उसके ऊपर जा पहुँचा। वह मेरे पैर के नीचे से झपट कर उठा और मुझे ऐसा सीग मारा कि मैं दूर जा गिरा। यह धमाका सुनके साली दौडी हुई आयी और अन्दर ले गयी। आँगन मे मेरे ससुर और दो-तीन बिरादर बैठे हुए थे। मैं भी जा बैठा। पर कुछ सूझता न था कि क्या करूँ। सामने खाना रखा था। इतने मे मेरी सास कडे-छडे पहने छन-छन करती हुई दाल की रकाबी मे घी डालने आयी। मैंने छन-छन की आवाज सुनी तो रोगटे खडे हो गये। अभी तक घुटने मे दर्द हो रहा था। समझा कि शायद मेढा छूट गया। खडा हो कर लगा पैतरे बदलने। सास को भी एक घूंसा लग।या। घी की प्याली उनके हाथ से छूट पड़ी। वह घबडा के भागी। लोगो ने दौड कर मुझे पकड़ा और पूछने लगे, क्या हुआ, क्या हुआ? शरम के मारे मेरी जब।न बन्द हो गयी। कुछ बोली ही न निकली। साला दौड़ा हुआ गया और एक मौलवी को लिवा आया। मौलवी ने देखते ही कहा, इस पर सईद मर्द सवार है। दुआ-तावीज होने लगी। घर मे किसी ने खाना न खाया। सास और ससुर मेरे सिरहाने बैठे बडी देर तक रोते रहे और मुझे आये बार-बार हँसी। कितना ही रोकूं हँसी न रुके। बारे मुझे नीद आ गयी। भोरे उठ कर मैंने किसी से कुछ पूछा न ताछा, सीधे घर की राह ली। दुखरन भगत, अपनी ससुराल की बात तुम भी कहो।

दुखरन—मुझे इस बखत मसखरी नही सूझती। यही जी चाहता है कि सिर पटक कर मर जाऊँ।

मनोहर—कादिर भैया, आज बलराज होता तो खून-खराबी हो जाती। उससे यह दुर्गत न देखी जाती।

कादिर—फिर वही दुखडा ले बैठे। अरे जो अल्लाह को यही मजूर होता कि हम लोग इज्जत-आबरू से रहे तो काश्तकार क्यो बनाता? जमीदार न बनाता, चपरासी न बनाता, थाने का कानिसटिबिल न बनाता कि बैठे-बैठे दूसरो पर हुकुम चलाया करते? नही तो यह हाल है कि अपना कमाते है, अपना खाते है, फिर भी जिसे देखो धौस जमाया करता है। सभी की गुलामी करनी पडती है। क्या जमीदार, क्या सरकार, क्या हाकिम सभी की निगाह हमारे ऊपर टेढी है और शायद अल्लाह भी नाराज हैं। नही तो क्या हम आदमी नही है कि कोई हमसे बडा बुद्धिमान है? लेकिन रो कर क्या करे? कौन सुनता है? कौन देखता है? खुदाताला ने आँखे बन्द कर ली। जो कोई भलमानुस दरद बूझ कर हमारे पीछे खड़ा भी हो जाता है तो उस बेचारे की जान भी आफत मे फँस जाती है। उसे तग करने के लिए, फँसाने के लिए तरह-तरह के कानून गढ लिए जाते हैं। देखते तो हो, बलराज के अखबार मे कैसी-कैसी बातें लिखी रहती हैं। यह सब अपनी तकदीर की खूबी है।

यह कहते-कहते कादिर खाँ रो पडे। वह हृदय-ताप जिसे वह हास्य और प्रमोद

से दबाना चाहते थे, प्रज्ज्वलित हो उठा। मनोहर ने देखा तो उसकी आँखे रक्तवर्ण हो गयी—पददलित अभिमान की मूर्ति की तरह।

चारो मे से कोई न बोला। सब के सब सिर झुकाये चुपचाप घास छीलते रहे, यहाँ तक कि तीसरा पहर हो गया। सारा मैदान साफ हो गया। सबने खुरपियाँ रख दी और कमर सीधी करने के लिए जरा लेट गये। बेचारे समझते थे कि गला छूट गया, लेकिन इतने मे तहसीलदार साहब ने आ कर हुक्म दिया, गोबर ला कर इसे लीप दो, खूब चिकना कर दो, कोई कंकड़-पत्थर न रहने पाये। कहाँ हैं नाजिर जी, इन सबको डोल रस्सी दिलवा दीजिए।

नाजिर ने तुरत डोल और रस्सी मँगा कर रख दी। कादिर खाँ ने डोल उठाया और कुएँ की तरफ चले, लेकिन दुखरन भगत ने घर का रास्ता लिया। तहसीलदार ने पूछा, इधर कहाँ ?

दुखरन ने उद्दडता से कहा—घर जा रहा हूँ।

तहसीलदार—और लीपेगा कौन ?

दुखरन—जिसे गरज होगी वह लीपेगा।

तहसीलदार—इतने जूते पडेंगे कि दिमाग की गरमी उतर जायगी।

दुखरन—आपका अख्तियार है—जूते मारिए चाहे फाँसी दीजिए, लेकिन लीप नही सकता।

कादिर—भगत, तुम कुछ न करना। जाओ, बैठे ही रहना। तुम्हारे हिस्से का काम मैं कर दूंगा।

दुखरन—मैं तो अब जूते खाऊँगा। जो कसर है वह भी पूरी हो जाय।

तहसीलदार—इस पर शामत सवार है। है कोई चपरासी, जरा लगाओ तो बद-माश को पचास जूते, मिजाज ठढा हो जाय।

यह हुक्म पाते ही एक चपरासी ने लपक कर भगत को इतने जोर से धक्का दिया कि वह जमीन पर गिर पड़े और जूते लगाने लगा। भगत जड़वत् भूमि पर पडे रहे। सज्ञा-शून्य हो गये, उनके चेहरे पर क्रोध या ग्लानि का चिह्न भी न था। उनके मुख से हाय तक न निकलती थी। दीनता ने समस्त चैतन्य शक्तियो का हनन कर दिया था। कादिर खाँ कुएँ पर से दौडे हुए आये और उस निर्दय चपरासी के सामने सिर झुका कर बोले, सेख जी, इनके बदले मुझे जितना चाहिए मार लीजिए, अब बहुत हो गया।

चपरासी ने धक्का दे कर कादिर खाँ को ढकेल दिया और फिर जूता उठाया कि अकस्मात् सामने से एक इक्के पर प्रेमशकर और डपटसिंह आते दिखायी दिये। प्रेम-शंकर यह हृदय-विदारक दृश्य देखते ही इक्के से कूद पडे और दौडे हुए चपरासी के पास आ कर बोले, खबरदार जो फिर हाथ चलाया।

चपरासी सकते मे आ गया। कल्लू, मनोहर सब डोल-रस्सी छोड-छोड कर दौड़े और उन्हे सलाम कर खडे हो गये। चमार भी घास ला कर पैसो के इन्तजार मे खड़े थे। वे भी पास आ गये। प्रेमशकर के चारो ओर एक जमघट सा हो गया। तहसीलदार

ने कठोर स्वर मे पूछा, आप कौन हैं? आपको सरकारी काम में मुदाखिलत करने का क्या मजाल है?

प्रेमशंकर—मुझे नही मालूम था कि गरीबो को जूते लगवाना भी सरकारी काम है। इसने क्या खता की थी, जिसके लिए आप ने यह सजा तजवीज की?

तहसीलदार—सरकारी हुक्म की तामील से इन्कार किया। इससे कहा गया था कि इस मैदान को गोबर से लीप दे, पर इसने बदजबानी की।

प्रेम—आपको मालूम नही था कि यह ऊँची जाति का काश्तकार है? जमीन लीपना या कूडा फेंकना इनका काम नहीं है।

तहसीलदार—जूते की मार सब कुछ करा लेती है।

प्रेमशंकर का रक्त खौल उठा, पर जब्त से काम ले कर बोले, आप जैसे जिम्मेदार ओहदेदार की जबान से यह बात सुन कर सख्त अफसोस होता है।

मनोहर आगे बढ कर बोला, सरकार, आज जैसी दुर्गति हुई है वह हम जानते है। एक चमार बोला, दिन भर घास छीला, अब कोई पैसे ही नही देता। घंटो से चिल्ला रहे है।

तहसीलदार ने क्रोधोन्मत्त हो कर कहा, आप यहाँ से चले जायँ, वरना आपके हक मे अच्छा न होगा। नाजिर जी, आप मुँह क्या देख रहे है? चपरासियो से कहिए, इन चमारो की अच्छी तरह खबर लें। यही इनकी मजदूरी है।

चपरासियो ने बेगारो को घेरना शुरू किया। कान्स्टेबलो ने भी बन्दूको के कुन्दे, चलाने शुरू किये। कई आदमियो को चोट आ गयी। प्रेमशंकर ने जोर से कहा, तहसीलदार साहब, मैं आपसे मिन्नत करता हूँ कि चपरासियो को मार-पीट करने से मना कर दें, वरना इन गरीबो का खून हो जायगा।

तहसीलदार—आपके ही इशारो से इन बदमाशो ने सरकशी अख्तियार की है। इसके जिम्मेदार आप है। मैं समझ गया, आप किसी किसान-सभा से ताल्लुक रखते है।

प्रेमशंकर ने देखा तो लखनपुरवालो के चेहरे रोष से विकृत हो रहे थे। प्रति क्षण शंका होती थी कि इनमे से कोई प्रतिकार न कर बैठे। प्रति क्षण समस्या जटिलतर होती जाती थी। तहसीलदार और अन्य कर्मचारियों से मनुष्यता और दयालुता की अब कोई आशा न रही। तुरन्त अपने कर्तव्य का निश्चय कर लिया। गाँववालो की ओर रुख करके बोले, तहसीलदार साहब का हुक्म मानो। एक आदमी भी यहाँ से न जाय। सब आदमियो को मुँह माँगी मजूरी दी जायगी। इसकी कुछ चिन्ता मत करो।

यह शब्द सुनते ही सारे आदमी ठिठक गये और विस्मित हो कर प्रेमशंकर की ओर ताकने लगे। सरकारी कर्मचारियो को भी आश्चर्य हुआ। मनोहर और कल्लू कुएँ की तरफ चले। चमारों ने गोबर बटोरना शुरू किया। डपटसिंह भी मैदान से ईंट-पत्थर उठा-उठा कर फेकने लगे। सारा काम ऐसी शान्ति से होने लगा, मानो कुछ

हुआ ही न था। केवल दुखरन भगत अपनी जगह से न हिले।

प्रेमशकर ने तहसीलदार से कहा, आपकी इजाजत हो तो यह आदमी अपने घर जाय। इसे बहुत चोट आ गयी है।

तहसीलदार ने कुछ सोच कर कहा, हाँ, जा सकता है।

भगत चुपके से उठे और धीरे-धीरे घर की ओर चले। इधर दम के दम मे आदमियो ने मैदान लीप-पोत कर तैयार कर दिया। सब ऐसा दौड-दौड कर उत्साह से काम कर रहे थे मानो उनके घर बरात आयी हो।

सन्ध्या हो गयी थी। प्रेमशकर जमीन पर बैठे हुए विचारो मे मग्न थे—कब तक गरीबो पर यह अन्याय होगा? कब उन्हे मनुष्य समझा जायगा? हमारा शिक्षित समुदाय कब अपने दीन भाइयो की इज्जत करना सीखेगा? कब अपने स्वार्थ के लिए अपने अफसरो की नीच खुशामद करना छोडेगा।

इतने मे तहसीलदार साहब सामने आ कर खडे हो गये और विनय भाव से बोले, आपको यहाँ तकलीफ हो रही है, मेरे खेमे मे तशरीफ ले चलिए। माफ कीजिएगा, मैंने आपको पहचाना न था। गरीबो के साथ हमदर्दी देख कर आपकी तारीफ करने को जी चाहता है। आप बडे खुशनसीब है कि खुदा ने आपको ऐसा दर्दमन्द दिल अता फरमाया है। हम बदनसीबो की जिन्दगी तो अपनी तनपरवरी मे ही गुजरती जाती है। क्या करूँ? अगर अभी साफ कह दूँ कि बेगार मे मजदूर नही मिलते तो नालायक समझा जाऊँ। आँखो से देखता हूँ कि मजदूरो को आठ आने रोज मिलते है, पर इन साहब बहादुर से इतनी मजूरी माँगूँ तो वह हर्गिज न देंगे। सरकार ने कायदे बहुत अच्छे बनाये हैं, लेकिन ये हुक्काम उनकी परवा ही नही करते। कम से कम ५० रु० के मिट्टी के बर्तन उठे होगे। लकडी, भूसा, पुआल सैकड़ो मन खर्च हो गये। कौन इनकी कीमत देता है? अगर कायदे पर अमल करने लगूँ तो एक लमहे भर रहना दुस्वार हो जाय और मैं अकेला कर ही क्या सकता हूँ? मेरे और भाई भी तो है। उनकी सख्तियाँ आप देखें तो दाँतो तले उँगली दबा ले। खुदा ने जिसके घर मे रूखी रोटियाँ भी दी हो, वह कभी यह मुलाजमत न करे। आइए, बैठिए, आपको सैकड़ो दास्तानें सुनाऊँ, जिनमे तहसीलदारो को कायदे के मताबिक अमल करने के लिए जहन्नुम मे भेज दिया गया है। मेरे ऊपर खुद एक बार गुजर चुकी है।

प्रेमशकर को तहसीलदार से सहानुभूति हो गयी। समझ गये कि यह बेचारे विवश हैं। मन मे लज्जित हुए कि मैंने अकारण ही इनसे अविनय की। उनके साथ खेमे मे चले गये। वहाँ बहुत देर तक बाते होती रही। तहसीलदार साहब बडे साधु सज्जन निकले। अधिकार-विषयक घटनाएँ समाप्त हो चुकी तो अपनी पारिवारिक कठिनाइयो का बयान करने लगे। उनके तीन पुत्र कालेज मे पढते थे। दो लडकियाँ विधवा हो गयी थी। एक विधवा बहिन और उसके बच्चो का भार भी सिर पर था। २०० रु० मे बडी मुश्किल से गुजर होता था। अतएव जहाँ अवसर और सुविधा देखते थे, वहाँ रिश्वत लेने मे उज्र न था। उन्होने यह वृत्तान्त ऐसे सरल और नम्र भाव से कहा कि

प्रेमशकर का उनसे स्नेह-सा हो गया। वहाँ से उठे तो ८ बज चुके थे। चौपाल की तरफ जाते हुए दुखरन भगत के द्वार पर पहुँचे तो एक विचित्र दृश्य देखा। गाँव के कितने ही आदमी जमा थे। और भगत उनके बीच मे खडे हाथ मे शालिग्राम की मूर्ति लिए उन्मत्तो की भाँति वहक-वहक कर कह रहे थे—यह शालिग्राम है। अपने भक्तो पर वडी दया रखते हैं? सदा उनकी रक्षा किया करते हैं! इन्हे मोहन भोग वहुत अच्छा लगता है! कपूर और धूप की महक वहुत अच्छी लगती है। पूछो, मैंने इनकी कौन सेवा नही की? आप सत्तू खाता था, वच्चे चवेना चवाते थे, इन्हे मोहन-भोग का भोग लगाता था। इनके लिए जा कर कोसो से फूल और तुलसीदल लाता था। अपने लिए तमाखू चाहे न रहे, पर इनके लिए कपूर और धूप की फिकिर करता था। इनका भोग लगा के तव दूसरा काम करता था। घर मे कोई मरता ही क्यो न हो, पर इनकी पूजा-अर्चा किये विना कभी न उठता था। कोई दिन ऐसा न हुआ कि ठाकुरद्वारे मे जाकर चरणामृत न पिया हो, आरती न ली हो, रामायण का पाठ न किया हो। यह भगती और सर्धा क्या इसलिए कि मुझ पर जूते पडें, हकनाहक मारा जाऊँ, चमार वनूँ? धिक्कार मुझ पर जो फिर ऐसे ठाकुर का नाम लूँ, जो इन्हे अपने घर मे रखूँ, और फिर इनकी पूजा करूँ! हाँ, मुझे धिक्कार है! ज्ञानियो ने सच कहा है कि यह अपने भगतो के वैरी हैं, उनका अपमान कराते है, उनकी जड़ खोदते हैं, और उससे प्रसन्न रहते है जो इनका अपमान करे। मैं अव तक भूला हुआ था। वोलो मनोहर, क्या कहते हो, इन्हे कुएँ मे फेकूँ या घूर पर डाल दूँ, जहाँ इन पर रोज मनो कूडा पडा करे या राह मे फेक दूँ जहाँ सवेरे से साँझ तक इन पर लातें पडती रहे?

मनोहर—भैया, तुम जान कर अनजान वनते हो। वह ससार के मालिक हैं, उनकी महिमा अपरम्पार है।

कादिर—कौन जानता है, उनकी क्या मरजी है? वुराई से भलाई करते हैं। इतना मन न छोटा करो।

दुखरन—(हँस कर) यह सव मन को समझाने का ढकोसला है। कादिर मियाँ, यह पत्थर का ढेला है, निरा मिट्टी का पिंडा। मैं अव तक भूल मे पडा हुआ था। समझता था, इसकी उपासना करने से मेरे लोक-परलोक दोनो वन जायँगे। आज आँखो के सामने से वह परदा हट गया। यह निरा मिट्टी का ढेला है। यह लो महा-राज, जाओ जहाँ तुम्हारा जी चाहे! तुम्हारी यही पूजा है। उन्तालीस साल की भगती का तुमने मुझे जो वदला दिया है, मैं भी तुम्हे उसी का वदला देता हूँ।

यह कह कर भगत ने शालिग्राम की प्रतिमा को जोर से एक ओर फेंक दिया। न जाने कहाँ जा कर गिरी। फिर दौंडे हुए घर मे गये और पूजा की पिटारी लिए हुए वाहर निकले। मनोहर लपका कि पिटारी उनके हाथ से छीन लूँ। लेकिन भगत ने उसे अपनी ओर आने देख कर वडी फुर्ती से पिटारी खोली और उसे हवा मे उछाल दी। सभी सामग्रियाँ इधर-उधर फैल गयी। तीस वर्ष की धर्म निष्ठा और आत्मिक श्रद्धा

नष्ट हो गयी। धार्मिक विश्वास की दीवार हिल गयी और उसकी ईंटें बिखर गयी।

कितना हृदय-विदारक दृश्य था। प्रेमशंकर का हृदय गद्‍गद् हो गया। भगवान्! इस असभ्य, अशिक्षित और दरिद्र मनुष्य का इतना आत्माभिमान! इसे अपमान ने इतना मर्माहत कर दिया! कौन कहता है, गँवारो मे यह भावना निर्जीव हो जाती है? कितना दारुण आघात है जिसने भक्ति, विश्वास तथा आत्मगौरव को नष्ट कर डाला!

प्रेमशंकर सब आदमियो के पीछे खडे थे। किसी ने उन्हे नही देखा। वह वही से चौपाल चले गये। वहाँ पलँग बिछा तैयार था। डपटसिंह चौका लगाते थे, कल्लू पानी भरते थे। उन्हे देखते ही गौस खाँ झुक कर आदाब अर्ज बजा लाये और कुछ सकुचाते हुए बोले, हुजूर को तहसीलदार साहब के यहाँ बड़ी देर हो गयी।

प्रेमशंकर—हाँ, इधर-उधर की बाते करने लगे। क्यो, यहाँ कहार नही है क्या? य लोग क्यो पानी भर रहे हैं? उसे बुलाइए, मुनासिब मजदूरी दी जायगी।

गौस खाँ—हुजूर, कहार तो चार घर थे, लेकिन सब उजड़ गये। अब एक आदमी भी नही है।

प्रेमशंकर—यह क्यो?

गौस खाँ—अब हुजूर से क्या बतलाऊँ, हमी लोगो की शरारत और जुल्म से। यहाँ हमेशा तीन-चार चपरासी रहते है। एक-एक के लिए एक-एक खिदमतगार चाहिए। और मेरे लिए तो जितने खिदमतगार हो उतने थोडे हैं। बेचारे सुबह से ही पकड़ लिए जाते थे, शाम को छुट्टी मिलती थी। कुछ खाने को पा गये तो पा गये, नही तो भूखे ही लौट जाते थे। आखिर सब के सब भाग खड़े हुए, कोई कलकत्ता गया, कोई रगून। अपने बाल बच्चो को भी लेते गये। अब यह हाल है कि अपने ही हाथो बर्तन तक धोने पड़ते है।

प्रेमशंकर—आप लोग इन गरीबो को इतना सताते क्यो हैं? अभी तहसीलदार साहब लश्करवालो की सारी बेइन्साफियो का इलजाम आपके ही सिर मढ रहे थे।

गौस खाँ—हुजूर तो फरिश्ते हैं, लेकिन हमारे छोटे सरकार का ऐसा ही हुक्म है। आजकल खतो मे बार-बार ताकीद करते हैं कि गाँव मे एक भी दखलकार असामी न रहने पाये। हुजूर का नमक खाता हूँ तो हुजूर के हुक्म की तामील करना मेरा फर्ज है, वरना खुदाताला को क्या मुँह दिखलाऊँगा। इसीलिए मुझे इन बेकसो पर सभी तरह की सख्तियाँ करनी पडती है। कही मुकदमे खड़े कर दिये, कही बेगार मे फँसा दिया, कही आपस मे लडा दिया। कानून का हुक्म है कि आदमियो को लगान देते ही पाई-पाई की रसीद दी जाय, लेकिन मैं सिर्फ उन्ही लोगो को रसीद देता हूँ जो जरा चालाक हैं, गँवारो को यों ही टाल देता हूँ। छोटे सरकार का बकाया पर इतना जोर है कि एक पाई भी बाकी रहे तो नालिश कर दो। कितने ही असामी तो नालिश से तंग आ कर निकल भागे। मेरे लिए तो जैसे छोटे सरकार हैं वैसे हुजूर भी हैं। आपसे क्या छिपाऊँ? इस तरह की धाँधलियो मे हम लोगो का भी गुजर-बसर हो जाता है, नहीं तो इस थोड़ी सी आमदनी मे गुजर होना मुश्किल था।

इतने में बिसेसर, मनोहर, कादिर खाँ आदि भी आ गये और आज का वृत्तान्त कहने लगे। मनोहर दूध लाये, कल्लू ने दही पहुँचाया। सभी प्रेमशंकर के सेवा सत्कार में तत्पर थे। जब वह भोजन करके लेटे तो लोगों ने आपस में सलाह की कि बाबू साहब को रामायण सुनायी जाय। बिसेसर साह अपने घर से ढोल-मजीरा लाये। कादिर ने ढोल लिया। मजीरे बजने लगे और रामायण का गान होने लगा। प्रेमशंकर को हिन्दी भाषा का अभ्यास न था और शायद ही कोई चौपाई उनकी समझ में आती थी, पर वह इन देहातियों के विशुद्ध धर्मानुराग का आनन्द उठा रहे थे। कितने निष्कपट, सरल-हृदय, साधु लोग हैं। इतने कष्ट झेलते हैं, इतना अपमान सहते हैं, लेकिन मनोमालिन्य का कहीं नाम नहीं। इस समय सभी आमोद के नशे में चूर हो रहे हैं।

रामायण समाप्त हुई तो कल्लू बोला, कादिर चाचा, अब तुम्हारी कुछ हो जाय।

कादिर ने बजाते हुए कहा, गा तो रहे हो, क्या इतनी जल्दी थक गये।

मनोहर—नहीं भैया, अब अपनी कोई अच्छी-सी चीज सुना दो। बहुत दिन हुए नहीं सुना, फिर न जाने कब बैठक हो। सरकार, ऐसा गायक इधर कई गाँव में नहीं है।

कादिर—मेरे गँवारू गाने में सरकार को क्या मजा आयेगा?

प्रेमशंकर—नहीं-नहीं, मैं तुम्हारा गाना बड़े शौक से सुनूंगा।

कादिर—हुजूर, गाते क्या हैं रो लेते हैं; आपका हुक्म कैसे टालें?

यह कह कर कादिर खाँ ने ढोल का स्वर मिलाया और यह भजन गाने लगा—

मैं अपने राम को रिझाऊँ।
जंगल जाऊँ न बिरछा छेड़ूँ, ना कोई डार सताऊँ।
पात-पात में है अविनासी, वाही में दरस कराऊँ।
मैं अपने राम को रिझाऊँ।
ओखद खाऊँ न बूटी लाऊँ, ना कोई बैद बुलाऊँ।
पूरन बैद मिले अविनासी, ताहि को नबज दिखाऊँ।
मैं अपने राम को रिझाऊँ।

कादिर के गले में यद्यपि लोच और माधुर्य न था, पर ताल और स्वर ठीक था। कादिर इस विद्या में चतुर था। प्रेमशंकर भजन सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। इसका एक-एक शब्द भक्ति और उद्गार में डूबा हुआ था। व्यवसायी गायकों की नीरसता और शुष्कता की जगह अनुरागमय, भाव-रस परिपूर्ण था।

गाना समाप्त हुआ तो एक नकल की ठहरी। कल्लू इस कला में निपुण था। कादिर मियाँ राजा बने, कल्लू मंत्री, बिसेसर साह सेठ बन गये। डपटसिंह ने एक चादर ओढ़ ली और रानी बन बैठे। राजकुमार की कमी थी। लोग सोचने लगे कि यह भाग किसे दिया जाय। प्रेमशंकर ने हँस कर कहा कोई हरज न हो तो मुझे राजकुमार बना दो। यह सुन कर सब के सब फूल उठे। नकल शुरू हो गयी।

पहला अंक

राजा—हाय ! हाय ! वैद्यो ने जवाब दिया, हकीमों ने जवाब दिया, डाकदरो ने जवाब दिया, किसी ने रोग को न पहचाना। सब के सब लुटेरे थे। अब जिन्दगानी की कोई आशा नही। यह सारा राज-पाट छूटता है। मेरे पीछे परजा पर न जाने क्या बीतेगी! राजकुमार अल्हड नादान है, उसकी सगत अच्छी नही है। (प्रेमशकर की ओर कटाक्ष से देख कर) किसानो से मेल रखता है। उसके पीछे सरकारी आदमियो से रार करता है। जिन दीन-दुखी रोगियो की परछाई से भी डाकदर लोग डरते हैं उनकी दवा-दारू करता है। उसे अपनी जान का, धन का तनिक भी लोभ नही है। यह इतना बडा राज कैसे सँभालेगा ? अत्याचारियो को कैसे दड देगा ? हाय, मेरी प्यारी रानी, जिससे मैंने अभी महीने भर हुए ब्याह किया है, मेरे बिना कैसे जियेगी ? कौन उससे प्रेम करेगा ? हाय !

रानी—स्वामी जी, मैं सोग मे मर जाऊँगी। यह उजले सन के-से बाल, यह पोपला मुँह कहाँ देखूँगी (कटाक्ष भाव से) किसको गोद मे लूँगी ? किससे ठुनकूँगी ? अब मैं किसी तरह न बचूँगी।

राजा की साँस उखड जाती है, आँखे पथरा जाती है, नाडी छूट जाती है। रानी छाती पीट कर रोने लगती है। दरबार मे हाहाकार मच जाता है।

राजा के कानो मे आकाशवाणी होती है—हम तुझे एक घटे की मोहलत देते हैं, अगर तुझे तीन मनुष्य ऐसे मिल जायें जो दिल से तेरे जीने की इच्छा रखते हो तो तू अमर हो जायगा।

राजा सचेत हो जाता है, उसके मुखारविन्द पर जीवन-ज्योति झलकने लगती है। वह प्रसन्नमुख उठ बैठता है और आप ही आप कहता है, अब मैं अमर हो गया, अकटक राज्य करूँगा, शत्रुओं का नाश कर दूंगा। मेरे राज्य मे ऐसा कौन प्राणी है जो हृदय से मेरे जीने की इच्छा न रखता हो। तीन नही, तीन लाख आदमी बात-बात मे निकल आयेंगे।

दूसरा अंक

(राजा एक साधारण नागरिक के रूप मे आप ही आप)

समय कम है, ऐसे तीन सज्जनो के पास चलना चाहिए जो मेरे भक्त थे। पहले सेठ के पास चलूँ। वह परोपकार के प्रत्येक काम मे मेरी सहायता करता था। मैंने उसकी कितनी बार रक्षा की है और उसे कितना लाभ पहुँचाया है। यह सेठ जी का घर आ गया। सेठ जी, सेठ जी ! जरा बाहर आओ।

सेठ—क्या है ? इतनी रात गये कौन काम है ?

राजा—कुछ नही, अपने स्वर्गवासी राजा का यश गा कर उनकी आत्मा को शाति देना चाहता हूँ। कैसे धर्मात्मा, प्रजा-प्रिय पुरुष थे ! उनका परलोक हो जाने से सारे

देश में अन्धकार-सा छा गया है। प्रजा उनको कभी न भूलेगी। आपसे तो उनकी बड़ी मैत्री थी, आपको तो और भी दुःख हो रहा होगा ?

सेठ—मुझे उनके राज्य से कौन-सा सुख था कि अब दुःख होगा ? मर गये, अच्छा हुआ। उनकी बदौलत लाखों रुपये साधु संतों को खिलाने पड़ते थे।

राजा—(मन में) हाय! इस सेठ पर मुझे कितना भरोसा था! यह मेरे इशारे पर लाखों रुपये दान कर दिया करता था। सच कहा है, बनिए किसी के मित्र नहीं होते। मैं जन्म भर इसके साथ रहा, पर इसे पहचान न सका। अब चलूँ मंत्री के पास, वह बड़ा स्वामि-भक्त सज्जन पुरुष है। उसके साथ मैंने बड़े-बड़े सलूक किये हैं। यह उसका भवन आ गया। शायद अभी दर्बार से आ रहा है। मन्त्री जी, कहिए क्या राज दरबार से आ रहे हैं? इस समय तो दर्बार में शोक मनाया जा रहा होगा। ऐसे धर्मात्मा राजा की मृत्यु पर जितना शोक किया जाय वह थोड़ा है। अब फिर ऐसा राजा न होगा। आपको तो बहुत ही दुःख हो रहा होगा?

मन्त्री—मुझे उनसे कौन सा सुख मिलता था कि अब दुःख होगा? मर गये, अच्छा हुआ। उनके मारे साँस लेने की भी छुट्टी न मिलती थी। प्रजा के पीछे आप मरते थे, मुझे भी मारते थे। रात-दिन कमर कसे खड़े रहना पड़ता था।

राजा—(आप ही आप) हाय! इस परम हितैषी सेवक ने भी धोखा दिया। मेरी आँख बन्द होते ही सारा संसार मेरा बैरी हो गया। ऐसे-ऐसे आदमी धोखा दे रहे हैं जो मेरे पसीने की जगह लोहू बहाने को तैयार रहते थे। तीन आदमी भी ऐसे नहीं, जिन्हें मेरा जीना पसन्द हो। जब दोनों निकल गये तो दूसरों से क्या आशा रखूँ? अब रानी के पास जाता हूँ। वह साध्वी सती स्त्री है। उसकी जितनी ही सखियाँ हैं सभी मुझ पर प्राण देती थीं। वहाँ मेरी इच्छा अवश्य पूरी होगी। अब केवल थोड़ा-सा समय और रह गया है। यह राजभवन आ गया। रानी अकेली मन मारे शोक में बैठी हुई है। महारानी जी, अब धीरज से काम लीजिए, आपके स्वामी ऐसे प्रतापी थे कि संसार में सदा उनका लोग यश गाया करेंगे। देह त्याग करके वह अमर हो गये।

रानी—अमर नहीं, पत्थर हो गये। उनसे संसार को चाहे जो सुख मिला हो, मुझे तो कोई सुख न मिला! उनके साथ बैठते लज्जा आती थी। मैं उनका क्या यश गाऊँ? मैं तो उसी दिन विधवा हो गयी जिस दिन उनसे विवाह हुआ। वह जीते थे तब भी राँड़ थी, मर गये तब भी राँड़ हूँ। देखो तो कुँवर साहब कैसे सजीले, बाँके जवान हैं। मेरे योग्य यह थे, न कि वैसा खूसट बुड्ढा, जिसके मुँह में दाँत तक नहीं थे।

यह सुनते ही राजा एक लम्बी साँस लेता है और मूर्छित हो कर गिर पड़ता है।

(अभिनय समाप्त होता है)

प्रेमशंकर को इन गँवारों के अभिनय-कौशल पर विस्मय हुआ? बनावट का कहीं नाम न था। प्रत्येक व्यक्ति ने अपना-अपना भाग स्वाभाविक रीति से पूरा किया। यद्यपि न परदे थे न कोई दूसरा सामान, तथापि अभिनय रोचक और मनोरंजक था।

सवेरे प्रेमशकर टहलते हुए पड़ाव की ओर चले तो देखा कि लश्कर कूच की तैयारी कर रहा है। खेमे उखड रहे है। गाडियो पर असबाब लद रहा है। साहब बहादुर की मोटर तैयार है और बिसेसर साह तहसीलदार के सामने कागज का एक पुलिन्दा लिए खडे है। तेली, तमोली, बूचड आदि भी एक पेड़ के नीचे अभियुक्तो की भाँति दाम वसूल करने के लिए बैठे हुए है। प्रेमशकर ने तहसीलदार से हाथ मिलाया और बैठ कर तमाशा देखने लगे।

तहसीलदार—कहाँ है गाड़ीवान लोग? बुलाओ, रसद का हिसाब करे। इस पर एक गाडीवान ने कहा, हजूर यहाँ रसद मिली है कि हमारी जान मारी गयी है! आटे मे इस बेइमान बनिए ने न जाने क्या मिला दिया है कि उसी दिन से पेट मे दर्द हो रहा है। घी मे तेल मिलाया था, उस पर हिसाब करने को कहता है। अभी साहब से कह दें तो बच्चू को लेने के देने पड जायँ।

अर्दली के कई चपरासी बोले, यह बनिया गोली मार देने के लायक है। ऐसा खराब आटा उम्र भर नही खाया। न जाने क्या चीज मिला दी है कि हजम ही नही होता। घी ऐसा बदबू करता था कि दाल खाते न बनती थी। इसपर तो जुर्माना होना चाहिए। उल्टे हिसाब करने को कहता है।

एक कानस्टेबिल महाशय ने कहा, हम इसे खूब जानते हैं, छटा हुआ है। चीनी दी तो उसमे आधी बालू, घी मे आधी घुइयाँ, आटे मे आधा चोकर, दाल मे आधा कूडा। इसे तो ऐसी जगह मारे जहाँ पानी न मिले।

कई साईस बोले, घोड़ो को जो दाना दिया है वह बिल्कुल घुना हुआ, आधा चना आधा चोकर। घोडो ने सूँघा तक नही। साहब से कह दें तो अभी हटर पडने लगे।

तहसीलदार—ये सब शिकायते पहले क्यों नही की?

कई आदमी—हुजूर, रोज तो हाय-हाय कर रहे है।

तहसीलदार—(प्रेमशकर की ओर देख कर) मुझसे किसी ने भी नही कहा। अब यह सब मैं कुछ नही सुनूंगा। जिसके जिम्मे जो कुछ निकले, कौडी-कौडी दे दो। साह जी, अपना हिसाब निकालो।

बिसेसर—मौला बख्श अर्दली, आटा ऽ३, घी ऽ॥, चावल ऽ२, दाल ऽ१, मसाला ऽ।, तमाखू ऽ।, कत्था-सुपारी ऽ≡, चीनी ऽ।—कुल ३ रुपये।

तहसीलदार—कहाँ है मौला बख्श? दाम दे कर रसीद लो।

एक अर्दली—इस नाम का हमारे यहाँ कोई आदमी नही है।

बिसेसर—है क्यो नही? लम्बे-लम्बे है, छोटी दाढी है, मुँह पर शीतला का दाग है, सामने के दो-तीन दाँत टूटे है।

कई अर्दली—इस हुलिए का यहाँ आदमी ही नही। पहचान हममे से कौन है?

बिसेसर—कही चल दिये होगे और क्या?

तहसीलदार—अच्छा दूसरा नाम बोलो।

विसेसर—घन्नू अहीर, चावल ऽ३, आटा ऽ२, घी ऽ।, खली ऽ४, दाना और चोकर ऽ८, तमाखू ~)—कुल दो रुपये।

तहसीलदार—कहाँ है घन्नू अहीर? निकाल रुपये।

एक अर्दली—वह तो पहर रात रहे साहब का डेरा लाद कर चला गया।

तहसीलदार—हिसाब नही चुकाया और चल दिया। अच्छा नाजिर जी उसका नाम लिख लीजिए। कहाँ जाते है बच्चू? एक-एक पाई वसूल कर लूंगा।

प्रेमशंकर—यह लश्करवालो की बडी ज्यादती है।

तहसीलदार—कुछ न पूछिए, कमबख्त खा-खा कर चल देते है, बदनामी बेचारे तहसीलदार की होती है।

विसेसर साहु ने फिर ऐसा ही ब्यौरा पढ सुनाया। यह जयराम चपरासी का पुर्जा था। जयराम उपस्थित थे। आगे बढ कर बोले, क्यो रे घी ऽ।। लिया था कि ऽ=?

विसेसर—कागद मे तो लिखा हुआ है।

जयराम—झूठ लिखा है, सोलहो आने झूठ।

तहसीलदार—अच्छा ऽ= का दाम दो, या कुछ भी नही देना चाहते?

यह झमेला नौ-दस बजे तक रहा। एक तिहाई से अधिक आदमी बिना हिसाब चुकाये ही प्रस्थान कर चुके थे। एक चौथाई से अधिक आदमी लापता हो गये। आधे आदमी मौजूद थे, लेकिन उन्हे भी हिसाब के ठीक होने मे सन्देह था। ऐसे दस ही पाँच सज्जन निकले जिन्होने खरे दाम चुका दिये हो। जब सब चिटे समाप्त हो गयी तो विसेसर साहु ने उन्हे ला कर तहसीलदार के सामने पटक दिया और बोला, मै और किसी को नही जानता, एक हुजूर को जानता हूँ और हुजूर के हुक्म से मैंने रसद दी है।

तहसीलदार—मैं क्या अपनी गिरह से दूंगा?

विसेसर—हुजूर जैसे चाहे दे या दिला दे। २०० रु० मे यह ७० रु० मिले है। मैं टके का आदमी इतना धक्का कैसे उठाऊँगा? महाजन मेरा घर बिकवा लेगा।

तहसीलदार—अच्छी बात है, तुम्हारे दाम मिलेंगे। नाजिर जी, आप चपरासियो को ले कर जाइए, इसके बही-खाते उठा लाइए और खुद इसकी सालाना आमदनी का हिसाब कीजिए। देखिए, अभी कलई खुली जाती है। मै इसके सब रुपये दूंगा, पर इसी से ले कर। बच्चू, दो हजार रुपये साल नफा करते हो, उस पर एक बार १०० रु० का घाटा हुआ तो दम निकल गया?

कहाँ तो विसेसर साहु इतने गर्म हो रहे थे, कहाँ यह धमकी सुनते ही भीगी बिल्ली बन गये। बोले, हाँ हुजूर; सब हिसाब-किताब जाँच ले। इस गाँव मे ऐसा कौन रोजगार है कि दो हजार का नफा हो जायगा? खाने भर को मिल जाय यही बहुत है।

तहसीलदार—और यह आस पास के देहातो का अनाज किसके घर मे भरा जाता है? तुम समझते हो कि हाकिमो को खबर ही नही होती। यहाँ इतना बतला सकते हैं कि आज तुम्हारे घर मे क्या पक रहा है। यह रिआयत इसी दिन के लिए करते है, कुछ तुम्हारी सूरत देखने के लिए नही।

बिसेसर साह चुपके से सरक गये। तेली-तमोली ने भी देखा कि यहाँ मिलता-जुलता तो कुछ नही दीखता, उल्टे और पलेथन लगने का भय है तो उन्होंने भी अपनी अपनी राह ली। तहसीलदार ने प्रेमशकर की ओर देख कर कहा, देखा आपने टैक्स के नाम से इन सबो की जान निकल जाती है। मैं जानता हूँ कि इसकी सालाना आमदनी ज्यादा से ज्यादा १००० रु० होगी। लेकिन चाहे इस तरह कितना ही नुकसान बरदाश्त कर लें, अपने बही-खाते न दिखायेंगे। यह इनकी आदत है।

प्रेमशकर—खैर, यह तो अपनी चाल-बाजी की बदौलत नुकसान से बच गया, मगर और बेचारे तो मुफ्त मे पिस गये, उस पर जलील हुए वह अलग।

तहसीलदार—जनाब, इसकी दवा मेरे पास नही है। जब तक कौम को आप लोग एक सिरे से जगा न देंगे इस तरह के हथकडो का बन्द होना मुश्किल है। जाँह दिलो मे इतनी खुदगरजी समायी हुई है और जहाँ रियाया इतनी कच्ची है वहाँ किसी तरह की इसलाह नही हो सकती। (मुस्करा कर) हम लोग एक तौर पर आपके मददगार है। रियाया को सता कर, पीस कर मजबूत बनाते है और आप जैसे कौमी हमदर्दो के लिए मैदान साफ करते है।

२७

प्रभात का समय था और कुँआर का महीना। वर्षा समाप्त हो चुकी थी। देहातो मे जिधर निकल जाइए, सड़े हुए सन की दुर्गन्ध उड़ती थी। कभी ज्येष्ठ को लज्जित करनेवाली धूप होती थी, कभी सावन को शरमानेवाले बादल घिर आते थे। मच्छर और मलेरिया का प्रकोप था, नीम की छाल और गिलोय की बहार थी। चरावर मे दूर तक हरी-हरी घास लहरा रही थी। अभी किसी को उसे काटने का अवकाश न मिलता था। इसी समय बिन्दा महराज और कर्तारसिह लाठी कधे पर रखे एक वृक्ष के नीचे आ कर खडे हो गये। कर्तार ने कहा, इस बुड्ढे को खुचड सूझती रहती है। भला बताओ, जो यहाँ मवेशी न चरने पायेंगे तो कहाँ जायँगे और जो लोग सदा से चराते आये है वे मानेंगे कैसे? एक बेर कोई इसकी मरम्मत कर देता तो यह आदत छूट जाती।

बिन्दा—हमका तो ई मौजा मा तीस बरसे होय गईं। तब से दस कारिन्दे आये पर चरावर कोऊ न रोका। गाँव भर के मवेशी मजे से चरत रहे।

कर्तार—उन्हे हुकुम देते क्या लगता है! जायगी तो हमारे माथे।

बिन्दा—हमार जी तो अस ऊब गवा है कि मन करत है छोड-छाड़ के घर चला जाई। सुनित है मालिक अबैया हैं। बस, एक बेर उनसे भेट होई जाय और अपने घर-के राह लेई।

कर्तार—फैजू दिन भर खाट पर पडा रहता है, उससे कुछ नही कहते। जब देखो कर्तार को ही दौडाते है, मानो कर्तार उनके बाप का गुलाम है। और देखो, पीपल के नीचे जहाँ हम-तुम जल चढाते हैं, वहाँ नमाज पढते है, वही दतुअन-कुल्ली करते है, वही नहाते हैं। बताओ, धरम नष्ट भया कि रहा? आप तो रोज कुरान पढते है और

मैं रामायण पढने लगता हूँ तो कैसे डाँट के कहते है, क्या शोर मचा रक्खा है। अब की असाढ मे ३०० रु० नजराना मिला, हमे एक पाई से भेट न हुई।

बिन्दा—हमका तो एक रुपया मिला रहे।

कर्तार—यह भी कोई मिलने मे मिलना है। और सब कही चपरासियो को रुपये मे आठ आने मिलते है। यह कुछ न दे तो चार आने तो दे। लेना-देना दूर रहा उस पर आठो पहर सिर पर सवार। कल तुम कही गये थे। मुझसे बोले, कर्तार एक घडा पानी तो खीच लो। मैंने तुरत जवाब दिया, इसके नौकर नही है, फौजदारी करा लो, लाठी चलवा लो, अगर कदम पीछे हटाये तो कहो, लेकिन चिलम भरना, पानी खीचना हमारा काम नही है। इस पर आँखें बहुत लाल-पीली की। एक दिन पीपल के नीचे-वाली मूरतो को देख कर बोले, यह क्या ईंट-पाथर जमा कर रखे है। मैंने तो ठान लिया है कि जहाँ अब की कोई नजराना ले कर आया और मैंने हाथ पकड़ा कि चार आने इधर रखिए। जरा भी नरम गरम हुए, मुंह से लाम-काफ निकाली और मैंने गरदन दबायी। फिर जो कुछ होगा देखा जायगा। फैजू बोले तो उनसे भी मैं समझूँगा। खूब पडे-पड़े रोटी, गोस उडा रहे हैं, सब निकाल दूँगा। वह देखो मवेशी इधर आ रहे हैं। बलराज तो नही है न?

बिन्दा—होवे करी तो कौनो डर हौ? अब की अस जर आवा है कि ठठरी होय गया है।

कर्तार—बडे कस-बल का पट्ठा है। सुक्खू चौधरी का तालाब जहाँ बन रहा था वही एक दिन अखाडे मे उससे मेरी एक पकड हो गयी थी। मैं उसे पहले ही झपाटे मे नीचे लाया, लेकिन ऐसा तडप के नीचे से निकला कि झोको मे आ गया। सँभल ही न सका। बदन नही, लोहा है।

बिन्दा—निगाह का बड़ा सच्चा जवान है। क्या मजाल कि कोऊ की बिटिया-महरिया की ओर आँखे उठा के ताके।

कर्तार—वह देखो फैजू और गौस खाँ भी इधर ही आ रहे हैं। आज कुशल नही दीखती।

बिन्दा—यह गाये-भैंसे तो मनोहर की जान परते है। बिलासी लीने आवत है।

कर्तार ने उच्च स्वर मे कहा, यह कौन मवेशी लिए आता है? यहाँ से निकाल ले जाव, सरकारी हुक्म नही है। इतने मे बिलासी निकट आ गयी और बिन्दा महराज की ओर निश्चित भाव से देख कर बोली, सुनत हौ महराज ठाकुर की बात!

कर्तार—सरकारी हुक्म हो गया कि अब कोई जानवर यहाँ न चरने पाये।

बिलासी—कैसा सरकारी हुकुम? सरकार की जमीन नही है। महाराज, तुम्हे तो यहाँ एक युग बीत गया, कभी किसी ने चराई भी मना किया है?

बिन्दा—उन पुरानी बातन का न गावो, अब से हुकुम भवा है। जानवर का और कौनो कैती ले जाव, नाही तो वह गौस खाँ आवत हैं, सभन का पकड़ के कानी हौद पठै दैहैं?

बिलासी—कानीहौज कैसे पठे देहैं, कोई राहजनी है? हमारे मवेशी सदा से यहाँ चरते आये है और सदा यही चरेंगे। अच्छा सरकारी हुकुम है? आज कह दिया चरावर छोड दो, कल कहेंगे अपना घर छोडो, पेड तले जा कर रहो। ऐसा कोई अधेर है?

इतने मे गौस खाँ और फैजू भी आ पहुँचे। बिलासी के अन्तिम शब्द खाँ साहब के कान मे पडे। डपट कर बोले, अपने जानवरो को फौरन निकाल ले जा, वरना मवेशीखाने भेज दूंगा।

बिलासी—क्यो निकाल ले जाऊँ? चरावर सारे गाँव का है। जब सारा गाँव छोड़ देगा तो हम भी छोड देंगे।

गौस खाँ—जानवरो को ले जाती है कि खडी-खडी कानून बघारती है?

बिलासी—तुम तो खाँ साहब, ऐसी घुडकी जमा रहे हो जैसे मै तुम्हारा दिया खाती हूँ।

गौस खाँ—फैजू, यह जबाँदराज औरत यो न मानेगी। घेर लो इसके जानवरो को और मवेशीखाने हाँक ले जाओ।

फैजू तो मवेशियो की तरफ लपका, पर कर्तार और बिन्दा महाराज धर्म सकट मे पडे खडे रहे। खाँ साहब ने उन्हे भी ललकारा—खडे मुँह क्या देख रहे हो? घेर लो जानवरो को और हाँक ले जाओ। सरकारी हुक्म है या कोई मजाक है!

अब कर्तार और बिन्दा महाराज भी उठे और जानवरो को चारो ओर से घेरने का आयोजन करने लगे। मवेशियो ने चौकन्नी आँखो से देखा, कान खडे किये और इधर उधर बिदकने लगे। परिस्थिति को ताड गये। बिलासी ने कहा, मैं कहती हूँ इन्हे मत घेरो, नही तो ठीक न होगा।

किन्तु किसी ने उसकी धमकी पर ध्यान न दिया। थोडी देर मे सब जानवर घिर गये। और कन्धे से कन्धे मिलाये, कनखियो से ताकते, तीनो चपरासियो के बीच मे धीरे-धीरे चले। बिलासी एक सदिग्ध दशा मे मूर्तिवत् खडी थी। जब जानवर कोई बीस कदम निकल गये तब वह उन्मत्तो की भाँति दौडी और हाँफते हुए बोली, मैं कहती हूँ कि इन्हे छोड दो, नही तो ठीक न होगा।

फैजू—हट जा रास्ते से। कुछ शामत तो नही आयी है।

बिलासी रास्ते मे खडी हो गयी और बोली, ले कैसे जाओगे?

गौस खाँ—न हटे तो इसकी मरम्मत कर दो।

बिलासी—कह देती हूँ, इन जानवरो के पीछे लोहू की नदी बह जायगी। माथे गिर जायँगे।

फैजू—हटती है या नही चुडैल?

बिलासी—तू हट जा, दाढीजार।

इतना उसके मुँह से निकलना था कि फैजू ने आगे बढ कर बिलासी की गर्दन पकडी और उसे इतने जोर से झोका दिया कि वह दो कदम पर जा गिरी। उसकी आँखे तिलमिला गयी, मूर्छा सी आ गयी। एक क्षण वह वही अचेत पडी रही, तब उठी और लँग-

हाती हुई उन पुरुषों से अपनी अपमान कथा कहने चली जो उसके मान मर्यादा के रक्षक थे।

मनोहर और वलराज दोनों एक दूसरे गाँव में धान काटने गये हुए थे। वह यहाँ से कोस भर पड़ता था। लखनपुर मे धान के खेत न थे। इसलिए सभी लोग प्रायः उसी गाँव मे धान बोते थे। बिलासी धान के मेड़ो पर चली जाती थी। कभी पैर इधर फिसलते, कभी उधर। वह ऐसी उद्विग्न हो रही थी कि किसी प्रकार उड़ कर वहाँ पहुँच जाऊँ। पर घुटनियों में चोट आ गयी थी इसलिए विवश थी। उसके रोम-रोम से अग्नि की ज्वाला निकल रही थी। अग-अंग से यही ध्वनि निकलती थी—इनकी इतनी मजाल!

उसे इस समय परिणाम और फल की लेश-मात्र भी चिन्ता न थी। कौन मरेगा? किसका घर मिट्टी मे मिलेगा? यह बातें उसके ध्यान में भी न आती थी। वह संकल्प विकल्प के वन्धन से मुक्त हो गयी थी।

लेकिन जब उस गाँव के समीप पहुँची और धान से लहराते हुए खेत दिखायी देने लगे तो पहली बार उसके मन मे यह प्रश्न उठा कि इसका फल क्या होगा? वल-राज एक ही क्रोधी है, मनोहर उससे भी एक अंगुल आगे। मेरा रोना सुनते ही दोनो भभक उठेंगे। जान पर खेल जायेंगे, तब! किन्तु आहत हृदय ने उत्तर दिया, क्या हानि है? लड़को के लिए आदमी क्यो झीकता है। पति के लिए क्यो रोता है? इसी दिन के लिए तो। इस कलमुँहे फैजू का मान मरदन तो हो जायेगा! गौस खाँ का घमड तो चूर-चूर हो जायेगा!

तब भी, जब वह अपने खेतो के डाँड़े पर पहुँची, मनोहर और वलराज नजर आने लगे तब उसके पैर आप ही रुकने लगे। यहाँ तक कि जब वह उनके पास पहुँची तब परिणाम चिन्ता ने उसे परास्त कर दिया। वह फूट-फूट कर रोने लगी। जानती थी और समझती थी कि यह आँसू की बूँदे आग की चिनगारियाँ हैं, पर आवेश पर अपना काबू न था। वह खेत के किनारे खडी हो गयी और मुँह ढाँक कर रोने लगी।

बलराज ने सशक हो कर पूछा, अम्मा क्या है? रोती क्यो है? क्या हुआ? यह सारा कपडा कैसे लोहूलुहान हो गया?'

विलासी ने साडी की ओर देखा तो वास्तव मे रक्त के छीटे दिखायी दिये। घुटनियो से खून वह रहा था। उसका हृदय थर-थर काँपने लगा। इन छीटो को छिपाने के लिए वह इस समय अपने प्राण तक दे सकती थी। हाय! मेरे सिर पर कौन सा भूत सवार हो गया कि यहाँ दौडी हुई आयी। मैं क्या जानती थी कि कही फूट-फाट भी गया है। अब गजब हो गया। मुझे चाहिए था कि धीरज धरे बैठी रहती। साँझ को जब यह लोग घर जाते और गाँव के सब आदमी जमा होते तो सारा वृत्तान्त कह देती। सब की सलाह होती, वैसा किया जाता। इस अव्यवस्थित दशा मे वह कोई शान्तिप्रद उत्तर न सोच सकी।

वलराज ने फिर पूछा, कुछ मुँह से बोलती क्यो नही? बस रोये जाती है। क्या हुआ, कुछ बता भी तो!

विलासी—(सिसकते हुए) फैजू और गौस खाँ हमारी सब गायें-भैंसे कानीहौद हाँक ले गये।

बलराज—क्यो ? क्या उनकी सीर में पडी थी ?

बिलासी—नही, कहते थे कि चरावर में चराने की मनाही हो गयी।

वलराज ने देखा कि माता कि आँखें झुकी हुई हैं और मुख पर मर्माघात की आभा झलक रही है। उसने उग्रावस्था में स्थिति को उससे कही भयकर समझ लिया जितनी वह वस्तुत. थी। कुछ और पूछने की हिम्मत न पड़ी। आँखें रक्तवर्ण हो गयीं। कन्धे पर लट्ठ रख लिया और मनोहर से बोला, मैं जरा गाँव तक जाता हूँ।

मनोहर—क्या काम है ?

वलराज—फैजू और गौस खाँ से दो-दो वातें करनी है।

मनोहर—ऐसी बातें करने का यह मौका नही। अभी जाओगे तो बात बढ़ेगी और कुछ हाथ भी न लगेगा। चार आदमी तुम्ही को बुरा कहेगे। अपमान का वदला इस तरह नही लिया जाता।

मनोहर के इन शब्दो मे इतना भयंकर संकल्प, इतना घातक निश्चय भरा हुआ था कि वलराज अधिक आग्रह न कर सका। उसने लाठी रख दी और मा से कहा, अभी घर जाओ। हम लोग आयेंगे तो देखा जायगा।

मनोहर—नही घर मत जाओ। यही बैठो। साँझ को सब जने साथ ही चलेंगे। वह कौन दौडा आ रहा है ? बिन्दा महाराज हैं क्या ?

वलराज—नही, कादिर दादा जान पड़ते हैं। हाँ, वही हैं। भागे चले जाते हैं। मालूम होता है गाँव मे मारपीट हो गयी। दादा, क्या है ? कैसे दौड़े आते हो, कुशल तो है ?

कादिर ने दम ले कर कहा, तुम्हारे ही पास तो आते है। विलासी रोती आयी है। मैं डरा तुम लोग गुस्से मे न जाने क्या कर बैठो। चला कि राह मे मिल जाओगे तो रोक लूँगा, पर तुम कही मिले ही नही। अब तो जो हो गया सो हो गया, आगे की खबर करो। आज से जमीदार ने चरावर रोक दी है। यह अन्धेर देखते हो ?

मनोहर—हाँ, देख तो रहा हूँ, अन्धेर ही अन्धेर है।

कादिर—फिर अदालत जाना पड़ेगा।

मनोहर—चलो, मैं तैयार हूँ।

कादिर—हाँ आज जाओ तो सलाह पक्की करके सवाल दे दे। अब की हाईकोर्ट तक लडेगे, चाहे घर बिक जाय। बस, हल पीछे चन्दा लगा लिया जाय।

मनोहर—हाँ, यही अच्छा होगा।

कादिर—मैं नमाज पढता था, सुना विलासी को चरावर मे चपरासियों ने बुरा-भला कहा और वह रोती हुई इधर आयी है। समझ गया कि आज गजब हो गया। वारे तुमने सवर से काम लिया। अल्लाह इसका सवाव तुमको देगा। तो मैं अब जाता हूँ, अपने चन्दे की वातचीत करता हूँ। जरा दिन रहते चले आना।

कादिर खाँ सावधान हो कर चले गये। यह न समझे कि यहाँ मन मे कुछ और ठन गयी है। मनोहर के तुले हुए शब्दो को उन्होने मानसिक धैर्य का द्योतक समझा।

मनोहर ऐसे उद्दीप्त उत्साह से अपने काम मे दत्तचित्त था मानो उसकी युवावस्था का विकास हो गया है। धान के पोलो के ढेर लगते जाते थे। न आगे ताकता था न पीछे, न किसी से कुछ बोलता था, न किसी की कुछ सुनता था, न हाथ थकते थे, न कमर दुखती थी। बलराज ने चिलम भर कर रख दी। तम्बाकू रखे-रखे जल गया। विलासी खाँड का रस घोल कर सामने लायी। उसने उसकी ओर देखा तक नही, कुत्ता पी गया। कुँआर की धूप थी, देह से चिनगारियाँ निकलती थी, पसीने की धारे बहती थी, किन्तु वह सिर तक न उठाता था। बलराज कभी खेत मे आता, कभी पेड के नीचे जा बैठता, कभी चिलम पीता। एक ही अग्नि दोनो के हृदय मे प्रज्ज्वलित थी, एक ओर सुलगती हुई, दूसरी ओर दहकती हुई। एक ओर वायु के वेग से चचल, दूसरी ओर निर्बलता से निश्चल। एक ही भावना दोनो के हृदय मे थी, एक मे उद्दाम-उच्छृखल, दूसरे मे गम्भीर और स्थिर।

दोपहर हुई। बिलासी ने आ कर डरते-डरते कहा, चबेना कर लो।

मनोहर ने सिर झुकाये हुए जवाब दिया—चलो आते हैं।

एक घटे के बाद विलासी फिर आ कर बोली, चलो, चबेना कर लो, दिन ढल गया। क्या आज ही सब खेत काट लोगे?

मनोहर ने कठोर स्वर मे कहा, यही विचार मे है। कौन जाने, कल आये या न आये।

जैसे किसी भरे हुए घडे मे एक ककर लग जाय और पानी बह निकले, उसी भाँति बिलासी के हृदय मे एक चोट सी लगी और आँसू बहने लगे। वह रह-रह कर हाथ मलती थी। हाय! न जाने इन्होने मन मे क्या ठान लिया है?

वह कई मिनट तक वही खडी रोती रही। परिणाम की भयावह विकराल मूर्ति उसके नेत्रो के सामने नाच रही थी। मुँह खोले उसे निगलने को दौड़ती थी और शोक! इस मूर्ति को उसने अपने ही हाथो रचा था। अन्त मे वह मनोहर के सम्मुख बैठ गयी और उसकी ओर अत्यन्त दीन भाव से देख कर बोली, हाथ जोड कर कहती हूँ, चल कर चबेना कर लो। तुम्हारे इस तरह गुम-सुम रहने से मेरा कलेजा दहल रहा है। तुमने क्या ठान रखी है, बोलते क्यो नही?

मनोहर—जा कर चुपके से बैठो। जब मुझे भूख लगेगी खा लूँगा।

विलासी—हाय राम! तुम क्या करने पर तुले हो?

मनोहर—करूँगा क्या? कुछ करने ही लायक होता तो आज यह बेइज्जती नही होती। जो कुछ तकदीर मे है वह होगा।

यह कह कर वह फिर अपने काम मे व्यस्त हो गया। कोई किसी से न बोला। बलराज टालमटोल करता रहा और बिलासी उदास बैठी कभी रोती और कभी अपने को कोसती; यहाँ तक कि सन्ध्या हो गयी। तीनो ने धान के गट्ठे गाड़ी पर लादे और

लखनपुर चले। बलराज गाडी हाँकता था और मनोहर पीछे-पीछे उच्च स्वर से एक बिरहा गाता हुआ चला आता था। राह मे कल्लू अहीर मिला, बोला, मनोहर काका आज बडे मगन हो। मनोहर का गाना समाप्त हुआ तो उसने भी एक बिरहा गाया। दोनो साथ साथ गाँव मे पहुँचे तो एक हलचल सी मची हुई थी। चारो ओर बरावर की ही चर्चा थी। कादिर के द्वार पर एक पचायत सी बैठी हुई थी। लेकिन मनोहर पचायत मे न जा कर सीधा घर गया और जाते ही जाते भोजन माँगा। बहू ने रसोई तैयार कर रखी थी। इच्छापूर्ण भोजन करके नारियल पीने लगा। थोडी देर मे बल-राज भी पचायत से लौटा। मनोहर ने पूछा, कहो, क्या हुआ ?

बलराज—कुछ नही, यह सलाह हुई है कि खाँ साहब को कुछ नजर-वजर दे कर मना लिया जाय। अदालत से सब लोग घवडाते है।

मनोहर—यह तो मैं पहले ही समझ गया था। अच्छा जा कर चटपट खा-पी लो। आज मैं भी तुम्हारे साथ रखवाली करने चलूँगा। आँख लग जाय तो जगा लेना।

एक घटे के बाद दोनो खेत की ओर चलने को तैयार हुए। मनोहर ने पूछा, कुल्हाडा खूब चलता है न ?

बलराज—हाँ, आज ही तो रगडा है।

मनोहर—तो उसे ले लो।

बलराज—मेरा तो कलेजा थर-थर काँप रहा है।

मनोहर—काँपने दो। तुम्हारे साथ मैं भी तो रहूँगा। तुम दो-एक हाथ चलाके वहाँ से लम्बे हो जाना और सब मैं देख लूँगा। इस तरह आके सो रहना, जैसे कुछ जानते ही नही। कोई कितना ही पूछे, डरावे-धमकावे मुँह मत खोलना। मैं अकेले ही जाता, मुदा एक तो मुझे अच्छी तरह सूझता नही, कई दिनो से रतौंधी होती है, दूसरे हाथो मे अब वह बल नही कि एक चोट मे वारा-न्यारा हो जाय।

मनोहर यह बाते ऐसी सावधानी से कह रहा था मानो कोई साधारण घरेलू बात-चीत हो। बलराज इसके प्रतिकूल शका और भय से आतुर हो रहा था। क्रोध के आवेश मे वह आग मे कूद सकता था, किन्तु इस पैशाचिक हत्या-काड से उसके प्राण सूख जाते थे।

खेत मे पहुँच कर दोनो मचान पर लेटे। अमावस की रात थी। आकाश पर कुछ बादल भी हो आये थे। चारो ओर घोर अन्धकार छाया हुआ था।

मनोहर तो लेटते ही खर्राटे लेने लगा, लेकिन बलराज पडा-पडा करवटे बदलता रहा। उसका हृदय नाना प्रकार की शकाओ का अविरल स्रोत बना हुआ था।

दो घडी बीतने पर मनोहर जागा, बोला, बलराज सो गये क्या ?

बलराज—नही, नीद नही आती।

मनोहर—अच्छा, तो अब राम का नाम ले कर तैयार हो जाओ। डरने या घबराने की कोई बात नही। अपने मरजाद की रक्षा करना मरदो का काम है। ऐसे अत्या-चारो का हम और क्या जवाब दे सकते है ? बेइज्जत हो कर जीने से मर जाना अच्छा

है। दिल को खूब सँभालो। अपना काम करके सीधे यहाँ चले आना। अँधेरी रात है। किसी की नजर भी नही पड सकती। थानेदार तुम्हे डरायेंगे, लेकिन खबरदार, डरना मत! बस गाँव के लोगो से मेल रखोगे तो कोई तुम्हारा बाल भी बाँका न कर सकेगा। दुखरन भगत अच्छा आदमी नही है, उससे चौकन्ने रहना। हाँ, कादिर भरोसे का आदमी है। उसकी बातो का बुरा मत मानना। मैं तो फिर लौट कर घर न आऊँगा। तुम्ही घर के मालिक बनोगे। अब वह लडकपन छोड देना, कोई चार बात कहे तो गम खाना। ऐसा कोई काम न करना कि बाप-दादे के नाम को कलक लगे। अपनी घरवाली को सिर मत चढाना। उसे समझाते रहना कि सास के कहने मे रहे। मैं तो देखने न आऊँगा, लेकिन इसी तरह घर मे राड़ मचता रहा तो घर मिट्टी में मिल जायगा।

बलराज ने अवरुद्ध स्वर से कहा, दादा मेरी इतनी बात मानो, इस बखत सबुर कर जाओ। मैं कल एक-एक की खोपड़ी तोड कर रख दूंगा।

मनोहर—हाँ, तुम्हे कोई मारे तो तुम ससार भर को मार गिराओ। फैजू और कर्तार क्या मिट्टी के लोंदे है? गौस खाँ भी पलटन मे रह चुका है। तुम लकडी मे उनसे पेश न पा सकोगे। वह देखो हिरना निकल आया। महाबीर जी का नाम ले कर उठ खड़े हो। ऐसे कामो मे आगा-पीछा अच्छा नही होता। गाँव के बाहर ही बाहर चलना होगा, नही तो कुत्ते भूकेंगे और लोग जाग उठेंगे।

बलराज—मेरे तो हाथ पैर काँप रहे हैं।

मनोहर—कोई परवा नही। कुल्हाडी हाथ मे लोगे तो सब ठीक हो जायगा। तुम मेरे बेटे हो, तुम्हारा कलेजा मजबूत है। तुम्हे अभी जो डर लग रहा है, वह ताप के पहले का जाडा है। तुमने कुल्हाडा कन्धे पर रखा, महाबीर का नाम ले कर उधर चले, तो तुम्हारी आँखो से चिनगारियाँ निकलने लगेंगी। सिर पर खून सवार हो जायगा। बाज की तरह शिकार पर झपटोगे। फिर तो मैं तुम्हे मना भी करूँ तो न सुनोगे। वह देखो सियार बोलने लगे, आधी रात हो गयी। मेरा हाथ पकड़ लो और आगे आगे चलो। जय महाबीर की!

२८

प्रेमशकर की कृषिशाला अब नगर के रमणीय स्थानो की गणना मे थी। यहाँ ऐसी सफाई और सजावट थी कि प्राय. रसिकगण सैर करने आया करते। यद्यपि प्रेमशकर केवल उसके प्रबन्धकर्ता थे, पर वस्तुत: असामियो की भक्ति और पूर्ण विश्वास ने उन्हे उसका स्वामी बना दिया था। अब अपनी इच्छानुसार नयी-नयी फसलें पैदा करते; नाना प्रकार की परीक्षाएँ करते, पर कोई जरा भी न बोलता। और बोलता ही क्यो, जब उनकी कोई परीक्षा असफल न होती थी! जिन खेतो मे मुश्किल से पाँच-सात मन उपज होती थी, वहाँ अब पन्द्रह-बीस मन का औसत पड़ता था। उस पर बाग की आमदनी अलग थी। इन्ही चार सालो मे कलमी आम, बेर, नारगी आदि के पेडो मे

फल लगने शुरू हो गये थे। शाक-भाजी की पैदावार घाते मे थी। प्रेमशंकर में व्यवसायिक सकीर्णता छू तक न गयी थी। जो सज्जन यहाँ आ जाते उन्हे फूल-फलो की डाली अवश्य भेंट की जाती थी। प्रेमशंकर की देखा-देखी हाजीपुरवालो ने भी अपने जीवन का कुछ ऐसा डौल कर लिया था कि उनकी सारी आवश्यकताएँ उसी बगीचे से पूरी हो जाती थी। भूमि का आठवाँ भाग कपास के लिए अलग कर दिया गया था। अन्य प्रान्तो से उत्तम बीज मँगा कर बोये गये थे। गाँव के लोग स्वय सूत कात लेते थे और गाँव का ही कोरी उसके कपडे बुन देता था। नाम उसका मस्ता था। पहले वह जुआ खेला करता था और कई बार चोरी मे पकड़ा गया था। लेकिन अब अपने श्रम से गाँव मे भले आदमियो मे गिना जाता था। प्रेमशंकर के उद्योग से आसपास के गाँवों मे भी कपास की खेती होने लगी थी और कितने ही कोरियो और जुलाहो के उजड़े हुए घर आवाद हो गये थे। देहातो के मुकदमेबाज जमीदार और किसान बहुधा इसी जगह ठहरा करते थे। यहाँ उन्हे ईंधन, शाक-भाजी, नमक-तेल के लिए पैसे न खर्च करने पडते थे। प्रेमशकर उनसे खूब बातें करते और उन्हे अपने बगीचे की सैर कराते। साधू-सन्तो का तो मानो अखाड़ा ही था। दो-चार मूर्तियाँ नित्य ही पडी रहती थी। न जाने उस भूमि मे क्या बरकत थी कि इतनी आतिथ्य सेवा करने पर भी किसी पदार्थ की कमी न थी। हाजीपुरवाले तो उन्हे देवता समझते थे और अपने भाग्य को सराहते थे कि ऐसे पुण्यात्मा ने हमे उबारने के लिए यहाँ निवास किया। उनके सदय, उदार, सरल स्वभाव ने मस्ता कोरी के अतिरिक्त गाँव के कई कुचरित्र मनुष्यों का उद्धार कर दिया था। भोला अहीर जिसके मारे खलिहान में अनाज न बचता था, दमडी पासी जिसका पेशा ही लठैती था, अब गाँव के सबसे मेहनती और ईमानदार किसान थे।

प्रेमशकर अक्सर कृषको की आर्थिक दुरवस्था पर विचार किया करते थे। अन्य अर्थशास्त्रवेत्ताओ की भाँति वह कृषको पर फजूलखर्ची, आलस्य, अशिक्षा या कृषि-विधान से अनभिज्ञता का दोष लगा कर इस प्रश्न को हल न करते थे। वह परोक्ष में कहा करते थे कि मैं कृषको को शायद ही कोई ऐसी बात बता सकता हूँ जिसका उन्हे ज्ञान न हो। परिश्रमी तो इनसे अधिक कोई ससार मे न होगा। मितव्ययिता मे, आत्मसयम मे, गृह-प्रबन्ध मे वे निपुण हैं। उनकी दरिद्रता का उत्तरदायित्व उन पर नही, बल्कि उन परिस्थितियो पर है जिनके अधीन उनका जीवन व्यतीत होता है, और यह परिस्थितियाँ क्या हैं? आपस की फूट, स्वार्थपरता और एक ऐसी सस्था का विकास, जो उनके पाँव की बेडी बनी हुई है। लेकिन जरा और विचार कीजिए तो यह तीनो कहानियाँ एक ही शाखा से फूटी हुई प्रतीत होगी और यह वही सस्था है जिसका अस्तित्व कृषको के रक्त पर अवलम्बित है। आपस मे विरोध क्यो है? दुरवस्थाओ के कारण, जिनकी इस वर्तमान शासन ने सृष्टि की है। परस्पर प्रेम और विश्वास क्यों नहीं है? इसलिए कि यह शासन इन सद्भावो को अपने लिए घातक समझता है और उन्हे पनपने नही देता। इस परस्पर विरोध का सबसे दुःखजनक

फल क्या है ? भूमि का क्रमश अत्यन्त अल्प भागो मे विभाजित हो जाना और उसके लगान की अपरिमित वृद्धि। प्रेमशकर इस शासन के सुधार को तो मानव शक्ति से परे समझते थे, लेकिन भूमि के बँटवारे का रोकना उन्हे साध्य जान पडता था और यद्यपि किसी आन्दोलन मे अगुआ बनना उन्हे पसन्द न था, किन्तु इस विषय मे वह इतने उत्सुक थे कि समाचार पत्रो मे अपने मन्तव्यो को प्रकट करने से न रुक सके। इससे उनका उद्देश्य केवल यह था कि कोई मुझसे अधिक अनुभवशील, कुशल और प्रतिभाशाली व्यक्ति इस प्रश्न को अपने हाथ मे ले ले।

एक दिन वह कई सहृदय मित्रो के साथ बैठे हुए इसी विषय पर बातचीत कर रहे थे कि एक सज्जन ने कहा, यदि आप का विचार है कि यह प्रथा कानून से बन्द की जा सकती है तो आपकी भ्रान्ति है। इस विष-युक्त पौधे की जडे मनुष्य के हृदय मे है और जब तक इसे हृदय से खोद कर न निकालिएगा यह इसी प्रकार फूलता-फलता रहेगा।

प्रेमशकर—कानून मे कुछ न कुछ सुधार तो हो ही सकता है।

इस पर उन महाशयो ने जोर दे कर कहा, कदापि नही। बल्कि स्वार्थ प्रत्यक्ष रूप से स्फुटित होने का अवसर न पा कर और भी भयकर रूप धारण कर लेगा।

इस पर एक किसान जो बँटवारे की दरख्वास्त करके कचहरी से लौटा था और आज यही ठहरा हुआ था, बोल उठा, कहूँ कुछ न होई। हम तो आपे लोगन के पीछे-पीछे चलित है। जब आपे लोगन मे भाई-भाई मे निबाह नाही होय सकत है तो हमार कस होई ? आपका नारायण सब कुछ दिये है, मुदा आपे अपने भाई से अलग रहत हौ।

ये उच्छृखल शब्द प्रेमशकर के हृदय मे तीर के समान चुभ गये। सिर झुका लिया। मुखश्री मलीन हो गयी। मित्रो ने कृषक की ओर तिरस्कार-पूर्ण नेत्रो से देखा। यह एक जगत्-व्यापार था। यहाँ व्यक्तियो को खीचना नितान्त न्याय-विरुद्ध था, पर वह अक्खड देहाती सभ्यता के रहस्यो को क्या जाने ? मुँह मे जो बात आयी कह डाली। एक महाशय ने कहा, निरे गँवार हो, जरा भी तमीज नही।

दूसरे महाशय बोले, अगर इतना ही ज्ञान होता तो देहाती क्यो कहलाते ? न अवसर का ध्यान, न औचित्य का विचार, जो कुछ ऊटपटाँग मुँह मे आया, बक डाला।

बेचारे किसान को अब मालूम हुआ कि मुँह से कोई अनुचित बात निकल गयी। लज्जित हो कर बोला, साहब, मैं गँवार मनई। ई सब फेरफार का जानौ। जौन कुछ भूल चूक हो गयी होय माफ कीन जाय।

प्रेमशकर—नही-नही, तुमने कोई अनुचित बात नही कही। मेरे लिए इस स्पष्ट कथन की आवश्यकता थी। तुमने अच्छी शिक्षा दे दी। कोई सन्देह नही कि शिक्षित जनो मैं भी विरोध और वैमनस्य का उतना ही प्रकोप है जितना अशिक्षित लोगो मे है और मे इस विषय मे दोषी हूँ। मुझे किसी को समझाने का अधिकार नही।

मित्रगण कुछ देर तक और बैठे रहे, लेकिन प्रेमशकर कुछ ऐसे दब गये कि फिर जबान ही न खुली। अन्त मे सब एक-एक करके चले गये।

सूर्यास्त हो रहा था। प्रेमशकर घोर चिन्ता की दशा मे अपने झोपड़े के सामने टहल रहे थे। उनके सामने अब यह समस्या थी कि ज्ञानशकर से कैसे मेल हो। वह जितना ही विचार करते थे, उतना ही अपने को दोषी पाते थे। यह सब मेरी ही करनी है। जब असामियो से उनकी लडाई ठनी हुई थी तो मुझे उचित नही था कि असामियो का पक्ष ग्रहण करता। माना कि ज्ञानशकर का अत्याचार था। ऐसी दशा मे मुझे अलग रहना चाहिए था या उन्हे भ्रातृवत् समझना चाहिए था। यह तो मुझसे न हुआ। उल्टे उन्ही से लड बैठा। माना कि उनके और मेरे सिद्धान्तो मे घोर अन्तर है। लेकिन सिद्धान्त-विरोध परस्पर भ्रातृ-प्रेम को क्यो दूषित करे? यह भी माना कि जब से मैं आया हूँ उन्होने मेरी अवहेलना ही की है, यहाँ तक कि मुझे पत्नी-प्रेम से भी वचित कर दिया, पर मैंने भी तो कभी उनसे मिले रहने की उनसे कटु व्यवहार को भूल जाने की, उनकी अप्रिय बातो को सह लेने की चेष्टा नही की। वह मुझसे एक अगुल खसके तो मै उनसे हाथ भर हट गया। सिद्धान्त-प्रियता का यह आशय नहीं है कि आत्मीय जनो से विरोध कर लिया जाय। सिद्धान्तो को मनुष्यो से अधिक मान्य समझना अक्षम्य है। उनके हृदय को अपनी तरफ से साफ करने का यह अच्छा अवसर है।

सन्ध्या हो गयी थी। ज्ञानशकर अपने सुरम्य बँगले के सामने मौलवी ईजाद हुसेन के साथ बैठे बातें कर रहे थे। मौलवी साहब ने सरकारी नौकरी मे मनोनुकूल सफलता न देख इस्तीफा दे दिया था और कुछ दिनो से जाति-सेवा मे लीन हो गये थे। उन्होने "अजुमन इत्तहाद" नाम की एक सस्था खोल ली थी, जिसका उद्देश्य हिन्दू-मुसलमानो मे परस्पर प्रेम और मैत्री बढाना था। यह सस्था चन्दे से चलती थी और इसी हेतु से सैयद साहब यहाँ पधारे थे।

ज्ञानशकर ने कहा, मुझे दिन-दिन तजरबा हो रहा है कि जमीदारी करने के लिए बडी सख्ती की जरूरत है। जमीदार नजर-नजराना, हरी-बेगार, डाँड-बाँध सब कुछ छोड सकता है, लेकिन लगान तो नही छोड सकता है। वह भी अब बगैर अदालती कार्रवाई के नही वसूल होता।

ईजाद हुसेन—जनाब बजा फरमाते है, लेकिन गुलाम ने ऐसे रईसो को भी देखा है जो कभी अदालत के दरवाजे तक न गये। जहाँ किसी असामी ने सरकशी की, उसकी मरम्मत कर दी और लुत्फ यह कि कभी डडे या हटर से काम नही लिया। गरमी मे झुलसती हुई धूप और जाड मे बर्फ का सा ठंढा पानी। बस इसी लटके से उनकी सारी मालगुजारी वसूल हो जाती है। मई और जून की धूप जरा देर सिर पर लगी और असामी ने कमर ढीली की।

ज्ञानशकर—मालूम नही ऐसे आदमी कहाँ हैं। यहाँ तो ऐसे बदमाशो से पाला

पडा है जो बात-बात पर अदालत का रास्ता लेते हैं। मेरे ही मौजे को देखिए, कैसा तूफान उठ गया और महज चरावर को रोक देने के पीछे।

इतने मे डाक्टर इर्फान अली बार-एट्-ला की मोटर आ पहुँची। ज्ञानशकर ने उनका स्वागत किया।

डाक्टर—अबकी आप ने बड़ा इन्तजार कराया। मैं तो आपसे मिलने के लिए गोरखपुर आनेवाला था।

ज्ञानशकर—रियासत का काम इतना फैला हुआ है कि कितना ही समेटें नही सिमटता।

डाक्टर—आपको मालूम तो होगा यहाँ युनिवर्सिटी मे इकनोमिक्स की जगह खाली है। अब तो आप सिंडिकेट मे भी आ गये है।

ज्ञानशकर—जी हाँ, सिंडिकेट मे तो लोगो ने जबरदस्ती घर घसीटा, लेकिन यहाँ रियासत के कामो से फुर्सत कहाँ कि इधर तवज्जह करूँ? कुछ कागजात गये थे, लेकिन मुझे उनके देखने का मौका ही न मिला।

डाक्टर—डाक्टर दास के चले जाने से यह जगह खाली हो गयी है और मै इसका उम्मीदवार हूँ।

ज्ञानशकर ने आश्चर्य से कहा, आप!

डाक्टर—जी हाँ, अब मैंने यही फैसला किया है। मेरी तबीयत रोज-ब-रोज वकालत से बेजार होती जाती है।

ज्ञानशकर—आखिर क्यो? आपकी वकालत तो तीन-चार हजार से कम की नही। हुक्काम की खुशामद तो नही खलती? या कासेन्स (आत्मा) का खयाल है?

डाक्टर—जी नही, सिर्फ इसलिए कि इस पेशे मे इन्सान की तबीयत बेजा जरपरस्ती की तरफ मायल हो जाती है। कोई वकील कितना ही हकशिनास क्यो न हो, उसे हमदर्दी और इन्सानियत से वह खुशी नही होती जो एक शरीफ आदमी को होनी चाहिए। इसके खिलाफ आपस की लडाइयो और दगाबाजियो से एक खास दिलचस्पी हो जाती है जो लतीफ जजबात से खाली है। मैं महीनो से इसी कशमकश मे पडा हुआ हूँ और अब यही इरादा है कि जितनी जल्द मुमकिन हो इस पेशे को सलाम करूँ।

यही बातें हो रही थी कि फैजू और कर्तारसिंह ने सामने आ कर सलाम किया। ज्ञानशकर ने पूछा, कहो खैरियत तो है।

फैजू—हुजूर, खैरियत क्या कहे! रात को किसी ने खाँ साहब को मार डाला।

ईजाद हुसेन और इर्फान अली चौक पडे, लेकिन ज्ञानशकर लेश-मात्र भी विचलित न हुए, मानो उन्हे यह बात पहले ही मालूम थी। बोले, तुम लोग कहाँ थे? कही सैर-सपाटे करने चल दिये थे या अफीम की पिनक मे पडे हुए थे।

फैजू—हुजूर, थे तो चौपाल मे ही, पर किसी को क्या खबर कि यह वारदात होगी?

ज्ञान—क्यो, खबर क्यो न थी? जो आदमी साँप को पैरो से कुचल रहा हो उसे

यह मालूम होना चाहिए कि साँप के दाँत जहरीले होते हैं। जमीदारी करना साँप को नचाना है। वह सँपेरा अनाडी है जो साँप को काटने का मौका दे ! खैर, कातिल का कुछ पता चला ?

फैजू—जी हाँ, वही मनोहर अहीर है। उसने सबेरे ही थाने मे जा कर एकवाल कर दिया। दोपहर को थानेदार साहब आ गये और तहकीकात कर रहे है। खाँ साहब का तार हुजूर को मिल गया था ? जिस दिन खाँ साहब ने चरावर को रोकने का हुक्म दिया उसी दिन गाँववालो मे एका हो गया। खाँ साहब ने घवडा कर हुजूर को तार दिया। मैं तीन वजे तारघर से लौटा तो गाँव मे मुकदमा लड़ने के लिए चदे का गुट्ट हो रहा था। रात को यह वारदात हो गयी।

अकस्मात् प्रेमशकर लाला प्रभाशकर के साथ आ गये। ज्ञानशंकर को देखते ही प्रेमशकर टूटकर उनसे गले मिले और पूछा, कब आये ? सब कुशल है न ?

ज्ञानशकर ने रुखाई से उत्तर दिया, कुशल का हाल इन आदमियो से पूछिए जो अभी लखनपुर से आये हैं। गाँववालो ने गौस खाँ का काम तमाम कर दिया।

प्रेमशकर स्तम्भित हो गये। मुँह से निकला, अरे ! यह कब ?

ज्ञान—आज ही रात को।

प्रेम—बात क्या है ?

ज्ञान—गाँववालो की वदमाशी और सरकशी के सिवा और क्या बात हो सकती है। मैंने चरावर को रोकने का हुक्म दिया था। वहाँ एक बाग लगाने का विचार था। बस, इतना वहाना पा कर सब खून-खच्चर पर उद्यत हो गये।

प्रेम—कातिल का कुछ पता चला ?

ज्ञान—अभी तो मनोहर ने थाने में जा कर एकवाल किया है।

प्रेम—मनोहर तो वडा सीधा, गम्भीर पुरुष है।

ज्ञान—(व्यग से) जी हाँ, देवता था !

डाक्टर साहब ने मार्मिक भाव से देख कर कहा, यह किसी एक आदमी का फेल हर्गिज नही है।

ज्ञान—वही मेरा भी ख्याल है। मनोहर की इतनी मजाल नही है कि वह अकेला यह काम कर सके। निस्सन्देह सारा गाँव मिला हुआ है। मनोहर को सबने तवेले का बन्दर बना रखा है। देखिए थानेदार की तहकीकात का क्या नतीजा होता है। कुछ भी हो, अब मैं इस मौजे को वीरान करके ही छोडूँगा। क्यो फैजू, तुम्हारा क्या ख्याल है ? मनोहर अकेले यह काम कर सकता है ?

फैजू—नही हुजूर, साठ वरस का बुड्ढा भला क्या खा कर हिम्मत करता ! और कोई चाहे उसका मददगार न हो, लेकिन उसका लडका तो जरूर ही साथ रहा होगा।

कर्तार—वह बुड्ढा है तो क्या, वडे जीवट का आदमी है। उसके सिवा गाँव मे किसी का इतना कलेजा नही है।

ज्ञान—तुम गँवार आदमी हो, इन बातो को क्या समझो। तुम्हें तो भंग का गोला

चाहिए। डाक्टर साहब, मुआमले मे मुद्दई तो सरकार होगी, लेकिन आप भी मेरी तरफ से पैरवी कीजिएगा। मैंने फैसला कर लिया है कि गाँव के किसी बालिग आदमी को बेदाग न छोड़ूँगा।

प्रेमशकर ने दबी जबान से कहा, अगर तुम्हे विश्वास हो कि यह एक आदमी का काम है तो सारे गाँव को समेटना उचित नही। ऐसा न हो कि गेहूँ के साथ घुन भी पिस जाय।

ज्ञानशकर क्रुद्ध हो कर बोले, बहुत अच्छा हो अगर आप इस विषय मे अपने सत्य और न्याय के नियमो का स्वाँग न रचे। यह इन्ही की बरकत है कि आज इन दुष्टो को इतना साहस हुआ है। आप मुझे साफ-साफ कहने पर मजबूर कर रहे है। ये सब आपके ही बल पर कूद रहे है। आपने प्रत्येक अवसर पर मेरे विपक्ष मे उनकी सहायता की है, उनसे भाईचारा किया है। और उनके सिर पर हाथ रखने के लिए हमेशा तैयार रहते है। आपके इसी भ्रातृ-भाव ने उनके सिर फिरा दिये। मेरा भय उनके दिल से जाता रहा। आपके सिद्धान्तो और विचारो का मैं आदर करता हूँ, लेकिन आप कडवी नीम को दूध से सीच रहे है और आशा करते है कि मीठे फल लगेगे। ऐसे कुपात्रो के साथ ऊँचे नियमो का व्यवहार करना दीवाने के हाथ मे मशाल दे देना है।

प्रेमशकर ने फिर जबान न खोली और न सिर उठाया। लाला प्रभाशकर को ये बाते ऐसी बुरी लगी कि वह तुरन्त उठ कर चले गये। लेकिन प्रेमशकर आत्म-परीक्षा मे मौन मर्तिवत् बैठे रहे। दीन देहातियो के साथ साधारण सज्जनता का वर्ताव करने का परिणाम ऐसा भयकर होगा यह एक बिलकुल नया अनुभव था। केवल एक आदमी की जान ही नही गयी, वरन् और भी कितने ही प्राणो के बलिदान होने की आशका थी। भगवान् उन गरीबो पर दया करो। मैंने सच्चे हृदय से उनकी सेवा नही की। द्वेष का भाव मुझे प्रेरित करता रहा। मैं ज्ञानशकर को नीचा दिखाना चाहता था। यह समस्या उसी द्वेष भाव का दड है। क्या एक लखनपुर ही अपने जमीदार के अत्याचार से पीडित था? ऐसा कौन-सा इलाका है जो जमीदार के हाथो रक्त के आँसू न बहा रहा हो। तो लखनपुरवालो के ही प्रति मेरी सहानुभूति क्यो इतनी प्रचड हो गयी और फिर ऐसे अत्याचार क्या इससे पहले न होते थे? यह तो आये दिन ही होता रहता था, लेकिन कभी असामियो को चूँ करने की हिम्मत न पडती थी। इस बार वह क्यो मार-काट पर उद्यत हो गये! इन शकाओ का उन्हे एक ही उत्तर मिलता था और वही उस उत्तरदायित्व के भार को और गुरुतर बना देता था। हाय! मैंने कितने प्राणो को अपनी ईर्षाग्नि के कुड मे झोक दिया। अब मेरा कर्तव्य क्या है? क्या यह आग लगा कर दूर से खडा तमाशा देखूँ? यह सर्वथा निन्द्य है। अब तो इन अभागो की यथा योग्य सहायता करनी ही पडेगी, चाहे ज्ञानशकर को कितना ही बुरा लगे। इसके सिवा मेरे लिए कोई दूसरा मार्ग नही है।

प्रेमशकर इन्ही विचारो मे डूबे हुए थे कि मायाशकर ने आ कर कहा, चाचा जी,

अम्माँ कहती है अब तो बहुत देर हो गयी, हाजीपुर कैसे जाइएगा ? यही भोजन कर लीजिए और आज यही रह जाइए।

प्रेमशकर शोकमय विचारो की तरग मे भूल गये कि अभी मुझे हाजीपुर लौटना है। माथा को प्यार करके बोले, नही बेटा, मै चला जाऊँगा, अभी ज्यादा रात नही गयी है। यहाँ रह जाऊँ, तो वहाँ बडा हर्ज होगा।

यह कह कर वह उठ खडे हुए। ज्ञानशकर की ओर करुण नेत्रो से देखा और बिना कुछ कहे ही चले गये। ज्ञानशकर ने उनकी तरफ ताका भी नही।

उनके जाने के बाद डाक्टर महोदय बोले, मैं तो इनकी बडी तारीफ सुना करता था, पर पहली ही मुलाकात मे तबीयत आसूदा हो गयी। कुछ क्रुद्ध-से मालूम होते है।

ज्ञान—बडे भाई है, उनकी शान मैं क्या कहूँ, कुछ दिनो अमेरिका क्या रह आये है गोया हक और इन्साफ का ठेका ले लिया है। हालाँकि अभी तक अमेरिका मे भी यह खयालात अमल के मैदान से कोसो दूर है। दुनिया मे इन खयालो के चर्चे हमेशा रहे है और हमेशा रहेगे। देखना सिर्फ यह है कि यह कहाँ तक अमल मे लाये जा सकते है। मैं खुद इन उसूलो का कायल हूँ, पर मेरे खयाल मे अभी बहुत दिनो तक इस जमीन मे यह बीज सरसब्ज नही हो सकता है।

इसके बाद कुछ देर तक इस दुर्घटना के सम्बन्ध मे बातचीत होती रही। जब डाक्टर साहब और ईजाद हुसेन चले गये तब ज्ञानशकर घर मे जा कर बोले, देखा, भाई साहब ने लखनपुर मे क्या गुल खिलाया ? अभी खबर आयी है कि गौस खाँ को लोगो ने मार डाला। दोनो स्त्रियाँ हक्की बक्की होकर एक दूसरे का मुँह ताकने लगी।

ज्ञानशकर ने फिर कहा, यह वर्षो से वहाँ जा-जा कर असामियो से जाने क्या कहते थे, न जाने क्या सिखाते थे, जिसका यह नतीजा निकला है। मैंने जब इनके वहाँ आने-जाने की खबर पायी तो उसी वक्त मेरे कान खडे हुए और मैंने इनसे विनय की थी कि आप गँवारो को अधिक सिर न चढाये। उन्होने मुझे भी वचन दिया कि उनसे कोई सम्बन्ध न रखूंगा। लेकिन अपने आगे किसी को समझते ही नही। मुझे भय है कि कही इस मामले मे वह भी न फँस जायँ। पुलिसवाले एक ही कट्टर होते है। वह किसी न किसी मोटे असामी को जरूर फाँसेगे। गाँववालो पर जरा सख्ती की कि सब खुल पडेगे और सारा अपराध भाई साहब के सिर डाल देगे।

श्रद्धा ने ज्ञानशकर की ओर कातर नेत्रो से देखा और सिर झुका लिया। अपने मन के भावो को प्रकट न कर सकी। विद्या ने कहा, तुम जरा थानेदार के पास क्यो नही चले जाते ? जैसे बने, उन्हे राजी कर लो।

ज्ञान—हाँ, कुछ न कुछ तो करना ही पडेगा, लेकिन एक छोटे आदमी की खुशामद करना, उसके नखरे उठाना कितने अपमान की बात है ! भाई साहब को ऐसा न समझता था।

श्रद्धा ने सिर झुकाये हुए सरोष स्वर से कहा, पुलिसवाले उन पर जो अपराध लगाये, वह ऐसे आदमी नही है कि गाँववालो को बहकाते फिरें, बल्कि अगर गाँव-

वालो की नीयत उन्हे पहले मालूम हो जाती तो यह नौबत ही न आती। तुम्हे थानेदार की खुशामद करने की कोई जरूरत नही। वह अपनी रक्षा आप कर सकते है।

विद्या—मैं तुम्हे बराबर समझाती आती थी कि देहातियो से राड़ न बढाओ। बिल्ली भी भागने को राह नही पाती तो शेर हो जाती है। लेकिन तुमने कभी कान ही न दिये।

ज्ञान—कैसी बेसिर-पैर की बाते करती हो? मैं इन टुकड़गदे किसानो से दबता फिरूँ? जमीदार न हुआ कोई चरकटा हुआ। उनकी मजाल थी कि मेरे मुकाबले मे खड़े होते? हाँ, जब अपने ही घर मे आग लगानेवाले मौजूद हो तो जो कुछ न हो जाय वह थोड़ा है। मैं एक नही सौ बार कहूँगा कि अगर भाई साहब ने इन्हे सिर न चढाया होता तो आज इनके हौसले इतने न बढ़ते।

विद्या—(दबी जबान से) सारा शहर जिसकी पूजा करता है उसे तुम घर मे आग लगानेवाला कहते हो?

ज्ञान—यही लोक-सम्मान तो इन सारे उपद्रवो का कारण है।

श्रद्धा और ज्यादा न सुन सकी। उठ कर अपने कमरे मे चली गयी। तब ज्ञानशकर ने कहा, मुझे तो इनके फँसने मे जरा भी सन्देह नही है।

विद्या—तुम अपनी ओर से उनके बचाने मे कोई बात उठा न रखना, यह तुम्हारा धर्म है। आगे विधाता ने जो लिखा है वह तो होगा ही।

ज्ञान—भाभी की तबियत का कुछ और ही रग दिखाई देता है।

विद्या—तुम उनका स्वभाव जानते नही। वह चाहे दादा जी के साये से भी भागें, पर उनके नाम पर जान देती है, हृदय से उनकी पूजा करती हैं।

ज्ञान—इधर भी चलती हैं, उधर भी।

विद्या—इधर लोक-लाज से चलती हैं, हृदय उधर ही है।

ज्ञान—तो फिर मुझे कोई और ही उपाय सोचना पडेगा।

विद्या—ईश्वर के लिए ऐसी बाते मुझसे न किया करो।

२९

श्रद्धा की बातो से पहले तो ज्ञानशकर को शका हुई, लेकिन विचार करने पर यह शका निवृत्त हो गयी, क्योकि इस मामले मे प्रेमशकर का अभियुक्त हो जाना अवश्यम्भावी था। ऐसी अवस्था मे श्रद्धा के क्रोध से ज्ञानशकर की कोई हानि न हो सकती थी।

ज्ञानशकर ने निश्चय किया कि इस विषय मे मुझे हाथ पैर हिलाने की कोई जरूरत नही है। सारी व्यवस्था मेरे इच्छानुकूल है। थानेदार स्वार्थवश इस मामले को बढ़ायेगा, सारे गाँव को फँसाने की चेष्टा करेगा और उसका सफल होना असन्दिग्ध है। गाँव मे कितना ही एका हो, पर कोई न कोई मुखबिर निकल ही आयेगा। थानेदार ने लखनपुर के जमीदारी दफ्तर की जाँच-पड़ताल अवश्य ही की होगी। वहाँ

मेरे ऐसे दो-चार पत्र अवश्य ही निकल आयेंगे जिनसे गाँववालो के साथ भाई साहब की सहानुभूति और सदिच्छा सिद्ध हो सके। मैंने अपने कई पत्रो मे गौसखाँ को लिखा है कि भाई साहब का यह व्यवहार मुझे पसन्द नही। हाँ, एक बात हो सकती है। सम्भव है कि गाँववाले रिश्वत दे कर अपना गला छुडा लें और थानेदार अकेले मनोहर का चालान करे। लेकिन ऐसे सगीन मामले मे थानेदार को इतना साहस नही हो सकता। वह यथासाध्य इस घटना को महत्त्वपूर्ण सिद्ध करेगा। भाई साहब से अधिकारीवर्ग उनके निर्भय लोकवाद के कारण पहले से ही बदगुमान हो रहा है। सब इन्सपेक्टर उन्हे इस षड्यन्त्र का प्रेरक साबित करके अपना रँग जरूर जमायेगा। अभियोग सफल हो गया तो उसको तरक्की भी होगी, पारितोषिक भी मिलेगा। गाँववाले कोई बड़ी रकम देने की सामर्थ्य नही रखते और थानेदार छोटी रकम के लिए अपनी आशाओ को मिट्टी मे न मिलायेगा। बन्धु-विरोध का विचार मिथ्या है। ससार मे सब अपने ही लिए जीते और मरते है, भावुकता के फेर मे पड कर अपने पैरो मे कुल्हाडी मारना हास्यजनक है।

ज्ञानशकर का अनुमान अक्षरश सत्य निकला। लखनपुर के प्राय सभी बालिग आदमियो का चालान हुआ। बिसेसर साह को टैक्स की धमकी ने भेदिया बना दिया। जमीदारी दफ्तर का भी निरीक्षण हुआ। एक सप्ताह पीछे हाजीपुर मे प्रेमशकर की खाना-तलाशी हुई और वह हिरासत मे ले लिये गये।

सन्ध्या का समय था। ज्ञानशकर मुन्नू को साथ लिये हवा खाने जा रहे थे कि डाक्टर इर्फान अली ने यह समाचार कहा। ज्ञानशकर के रोये खडे हो गये और आँखो मे आँसू भर आये। एक क्षण के लिए बन्धु-प्रेम ने क्षुद्रभावो को दबा दिया। लेकिन ज्यो ही जमानत का प्रश्न सामने आया, यह आवेग शान्त हो गया। घर मे खबर हुई तो कुहराम मच गया। श्रद्धा मूर्छित हो गयी, बड़ी बहू तसल्ली देने आयी। मुन्नू भी भीतर चला गया और मा की गोद मे सिर रख फूट-फूट कर रोने लगा।

प्रेमशकर शहर से कुछ ऐसे अलग रहते थे कि उनका शहर के बडे लोगो से बहुत कम परिचय था। वह रईसो से बहुत कम मिलते जुलते थे। कुछ विद्वज्जनो ने पत्रो मे उनके कृषि-सम्बन्धी लेख अवश्य देखे थे और उनकी योग्यता के कायल थे, किन्तु उन्हे झक्की समझते थे। उनके सच्चे शुभचिन्तको मे अधिकाश कालेज के युवक, दफ्तरो के कर्मचारी या देहातो के लोग थे। उनके हिरासत मे आने की खबर पाते ही हजारो आदमी एकत्र हो गये और प्रेमशकर के पीछे-पीछे पुलिस-स्टेशन तक गये, लेकिन उनमे कोई भी ऐसा न था, जो जमानत देने का प्रयत्न कर सकता।

लाला प्रभाशकर ने सुना तो उन्मत्त की भाँति दौडे हुए ज्ञानशकर के पास जा कर बोले, बेटा, तुमने सुना ही होगा। कुल मर्यादा मिट्टी मे मिल गयी। (रो कर) भैया की आत्मा को इस समय कितना दु.ख हो रहा होगा। जिस मान-प्रतिष्ठा के लिए हमने जायदादें बर्बाद कर दी वह आज नष्ट हो गयी। हाय! भैया जीवनपर्यन्त कभी अदालत के द्वार पर नही गये। घर मे चोरियाँ हुई, लेकिन कभी थाने मे इत्तला तक न की

कि तहकीकात होगी और पुलिस दरवाजे पर आयेगी। आज उन्ही का प्रिय पुत्र. . क्यो बेटा, जमानत न होगी ?

ज्ञानशकर इस कातर अधीरता पर रुष्ट हो कर बोले, मालूम नही, हाकिमो की मर्जी पर है।

प्रभा—तो जा कर हाकिमो से मिलते क्यो नही ? कुछ तुम्हे भी अपनी इज्जत की फिक्र है या नही ?

ज्ञान—कहना बहुत आसान है, करना कठिन है।

प्रभा—भैया, कैसी बाते करते हो ? यहाँ के हाकिमो मे तुम्हारा कितना मान है ? बडे साहब तक तुम्हारी कितनी खातिर करते है ? यह लोग किस दिन काम आयेंगे ? क्या इसके लिए कोई दूसरा अवसर आयेगा ?

ज्ञान—अगर आपका यह आशय है कि मैं जा कर हाकिमो की खुशामद करूँ, उनसे रियायत की याचना करूँ तो यह मुझसे नही हो सकता। मैं उनके खोदे हुए गढे मे नही गिरना चाहता। मैं किस दावे पर उनकी जमानत कर सकता हूँ, जब मैं जानता हूँ कि वह अपनी टेक नही छोडेंगे और मुझे भी अपने साथ ले डूबेंगे।

प्रभाशकर ने लम्बी साँस भर कर कहा, हा भगवान ! यह भाई भाइयो का हाल है ! मुझे मालूम न था कि तुम्हारा हृदय इतना कठोर है। तुम्हारा सगा भाई आफत मे पडा है और तुम्हारा कलेजा जरा भी नही पसीजता। खैर कोई चिंता नही। अगर मेरी सामर्थ्य से बाहर नही है तो मेरे भाई का प्यारा पुत्र मेरे सामने यो अपमानित न होने पायेगा।

ज्ञानशकर को अपने चाचा की दयार्द्रता पर क्रोध आ रहा था। वह समझते थे कि केवल मेरी अवहेलना करने के लिए यह इतने प्रगल्भ हो रहे है। इनकी इच्छा है कि मुझे भी अधिकारियो की दृष्टि मे गिरा दे। लेकिन प्रभाशकर बनावटी भावो के मनुष्य न थे। वह कुल-प्रतिष्ठा पर अपने प्राण तक समर्पण कर सकते थे। उनमे वह गौरव प्रेम था जो स्वय उपवास करके आतिथ्य-सत्कार को अपना सौभाग्य समझता था, और जो अब, हा शोक ! इस देश से लुप्त हो गया है। धन उनके विचार में केवल मान-मर्यादा की रक्षा के लिए था, भोग-विलास और इन्द्रिय-सेवा के लिए नही। उन्होने तुरन्त जा कर कपडे पहने, चोगा पहना, अमामा बाँधा और एक पुराने रईस के वेश मे मैजिस्ट्रेट के पास जा पहुँचे। रात के आठ बज चुके थे, इसकी जरा भी परवाह न की। साहब के सामने उन्होने जितनी दीनता प्रकट की, जितने विनीत शब्दो मे अपनी सकट-कथा सुनायी, जितनी नीच खुशामद की, जिस भक्ति से हाथ बाँध कर खडे हो गये, अमामा उतार कर साहब के पैरो पर रख दिया और रोने लगे, अपने कुल-मर्यादा की जो गाथा गायी और उसकी राज-भक्ति के जो प्रमाण दिये उसे एक नव शिक्षित युवक अत्यन्त लज्जाजनक ही नही बल्कि हास्यास्पद समझता। लेकिन साहब पसीज गये। जमानत ले लेने का वादा किया, पर रात हो जाने के कारण उस वक्त कोई कार्रवाई न हो सकी। प्रभाशकर यहाँ से निराश लौटे। उनकी यह इच्छा

कि प्रेमशकर हिरासत मे रात को न रहे पूरी न हो सकी। रात भर चिंता मे पडे हुए करवटे बदलते रहे। भैया की आत्मा को कितना कष्ट हो रहा होगा ? कई बार उन्हे ऐसा धोखा हुआ कि भैया द्वार पर खडे रो रहे है। हाय ! बेचारे प्रेमशकर पर क्या बीत रही होगी ! तग, अँधेरी, दुर्गन्धयुक्त कोठरी मे पडा होगा, आँखो मे आँसू न थमते होगे। इस वक्त उससे कुछ न खाया गया होगा। वहाँ के सिपाही और चौकीदार उसे दिक कर रहे होगे। मालूम नही, पुलिसवाले उसके साथ कैसा बर्ताव कर रहे है ? न जाने उससे क्या कहलाना चाहते हो ? इस विभाग मे जा कर आदमी पशु हो जाता है। मेरा दयाशकर पंहले कैसा सुशील लडका था, जब से पुलिस मे गया है मिजाज ही और हो गया। अपनी स्त्री तक की बात नही पूछता। अगर मुझपर कोई मामला आ पडे तो मुझसे बिना रिश्वत लिये न रहे। प्रेमशकर पुलिसवालो की बातो मे न आता होगा और वह सब के सब उसे और भी कष्ट दे रहे होगे। भैया इस पर जान देते थे, कितना प्यार करते थे, और आज इसकी यह दशा !

प्रातःकाल प्रभाशकर फिर मैजिस्ट्रेट के बँगले पर गये। मालूम हुआ कि साहब शिकार खेलने चले गये है। वहाँ से पुलिस के सुपरिन्टेडेंट के पास गये। यह महाशय अभी निद्रा मे मग्न थे। उनसे दस बजे के पहले भेट होने की सम्भावना न थी। बेचारे यहाँ से भी निराश हुए और तीसरे पहर तक बे-दाना, बे-पानी, हैरान-परेशान, इधर-उधर दौडते रहे। कभी इस दफ्तर मे जाते, कभी उस दफ्तर मे। उन्हे आश्चर्य होता था कि दफ्तरो के छोटे कर्मचारी क्यो इतने बेमुरौवत और निर्दय होते हैं। सीधी बात करनी तो दूर रही, खोटी-खरी सुनाने मे भी सकोच नही करते। अन्त मे चार बजे मैजिस्ट्रेट ने जमानत मजूर की, लेकिन हजार दो हजार की नही, पूरे दस हजार की, और वह भी नकद। प्रभाशकर का दिल बैठ गया। एक बडी साँस ले कर वहाँ से उठे और धीरे-धीरे घर चले, मानो शरीर निर्जीव हो गया है। घर आ कर वह चारपाई पर गिर पडे और सोचने लगे, दस हजार का प्रबध कैसे करूँ ? इतने रुपये मुझे विश्वास पर कौन देगा ? तो क्या जायदाद रेहन रख दूँ ? हाँ, इसके सिवा और कोई उपाय नही है। मगर घरवाले किसी तरह राजी न होगे, घर मे लडाई ठन जायगी। बहुत देर तक इसी हैस-बैस मे पडे रहे। भोजन का समय आ पहुँचा। बडी बहू बुलाने आयी। प्रभाशकर ने उनकी ओर विनीत भाव से देख कर कहा, मुझे बिलकुल भूख नही है।

बडी बहू—कैसी भूख है जो लगती ही नही ? कल रात नही खाया, दिन को नही खाया, क्या इस चिन्ता मे प्राण दे दोगे ? जिन्हे चिन्ता होनी चाहिए, जो उनका हिस्सा उडाते है, उनके माथे पर तो बल तक नही है और तुम दाना-पानी छोडे बैठे हो ! अपने साथ घर के प्राणियो को भी भूखो मार रहे हो। प्रभाशकर ने सजल नेत्र हो कर कहा, क्या करूँ, मेरी तो भूख-प्यास बन्द हो गयी है। कैसा सुशील, कितना कोमल प्रकृति, कितना शान्तचित्त लडका है। उसकी सूरत मेरी आँखो के सामने फिर रही है। भोजन कैसे करूँ ! विदेश मे था तो भूल गये थे, उसे खो बैठे थे, पर खोये रत्न को पाने के बाद उसे चोरो के हाथ मे देख कर सब्र नही होता।

वडी वहू—लडका तो ऐसा है कि भगवान सबको दे। विलकुल वही लडकपन का स्वभाव है, वही भोलापन, वही मीठी वातें, वही प्रेम। देख कर छाती फूल उठती है। घमड तो छू तक नही गया। पर दाना पानी छोडने से तो काम न चलेगा, चलो, कुछ थोडा सा खा लो।

प्रभाशकर—दस हजार नकद जमानत माँगी गयी है।

वडी वहू—ज्ञानू से कहते क्यो नही कि मीठा-मीठा गप्प, कडवा-कडवा थू। प्रेमू का आधा नफा क्या श्रद्धा के भोजन-वस्त्रो मे ही खर्च हो जाता है?

प्रभाशकर—उससे क्या कहूँ, सुने भी? वह पश्चिमी सभ्यता का मारा हुआ है, जो लडके को वालिग होते ही माता-पिता से अलग कर देती है। उसने वह शिक्षा पायी है जिसका मूलतत्व स्वार्थ है। उसमे अब दया, विनय, सौजन्य कुछ भी नही रहा। वह अब केवल अपनी इच्छाओ का, इन्द्रियो का दास है।

वडी वहू—तो तुम इतने रुपयो का प्रवन्ध करोगे?

प्रभाशकर—क्या कहूँ, किसी से ऋण लेना पडेगा।

वडी वहू—ऐसा जान पडता है कि थोडा सा हिस्सा जो वचा हुआ है उसे भी अपने सामने ही ठिकाने लगा दोगे। यह तो कभी नही देखा कि जो रुपये एक वार लिये गये वह फिर दिये गये हो। वस, जमीन के ही माथे जाती है।

प्रभाशकर—जमीन मेरी गुलाम है, मैं जमीन का गुलाम नही हूँ।

वडी वहू—मैं कर्ज न लेने दूँगी। जाने कैसा पडे, कैसा न पडे। अन्त मे सब वोझ तो हमारे ही सिर पडेगा। लडको को कही वैठने का ठाँव भी न रहेगा।

प्रभाशकर ने पत्नी की ओर कठोर दृष्टि से देख कर कहा, मैं तुमसे सलाह नही लेता हूँ और न तुमको इसका अधिकारी समझता हूँ। तुम उपकार को भूल जाओ, मैं नही भूल सकता। मेरा खून सफेद नही है। लडको की तकदीर मे आराम लिखा होगा आराम करेंगे, तकलीफ लिखी होगी तकलीफ भोगेंगे। मैं उनकी तकदीर नही हूँ। आज दयाशकर पर कोई वात आ पडे तो गहने वेच डालने मे भी किसी को इन-कार न होगा। मैं प्रेमू को दयाशकर से जौ भर भी कम नही समझता।

वडी वहू ने फिर भोजन करने के लिए अनुरोध किया और प्रभाशकर फिर नही-नही करने लगे। अन्त मे उसने कहा, आज कद्दू के कवाव वने हैं। मै जानती कि तुम न खाओगे तो क्यो वनवाती?

प्रभाशकर की उदासीनता लुप्त हो गयी। उत्सुक हो कर वोले, किसने वनाये है।

वडी वहू—वहू ने।

प्रभा—अच्छा तो थाली परसाओ। भूख तो नही है, पर दो-चार कौर खा ही लूँगा।

भोजन के पश्चात् प्रभाशकर फिर उसी चिन्ता मे मग्न हुए। रुपये कहाँ से आये? वेचारे प्रेमशकर को आज फिर हिरासत मे रात काटनी पडी। वडी वहू ने स्पष्ट शब्दो मे कह दिया था कि मैं कर्ज न लेने दूँगी और यहाँ कर्ज के सिवा और कोई तदवीर ही न थी। आज लाला जी फिर सारी रात जागते रहे। उन्होने निश्चय कर लिया कि

घरवाले चाहे जितना विरोध करें, पर मैं अपना कर्त्तव्य अवश्य पूरा करूँगा। भोर होते ही वह सेठ दीनानाथ के पास जा पहुँचे और अपनी विपत्ति-कथा कह सुनायी। सेठ जी से उनका पुराना व्यवहार था। उन्हीं की बदौलत सेठ जी जमींदार हो गये थे। मामला करने पर राजी हो गये। लिखा-पढ़ी हुई और दस बजते-बजते प्रभाशकर के हाथो मे दस हजार की थैली आ गयी। वह ऐसे प्रसन्न थे मानो कही पडा हुआ धन मिल गया हो। गद्गद् हो कर बोले, सेठ जी, किन शब्दो मे आपको धन्यवाद दूँ, आपने मेरे कुल की मर्यादा रख ली। भैया की आत्मा स्वर्ग मे आपका यश गायेगी।

यहाँ से वह सीधे कचहरी गये और जमानत के रुपये दाखिल कर दिये। इस समय उनका हृदय ऐसा प्रफुल्लित था जैसे कोई बालक मेला देखने जा रहा हो। इस कल्पना से उनका कलेजा उछल पड़ता था कि भैया मेरी भक्ति पर कितने मुग्ध हो रहे होगे!

११ बजे का समय था। मैजिस्ट्रेट के इजलास पर लखनपुर के अभियुक्त हाथो मे हथकडियाँ पहने खड़े थे। शहर के सहस्रो मनुष्य इन विचित्र जीवधारियो को देखने के लिए एकत्र हो गये थे। सभी मनोहर को एक निगाह देखने के लिए उत्सुक हो रहे थे। कोई उसे धिक्कारता था, कोई कहता था अच्छा किया। अत्याचारियो के साथ ऐसा ही करना चाहिए। सामने एक वृक्ष के नीचे बिलासी मन मारे बैठी हुई थी। बलराज के चेहरे पर निर्भयता झलक रही थी। डपटसिंह और दुखरन भगत चिन्तित दीख पडते थे। कादिर खाँ धैर्य की मूर्ति बने हुए थे। लेकिन मनोहर लज्जा और पश्चात्ताप से उद्विग्न हो रहा था। वह अपने साथियो से आँख न मिला सकता था। मेरी ही बदौलत गाँव पर यह आफत आयी है, यह ख्याल उसके चित्त से एक क्षण के लिए भी न उतरता था। अभियुक्तो से जरा हट कर बिसेसर साह खड़े थे—ग्लानि की सजीव मूर्ति बने। पुलिस के कर्मचारी उन्हे इस प्रकार घेरे थे, जैसे किसी मदारी को बालक-वृन्द घेरे रहते हैं। सबसे पीछे प्रेमशकर थे, गम्भीर और आदम्य। मैजिस्ट्रेट ने सूचना दी—प्रेमशकर जमानत पर रिहा किये गये।

प्रेमशकर ने सामने आ कर कहा, मैं इस दया-दृष्टि के लिए आपका अनुगृहीत हूँ, लेकिन जब मेरे ये निरपराध भाई बेडियाँ पहने खडे है तो मैं उनका साथ छोडना उचित नही समझता।

अदालत में हजारो ही आदमी खड़े थे। सब लोग प्रेमशकर को विस्मित हो कर देखने लगे। प्रभाशकर करुणा से गद्गद् हो कर बोले, बेटा मुझपर दया करो। कुछ मेरो दौड-धूप, कुछ अपनी कुल-मर्यादा और कुछ अपने सम्बन्धियो के शोक-विलाप का ध्यान करो। तुम्हारे इस निश्चय से मेरा हृदय फटा जाता है।

प्रेमशकर ने आँखो मे आँसू भरे हुए कहा, चाचा जी, मै आपके पितृवत् प्रेम और सदिच्छा का हृदय से अनुगृहीत हूँ। मुझे आज ज्ञात हुआ कि मानव-हृदय कितना पवित्र, कितना उदार, कितना वात्सल्यमय हो सकता है। पर मेरा साथ छूटने से इन बेचारो की हिम्मत टूट जायगी, ये सब हताश हो जायँगे। इसलिए मेरा इनके साथ

रहना परमावश्यक है। मुझे यहाँ कोई कष्ट नही है। मैं परमात्मा को धन्यवाद देता हूँ कि उसने मुझे इन दीनो को तसकीन और तसल्ली देने का अवसर प्रदान किया। मेरी आपसे एक और विनती है। मेरे लिए वकील की जरूरत नही है। मैं अपनी निर्दोषता स्वय सिद्ध कर सकता हूँ। हाँ, यदि हो सके तो आप इन बेजबानो के लिए कोई वकील ठीक कर लीजिएगा, नही तो सभव है कि इनके ऊपर अन्याय हो जाये।

लाला प्रभाशकर हतोत्साह हो कर इजलास के कमरे से बाहर निकल आये।

३०

इस मुकदमे ने सारे शहर मे हलचल मचा दी। जहाँ देखिए, यही चर्चा थी। सभी लोग प्रेमशकर के आत्म बलिदान की प्रशसा सौ-सौ मुँह से कर रहे थे।

यद्यपि प्रेमशकर ने स्पष्ट कह दिया था कि मेरे लिए किसी वकील की जरूरत नही है, पर लाला प्रभाशकर का जी न माना। उन्हे भय था कि वकील के बिना काम बिगड जायगा। नही, यह कदापि नही हो सकता। कही मामला बिगड गया तो लोग यही कहेगे कि लोभ के मारे वकील नही किया, उसी का फल है। अपने मन मे यही पछतावा होगा। अतएव वह सारे शहर के नामी वकीलो के पास गये। लेकिन कोई भी इस मुकदमे की पैरवी करने पर तैयार न हुआ। किसी ने कहा, मुझे अवकाश नही है, किसी ने कोई और ही बहाना करके टाल दिया। सबको विश्वास था कि अधिकारी-वर्ग प्रेमशंकर से कुपित हो रहे है, उनकी वकालत करना स्वार्थ-नीति के विरुद्ध है। प्रभाशकर का यह प्रयास सफल न हुआ तो उन्होने अन्य अभियुक्तो के लिए कोई प्रयत्न नही किया। उनकी सहानुभूति अपने परिवार तक ही सीमित थी।

अभियोग तैयार हो गया और मैजिस्ट्रेट के इजलास मे पेशियाँ होने लगी। थानेदार का बयान हुआ, फैजू का बयान हुआ, तहसीलदार, चपरासियो और चौकीदारो के इजहार लिये गये। आठवे दिन ज्ञानशकर इजलास के सामने आ कर खडे हुए। प्रभाशकर को ऐसा दु ख हुआ कि वह कमरे के बाहर चले गये और एक वृक्ष के नीचे बैठ कर रोने लगे। सगे भाइयो मे यह वैमनस्य! पुलिस का पक्ष सिद्ध करने के लिए एक भाई दूसरे भाई के विरुद्ध साक्षी बने! दर्शको को भी कौतूहल हो रहा था कि देखें इनका क्या बयान होता है। सब टकटकी लगाये उनकी ओर ताक रहे थे। पुलिस को विश्वास था कि इनका बयान प्रेमशकर के लिए ब्रह्मफाँस बन जायगा, लेकिन उनको और उनसे अधिक दर्शको को कितना विस्मय हुआ जब ज्ञानशकर ने लखनपुर-वालो पर अपने दिल का बुखार निकाला, प्रेमशकर का नाम तक न लिया।

सरकारी वकील ने पूछा, आपको मालूम है कि प्रेमशकर उस गाँव मे अक्सर आया जाया करते थे।

ज्ञान—उनका उस गाँव मे आधा हिस्सा है।

वकील—आप जानते है कि जब इन्स्पेक्टर जेनरल पुलिस का दौरा हुआ था तब

प्रेमशकर ने लखनपुरवालो की बेगार बन्द करने की कोशिश की थी और तहसीलदार से लड़ने पर आमादा हो गये थे ?

ज्ञान—मुझे इसकी खबर नही।

वकील—आप यह तो जानते है कि जब आपने बेशी लगान का दावा किया था तब प्रेमशकर ने गाँववालो को ५०० रु० मुकदमे की पैरवी करने के लिए दिये थे ?

ज्ञान—मुझे इस विषय मे कुछ नही मालूम है।

ज्ञानशंकर की गवाही हो गयी। सरकारी वकील का मुँह लटक गया। लेकिन दर्शक गण एक स्वर से कहने लगे, भाई फिर भी भाई ही है, चाहे एक दूसरे के खून का प्यासा क्यो न हो।

इसके बाद मिस्टर ज्वालासिंह इजलास पर आये। उन्होंने कहा, मैं यहाँ कई साल तक हाकिम बना रहा। लखनपुर मेरे ही इलाके मे था। कई बार वहाँ दौरा करने गया। याद नही आता कि वहाँ गाँववालो से रसद या बेगार के बारे मे उससे ज्यादा झझट हुआ हो जितना दूसरे गाँव मे होता है। मेरे इजलास मे एक बार बाबू ज्ञानशकर ने इजाफा लगान का दावा किया था, लेकिन मैंने उसे खारिज कर दिया था।

सरकारी वकील—आपको मालूम है कि उस मामले की पैरवी के लिए प्रेमशकर ने लखनपुरवालो को ५०० रु० दिये थे।

ज्वालासिंह—मालूम है। लेकिन मैं समझता हूँ, उनको यह रुपये किसी दूसरे आदमी ने गाँववालो की मदद के लिए दिये थे।

वकील—आपको यह तो मालूम ही होगा कि प्रेमशकर की उस गाँव मे बहुत आमदरफ्त रहती थी ?

ज्वाला—हाँ, वह ताऊन या दूसरी बीमारियो के अवसर पर अक्सर वहाँ जाते थे।

यह गवाही भी पूरी हो गयी। सरकारी वकील के सभी प्रश्न व्यर्थ सिद्ध हुए।

तब बिसेसर साह इजलास पर आये। उनका बयान बहुत विस्तृत, क्रमबद्ध और सारगर्भित था, मानो किसी उपन्यासकार ने इस परिस्थिति की कल्पनापूर्ण रचना की हो। सबको आश्चर्य हो रहा था कि अपढ गँवार मे इतना वाक्य-चातुर्य कहाँ से आ गया ? उसके घटना प्रकाश मे इतनी वास्तविकता का रग था कि उसपर विश्वास न करना कठिन था। गौस खाँ के साथ गाँववालो का शत्रुभाव, बेगार के अवसरो पर उनसे हुज्जत और तकरार, चरावर को रोक देने पर गाँववालो का उत्तेजित हो जाना, रात को सब आदमियो का मिल कर गौस खाँ का वध करने की तदवीरें सोचना, इन सब बातो की अत्यन्त विशद विवेचना की गयी थी। मुख्यत षड्यन्त्र-रचना का वर्णन ऐसा मूर्तिमान और मार्मिक था कि उस पर चाणक्य भी मुग्ध हो जाता। रात को नौ बजे मनोहर ने आ कर कादिर खाँ से कहा, बैठे क्या हो ? चरावर रोक दी गयी, चुप लगाने से काम न चलेगा, इसका उपाय करो। कादिर खाँ चौकी पर बैठे नमाज पढ़ने के लिए वजू कर रहे थे, बोले, बैठ जाओ, अकेले हम-तुम क्या बना लेंगे ? जब

मुसल्लम गाँव की राय हो तभी कुछ हो सकता है, नही तो इसी तरह कारिन्दा हमको दवाता जायगा। एक दिन खेत से भी बेदखल कर देगा, जाके दुखरन भगत को वुला लाओ। मनोहर दुखरन के घर गये। मैं भी मनोहर के साथ गया। दुखरन ने कहा, मेरे पैर मे काँटा लग गया है, मैं चल नही सकता। खाँ साहव को यही वुला लाओ। मैं जा कर कादिर खाँ को बुला लाया। मनोहर, डपटसिंह और कल्लू को बुला लाये। कादिर खाँ ने कहा, हम लोग गँवार है, अपने मन से कोई बातें करेंगे तो न जाने चित पडे या पट, चल कर बाबू प्रेमशंकर से सलाह लो। डपटसिंह बोले, उनके पास जाने की क्या जरूरत है? मैं जा कर उन्हे बुला लाऊँगा। दूसरे दिन साँझ को बाबू प्रेमशकर एक्के पर सवार हो कर आये। मैं दूकान बढा रहा था। मनोहर ने आ कर कहा, चलो वाबू साहव आये है। मैं मनोहर के साथ कादिर के घर गया। प्रेमशकर ने कहा, ज्ञान वावू मेरे भाई है तो क्या, ऐसे भाई की गर्दन काट लेनी चाहिए। कादिर ने कहा, हमारी उनसे कोई दुश्मनी नही है, हमारा वैर तो गौस खाँ से है। इस हत्यारे ने इस गाँव मे हम लोगो का रहना मुश्किल कर दिया है। अब आप वताइए, हम क्या करे? मनोहर ने कहा, यह बेइज्जती नही सही जाती। प्रेमशकर बोले, मर्द हो कर के इतना अपमान क्यो सहते हो? एक हाथ मे तो काम तमाम होता है। कादिर खाँ ने कहा, कर तो डाले, पर सारा गाँव बँध जायगा। प्रेमशकर बोले, ऐसी नादानी क्यो करो? सब मिल कर नाम किसी एक आदमी का ले लो। अकेले आदमी का यह काम भी नही है। तीन-तीन प्यादे हैं। गौस खाँ खुद वलवान आदमी है। कादिर खाँ बोले, जो कही सारा गाँव फँस जाय तो? प्रेमशकर ने कहा, ऐसा क्या अन्धेर है? वकील लोग किस मरज की दवा है? इसी वीच मे मैं खाने घर चला आया। प्रेमशकर भी रात को ही एक्के पर लौट गये। रात को १२-१ बजे मुझे कुछ खटका हुआ। घर के चारो ओर घूमने लगा कि इतने मे कई आदमी जाते दिखायी दिये। मैं समझ गया कि हमारे ही साथी हैं। कादिर का नाम ले कर पुकारा। कादिर ने कहा, सामने से हट जाओ, टोक मत मारो, चुपके से जा कर पड रहो। कादिर खाँ से अव न रहा गया। विसेसर साह की ओर कठोर नेत्रो से देख कर कहा, विसेसर ऊपर अल्लाह है, कुछ उनका भी डर है?

सरकारी वकील ने कहा, चुप रहो, नही तो गवाह पर वेजा दवाव डालने का दूसरा दफा लग जायेगा।

सन्ध्या समय ये लोग हिरासत मे बैठे हुए इधर-उधर की वाते कर रहे थे। मनोहर अलग एक कोठरी मे रखा गया था। कादिर ने प्रेमशकर से कहा, मालिक आप तो हकनाहक इस आफत मे फँसे। हम लोग ऐसे अभागे है कि जो हमारी मदद करता है उसपर भी आँच आ जाती है। इतनी उमिर गुजर गयी, सैकडो पढे-लिखे आदमियो को देखा, पर आपके सिवा और कोई ऐसा न मिला, जिसने हमारी गरदन पर छूरी न चलायी हो। विद्या की सारी दुनिया बडाई करती है। हमे तो ऐसा जान पडता है कि विद्या पढ कर आदमी और भी छली-कपटी हो जाता है। वह गरीब का

गला रेतना सिखा देती है। आपको अल्लाह ने सच्ची विद्या दी थी। उसके पीछे लोग आपके भी दुश्मन हो गये।

दुखरन—यह सब मनोहर की करनी है। गाँव भर को डुवा दिया।

बलराज—न जाने उनके सिर कौन सा भूत सवार हो गया ? गुस्सा हमें भी आया था, लेकिन उनको तो जैसे नशा चढ़ जाय।

डपट—बरावर की विसात ही क्या थी। उसके पीछे यह तूफान !

कादिर—यारो ? ऐसी बातें न करो। बेचारे ने तुम लोगों के लिए, तुम्हारे हक की रक्षा करने के लिए यह सब कुछ किया। उसकी हिम्मत और जीवट की तारीफ तो नहीं करते और उसकी बुराई करते हो। हम सब के सब कायर हैं, वही एक मर्द है।

कल्लू—बिसेसर की मति ही उल्टी हो गयी।

दुखरन—बयान क्या देता है जैसे कोई तोता पढ़ रहा है।

डपट—क्या जाने किसके लिए इतना डरता है ? कोई आगे पीछे भी तो नहीं है।

कल्लू—अगर यहाँ से छूटा तो बच्चू के मुँह में कालिख लगा के गाँव भर में घुमाऊँगा।

डपट—ऐसा कंजूस है कि भिकमंगे को देखता है तो छछुन्दर की तरह घर में जाकर दबक जाता है।

कल्लू—सहुआइन उसकी भी नानी है। बिसेसर तो चाहे एक कौड़ी फेंक भी दे, वह अकेली दूकान पर रहती है तो गालियाँ छोड़ और कुछ नहीं देती। पैसे का सौदा लेने जाओ तो घेले का देती है। ऐसी डाँड़ी मारती है कि कोई परख ही नहीं सकता।

बलराज—क्यों कादिर दादा, कालेपानी जा कर लोग खेती-बारी करते हैं न ?

कादिर—सुना है वहाँ ऊख बहुत होती है।

बलराज—तब तो चाँदी है। खूब ऊख बोयेंगे।

कल्लू—लेकिन दादा, तुम चौदह बरस थोड़े ही जियोगे। तुम्हारी कबर कालेपानी में ही बनेगी।

कादिर—हम तो लौट आना चाहते हैं, जिसमें अपनी हड़ावर यहीं दफन हो। वहाँ तुम लोग न जाने मिट्टी की क्या गत करो।

दुखरन—भाई, मरने-जीने की बात मत करो। मनाओ कि भगवान सबको जीता-जागता फिर अपने बाल बच्चों में ले आये।

बलराज—कहते हैं वहाँ पानी बहुत लगता है।

दुखरन—यह सब तुम्हारे बाप की करनी है। मारा, गाँव भर का सत्यानाश कर दिया।

अकस्मात् कमरे का द्वार खुला और जेल के दारोगा ने आ कर कहा, बाबू प्रेम-शंकर, आपके ऊपर से सरकार ने मुकदमा उठा लिया। आप बरी हो गये। आपके घरवाले बाहर खड़े हैं।

प्रेमशंकर को ग्रामीणों के सरल वार्तालाप में बड़ा आनन्द आ रहा था। चौंक पड़े। ज्ञानशंकर और ज्वालासिंह के बयान उनके अनुकूल हुए थे, लेकिन यह आशय

न था कि वह इस आधार पर निर्दोष ठहराये जायँगे। वह तुरन्त ताड़ गये कि यह चचा साहब की करामात है, और वास्तव में था भी यही। प्रभाशंकर को जब वकीलों से कोई आशा न रही तो उन्होंने कौशल से काम लिया और दो ढाई हजार रुपयों का बलिदान करके यह वरदान पाया था। रिश्वत, खुशामद, मिथ्यालाप यह सभी उनकी दृष्टि में हिरासत से बचने के लिए क्षम्य था।

प्रेमशंकर ने जेलर से कहा, यदि नियमों के विरुद्ध न हो तो कम से कम मुझे रात भर और यहाँ रहने की आज्ञा दीजिए। जेलर ने विस्मित हो कर कहा, यह आप क्या कहते हैं? आपका स्वागत करने के लिए सैकड़ों आदमी बाहर खड़े हैं।

प्रेमशंकर ने विचार किया, इन गरीबों को मेरे यहाँ रहने से कितना ढाढ़स था। कदाचित् उन्हें आशा थी कि इनके साथ हम लोग भी बरी हो जायँगे। मेरे चले जाने से ये सब निराश हो जायँगे। उन्हें तसल्ली देते हुए बोले, भाइयो, मुझे विवश हो कर तुम्हारा साथ छोड़ना पड़ रहा है, पर मेरा हृदय आपके ही साथ रहेगा। सम्भव है, बाहर आ कर मैं आपकी कुछ सेवा कर सकूँ। मैं प्रति दिन आपसे मिलता रहूँगा।

साथियों से विदा हो कर ज्यों ही वह फाटक पर पहुँचे कि लाला प्रभाशंकर ने दौड़ कर उन्हें छाती से लगा लिया। जेल के चपरासियों ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया और इनाम माँगने लगे। प्रभाशंकर ने हरएक को दो-दो रुपए दिये। बग्घी चलने ही वाली थी कि बाबू ज्वालासिंह अपनी मोटर साइकिल पर आ पहुँचे और प्रेमशंकर के गले लिपट गये। प्रभाशंकर चाहते थे कि दोनों मित्रों को अपने घर ले जायें और उनकी दावत करें किन्तु प्रेमशंकर ने पहले हाजीपुर जा कर फिर लौटने का निश्चय किया। ज्यों ही बग्घी बगीचे में पहुँची, हलवाहे और माली सब दौड़े और प्रेमशंकर के चारों ओर खड़े हो गये।

प्रेम—क्यों जी दमड़ी, जुताई हो रही है न?

दमड़ी ने लज्जित हो कर कहा, मालिक, औरों की तो नहीं कहता, पर मेरा मन काम करने में जरा भी नहीं लगता था। यही चिन्ता लगी रहती थी कि आप न जाने कैसे होंगे (निकट आ कर) भोला कल एक टोकरी अमरूद तोड़ कर बेच लाया है।

भोला—दमड़ी तुमने सरकार के कान में कुछ कहा तो ठीक न होगा। मुझे जानते हो कि नहीं? यहाँ जेल से नहीं डरते। जो कुछ कहना हो मुँह पर बुरा-भला कहो।

दमड़ी—तो तुम नाहक जामे से बाहर हो गये। तुम्हें कोई कुछ थोड़े ही कहता है।

भोला—तुमने कानाफूसी की क्यों? मेरी बात न कही होगी, किसी और की कही होगी। तुम कौन होते हो किसी की चुगली खानेवाले?

मस्ता कोरी ने समझाया—भोला, तुम खामखा झगड़ा करने लगते हो। तुमसे क्या मतलब? जिसके जी में आता है मालिक से कहता है। तुम्हें क्यों बुरा लगता है?

भोला—चुगली खाने चले हैं, कुछ काम करे न धन्धा, सारे दिन नशा खाये पड़े रहते हैं इनका मुँह है कि दूसरों की शिकायत करें।

इतने मे भवानीसिंह भी आ पहुँचे, जो मुखिया थे। यह विवाद सुना तो बोले—क्यो लडे मरते हो यारो, क्या फिर दिन न मिलेगा ? मालिक से कुशल-क्षेम पूछना तो दूर रहा, कुछ सेवा-टहल तो हो न सकी, लगे आपस मे तकरार करने।

इस सामयिक चेतावनी ने सबको शान्त कर दिया। कोई दौड कर झोपडे मे झाड़ू लगाने लगा, किसी ने पलँग डाल दिया, कोई मोढे निकाल लाया, कोई दौड कर पानी लाया, कोई लालटेन जलाने लगा। भवानीसिंह अपने घर से दूव लाये। जब तीनो सज्जन जलपान करके आराम से बैठे तो ज्वालासिंह ने कहा, इन आदमियो से आप क्योकर काम लेते है ? मुझे तो सभी निकम्मे जान पडते हैं।

प्रेमशकर—जी नही, यह सब लडते है तो क्या, खूब मन लगा कर काम करते है। दिन भर के लिए जितना काम बता देता हूँ उतना दोपहर तक ही कर डालते हैं।

लाला प्रभाशकर जी से डर रहे थे कि कही प्रेमशकर अपने बरी हो जाने के विषय मे कुछ पूछ न बैठे। वह इस रहस्य को गुप्त ही रखना चाहते थे। इसलिए वह ज्वालासिंह से बातें करने लगे। जब से इनकी बदली हो गयी थी, इन्हे शान्ति नसीब न हुई थी। ऊपरवाले नाराज, नीचेवाले नाराज, जमीदार नाराज। बात-बात पर जवाब तलब होते थे। एक बार मुअत्तल भी होना पडा था। कितना ही चाहा कि यहाँ से कही और भेज दिया जाऊँ, पर सफल न हुए। नौकरी से तग आ गये थे और अब इस्तीफा देने का विचार कर रहे थे। प्रभाशकर ने कहा, भूल कर भी इस्तीफा देने का इरादा न करना, यह कोई मामूली ओहदा नही है। इसी ओहदे के लिए बडे-बडे रईसो और अमीरो के माथे घिसे जाते है, और फिर भी कामना नही पूरी होती। यह सम्मान और अधिकार आपको और कहाँ प्राप्त हो सकता है ?

ज्वाला—लेकिन इस सम्मान और अधिकार के लिए अपनी आत्मा का कितना हनन करना पडता है ? अगर नि स्पृह भाव से अपना काम कीजिए तो बडे-बडे लोग पीछे पड जाते है। अपने सिद्धान्तो का स्वाधीनता से पालन कीजिए तो हाकिम लोग त्यौरियाँ बदलते हैं। यहाँ उसको सफलता होती है जो खुशामदी और चलता हुआ है, जिसे सिद्धान्तो की परवाह नही। मैंने तो आज तक किसी सहृदय पुरुष को फलते-फूलते नही देखा। बस, शतरजबाजो की चाँदी है। मैंने अच्छी तरह आजमा कर देख लिया। यहाँ मेरा निर्वाह नही है। अब तो यही विचार है कि इस्तीफा दे कर इसी बगीचे मे आ बसूँ और बाबू प्रेमशकर के साथ जीवन व्यतीत करूँ, अगर इन्हे कोई आपत्ति न हो।

प्रेमशकर—आप शौक से आइए, लेकिन खूब दृढ हो कर आइएगा।

ज्वालासिंह—अगर कुछ कोर-कसर होगी तो यहाँ पूरी हो जायगी।

प्रेमशकर ने अपने आदमियो से खेती-बारी के सम्बन्ध मे कुछ बातें की और ८ बजते-बजते लाला प्रभाशकर के घर चले।

३१

रात के १० बजे थे। ज्वालासिंह तो भोजन करके प्रभाशकर के दीवानखाने मे ही लेटे, लेकिन प्रेमशकर को मच्छरो ने इतना तग किया कि नीद न आयी। कुछ देर तक तो वह पखा झलते रहे, अन्त को जब भीतर न रहा गया तो व्याकुल हो बाहर आ कर सहन मे टहलने लगे। सहन की दूसरी ओर ज्ञानशकर का द्वार था। चारो ओर सन्नाटा छाया हुआ था नीरवता ने प्रेमशंकर की विचार-ध्वनि को गुञ्जित कर दिया। सोचने लगे, मेरा जीवन कितना विचित्र है! श्रद्धा जैसी देवी को पा कर भी मैं दाम्पत्य-सुख से वचित हूँ। सामने श्रद्धा का शयनगृह है, पर मैं उधर ताकने का साहस नही कर सकता। वह इस समय कोई धर्म-ग्रन्थ पढ रही होगी, पर मुझे उसकी कोमल वाणी सुनने का अधिकार नही।

अकस्मात् उन्हे ज्ञानशंकर के द्वार से कोई स्त्री निकलती हुई दिखायी दी। उन्होंने समझा मजूरनी होगी, काम-धन्धे से छुट्टी पा अपने घर जानी होगी। लेकिन नही, यह सिर से पैर तक चादर ओढे हुए है। महरियाँ इतनी लज्जाशील नही होती। फिर यह कौन है? चाल तो श्रद्धा की सी है, कद भी वही है। पर इतनी रात गये, इस अन्धकार मे श्रद्धा कहाँ जायेगी? नही, कोई और होगी। मुझे भ्रम हो रहा है। इस रहस्य को खोलना चाहिए। यद्यपि प्रेमशंकर को एक अपरिचित और अकेली स्त्री के पीछे-पीछे भेदिया बन कर चलना सर्वथा अनुचित जान पडता था, पर इस गाँठ को खोलने की इच्छा इतनी प्रबल थी कि वह उसे रोक न सके।

कुछ दूर तक गली मे चलने के बाद वह स्त्री सडक पर आ पहुँची और दशाश्वमेध घाट की ओर चली। सडक पर लालटेने जल रही थी। रास्ता बन्द न था, पर बहुत कम लोग चलते दिखायी देते थे। प्रेमशकर को उस स्त्री की चाल से अब पूरा विश्वास हो गया कि वह श्रद्धा है। उनके आश्चर्य की कोई सीमा न रही। यह इतनी रात गये इस तरफ कहाँ जाती है? उन्हे उस पर कोई सन्देह न हुआ। वे उसके पातिव्रत को अखड और अविचल समझते थे। पर इस विश्वास ने उनकी प्रश्नात्मक शका को और भी उत्तेजित कर दिया। उसके पीछे-पीछे चलते रहे, यहाँ तक कि गगातट की ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ आ पहुँची। गली मे अँधेरा था, पर कही-कही खिड़कियो से प्रकाश ज्योति आ रही थी, मानो कोई सोता हुआ आदमी स्वप्न देख रहा हो। पग-पग पर साँड़ो का सामना होता था। कही-कही कुत्ते भूमि पर पडी हुई पत्तलो को चाट रहे थे। श्रद्धा सीढ़ियो से उतर कर गगातट पर जा पहुँची। अब प्रेमशकर को भय हुआ, कही इसने अपने मन मे कुछ और तो नही ठानी है। उनका हृदय काँपने लगा। वह लपक कर सीढ़ियो से उतरे और श्रद्धा से केवल इतनी दूर खड़े हो गये कि तनिक खटका होते ही एक छलाँग मे उसके पास जा पहुँचे। गगा निद्रा मे मग्न थी। कही-कही जल-जन्तुओ के छपकने की आवाज आ जाती थी। सीढियो पर कितने ही भिक्षुक पडे सो रहे थे। प्रेमशकर को इस समय असह्य ग्लानि-वेदना हो

रही थी। यह मेरी क्रूरता—मेरी हृदय-शून्यता का फल है। मैंने अपने सिद्धान्त-प्रेम और आत्म-गौरव के घमड में इसके विचारो की अवहेलना की, इसके मनोभावो को पैरो से कुचला, इसकी धर्मनिष्ठा को तुच्छ समझा। जव सारी विरादरी मुझे दूध की मक्खी समझ रही है, जव मेरे विषय मे नाना प्रकार के अपवाद फैले हुए हैं, जब मैं विधर्मी, नास्तिक और जातिच्युत समझा जा रहा हूँ, तव एक धार्मिक वृत्ति की महिला का मुझसे विमुख हो जाना सर्वथा स्वाभाविक था। न जाने कितनी हृदय-वेदना, कितने आत्मिक कष्ट और मानसिक उत्ताप के वाद आज इस अवला ने ऐसा भयकर सकल्प किया है।

श्रद्धा कई मिनट जलतट पर चुपचाप खडी रही। तव वह धीरे-धीरे पानी मे उतरी। प्रेमशंकर ने देखा अव विलम्व करने का अवसर नही है। उन्होंने एक छलाँग मारी और अन्तिम सीढ़ी पर खडे हो कर श्रद्धा को जोर से पकड लिया। श्रद्धा चौंक पडी, सशक हो कर वोली—कौन है, दूर हट!

प्रेमशकर ने सदोष नेत्रो से देख कर कहा, मैं हूँ अभागा प्रेमशंकर। श्रद्धा ने पति की ओर ध्यान से देखा और भयभीत हो कर वोली, आप—यहाँ?

प्रेमशकर—हाँ, आज अदालत ने मुझे वरी कर दिया। चचा साहव के यहाँ दावत थी। भोजन करके निकला तो तुम्हे इधर आते देखा। साथ हो लिया। अब ईश्वर के लिए पानी से निकलो। मुझपर दया करो।

श्रद्धा पानी से निकल कर जीने पर आयी और कर जोड कर गगा को देखती हुई वोली, माता, तुमने मेरी विनती सुन ली, किस मुँह से तुम्हारा यश गाऊँ। इस अभागिनी को तुमने तार दिया।

प्रेम—तुम अँधेरे मे इतनी दूर कैसे चली आयी? डर नही लगा?

श्रद्धा—मैं तो यहाँ कई दिनो से आती हूँ, डर किस वात का?

प्रेम—क्या यहाँ के वदमाशो का हाल नही जानती?

श्रद्धा ने कमर से छुरा निकाल लिया और वोली, मेरी रक्षा के लिए यह काफी है। संसार मे जव दूसरा कोई सहारा नही, होता तो आदमी निर्भय हो जाता है।

प्रेम—घर के लोग तुम्हे यो आते देख कर अपने मन मे क्या कहते होगे?

श्रद्धा—जो चाहे समझें, किसी के मन पर मेरा क्या वश है? पहले लोक-लाज का भय था। अव वह भय नही रहा, उसका मर्म जान गयी। वह रेशम का जाल है, देखने मे सुन्दर, किन्तु कितना जटिल। वह वहुधा धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म वना देता है।

प्रेमशकर का हृदय उछलने लगा, बोले, ईश्वर, मेरा क्या भाग्य-चन्द्र फिर उदित होगा? श्रद्धा, मैं तो तुमसे सत्य कहता हूँ मेरी कितनी ही वार इच्छा हुई कि फिर अमेरिका लौट जाऊँ; किन्तु आशा का एक अत्यन्त सूक्ष्म, काल्पनिक वन्धन पैरों मे वेडियों का काम करता रहा। मैं सदैव अपने चारो ओर तुम्हारे प्रेम और सत्य व्रत को फैले हुए देखता हूँ। मेरे आत्मिक अन्धकार मे यही ज्योति दीपक का काम देती

है। मैं तुम्हारी सदिच्छाओ को किसी सघन वृक्ष की भाँति अपने ऊपर छाया डालते हुए अनुभव करता हूँ। मुझे तुम्हारी अकृपा मे दया, तुम्हारी निष्ठुरता मे हार्दिक स्नेह, तुम्हारी भक्ति मे अनुराग छिपा हुआ दीखता है। अब मुझे ज्ञात हुआ है कि मेरे ही उद्धार के लिये तुम यह अनुष्ठान कर रही हो। यदि मेरा प्रेम निष्काम होता तो मैं इस आत्मिक सयोग पर ही सतोष करता, किन्तु मैं रूप और रस का दास हूँ, इच्छाओ और वासनाओ का गुलाम, मुझे इस आत्मानुराग से सतोष नही होता।

श्रद्धा—मेरे मन से यह शका कभी दूर नही होती कि आपसे मेरा मिलना अधर्म है और अधर्म से मेरा हृदय काँप उठता है।

प्रेम—यह शका कैसे शान्त होगी?

श्रद्धा—आप जान कर मुझसे क्यो पूछते हैं?

प्रेम—तुम्हारे मुँह से सुनना चाहता हूँ।

श्रद्धा—प्रायश्चित से।

प्रेम—वही प्रायश्चित जिसका विधान स्मृतियो मे है?

श्रद्धा—हाँ, वही।

प्रेम—क्या तुम्हे विश्वास है कि कई नदियो मे नहाने से, कई लकडियो को जलाने से, घृणित वस्तुओ के खाने से, ब्राह्मणो को खिलाने से मेरी अपवित्रता जाती रहेगी? खेद है कि तुम इतनी विवेकशील हो कर इतनी मिथ्यावादिनी हो!

श्रद्धा का एक हाथ प्रेमशकर के हाथ मे था। यह कथन सुनते ही उसने हाथ खीच लिया और दोनो अँगूठो से दोनो कान बन्द करते हुए बोली, ईश्वर के लिए मेरे सामने शास्त्रो की निंदा मत करो। हमारे ऋषि-मुनियो ने शास्त्रो मे जो कुछ लिख दिया है वह हमे मानना चाहिए। उनमे मीन-मेष निकालना हमारे लिये उचित नही। हममे इतनी बुद्धि कहाँ है कि शास्त्रो के सभी आदेशो को समझ सकें? उनको मानने मे ही हमारा कल्याण है।

प्रेम—मुझसे वह काम करने को कहती हो जो मेरे सिद्धान्त और विश्वास के सर्वथा विरुद्ध है। मेरा मन इसे कदापि स्वीकार नही करता कि विदेश-यात्रा कोई पाप है। ऐसी दशा मे प्रायश्चित की शर्त लगा कर तुम मुझपर बडा अन्याय कर रही हो।

श्रद्धा ने लम्बी साँस खीच कर कहा, आपके चित्त से अभी अहकार नही मिटा। जब तक इसे न मिटाइएगा, ऋषियो की बाते आपकी समझ में न आयेगी।

यह कह कर वह सीढियो पर चढने लगी। प्रेमशंकर कुछ न बोल सके। उनको रोकने का भी साहस न हुआ। श्रद्धा देखते-देखते सामने गली मे घुसी और अन्धकार मे विलुप्त हो गयी।

प्रेमशकर कई मिनट तक वही चुपचाप खडे रहे, तब वह सहसा इसी अर्द्ध चैतन्यावस्था से जागे, जैसे कोई रोगी देर तक मूर्छित रहने के बाद चौक पडे। अपनी अवस्था का ज्ञान हुआ। हा! अवसर हाथ से निकल गया। मैंने विचार को मनुष्य से उत्तम समझा। सिद्धान्त मनुष्य के लिए है, मनुष्य सिद्धान्तो के लिए नही है। मैं इतना भी

न समझ सका ! माना, प्रायश्चित पर मेरा विश्वास नही है, पर उससे दो प्राणियो का जीवन सुखमय हो सकता था। इस सिद्धान्त-प्रेम ने दोनो का ही सर्वनाश कर दिया। क्यो न चलकर श्रद्धा से कह दूँ कि मुझे प्रायश्चित करना अगीकार है। अभी वहुत दूर नही गई होगी। उसका विश्वास मिथ्या ही सही, पर कितना दृढ़ है! कितनी नि स्वार्थ पति-भक्ति है, कितनी अविचल धर्मनिष्ठा! प्रेमशकर इन्ही विचारो मे डूबे हुए थे कि यकायक उन्होने दो आदमियो को ऊपर से उतरते देखा। गहरे विचार के वाद मस्तिष्क को विश्राम की इच्छा होती है। वह उन दोनो मनुष्यो की ओर ध्यान से देखने लगे। यह कौन हैं? इस समय यहाँ क्या करने आये हैं? शनै शनै वह दोनो नीचे आये और प्रेमशकर से कुछ दूर खडे हो गये। प्रेमशंकर ने उन दोनो की वाते सुनी, आवाज पहचान गये। यह दोनो पद्मशकर और तेजशकर थे!

तेजशकर ने कहा, तुम्हारी बुरी आदन है कि जिससे होता है उसी से इन बातो की चर्चा करने लगते हो। यह सब वाते गुप्त रखने की हैं। खोल देने से उसका असर जाता रहता है।

पद्म—मैंने तो किसी से नही कहा।

तेज—क्यो? आज ही वाबू ज्वाला सिंह से कहने लगे कि हम लोग साधु हो जायेंगे। कई दिन हुए अम्माँ से यही वात कही थी। इस तरह वकते फिरने से क्या फायदा? हम लोग साधु होगे अवश्य, पर अभी नही। अभी इस 'बीसा' को सिद्ध कर लो, घर मे लाख-दो-लाख रुपये रख दो, बस निश्चिन्त होकर निकल खडे हो। भैया घर की कुछ खोज-खबर लेते ही नही। हम लोग भी निकल जाये तो लालाजी इतने प्राणियो का पालन-पोषण कैसे करेगे? इम्तहान तो मेरा न दिया जायगा। कौन भूगोल-इतिहास रटता फिरे और मैट्रिक हो ही गये तो कौन राजा हो जायेंगे? वहुत होगा कही १५), २०) के नौकर हो जायेंगे। तीन साल से फेल हो रहे है, अब की तो यो ही कही पढने को जगह न मिलेगी।

पद्म—अच्छा, अव किसी से कुछ न कहूँगा। यह मन्त्र सिद्ध हो जाये तो चचा साहव मुकदमा जीत जायेंगे न?

तेज—अभी देखा नही क्या? लालाजी बीस हजार जमानत देते थे, पर मैजिस्ट्रेट न लेता था। तीन दिन यहाँ आसन जमाया और आज वह बिलकुल वरी हो गये। एक कौडी भी जमानत न देनी पडी।

पद्म—चचा साहव वडे अच्छे आदमी हैं। मुझे उनकी वहुत मुहब्बत लगती है। छोटे चाचा की ओर ताकते हुए डर मालूम होता है।

तेज—उन्होंने वडे चाचा को फँसाया है। डरता हूँ, नही तो एक सप्ताह-भर भी आसन लगाऊँ तो उनकी जान ही लेकर छोडूँ।

पद्म—मुझसे तो कभी वोलते ही नही। छोटी चाची का अदव करता हूँ, नही तो एक दिन माया को खूब पीटता।

तेज—अव की तो मायामी गोरखपुर जा रहा है। वही पढेगा।

पद्म—जब से मोटर आयी है माया का मिजाज ही नही मिलता। यहाँ कोई मोटर का भूखा नही है।

यो बाते करते हुए दोनो सीढी पर बैठ गये। प्रेमशकर उठकर उनके पास आये और कुछ कहना चाहते थे कि पद्मशकर ने चौककर जोर से चीख मारी और तेजशकर खडा होकर कुछ बुदबुदाने और छू-छू करने लगा। प्रेमशकर बोले, डरो मत, मैं हूँ।

तेज—चचा साहब! आप यहाँ इस वक्त कैसे आये?

पद्म—मुझे तो ऐसी शंका हुई कि कोई प्रेत आ गया।

प्रेम—तुम लोग इस पाखण्ड मे पडकर अपना समय व्यर्थ गँवा रहे हो। यह बडे जोखिम का काम है और तत्व कुछ नही। इन मन्त्रो को जगाकर तुम जीवन मे सफलता प्राप्त नही कर सकते। चित्त लगाकर पढो, उद्योग करो, सच्चरित्र बनो। धन और कीर्ति का यही महामन्त्र है। यहाँ से उठो।

तीनो आदमी घर की ओर चले। रास्ते-भर प्रेमशंकर दोनों किशोरो को समझाते रहे। घर पहुँचकर वे फिर निद्रा देवी की आराधना करने लगे, मच्छरो की जगह अब उनके सामने एक और बाधा आ खडी हुई। यह श्रद्धा का अन्तिम वाक्य था, 'तुम्हारे चित्त से अभी अहकार नही मिटा।' प्रेमशकर बडी निर्दयता से अपने कृत्यो का समीक्षण कर रहे थे। अपने अन्त करण के एक-एक परदे को खोलकर देख रहे थे और प्रतिक्षण उन्हे विश्वास होता जाता था कि मैं वास्तव मे अहकार का पुतला हूँ। वह अपने किसी काम को, किसी सकल्प को अहकार-रहित न पाते थे। उनकी दया और दीन-भक्ति मे भी अहकार छिपा हुआ जान पडता था। उन्हे शका हो रही थी, क्या सिद्धान्त-प्रेम अहकार का दूसरा स्वरूप है। इसके विपरीत श्रद्धा की धर्मपरायणता मे अहकार की गन्ध तक न थी।

इतने मे ज्वालासिह ने आकर कहा, क्या सोते ही रहिएगा? सवेरा हो गया।

प्रेमशकर ने चौक कर द्वार की ओर देखा तो वास्तव मे दिन निकल आया था। बोले, मुझे तो मच्छरो के मारे नीद ही नही आयी! आँखे तक न झपकी।

ज्वाला—और यहाँ एक ही करवट मे भोर हो गया।

प्रेमशकर उठ कर हाथ-मुँह धोने लगे। आज उन्हे बहुत काम करना था। ज्वालासिह भी स्नानादि से निवृत्त हुए। अभी दोनो आदमी कपडे पहन ही रहे थे कि तेजशकर जलपान के लिए ताजा हलुआ, सेब का मुरब्बा, तले हुए पिस्ते और बादाम तथा गर्म दूध लाया। ज्वालासिह ने कहा, आपके चचा साहब बडे मेहमाननवाज आदमी है। ऐसा जान पडता है कि आतिथ्य-सत्कार मे उन्हे हार्दिक आनन्द आता है और एक हम है कि मेहमान की सूरत देखते ही मानो दब जाते है। उनका जो कुछ सत्कार करते है वह केवल प्रथा-पालन के लिए, मन से यही चाहते है कि किसी तरह यह व्याधि सिर से टले।

प्रेम—वे पवित्र आत्माएँ अब ससार से उठती जाती हैं। अब तो जिधर देखिए

उधर स्वार्थ सेवा का आधिपत्य है। चचा साहब जैसा भोजन करते है, वैसा अच्छे-अच्छे रईसो को भी मयस्सर नही होता। वह स्वय पाक-शास्त्र मे निपुण है। लेकिन खाने का इतना शौक नही है, जितना खिलाने का। मेरा तो जी चाहता है कि अवकाश मिले तो यह विद्या उनसे सीखूँ।

दोनो मित्रो ने जलपान किया और लाला प्रभाशकर से विदा हो कर घर से निकले। ज्वालासिंह ने कहा, कोई वकील ठीक करना चाहिए।

प्रेम—हाँ, यही सबसे जरूरी काम है। देखे, कोई महाशय मिलते है या नही। चचा साहब को तो लोगो ने साफ जवाब दे दिया।

ज्वाला—डाक्टर इर्फानअली से मेरा खूब परिचय है। आइए, पहले वही चले।

प्रेम—वह तो शायद ही राजी हो। ज्ञानशकर से उनकी बातचीत पहले ही हो चुकी है।

ज्वाला—अभी वकालतनामा तो दाखिल नही हुआ। ज्ञानशकर ऐसे नादान नही है कि ख्वाहमख्वाह हजारो रुपयो का खर्च उठाये। उनकी जो इच्छा थी वह पुलिस के हाथो पूरी हुई जाती है। सारा लखनपुर चक्कर मे फँस गया। अब उन्हे वकील रख कर क्या करना है?

डाक्टर महोदय अपने बाग मे टहल रहे थे। दोनो सज्जनो को देखते ही बढकर हाथ मिलाया और बँगले मे ले गये।

डाक्टर—(ज्वालासिंह से) आपसे तो एक मुद्दत के बाद मुलाकात हुई है। आजकल तो आप हरदोई मे हैं न? आपके बयान ने तो पुलिसवालो की बोलती ही बन्द कर दी। मगर याद रखिए, इसका परिणाम आपको उठाना पडेगा।

ज्वाला—उसकी नौबत ही न आयेगी। इन दो-रगी चालो से नफरत हो गयी। इस्तीफा देने का फैसला कर चुका हूँ।

डाक्टर—हालत ही ऐसी है कि कोई खुददार आदमी उसे गवारा नही कर सकता। बस यहाँ उन लोगो की चाँदी है जिनके कान्शस मुरदा हो गये है। मेरे ही पेशे को लीजिए, कहा जाता है कि यह आजाद पेशा है। लेकिन लाला प्रभाशकर को सारे शहर मे (प्रेमशकर की तरफ देख कर) आपकी पैरवी करने के लिए कोई वकील न मिला। मालूम नही, वह मेरे यहाँ तशरीफ क्यो नही लाये।

ज्वाला—उस गलती की तलाफी (प्रायश्चित) करने के लिए हम लोग हाजिर हुए है। गरीब किसानो पर आपको रहम करना पडेगा।

डाक्टर—मैं इस खिदमत के लिए हाजिर हूँ। पुलिस से मेरी पुरानी दुश्मनी है। ऐसे मुकदमो की मुझे तलाश रहती है। बस, यही मेरा आखिरी मुकदमा होगा। मुझे भी वकालत से नफरत हो गयी है। मैंने युनिवर्सिटी मे दरख्वास्त दी है। मजूर हो गयी तो बोरिया-बधना समेट कर उधर की राह लूँगा।

३२

डाक्टर इर्फान अली की बातों से प्रेमशंकर को बड़ी तसकीन हुई। मेहनताने के सम्बन्ध में उनसे कुछ रिआयत चाहते थे, लेकिन संकोचवश कुछ न कह सकते थे। इतने में हमारे पूर्व-परिचित सैयद ईजाद हुसेन ने कमरे में प्रवेश किया और ज्वाला-सिंह को देखते ही सलाम करके उनके सामने खड़े हो गये। उनके साथ एक हिन्दू युवक और भी था जो चाल ढाल से धनाढ्य जान पड़ता था।

ज्वालासिंह—बोले, आइए-आइए! मिजाज तो अच्छा है? आजकल किसकी पेशी में हैं?

ईजाद—जब से हुजूर तशरीफ ले गये, मैंने भी नौकरी को सलाम किया। जिन्दगी शिकमपर्वरी में गुजर जाती थी। इरादा हुआ कुछ दिन कौम की खिदमत करूँ। इसी गरज से अंजुमन इत्तहाद खोल रखी है। उसका मकसद हिन्दू मुसलमानों में मेल-जोल पैदा करना है। मैं इसे कौम का सबसे अहम (महत्त्वपूर्ण) मसला समझता हूँ। दोनों साहब अगर अंजुमन को अपने कदमों से मुमताज फरमायें तो मेरी खुशनसीबी ही है।

ज्वाला—आप वाकई कौम की सच्ची खिदमत कर रहे हैं।

ईजाद—शुक्र है, जनाब की जबान से यह कलाम निकला। यहाँ मुझे मियाँ "इत्तहाद" कह कर मेरा मजाक उड़ाया जाता है। अंजुमन पर आवाजें कसी जाती हैं। मुझे खुदमतलब और खुदगरज कहा जाता है। यह सब जिल्लत उठाता हूँ। दोनों कौमों के बाहमी निफाक को देखता हूँ तो जिगर के टुकड़े हो जाते हैं। वह मुहब्बत और एखलाक जिस पर कौम की हस्ती कायम है, रोज-ब-रोज गायब होती जाती है। अगर एक हिन्दू इसलाम पर यकीन लाता है तो शोर मच जाता है कि हिन्दू कौम तबाह हुई जाती है। अगर एक हिन्दू कोई ऊँचा ओहदा पा जाता है तो मुसलमानों में 'हाय! हाय!' की सदा उठने लगती है। कोई कहता है इसलाम गारत हुआ; कोई कहता है इसलाम की किश्ती भँवर में पड़ी। लाहौल विला कूअत! मजहब रूहाना तसकीन और नजात का जरिया है न कि दुनिया के कमाने का ढकोसला। इस बाहमी कुदूरत को हमारे मुल्ला और पण्डित और भी भड़काते हैं। मेरी आवाज नक्कारखाने में तूती की सदा है; पर कौमी दर्द, कौमी गैरत चुप नहीं बैठने देती। गला फाड़-फाड़ चिल्लाता हूँ, कोई सुने या न सुने। अंजुमन में इस वक्त सौ मेम्बर हैं। कोई सत्तर हिन्दू साहबान हैं और तीस मुसलमान। उनके इन्तजाम से एक कुतुब-खाना और मद-रसा चलता है। अंजुमन का इरादा है कि एक इत्तहादी इबादतगाह बनाया जाय, जिसके एक जानिब शिवाला हो और दूसरे जानिब मस्जिद। एक यतीमखाने की बुनियाद डाल दी गयी है। दोनों कौमों के यतीमों को दाखिल किया जाता है। मगर अभी तक इमारतें नहीं बन सकीं। यह सब इरादे रुपये के मुहताज हैं। फकीर ने तो अपना सब कुछ निसार कर दिया। अब कौम को अख्तियार है, उसे चलाये या बन्द कर दे। क्यों डाक्टर साहब, मेरा हिब्बनामा आपने तैयार फरमाया?

इर्फान अली—कोई तातील आये तो इतमीनान से आपका काम करूँ।

प्रेमशंकर ने श्रद्धाभाव मे कहा, सैयद साहब की जात कौम के लिए वकंत है। अंजुमन के लिए १०० रु० की हकीर रकम नजर करता हूँ और यतीमखाने के लिए ५० मन गेहूँ, ५ मन शक्कर और २० रु० माहवार।

ईजाद हुसेन—खुदा आपको सवाव अता करे। अगर इजाजत हो तो जनाव का नाम भी ट्रस्टियो मे दाखिल कर लिया जाय!

प्रेमशंकर—मैं इस इज्जत के लायक नहीं हूँ।

ईजाद—नही जनाव, मेरी यह इल्तजा आपको कबूल करनी होगी। खुदा ने आपको एक दर्दमन्द दिल अता किया है। क्यो नहीं, आप लाला जटाशंकर मरहूम के खलक है जिनकी गरीबपरवरी से सारा शहर मालामाल होता था। यतीम आपको दुआएँ देंगे और अंजुमन हमेशा आपकी ममनून रहेगी।

इर्फान अली ने ज्वालासिंह से पूछा, आपका कयाम यहाँ कब तक रहेगा?

ज्वाला—कुछ अर्ज नही कर सकता। आया तो इस इरादे से हूँ कि बाबू प्रेमशंकर की गुलामी मे जिन्दगी गुजार दूँ। मुलाजमत से इस्तीफा देना तै कर चुका हूँ।

इर्फान अली—वल्लाह! आप दोनो साहव बडे जिन्दादिल है। दुआ कीजिए कि खुदा मुझे भी कनाअत (सन्तोष) की दौलत अता करे और मैं भी आप लोगो की सोहवत से फैज उठाऊँ।

ज्वालासिंह ने मुस्करा कर कहा, हमारे मुल्जिमो को बरी करा दीजिए, तब हम शवोरोज आपके लिए दुआएँ करेंगे।

इर्फान अली हँस कर वोले, शर्त तो टेढी है, मगर मजूर है। डाक्टर चोपडा का बयान अपने मुआफिक हो जाय तो बाजी अपनी है।

ईजाद—अब जरा इस गरीब की भी खबर लीजिए। मेरे मुहल्ले मे रहते है। कपडे की वडी दूकान है। इनके बडे भाई इनमे बेरुखी से पेश आते है। इन्हे जेब खर्च के लिए कुछ नही देते। हिसाब भी नही दिखाते, सारा नफा खुद हजम कर जाते है। कल इन्हे बहुत सख्त सुस्त कहा। जब इनका आधा हिस्सा है, तो क्यों न अपने हिस्से का दावा करें। यह वालिग है, अपना फायदा नुकसान समझते है, भाई की रोटियो पर नही रहना चाहते। बोलो, भाई मथुरादास, बारिस्टर साहब से कहो क्या कहते हो।

मथुरादास ने जमीन की तरफ देखा और ईजाद हुसेन की ओर कनखियो से ताकते हुए बोले—मैं यही चाहता हूँ कि भैया से आप मेरी राजी-खुशी करा दे। कल मैंने उन्हे गाली दे दी थी। अब वह कहते है, तू ही घर संभाल, मुझसे कोई वास्ता नही। कुंजिया सब फेंक दी है और दूकान पर नही जाते।

ईजादहुसेन ने मथुरादास की ओर वक्रदृष्टि से देख कर कहा, साफ-साफ अपना मतलब क्यों नही कहते? आप इनकी मन्शा समझ गये होंगे। अभी नातजुर्बेकार

आदमी, बातचीत करने की तमीज नही है, जभी तो रोज धक्के खाते है। इनकी मन्शा है कि आप दावा दायर करें, लेकिन यह मामले को तूल नही देना चाहते, सिर्फ अलहदा होना चाहते है। क्यो ठीक है न?

मथुरादास—(सरल भाव से) जी हाँ, बस यही चाहता हूँ कि उनसे मेरी राजी-खुशी हो जाय।

मुन्शी रमजानअली मुहर्रिर थे। ईजादहुसेन मथुरादास को उनके कमरे मे ले गये। वहाँ खासा दफ्तर था। कई आदमी बैठे लिख रहे थे। रमजान अली ने पूछा, कितने का दावा होगा?

ईजाद—यही कोई एक लाख का।

रमजान अली ने वकालतनामा लिखा। कोर्ट फीस, तलवाना, मेहनताना, नजराना आदि वसूल किये, जो मथुरादास ने ईजाद हुसेन की ओर अविश्वास की दृष्टि से देखते हुए दिये, जैसे कोई किसान पछता-पछता कर दक्षिणा के पैसे निकालता है। और तब दोनो सज्जनो ने घर की राह ली।

रास्ते मे मथुरादास ने कहा, आपने जबरदस्ती मुझे भैया से लड़ा दिया। सैकडो रुपये की चपत पड गयी और अभी कोर्ट फीस बाकी ही है।

ईजाद हुसेन बोले, एहसान तो न मानोगे कि भाई की गुलामी से आजाद होने का इन्तजाम कर दिया। आधी दूकान के मालिक बन कर बैठोगे, उल्टे और शिकायत करते हो।

३३

डाक्टर प्रियनाथ चोपडा बहुत ही उदार, विचारशील और सहृदय सज्जन थे। चिकित्सा का अच्छा ज्ञान था और सबसे बडी बात यह है कि उनका स्वभाव अत्यन्त कोमल और नम्र था। अगर रोगियो के हिस्से की शाक-भाजी, दूध-मक्खन, उपले-ईंधन का एक भाग उनके घर मे पहुँच जाता था तो यह केवल वहाँ की प्रथा थी। उनके पहले भी ऐसा ही व्यवहार होता था। उन्होंने इसमे हस्तक्षेप करने की जरूरत न समझी। इसलिए उन्हे कोई बदनाम न कर सकता था और न उन्हे स्वय ही इसमे कुछ दूषण दिखायी देता था। वह कम वेतनवाले कर्मचारियो से केवल आधी फीस लिया करते थे और रात की फीस भी मामूली ही रखी थी। उनके यहाँ सरकारी चिकित्सालय से मुफ्त दवा मिल जाती थी, इसीलिए उनकी अन्य डाक्टरो से अधिक चलती थी। इन कारणो से उनकी आमदनी बहुत अच्छी हो गयी थी। तीन साल पहले वह यहाँ आये थे तो पैरगाड़ी पर चलते थे, अब एक फिटन थी। बच्चो को हवा खिलाने के लिए छोटी-छोटी सेजगाडियाँ थी। फर्निचर और फर्श आदि अस्पताल के ही थे। नौकरो का वेतन भी गाँठ से न देना पड़ता था। पर इतनी मितव्ययिता पर भी वह अपनी अवस्था की तुलना जिले के सब-इजीनियर या कतिपय वकीलो से करते थे तो

उन्हें विशेष आनन्द न होता था। यद्यपि उन्हें कभी-कभी ऐसे अवसर मिलते थे जो उनकी आर्थिक कामनाओं को सफल कर सकते थे, पर उनकी विचारशीलता भी उन्हें बहकने न देती थी। कालेज छोड़ने के बाद कई वर्ष तक उन्होंने निर्भीकता से अपने कर्तव्य का पालन किया था; लेकिन जब कई बार पुलिस के विरुद्ध गवाही देने पर मुँह की खानी पड़ी तो चेत गये। वह नित्य पुलिस का रुख देख कर अपनी नीति स्थिर किया करते थे तिसपर भी अपने निदानों को पुलिस की इच्छा के अधीन रखने में उन्हें मानसिक कष्ट होता था। अतएव जब गौस खाँ की लाश उनके पास निरीक्षण के लिए भेजी गयी तो वह बड़े असमंजस में पड़े। निदान कहता था कि यह एक व्यक्ति का काम है, एक ही बार में काम तमाम हुआ है, किन्तु पुलिस की धारणा थी कि यह एक गुट्ट का काम है। बेचारे बड़ी दुविधा में पड़े हुए थे। यह महत्त्वपूर्ण अभियोग था। पुलिस ने अपनी सफलता के लिए कोई बात उठा न रखी थी। उसका खंडन करना उससे वैर मोल लेना था और अनुभव से सिद्ध हो गया था कि यह बहुत मँहगा सौदा है। गुनाह था मगर बेलज्जत। कई दिन तक इसी हैस-बैस में पड़े रहे; पर बुद्धि कुछ काम न करती थी। इसी बीच में एक दिन ज्ञानशंकर उनके पास रानी गायत्री देवी का एक पत्र और ५०० रु० पारितोषिक ले कर पहुँचे। रानी महोदया ने उनकी कीर्ति सुन कर अपनी गुण-ग्राहकता का परिचय दिया था। उनसे शिशु-पालन पर एक पुस्तक लिखवाना चाहती थीं। इसके अतिरिक्त उन्हें अपना गृह चिकित्सक भी नियत किया था और प्रत्येक 'विजिट' के लिए १०० रु० का वादा था। डाक्टर साहब फूले न समाये। ज्ञानशंकर की ओर अनुग्रहपूर्ण नेत्रों से देख कर बोले, श्रीमती जी की इस उदार गुण-ग्राहकता का धन्यवाद देने के लिए मेरे पास शब्द नहीं है। आप मुझे अपना सेवक समझिए। यह सब आपकी कृपादृष्टि है, नहीं तो मेरे जैसे हजारों डाक्टर पड़े हुए हैं। ज्ञानशंकर ने इसका यथोचित उत्तर दिया। इसके बाद देश-काल सम्बन्धी विषयों पर वार्तालाप होने लगा। डाक्टर साहब का दावा था कि मैं चिकित्सा में आई० एम० एस० वालों से कहीं कुशल हूँ और ऐसे असाध्य रोगियों का उद्धार कर चुका हूँ जिन्हें सर्वज्ञ आई० एम० एस० वालों ने जवाब दे दिया था। लेकिन फिर भी मुझे इस जीवन में इस पराधीनता से मुक्त होने की कोई आशा नहीं। मेरे भाग्य में विलायत के नव-शिक्षित युवकों की मातहती लिखी हुई है।

ज्ञानशंकर ने इसके उत्तर में देश की राजनीतिक परिस्थिति का उल्लेख किया। चलते समय उनसे बड़े निःस्वार्थ भाव से पूछा, लखनपुर के मामले में आपने क्या निश्चय किया? लाश तो आपके यहाँ आयी होगी?

प्रियनाथ—जी हाँ, लाश आयी थी। चिह्न से तो यह पूर्णतः सिद्ध होता है कि वह केवल एक आदमी का काम है, किन्तु पुलिस इसमें कई आदमियों को घसीटना चाहती है। आपसे क्या छिपाऊँ, पुलिस को असन्तुष्ट नहीं कर सकता, लेकिन यों निरपराधियों को फँसाते हुए आत्मा को घृणा होती है।

ज्ञानशंकर—सम्भव है आपने चिह्न से जो राय स्थिर की है वही मान्य हो, लेकिन

वास्तव मे यह हत्या कई आदमियो की साजिशो से हुई है। लखनपुर मेरा ही गाँव है।

प्रियनाथ—अच्छा, लखनपुर आपका ही गाँव है। तो यह कारिन्दा आपका नौकर था ?

ज्ञान—जी हाँ, और बडा स्वामिभक्त, अपने काम मे कुशल। गाँववालो को उससे केवल यही चिढ थी कि वह उनसे मिलता न था। प्रत्येक विषय मे मेरे ही हानि-लाभ का विचार करता था। यह उसकी स्वामिभक्ति का दड है। लेकिन मैं इस घटना को पुलिस की दृष्टि से नही देखता। हत्या हो गयी, एक ने की या कई आदमियो ने मिल कर की। मेरे लिए यह समस्या इससे कही जटिल है। प्रश्न जमीदार और किसानो का है। अगर हत्याकारियो को उचित दड न दिया गया तो इस तरह की दुर्घटनाएँ आये दिन होने लगेगी और जमीदारो को अपनी जान बचाना कठिन हो जायगा।

प्रस्तुत प्रश्न को यह नया स्वरूप दे कर ज्ञानशकर विदा हुए। यद्यपि हत्या के सबध मे डाक्टर साहब की अब भी वही राय थी, लेकिन अब यह गुनाह बेलज्जत न था। ५०० रु० का पारितोषिक १०० रु० फीस, साल मे हजार दस हजार मिलते रहने की आशा, उसपर पुलिस की खुशनूदी अलग। अब आगे-पीछे की जरूरत न थी। हाँ, अब अगर भय था तो डाक्टर इर्फान अली की जिरहो का। डाक्टर साहब की जिरह प्रसिद्ध थी। अतएव प्रियनाथ ने इस विषय के कई ग्रन्थो का अवलोकन किया और अपने पक्ष-समर्थन के तत्त्व खोज निकाले। कितने ही बेगुनाहो की गर्दन पर छुरी फिर जायेगी इसकी उन्हे एक क्षण के लिए भी चिन्ता न हुई। इस ओर उनका ध्यान ही न गया। ऐसे अवसरो पर हमारी दृष्टि कितनी सकीर्ण हो जाती है ?

दिन के दस बजे थे। डाक्टर महोदय ग्रन्थो की एक पोटली ले कर फिटन पर सवार हो कचहरी चले। उनका दिल धडक रहा था। जिरह मे उखड जाने की शका लगी हुई थी। वहाँ पहुँचते ही मैजिस्ट्रेट ने उन्हे तलब किया। जब वह कटघरे के सामने आ कर खडे हुए और अभियुक्तो को अपनी ओर दीन नेत्रो से ताकते देखा तो एक क्षण के लिए उनका चित्त अस्थिर हो गया। लेकिन यह एक क्षणिक आवेग था, आया और चला गया। उन्होने बडी तात्त्विक गभीरता और मर्मज्ञतापूर्ण भाव से इस हत्याकाड का विवेचन किया। चिह्नो से यह केवल एक आदमी का काम मालूम होता है। लेकिन हत्याकारियो ने बडी चालाकी से काम लिया है। इस विषय मे वे बडे सिद्ध-हस्त है। मृत्यु का कारण कुल्हाडी या गँडासे का आघात नही है, बल्कि गले का घोटना है और कई आदमियो की सहायता के बिना गौस खाँ जैसे बलिष्ठ मनुष्य का गला घोटना असम्भव है। प्राणान्त हो जाने पर एक वार से उसकी गर्दन काट ली गयी है जिसमे यह एक ही व्यक्ति का कृत्य समझा जाय।

इर्फान अली की जिरह शुरू हुई।

आपने कौन सा इम्तहान पास किया है ?'

'मैं लाहौर का एल० एम० एस० और कलकत्ते का एम० बी० हूँ ?'

'आपकी उम्र क्या है ?'

'चालीस वर्ष।'

'आपका मकान कहाँ है?'

'दिल्ली।'

'आपकी शादी हुई है? अगर हुई है तो औलाद है या नही?'

'मेरी शादी हो गयी है और कई औलादे है।'

'उनकी परवरिश पर आपका माहवार कितना खर्च होता है?'

इर्फान अली यह प्रश्न ऐसे पाडित्य-पूर्ण स्वाभिमान से पूछ रहे थे, मानो इन्ही पर मुकदमे का दारमदार है। प्रत्येक प्रश्न पर ज्वालासिंह की ओर गर्व के साथ देखते मानो उनसे अपनी प्रखर नैयायिकता की प्रशसा चाहते है। लेकिन इस अन्तिम प्रश्न पर मैजिस्ट्रेट ने एतराज किया, इस प्रश्न से आप का क्या अभिप्राय है?

इर्फान अली ने गर्व से कहा—अभी मेरा मन्शा जाहिर हुआ जाता है।

यह कह कर उन्होंने प्रियनाथ से जिरह शुरू की। बेचारे प्रियनाथ मन मे सहमे जाते थे। मालूम नही यह महाशय मुझे किस जाल मे फाँस रहे है।

इर्फान अली—आप मेरे आखिरी सवाल का जवाब दीजिए?

'मेरे पास उसका कोई हिसाब नही है।'

'आपके यहाँ माहवार कितना दूध आता है और उसकी क्या कीमत पडती है?'

'इसका हिसाब मेरे नौकर रखते है।'

'घी पर माहवार क्या खर्च होता है?'

'मै अपने नौकरो से पूछे वगैर इन गृह-सम्बन्धी प्रश्नो का उत्तर नही दे सकता।'

इर्फान अली ने मैजिस्ट्रेट से कहा, मेरे सवालो के काबिल इतमीनान जवाब मिलने चाहिए।

मैजिस्ट्रेट—मैं नही समझता कि इन सवालो मे आपकी मन्शा क्या है?

इर्फान अली—मेरा मन्शा गवाह की एखलाकी हालत का परदा फाश करना है। इन सवालो से मैं यह साबित कर देना चाहता हूँ कि वह बहुत ऊँचे वसूलो का आदमी नही है।

मैजिस्ट्रेट—मै इन प्रश्नो को दर्ज करने से इन्कार करता हूँ।

इर्फान अली—तो मैं भी जिरह करने से इन्कार करता हूँ।

यह कह कर बारिस्टर साहब इजलास से बाहर निकल आये और ज्वालासिंह से बोले, आपने देखा, यह हजरत कितनी बेजा तरफदारी कर रहे है! वल्लाह! मैं डाक्टर साहब के लत्ते उडा देता। यहाँ ऐसी-वैसी जिरह न करते। मै साफ साबित कर देता कि जो आदमी छोटी-छोटी रकमो पर गिरता है वह ऐसे बडे मामले मे बेलौस नही रह सकता। कोई मुजायका नही। दीवानी मे चलने दीजिए, वहाँ इनकी खबर लूंगा।

इसके एक घटा पीछे मैजिस्ट्रेट ने फैसला सुना दिया—सब अभियुक्त सेशन सुपुर्द।

सन्ध्या हो गयी थी। ये विपत्ति के मारे फिर हवालात चले। सबो के मुख पर

उदासी छायी हुई थी। प्रियनाथ के बयान ने उन्हे हताश कर दिया था। वह यह कल्पना भी नही कर सकते थे कि ऐसा उच्च पदाधिकारी प्रलोभनो के फेर मे पड कर असत्य की ओर जा सकता है। सभी गर्दन झुकाये चले जाते थे। अकेला मनोहर रो रहा था।

इतने मे प्रियनाथ की फिटन सड़क से निकली। अभियुक्तो ने उन्हे अवहेलनापूर्ण नेत्रो मे देखा। मानो कह रहे थे, 'आपको हम दीन-दुखियो पर तनिक भी दया न आयी।' डाक्टर साहब ने भी उन्हे देखा, आँखो मे ग्लानि का भाव झलक रहा था।

३४

जब मुकदमा सेशन सुपुर्द हो गया और ज्ञानशकर को विश्वास हो गया कि अब अभियुक्तो का बचना कठिन है तब उन्होने गौस खाँ की जगह पर फैजुल्लाह को नियुक्त किया और खुद गोरखपुर चले आये। यहाँ से गायत्री की कई चिट्ठियाँ गयी थी। मायाशकर को भी साथ लाये। विद्या ने बहुत कहा कि मेरा जी घबड़ायेगा, पर उन्होने न माना।

इस एक महीने मे ज्ञानशकर ने वह समस्या हल कर ली थी जिस पर वह कई सालो से विचार कर रहे थे। उन्होने वह मार्ग निर्धारित कर लिया था जिससे गायत्री देवी के हृदय तक पहुँच सके। इस मार्ग की दो शाखाएँ थी, एक विरोधात्मक और दूसरी विधानात्मक। ज्ञानशकर ने यही दूसरा मार्ग ग्रहण करना निश्चय किया। गायत्री के धार्मिक भावो को हटाना, जो किसी गढ की दुर्भेद्य दीवारो की भाँति उसको वासनाओ से बचाये हुए थे, दुस्तर था। ज्ञानशकर एक बार इस प्रयत्न मे असफल हो चुके थे और कोई कारण नही था कि उस साधन का आश्रय ले कर वह फिर असफल न हो। इसकी अपेक्षा दूसरा मार्ग सुगम और सुलभ था। उन धार्मिक भावो को हटाने के बदले उन्हे और दृढ क्यो न कर दूं! इमारत को विध्वस करने के बदले उसी भित्ति पर क्यो न और रद्दे चढा दूं? उसको अपना बनाने के बदले क्यो न आप ही उसका हो जाऊँ?

ज्ञानशकर ने गोरखपुर आ कर पहले से भी अधिक उत्साह और अध्यवसाय से काम करना शुरू किया। धर्मशाला का काम स्थगित हो गया था। अब की ठेकेदारो से काम न ले कर उन्होने अपनी ही निगरानी मे बनवाना शुरू किया। उसके सामने ही एक ठाकुरद्वारे का शिलारोपण भी कर दिया। वह नित्य प्रति प्रात काल मोटर पर सवार हो कर घर से निकल जाते और इलाके का चक्कर लगा कर सन्ध्या तक लौट आते। किसी कारिन्दे या कर्मचारी की मजाल न थी कि एक कौडी तक खा सके। किसी शहना या चपरासी की ताब न थी कि असामियो पर किसी प्रकार की सख्ती कर सके और न किसी असामी का दिल था कि लगान चुकाने मे एक दिन का भी विलम्ब कर सके। सहकारी बैंक का काम भी चल निकला। किसान महाजनो के जाल से मुक्त होने लगे और उनमे यह सामर्थ्य होने लगी कि खरीदारो के भाव पर जिन्स न बेच कर

अपने भाव पर बेच सके। ज्ञानशकर का यह सुप्रबन्ध और कार्यपटुता देख कर गायत्री की सदिच्छा श्रद्धा का रूप धारण करती जाती थी। वह विविधरूपसे प्रत्युपकार की चेष्टा करती। विद्या के लिए तरह-तरह की सौगात भेजती और मायाशकर पर तो जान ही देती थी। उसकी सवारी के लिए दो टाँघन थे, पढाने के लिए दो मास्टर। एक सुबह को आता था, दूसरा शाम को। उसकी टहल के लिए अलग दो नौकर थे। उसे अपने सामने बुला कर नाश्ता कराती थी। आप अच्छी-अच्छी चीजे बना कर उसे खिलाती, कहानियाँ सुनाती और उसकी कहानियाँ सुनती। उसे आये दिन इनाम देती रहती। मायाशकर अपनी माँ को भूल गया। वह ऐसा समझदार, ऐसा मिष्टभाषी, ऐसा विनयशील, ऐसा सरल बालक था कि थोडे ही दिनो मे गायत्री उसे हृदय से प्यार करने लगी।

ज्ञानशकर के जीवन मे भी एक विशेष परिवर्तन हुआ। अब वह नित्य सन्ध्या समय भागवत की कथा सुना करते। दो-चार साधु-सन्त जमा होते, मेल-जोल के दस-पाँच सज्जन आ जाते, महल्ले के दो-चार श्रद्धालु पुरुष आ बैठते और एक छोटी-मोटी धार्मिक सभा हो जाती। यहाँ कृष्ण भगवान् की चर्चा होती, उसकी प्रेम-कथाएँ सुनायी जाती और कभी-कभी कीर्तन भी होता था। लोग प्रेम मे मग्न हो कर रोने लगते और सबसे अधिक अश्रुवर्षा ज्ञानशकर की ही आँखो से होती थी। वह प्रेम के हाथो बिक गये थे।

एक दिन गायत्री ने कहा, अब तो आपके यहाँ नित्य कृष्ण-चर्चा होती है, पर्दे का प्रबन्ध हो जाय तो मैं भी आया करूँ। ज्ञानशकर ने श्रद्धापूर्ण नेत्रो से गायत्री को देखकर कहा, यह सब आप ही के सत्सग का फल है। आपने ही मुझे यह भक्ति-मार्ग दिखाया है और मैं आपको ही अपना गुरु मानता हूँ। आज से कई मास पहले मैं माया-मोह मे फँसा हुआ, इच्छाओ का दास, वासनाओ का गुलाम और सासारिक बन्धनो मे जकडा हुआ था। आपने मुझे बता दिया कि ससार मे निर्लिप्त हो कर क्योकर रहना चाहिए। इतनी सम्पत्तिशालिनी हो कर भी आप सन्यासिनी है। आपके जीवन ने मेरे लिए सदुपदेश का काम किया है।

गायत्री ज्ञानशकर को विद्या और ज्ञान का अगाध सागर समझती थी। वह महान् पुरुष जिसकी लेखनी मे यह सामर्थ्य हो कि मुझे रानी के पद से विभूषित करा दे, जिसकी वक्तृताओ को सुन कर बडे-बडे अँगरेज उच्चाधिकारी दग रह जायँ, जिसके सुप्रबन्ध की आज सारे जिले मे धूम है, मेरा इतना भक्त हो, इस कल्पना से ही उसका गौरवशील हृदय विह्वल हो गया। ऐसे सम्मानो के अवसरो पर उसे अपने स्वामी की याद आ जाती थी। विनीत भाव से बोली, बाबू जी यह सब भगवान की दया है। उन्होने आपको यह भक्ति प्रदान की है नही तो लोग यावज्जीवन धर्मोपदेश सुनने रह जाते है और फिर भी उनके ज्ञानचक्षु नही खुलते। कही स्वामी से आपकी भेंट हो गयी होती तो आप उनके दर्शनमात्र से ही मुग्ध हो जाते। वह धर्म और प्रेम के अवतार थे। मैं जो कुछ हूँ उन्ही की बनायी हुई हूँ। यथासाध्य उन्ही की शिक्षाओ का

पालन करती हूँ, नही तो मेरी इतनी गति कहाँ थी कि भक्तिरस का स्वाद पा सकती।

ज्ञानशकर—मुझे भी यह खेद है कि उन महात्मा के दर्शनो से वचित रह गया। जिसके सदुपदेश मे यह महान् शक्ति है वह स्वय कितना प्रतिभाशील होगा! मैं कभी कभी स्वप्न मे उनके दर्शन से कृतार्थ हो जाता हूँ। कितनी सौम्य मूर्ति थी! मुखारविन्द मे प्रेम की ज्योति सी प्रसारित होती हुई जान पडती है। साक्षात् कृष्ण भगवान के अवतार मालूम होते है।

दूसरे दिन से पर्दे की आयोजना हो गयी और गायत्री नित्य प्रति इन सत्सगों मे भाग लेने लगी। भक्तो की सख्या दिनो-दिन बढने लगी। कीर्तन के समय लोग भावोन्मत्त हो कर नाचने लगते। गायत्री के हृदय से भी यही प्रेम-तरगें उठती। यहाँ तक कि ज्ञानशकर भी स्थिर चित्त न रह सकते। कृष्ण के पवित्र प्रेम की लीलाएँ उनके चित्त को भी एक क्षण के लिये प्रेम से आभासित कर देती थी और इस प्रकाश मे उन्हे अपनी कुटिलता और क्षुद्रता अत्यन्त घृणोत्पादक दीख पडती। लेकिन सत्सग के समाप्त होते ही यह क्षणिक ज्योति फिर स्वार्थान्धकार मे विलीन हो जाती थी। बालक कृष्ण की भोली-भाली क्रीडाएँ, उनकी वह मनोहर तोतली बाते, यशोदा का वह विलक्षण पुत्र-प्रेम, गोपियो की वह आत्म-विस्मृति, प्रीति के वह भावमय रहस्य, वह अनुराग के उद्गार, वह वशी की मतवाली तान, वह यमुना-तट के विहार की कथाएँ लोगो को अतीव आनन्दप्रद आत्मिक उल्लास का अनुभव देती थी। भूतवादियो की दृष्टि मे ये कथाएँ कितनी ही लज्जास्पद क्यो न हो, पर उन भक्तो के अन्त करण इनके श्रवण-मात्र मे ही गद्गद हो जाते थे। राधा और यशोदा का नाम आते ही आँखो से आँसू की झडी लग जाती थी। कृष्ण के नाम मे क्या जादू है, इसका अनुभव हो जाता था।

एक बार वृन्दावन मे रासलीला मडली आयी और महीने भर तक लीला करती रही। सारा शहर देखने को फट पडता था। ज्ञानशकर प्रेम की मूर्ति बने हुए लोगो का आदर-सत्कार करते। छोटे-बडे सबको खातिर से बैठाते। स्त्रियो के लिए विशेष प्रबन्ध कर दिया गया था। यहाँ गायत्री उनका स्वागत करती, उनके बच्चो को प्यार करती और मिठाई-मेवे बाँटती। जिस दिन कृष्ण के मथुरा-गमन की लीला हुई, दर्शको की इतनी भीड हुई कि साँस लेना मुश्किल था। यशोदा और नन्द की हृदय-विदारणी बातें सुन कर दर्शको मे कोहराम मच गया। रोते-रोते कितने ही भक्तो की घिग्घी बँध गयी और गायत्री तो मूर्छित हो कर गिर ही पडी। होश आने पर उसने अपने को अपने शयनगृह मे पाया। कमरे मे सन्नाटा छाया हुआ था, केवल ज्ञानशकर उसे पखा झल रहे थे। गायत्री पर इस समय अलसता छायी हुई थी। जब मनुष्य किसी थके हुए पथिक की भाँति अधीर हो कर छाँह की ओर दौडता है, उसका हृदय निर्मल, विशुद्ध प्रेम से परिपूर्ण हो जाता है। उसने ज्ञानशंकर को बैठ जाने का सकेत किया और तब शैशवोचित सरलता से उनकी गोद मे सिर रख कर आकाक्षापूर्ण भाव से बोली, मुझे वृन्दावन ले चलो।

तीसरे दिन रासलीला समाप्त हुई। उसी दिन ज्ञानशकर गायत्री को सग ले वडे समारोह के साथ वृन्दावन चले।

३५

सेशन जज के इजलास मे एक महीने से मुक़दमा चल रहा है। अभियुक्त ने फिर सफाई दी। आज मनोहर का बयान था। इजलास मे एक मेला सा लगा हुआ था। मनोहर ने बडी निर्भीक दृढता के साथ सारी घटना आदि से अन्त तक बयान की और यदि जनता को अधिकार होता तो अन्य अभियुक्तो का बेदाग छूट जाना निश्चित था, किंतु अदालत जाब्ते और नियमो के बन्धन मे जकडी हुई थी। वह जान कर अनजान बनने पर बाध्य थी। मनोहर के अन्तिम वाक्य बडे मार्मिक थे—सरकार, माजरा यही है जो मैंने आपसे अरज किया। मैंने गौस खाँ को इसी कुल्हाडी से और इन्ही हाथो से मारा। कोई मेरा साथी, सलाहकार, मेरा मददगार नही था। अब आपको अख्तियार है, चाहे सारे गाँव को फाँसी पर चढा दे, चाहे कालेपानी भेज दे, चाहे छोड दे। फैजू, बिसेसर, दारोगा ने जो कुछ कहा है, सब झूठ है। दारोगा जी की बात तो मैं नही चलाता, पर सरकार, फैजू और बिसेसर को अपने घर पर बुलाये और दिलासा दे कि पुलिस तुम्हारा कुछ न कर सकेगी तो मेरी सच झूठ की परख हो जाय और मैं क्या कहूँ। उन लोगो का काठ का कलेजा होगा जो इतने गरीबो को बेकसूर फाँसी पर चढवाये देते हैं। भगवान झूठ-सच सब देखते हैं। बिसेसर और फैजू की तो थोडी औकात है और दारोगा जी झूठ की रोटी खाते हैं, पर डाक्टर साहब इतने बडे आदमी और ऐसे बडे विद्वान् कैसे झूठी गगा मे तैरने लगे, इसका मुझे अचरज है। इसके सिवा और क्या कहा जाय कि गरीबो का नसीब ही खोटा है कि बिना कसूर किये फाँसी पाते है। अब सरकार से और पचो से यही विनती है कि तुम इस घडी न्याय के आसन पर बैठे हो, अपने इन्साफ से दूध का दूध और पानी का पानी कर दो।

अदालत उठी। यह दुखियारे हवालात चले। और सभो ने तो मन को समझा लिया था कि भाग्य मे जो कुछ बदा है वह हो कर रहेगा, पर दुखरन भगत की छाती पर साँप लोटता रहता था। उसे रह-रह कर उत्तेजना होती थी कि अवसर पाऊँ तो मनोहर को खूब आडे हाथो लूँ। किंतु मजबूर था, क्योकि मनोहर सबसे अलग रखा जाता था। हाँ, वह बलराज को ताना दे-दे कर अपने चित्त की दाह को शान्त किया करता था। आज मनोहर का बयान सुन कर उसे और भी चिढ हुई। जब चिडिया खेत चुन गयी तो यह हाँक लगाने चले है। उस घडी अकल कहाँ चली गयी थी, जब एक जरा सी बात पर कुल्हाडा बाँध कर घर से चले थे। इस समय मार्ग मे उसे मनोहर पर अपना क्रोध उतारने का मौका मिल गया। बोला—आज क्या झूठ-मूठ बकवाद कर रहे थे। आदमी को तीर चलाने के पहले ही सोच लेना चाहिए कि वह किसको लगेगा। जब तीर कमान से निकल गया तो फिर पछताने से क्या होता है? तुम्हारे कारण सारा गाँव

चौपट हो गया। अनाथ लडको और औरतो की कौन सुध लेनेवाला है ? बेचारे रोटियो को तरसते होगे। तुमने सारे गाँव को मटियामेट कर दिया।

मनोहर को स्वय आठो पहर यही शोक सताया करता था। गौस खाँ का बध करते समय भी उसे यही चिंता थी। इसलिए उसने खुद थाने मे जा कर अपना अपराध स्वीकार कर लिया था। गाँव को आफत से बचाने के लिए उसके किये जो कुछ हो सकता था वह उसने किया और उसे दृढ विश्वास था कि चाहे मुझे दुष्कृत्य पर कितना ही पश्चात्तप हो रहा हो, अन्य लोग मुझे क्षम्य ही न समझते होगे, मुझसे सहानुभूति भी रखते होगे। मुझे जलाने के लिए अन्दर की आग क्या कम है कि ऊपर से भी तेल छिडका जाय। वह दुखरन की ये कटु बाते सुन कर बिलबिला उठा, जैसे पके हुए फोडे मे ठेस लग जाय। कुछ जवाब न दे सका।

आज अभियुक्तो के लिए प्रेमशकर ने जेल के दारोगा की अनुमति से कुछ स्वादिष्ट भोजन बनवा कर भेजे थे। अपने उच्च सिद्धान्तो के विरुद्ध वह जेलखाने के छोटे-छोटे कर्मचारियो की भी खातिर-खुशामद किया करते थे, जिसमे वे अभियुक्तो पर कृपा दृष्टि रखें। जीवन के अनुभवो ने उन्हे बतला दिया था कि सिद्धान्तो की अपेक्षा मनुष्य अधिक आदरणीय वस्तु है। औरो ने तो इच्छापूर्ण भोजन किया, लेकिन मनोहर इस समय हृदय ताप से विकल था। उन पदार्थों की रुचि-वर्द्धक सुगन्धि भी उसकी क्षुधा को जागृत न कर सकी। आज वह शब्द उसके कानो मे गूँज रहे थे जो अब तक केवल हृदय मे ही सुनायी देते थे—तुम्हारे कारण सारा गाँव मटियामेट हो गया, तुमने सारे गाँव को चौपट कर दिया। हा, यह कलक मेरे माथे पर सदा के लिए लग गया, अब यह दाग कभी न छूटेगा। जो अभी बालक है वे मुझे गालियाँ दे रहे होगे। उसके बच्चे मुझे गाँव का द्रोही समझेगे। जब मरदो के यह विचार है, जो सब बाते जानते है, जिन्हे भली-भाँति मालूम है कि मैने गाँव को बचाने के लिए अपनी ओर से कोई बात उठा नही रखी और जो यह अन्धेर हो रहा है वह समय का फेर है, तो भला स्त्रियाँ क्या कहती होगी, जो बेसमझ होती है। बेचारी बिलासी गाँव मे किसी को मुँह न दिखा सकती होगी। उसका घर से निकलना मुश्किल हो गया होगा और क्यो न कहे ? उनके सिर पर बीत रही है तो कहेगे क्यो न ? अभी तो अगहनी घर मे खाने को हो जायगी, लेकिन खेत तो बोये न गये होगे। चैत मे जब एक दाना भी न उपजेगा, बाल-बच्चे दाने-दाने को रोयेगे तब उनकी क्या दशा होगी ! मालूम होता है इस कम्बल मे खटमल हो गये है, नोचे डालते है, और यह रोना साल दो साल का नही है, कही सब काले पानी भेज दिये गये तो जन्म भर का रोना है। कादिर मियाँ का लडका तो घर सँभाल लेगा, लेकिन और सभी तो मिट्टी मे मिल जायेंगे और यह सब मेरी करनी का फल है।

सोचते-सोचते मनोहर को झपकी आ गयी। उसने स्वप्न देखा कि एक चौडे मैदान मे हजारो आदमी जमा है। फाँसी खडी है और मुझे फाँसी पर चढाया जा रहा है। हजारो आँखे मेरी ओर घृणा की दृष्टि से ताक रही है। चारो तरफ से यही ध्वनि

आ रही है, इसी ने सारे गाँव को चौपट किया। फिर उसे ऐसी भावना हुई कि मर गया हूँ और कितने ही भूत-पिशाच मुझे चारो ओर से घेरे हुए है और कह रहे है कि इसी ने हमे दाने-दाने को तरसा कर मार डाला, यही पापी है, इसे पकड कर आग मे झोक दो। मनोहर के मुख से सहसा एक चीख निकल आयी। आँखें खुल गयीं। कमरा खूब अँधेरा था, लेकिन जागने पर भी वही पैशाचिक भयकर मूर्तियाँ उसके चारो तरफ मँडराती हुई जान पड़ती थी। मनोहर की छाती बडे वेग से धडक रही थी। जी चाहता था, बाहर निकल भागे, किन्तु द्वार बन्द थे।

अकस्मात् मनोहर के मन मे यह विचार अकुरित हुआ—क्या मैं यही सब कौतुक देखने और सुनने के लिए जीयूँ ? सारा गाँव, सारा देश मुझसे घृणा कर रहा है। बलराज भी मन मे मुझे गालियाँ दे रहा होगा। उसने मुझे कितना समझाया, लेकिन मैंने एक न मानी। लोग कहते होगे सारे गाँव को बँधवा कर अब यह मुस्टडा बना हुआ है। इसे तनिक भी लज्जा नही, सिर पटक कर मर क्यो नही जाता! बलराज पर भी चारो ओर से बौछारें पडती होगी, सुन-सुन कर कलेजा फटता होगा। अरे भगवान, यह कैसा उजाला है! नही, उजाला नही है। किसी पिशाच की लाल-लाल आँखें है, मेरी ही तरफ लपकी आ रही हैं! या नारायण! क्या करूँ ? मनोहर की पिंडलियाँ काँपने लगी। यह लाल आँखें प्रतिक्षण उसके समीप आती जाती थी। वह न तो उधर देख ही सकता था और न उधर से आँख ही हटा सकता था, मानो किसी आसुरिक शक्ति ने उसके नेत्रो को बाँध दिया हो। एक क्षण के बाद मनोहर को एक ही जगह कई आँखें दिखायी देने लगी, नही, प्रज्ज्वलित, अग्निमय, रक्तयुक्त नेत्रो का एक समूह है! धड नही, सिर नहीं, कोई अग नही, केवल विदग्ध आँखे ही हैं, जो मेरी तरफ टूटे हुए तारो की भाँति सर्राटा भरती चली आती हैं। एक पल और हुआ, यह नेत्र समूह शरीर-युक्त होने लगा और गौस खाँ के आहत स्वरूप मे बदल गया। यकायक बाहर धडाक की आवाज हुई। मनोहर बदहवास हो कर पीछे की दीवार की ओर भागा, लेकिन एक ही पग मे दीवार से टकरा कर गिर पड़ा, सिर मे चोट आयी। फिर उसे जान पडा कि कोई द्वार का ताला खोल रहा है। तब किसी ने पुकारा, 'मनोहर! मनोहर!' मनोहर ने आवाज पहचानी। जेल का दारोगा था। उसकी जान मे जान आयी। कडक कर बोला—हाँ साहब जागता हूँ। पैशाचिक जगत से निकल कर वह फिर चैतन्य ससार मे आया। उसे अब नेत्र समूह का रहस्य खुला। दारोगा की लालटेन की ज्योति थी जो किवाड़ की दरारो से कोठरी मे आ रही थी। इसी साधारण-सी बात ने उसे इतना सशक कर दिया था। दारोगा आज गश्त करने निकला था।

दारोगा के चले जाने के बाद मनोहर कुछ सावधान हो गया। शकोत्पादक कल्पनाएँ शान्त हुईं, लेकिन अपने तिरस्कार और अपमान की चिन्ताओं ने फिर आ घेरा। सोचने लगा, एक वह है जो उजडे हुए गाँवो को आबाद करते है और जिनका यश ससार गाता है। एक मैं हूँ जिसने गाँव को उजाड दिया। अब कोई भोर के समय मेरा नाम न लेगा। ऐसा जान पडता है कि सभी डामिल जायेंगे, एक भी न बचेगा।

अभी न जाने कितने दिन यह मामला चलेगा। महीने भर लगे, दो महीने लग जाये। इतने दिनो तक मैं सब की आँखो मे काँटे की तरह खटकता रहूँगा, सब मुझे कोसेंगे, गालियाँ दिया करेंगे। आज दुखरन ने कह ही सुनाया, कल कोई और ताना देगा। कादिर खाँ को भी यह कैद अखरती ही होगी। और तो और, कही बलराज भी न खुल पडे। हा! मुझे उसकी जवानी पर भी तरस न आया, मेरा लाल मेरे ही हाथो मैं अपने जवान बेटे को अपने ही हाथो हा भगवान्! अब यह दुःख नही सहा जाता। फाँसी अभी न जाने कब होगी! कौन जाने कही सबके साथ मेरा भी शामिल हो जाय, तब तो मरते दम तक इन लोगो के जले-कटे वचन सुनने पड़ेंगे। बलराज, तुझे कैसे बचाऊँ? कौन जाने हाकिम यही फैसला करे कि यह जवान है, इसी ने कुल्हाडा मारा होगा। हा भगवान्! तब क्या होगा? क्या अपनी ही आँखो से यह देखूँगा? नही, ऐसे जीने मे मरना ही अच्छा है। नकटा जिया बुरे हवाल। बस, एक ही उपाय है—हाँ!

३६

फैजुल्लाह खाँ का गौस खाँ के पद पर नियुक्त होना गाँव के दुखियारो के घाव पर नमक छिड़कना था। पहले ही दिन मे खीच-तान होने लगी और फैजू ने विरोधाग्नि को शान्त करने की कोई जरूरत न समझी। अब वह मुसल्लम गाँव के सत्ताधारी शासक थे। उनका हुक्म कानून के तुल्य था। किसी को चूँ करने की मजाल न थी। गाँव का दूध, घी, उपले-लकडी, घास-पयाल, कद्दू-कुम्हडे, हल-बैल सब उनके थे। जो अधिकार गौस खाँ को जीवन-पर्यन्त न प्राप्त हुए वह समय के उलट-फेर और सौभाग्य से फैजुल्लाह को पहले ही दिन से प्राप्त हो गये। अन्याय और स्वेच्छा के मैदान मे अब उनके घोडो को किसी ठोकर का भय न था। पहले कर्तारसिंह की ओर से कुछ शका थी, किन्तु उनकी नीति-कुशलता ने शीघ्र ही उसकी अभक्ति को परास्त कर दिया। वह अब उनका आज्ञाकारी सेवक, उनका परम शुभेच्छु था। वह अब गला फाड-फाड कर रामायण का पाठ करता। सारे गाँव के ईंट-पत्थर जमा करके चौपाल के सामने ढेर लगा दिये और उन पर घडो पानी चढाता। घटो चन्दन रगड़ता, घटो भग घोटता, कोई रोक-टोक करनेवाला न था। फैजुल्लाह खाँ नित्य प्रात काल टाँघन पर सवार हो कर गाँव का चक्कर लगाते, कर्तार और बिन्दा महराज लट्ठ लिये उनके पीछे-पीछे चलते। जो कुछ नोचे-खसोटे मिल जाता वह ले कर लौट आते थे। यो तो समस्त गाँव उनके अत्याचार मे पीडित था, पर मनोहर के घर पर इन लोगो की विशेष कृपा थी। पूस मे ही बिलासी पर बकाया लगान की नालिश हुई और उसके सब जानवर कुर्क हो गये। फैजू को पूरा विश्वास था कि अब की चैत मे किसी मे मालगुजारी वसूल तो होगी नही, सभो पर बेदखली के दावे कर दूँगा और एक ही हल्ले मे सबको समेट लूँगा। मुसल्लम गाँव को बेदखल कर दूँगा, आमदनी चटपट दूनी हो जायगी। पर इस दुष्कल्पना से उन्हे सन्तोष न होता था। डाँट-फटकार, गाली-गलौज के बिना रोब जमाना कठिन

था। अतएव नियमपूर्वक इस नीति का सदुपयोग किया जाने लगा। विलासी मारे डर के घर मे से निकलती ही न थी। उसकी रब्बी खेत मे खडी सूख रही थी, पानी कौन दे ? न बैल अपने थे और न किसी से माँगने का ही मुँह था।

एक दिन सन्ध्या समय विलासी अपने द्वार पर बैठी रो रही थी। यही उसको मालूम था। मनोहर की आत्म-हत्या की खबर उसे कई दिन पहले मिल चुकी थी। उसे अपने सर्वनाश का इतना शोक न था जितना इस बात का कि कोई उसकी बात पूछनेवाला न था। जिसे देखिए उसे जली-कटी सुनाता था। न कोई उसके घर आता, न जाता। यदि वह बैठे-बैठे उकता कर किसी के घर चली जाती, तो वहाँ भी उसका अपमान किया जाता। वह गाँव की नागिन समझी जाती थी, जिसके विष ने समस्त गाँव को काल का ग्रास बना दिया। और तो और उसकी बहू भी उसे ताने देती थी। सहसा उसने सुना सुक्खू चौधरी अपने मन्दिर मे आ कर बैठे है। वह तुरन्त मन्दिर की ओर चली। वह सहानुभूति की प्यासी थी। सुक्खू इन घटनाओं के विषय मे क्या कहते हैं, यह जानने की उसे उत्कट इच्छा थी। उसे आशा थी कि सुक्खू अवश्य निष्पक्ष भाव से अपनी सम्मति प्रकट करेंगे। जब वह मन्दिर के निकट पहुँची तो गाँव की कितनी ही नारियो और बालिकाओ को वहाँ जमा पाया। सुक्खू की दाढी बढी हुई थी, सिर पर एक कन्टोप था और शरीर पर एक रामनामी चादर। बहुत उदास और दुखी जान पडते थे। नारियाँ उनसे गौस खाँ की हत्या की चर्चा कर रही थी। मनोहर की खूब ले-दे हो रही थी। विलासी मन्दिर के निकट पहुंच कर ठिठक गयी कि इतने मे सुक्खू ने उसे देखा और बोले, आओ विलासी आओ बैठो। मैं तो तुम्हारे पास आप ही आनेवाला था।

विलासी—तुम तो कुशल से रहे ?

सुक्खू—जीता हूँ, बस यही कुशल है। जेल से छूटा तो बद्रीनाथ चला गया। वहाँ से जगन्नाथ होता हुआ चला आता हूँ। बद्रीनाथ मे एक महात्मा के दर्शन हो गये, उनसे गुरुमन्त्र भी ले लिया। अब माँगता खाता फिरता हूँ। गृहस्थी के जंजाल से छूट गया।

विलासी ने डरते-डरते पूछा, यहाँ का हाल तो तुमने सुना ही होगा।

सुक्खू—हाँ, जब से आया हूँ वही चर्चा हो रही है और उसे सुन कर मुझे तुमपर ऐसी श्रद्धा हो गयी है कि तुम्हारी पूजा करने को जी चाहता है। तुम क्षत्राणी हो, अहीर की कन्या हो कर भी क्षत्राणी हो। तुमने वही किया जो क्षत्राणियाँ किया करती है। मनोहर भी क्षत्री है, उसने वही किया जो क्षत्री करते है। वह वीर आत्मा था। इस मन्दिर मे अब उसकी समाधि बनेगी और उसकी पूजा होगी। इसमे अभी तक किसी देवता की स्थापना नही हुई है, अब उसी वीर-मूर्ति की स्थापना होगी। उसने गाँव की लाज रख ली, स्त्री की मर्जाद रख ली। यह सब क्षुद्र आत्माएँ बैठी उसे बुरा-भला कह रही हैं। कहती हैं, उसने गाँव का सर्वनाश कर दिया। इनमे लज्जा नही है, अपनी मर्यादा का कुछ गौरव नही है। उसने गाँव का सर्वनाश नही किया, उसे वीर-गति दे दी, उसका उद्धार कर दिया। नारियो की रक्षा करना पुरुषो का धर्म है। मनोहर ने

अपने धर्म का पालन किया। उसको बुरा वही कह सकता है जिसकी आत्मा मर गयी है, जो बेहया हो गया है। गाँव के दस-पाँच पुरुप फाँसी चढ जाये तो कोई चिन्ता नही यहाँ एक-एक स्त्री के पीछे लाखो सिर कट गये है। सीता के पीछे रावण का राज्य विध्वश हो गया। द्रौपदी के पीछे १८ लाख योधा मर मिटे। इज्जत के लिए दस-पाँच जाने चली जायँ तो क्या बड़ी बात है! धन्य है मनोहर, तेरे साहस को, तेरे पराक्रम को, तेरे कलेजे को।

सुक्खू का एक एक शब्द वीर रस मे डूबा हुआ था। विलासी के हृदय मे वह गुद-गुदी हो रही थी, जो अपनी सराहना सुन कर हो सकती है। जी चाहता था, सुक्खू के चरणो पर सिर रख दूं, किन्तु अन्य स्त्रियाँ सुक्खू की ओर कुतूहल से ताक रही थी कि यह क्या बकता है।

एक क्षण के बाद सुक्खू ने बिलासी से पूछा, खेती-बारी का क्या हाल है?

बिलासी के खेत सूख रहे थे, पर अपनी विपत्ति-कथा सुना कर वह सुक्खू को दुखी नही करना चाहती थी। बोली, दादा, तुम्हारी दया से खेती अच्छी हो गयी है, कोई चिन्ता नही है।

कई और साधु आ गये, जो सुक्खू के साथी जान पडते थे। उन्होने धूनी जलायी और चरस के दम लगाने शुरू किये। गाँव के लोग भी एक-एक करके वहाँ से चलने लगे। जब बिलासी जाने लगी तो सुक्खू ने कहा, बिलासी, मैं पहररात रहे यहाँ से चला जाऊँगा, घूमता-घामता कई महीनो मे आऊँगा। तब यहाँ मूर्ति की स्थापना होगी। हम उस यज्ञ के लिए भीख माँग कर रुपए जमा करते है। तुम्हे किसी बात की तक-लीफ हो तो कहो।

विलासी—नही दादा, तुम्हारी दया से कोई तकलीफ नही है।

सुक्खू तो प्रात काल चले गये, पर बिलासी पर उनकी भावनापूर्ण बातो का गहरा असर पड़ा। अब वह किसी दलित दीन की भाँति गाँववालो के व्यग और लाछन न सुनती और न किसी को उसपर उतनी निर्भयता से आक्षेप करने का साहस ही होता था। इतना ही नही, बिलासी की बातचीत, चाल-ढाल से अब आत्म-गौरव टपका पड़ता था। कभी-कभी वह बढ कर बाते करने लगती, पडोसियो से कहती—तुम अपनी लाज बेच कर अपनी चमडी को बचाओ, यहाँ इज्जत के पीछे जान तक दे देते है। मै विधवा हो गयी तो क्या, घर सत्यानाश हुआ तो क्या, किसी के सामने आँख तो नीची नही हुई। अपनी लाज तो रक्खी। पति की मृत्यु और पुत्र का वियोग अब उतना असह्य न था।

एक दिन उसने इतनी डीग मारी कि उसकी बहू से न रहा गया। चिढ कर बोली—अम्माँ, ऐसी बाते करके घाव पर नमक न छिडको। तुम सब सुख-विलास कर चुकी हो, अब विधवा ही हो गयी तो क्या? उन दुखियारियो से पूछो जिनकी अभी पहाड-सी उमर पडी है, जिन्होंने अभी जिन्दगी का कुछ सुख नही जाना है। अपनी मरजाद सबको प्यारी होती है, पर उसके लिए जनम भर का रँडापा सहना कठिन है। तुम्हे

क्या, आज नही कल रॉड होती। तुम्हारे भी खेलने-खाने के दिन होते तो देखती कि अपनी लाज को कितनी प्यारी समझती हो।

विलासी तिलमिला उठी। उस दिन से वहू से वोलना छोड दिया, यहाँ तक कि वलराज की भी चर्चा न करती। जिस पुत्र पर जान देती थी, उसके नाम से भी घृणा करने लगी। वहू के इन अरुचिकर शब्दो ने उसके मातृ-स्नेह का अन्त कर दिया, जो २५ साल से जीवन का अवलम्वन और आधार वना हुआ था। कुछ दिनो तक तो उसने मौन रूप से अपना कोप प्रकट किया, किन्तु जव यह प्रयोग सफल होता न दीख पडा तो उसने वहू की निन्दा करनी शुरू की। गाँव मे कितनी ही एसी वृद्धा महिलाएँ थी जो अपनी वहुओ से जला करती थी। उन्हे विलासी मे सहानुभूति हो गयी। शनै शनै यह कैफियत हुई कि विलासी के वरौठे मे सासो की नित्य वैठक होती और वहुओ के खूव दुखडे रोये जाते। उघर वहुओ ने भी अपनी आत्म-रक्षा के लिए एक सभा स्थापित की। इसकी वैठक नित्य दुखरन भगत के घर होती। विलासी की वहू इस सभा की सचालिका थी। इस प्रकार दोनो मे विरोध वढने लगा। यहाँ की वाते किसी न किसी प्रकार वहाँ जा पहुँचती और वहाँ की वाते भी किन्ही गुप्त दूतो द्वारा यहाँ आ जाती। उनके उत्तर दिये जाते, उत्तरो के प्रत्युत्तर मिलते और नित्य यही कार्यक्रम चलता रहता था। इस प्रश्नोत्तर मे जो आकर्षण था, वह अपनी विपत्ति और विडम्वना पर आँसू वहाने मे कहाँ था? इस व्यग-सग्राम मे एक सजीव आनन्द था। द्वेप की काना-फूसी शायद मधुर गान से भी अधिक शोकहारी होती है।

यहाँ तो यह हाल था, उघर फसल खेतो मे सूख रही थी। मियाँ फैजुल्लाह सूखे खेतो को देख कर खिल जाते थे। देखते-देखते चैत का महीना आ गया। मालगुजारी का तकाजा होने लगा। गाँव के वचे हुए लोग अव चेते। वह भूल से गये थे कि मालगुजारी भी देनी है। दरिद्रता मे मनुष्य प्राय. भाग्य का आश्रित हो जाता है। फैजुल्लाह ने सख्ती करनी शुरू की। किसी को चौपाल के सामने धूप मे खडा करते, किसी को मुश्के कस कर पिटवाते। दीन नारियो के साथ और भी पाशविक व्यवहार किया जाता, किसी की चूड़ियाँ तोडी जाती, किसी के जूडे नोचे जाते। इन अत्या-चारो को रोकनेवाला अव कौन था? सत्याग्रह मे अन्याय को दमन करने की शक्ति है, यह सिद्धान्त भ्रान्तिपूर्ण सिद्ध हो गया। फैजू जानता था कि पत्थर दवाने से तेल न निकलेगा, लेकिन इन अत्याचारो से उसका उद्देश्य गाँववालो का मान-मर्दन करना था। इन दुष्कृत्यो से उसकी पशुवृत्ति को असीम आनन्द मिलता था।

धीरे-धीरे जेठ भी गुजरा, लेकिन लगान की एक कौडी न वसूल हुई। खेत मे अनाज होता तो कोई न कोई महाजन खडा हो जाता, लेकिन सूखी खेती को कौन पूछता है? अन्त मे ज्ञानशकर ने वेदखली दायर करने की ठान ली। इसी की देर थी, नालिश हो गयी, किन्तु गाँव मे रुपयो का वन्दोवस्त न हो सका। उज्रदारी करने वाला भी कोई न निकला। सवको विश्वास था कि एकतर्फा डिगरी होगी और सब के सब वेदखल हो जायेंगे। फैजू और कर्तार वगलें वजाते फिरते थे। अव मैदान मार लिया

है। खाँ साहब गये तो क्या, गाँव साफ हो गया। कोई दाखिलकार असामी रहेगा ही नही, जितनी चाहे जमीन की दर बढा सकते है। हजार की जगह दो हजार वसूल होगे। इस कारगुजारी का सेहरा मेरे सिर बँधेगा। दूर-दूर तक मेरी धूम हो जायगी। इन कल्पनाओं से फैजू मियाँ फूले नही समाते थे।

निदान फैसले की तारीख आ गयी। कर्तारसिंह ने मलमल का ढीला कुरता और गुलाबी पगडी निकाली, जूते मे कड़वा तेल भरा, लाठी मे तेल मला, बाल बनवाये और माथे पर भभूत लगायी। फैजुल्लाह खाँ ने चारजामे की मरम्मत करायी, अपनी काली अचकन और सफेद पगडी निकाली। बिन्दा महाराज ने भी धुली हुई गाढ़े की मिर्जई और गेरू मे रँगी हुई धोती पहनी। बेगारो के सिरो पर कम्बल, टाट आदि लादे गये और तीनो आदमी कचहरी चलने को तैयार हुए। केवल खाँ साहब की नमाज की देर थी।

किन्तु गाँव मे जरा भी हलचल न थी। मर्दो मे कादिर के छोटे लडके के सिवा और सभी नीच जातियो के लोग थे, जिन्हे मान-अपमान का ज्ञान ही न था; और वह बेचारा कानूनी बातो से अनभिज्ञ था। झपट के दिल मे ऐसा हौल समाया हुआ था कि घर से बाहर ही न निकलते थे। रही स्त्रियाँ, वे दीन अबलाएँ कानून का मर्म क्या जानें! आज भी नियमानुसार उनके दोनो अखाड़े जमा हुए थे। बूढियाँ कहती थी, खेत निकल जाये, हमारी बला से, हमे क्या करना है? आज मरे, कल दूसरा दिन। रहे भी तो हमारे किस काम आवेंगे? इन रानियो का घमड तो चूर हो जायगा। यहाँ तक की विलासी भी जो इस सारी विपत्ति-कथा की कैकेयी थी, आज निश्चिन्त बैठी हुई थी। विपक्षी दल को आज सन्धि-प्रार्थना की इच्छा हो रही थी, लेकिन कुछ तो अभिमान और कुछ प्रार्थना की स्वीकृति की निराशा इच्छा को व्यक्त न होने देती थी।

आठ बजे खाँ साहब की नमाज पूरी हुई। इधर बिन्दा महाराज ने चबेना खा कर तम्बाकू फाँका और कर्तारसिंह ने घोडे को लाने का हुक्म दिया कि इतने मे सुक्खू चौधरी सामने से आते दिखायी दिये। वही पहले का-सा वेश था, सिर पर कन्टोप, ललाट पर चन्दन, गले मे चादर, हाथ मे एक चिमटा। आ कर चौपाल मे जमीन पर बैठ गये। गाँव के लडके जो उनके साथ दौडते आये थे बाहर ही रुक गये। फैजू ने पूछा, चौधरी कहो, खैरियत से तो रहे? तुम्हे जेल से निकले कितना अरसा हुआ?

चौधरी ने कर्तार से चिलम ली, एक लम्बा दम लगाया और मुँह से धुएँ को निकालते हुए बोले, आज बेदखली की तारीख है न?

कर्तार—कागद-पत्तर देखा जाय तो जान पडे। यहाँ नित एक न एक मामला लगा ही रहता है। कहाँ तक कोई याद रखे।

चौधरी—बेचारो पर एक विपत्ति तो थी ही, यह एक और बला सवार हो गयी।

फैजू—मैं मजबूर हो गया। क्या करता? जाब्ते और कानून से बँधा हुआ हूँ।

चैत, बैशाख, जेठ—तीन महीने तक तकाजे करता रहा, इससे ज्यादा मेरे बस मे और क्या था ?

यह कह कर उन्होने चौधरी की ओर इस अन्दाज से देखा, मानो वह शील और दया के पुतले है।

चौधरी—अगर आज सब रुपये वसूल हो जाये तो मुकदमा खारिज हो जायगा न ?

फैजू ने विस्मित हो कर चौधरी को देखा और बोले, खर्चे का सवाल है।

चौधरी—अच्छा, बतलाइए आपके कुल कितने रुपये होते है। खर्च भी जोड़ लीजिए।

यह कह कर चौधरी ने कमर से नोटो का एक पुलिन्दा निकाला। एक थैली मे से कुछ रुपये भी निकाले और खाँ साहब की ओर परीक्षा भाव से देखने लगे। फैजू के होश उड गये; कर्तार के चेहरे का रग उड गया, मानो घर से किसी के मरने की खबर आ गयी हो। बिन्दा महाराज ने ध्यान से रुपयो को देखा। उन्हे सन्देह हो रहा था कि यह कोई इन्द्रजाल न हो। किसी के मुँह से बात न निकलती थी। जिस आशालता को बरसो से पाल और सीच रहे थे वह आँख के सामने एक पशु के विकराल मुख का ग्रास बनी जाती थी। इस अवसर के लिए उन लोगो ने कितनी आयोजनाएँ की थी, कितनी कूटनीति से काम लिया था, कितने अत्याचार किये थे। और जब वह शुभ घड़ी आयी तो निर्दय भाग्य-विधाता उसे हाथो से छीन लेता था। गौस खाँ का खून रग ला कर अब निष्फल हुआ जाता था। आखिर फैजू ने बडे गम्भीर भाव से कहा, इसका फैसला तो अब अदालत के हाथ है।

अदालत का नाम ले कर वह चौधरी को भयभीत करना चाहते थे।

चौधरी—अच्छी बात है तो वही चलो।

कर्तार ने नैतिक सर्वज्ञता के भाव से कहा, पहले ये लोग मोहलत की दर्खास्त दे, उस दर्खास्त पर हमारी तरफ से उजरदारी होगी, इस पर हाकिम जो कुछ तजवीज करेगा वह होगा। हम लोग रुपये कैसे ले सकते है ? जाब्ते के खिलाफ है।

बिन्दा महाराज के सम्मुख एक दूसरी ही समस्या उपस्थित थी—इसे इतने रुपये कहाँ मिल गये ? अभी जेल से छूट कर आया है। गाँववालो से फूटी कौडी भी न मिली होगी। इसके पास जो लेई पूँजी थी वह तालाब और मन्दिर बनवाने मे खर्च हो गयी। अवश्य उसे कोई ऐसी जडी-बूटी हाथ लग गयी है, जिससे वह रुपये बना लेता है। साधुओ के हाथ मे बडे-बडे कर्तब होते हैं।

फैजू समझ गये कि इस धाँधली से काम न चलेगा। कही इसने अदालत के सामने जा कर सब रुपये गिन दिये तो अपना सा मुँह ले कर रह जाना पडेगा। निराश हो कर जूते उतार दिये और नालिश का पर्चा निकाल कर हिसाब जोडने लगे, उस पर अदालत का खर्च, अमलो की रिश्वत, वकील का हिसाब, मेहनताना, जमींदार का नजराना आदि और बढाया तब बोले, कुल १७५० रु० होते है।

चौधरी—फिर देख लीजिए, कोई रकम रह न गयी हो। मगर यह समझ लेना कि हिसाब से एक कौडी भी बेशी ली तो तुम्हारा भला न होगा ?

बिन्दा महाराज ने सशंक हो कर कहा, खाँ साहब, जरा फिर से जोड़ लो।

कर्तार—सब जोड़ा-जोड़ाया है, रात-दिन तो यही किया करते है, लाओ निकालो १७५० रु०।

चौधरी—१७५० रु० लेना है तो अदालत मे ही लेना, यहाँ तो मैं १००० रु० से बेसी न दूंगा।

फैजू—और अदालत का खर्च ?

सहसा चौधरी ने अपना चिमटा उठाया और इतने जोर से फैजुल्लाह के सिर पर मारा कि वह जमीन पर गिर पडा। तब बोले, यही अदालत का खर्च है, जी चाहे और ले लो। बेईमान, पापी कही का। कारिन्दा बना फिरता है। कल का बनिया आज का सेठ! इतनी जल्द आँखो मे चरबी छा गयी। तू भी तो किसी जमीदार का आसामी है। तेरा घर देख आया हूँ, तेरे मा-बाप, भाई-बन्धु सब का हाल देख आया हूँ। वहाँ उन सब का बेगार भरते-भरते कचूमर निकल जाया करता है। तूने चार अक्षर पढ़ लिये तो जमीन पर पाँव नही रखता। दीन-दुखियो को लूटता फिरता है। ८०० रु० की नालिश है, १०० रु० अदालत का खरच है। मैं कचहरी जा कर पेशकार से पूछ आया। उसके तू १७५० रु० माँगता है। और क्यो रे ठाकुर, तू भी इस तुरुक के साथ पड कर अपने को भूल गया? चिल्ला-चिल्ला कर रामायण पढता है, भागवत की कथा कहता है, ईंट-पत्थर के देवता बना कर पूजता है। क्या पत्थर पूजते-पूजते तेरा हृदय भी पत्थर हो गया? यह चन्दन क्यो लगाता है? तुझे इसका क्या अधिकार है? तू धन के पीछे धरम को भूल गया? तुझे धन चाहिए? तेरे भाग्य मे धन लिखा है तो यह थैली उठा ले। (यह कह कर चौधरी ने रुपयो की थैली कर्तार की ओर फेंकी) देख तो तेरे भाग्य मे धन है या नही? तेरा मन इतना पापी हो गया है कि तू सोना भी छूए तो मिट्टी हो जायगा। थैली छू कर देख ले, अभी ठीकरी हुई जाती है।

कर्तार ने पहले बडी धृष्ट अश्रद्धा से बातें करना शुरू की थी। वह यह दिखाना चाहता था, मैं साधुओ का भेष देख कर रोब मे आनेवाला आदमी नही हूँ। ऐसे भोले-भाले काठ के उल्लू कही और होंगे पर चौधरी की यह हिम्मत देख कर और यह कठोपदेश सुन कर उसकी अभक्ति लुप्त हो गयी। उसे अब ज्ञान हुआ कि यह चौधरी नही है जो गौस खाँ की हाँ मे हाँ मिलाया करता था, किन्तु बिना परीक्षा किये वह अब भी भक्ति-सूत्र मे न बँधना चाहता था, यहाँ तक कि वह उनकी सिद्धि का परदा खोल कर उनकी खबर लेने पर उतारू था। उसने थैली को ध्यान से देखा, रुपयो से भरी हुई थी। तब उसने डरते-डरते थैली उठायी, किन्तु उसके छूते ही एक अत्यन्त विस्मयकारी दृश्य दिखायी दिया। रुपये ठीकरे हो गये! यह कोई मायालीला थी अथवा कोई जादू या सिद्धि, कौन कह सकता है। मदारी का खेल था या नजरबन्दी का तमाशा, चौधरी ही जाने। रुपये की जगह साफ लाल-लाल ठीकरे झलक रहे थे। कर्तार के हाथ से थैली छूट कर

गिर पडी। वह हाथ बाँधकर बडे भक्ति भाव से चौधरी के पैरो पर गिर पडा और बोला, बाबा मेरा अपराध क्षमा कीजिए, मैं अधम, पापी, दुष्ट हूँ; मेरा उद्धार कीजिए। मैं अब आपकी ही सेवा मे रहूँगा, मुझे इस लोभ के गड्ढे से निकालिए।

चौधरी—दीनो पर दया करो और वही पुण्य तुम्हे गड्ढे से निकालेगा। दया ही सब मन्त्रो का मूल है।

फैजू मियाँ गर्द झाड़ कर उठ बैठे थे। वृद्ध दुर्बल चौधरी उस समय उनकी आँखो मे एक देव सा दीख पडता था। यह चमत्कार देख कर वह भी दग रह गये। अपनी खता माफ कराने लगे—बाबा जी क्या करें! जजाल मे फँस कर सभी कुछ करना पडता है। अहलकार, अमले, अफसर, अर्दली, चपरासी सभी की खातिर करनी पड़ती है। अगर यह चाले न चले तो उनका पेट कैसे भरे? वहाँ एक दिन भी निबाह न हो। अब मुझे भी गुलामी मे कबूल कीजिए।

कर्तार ने चिलम पर चरस रख कर चौधरी को दी। बिन्दा महाराज का सशय भी मिट चुका था। बोले, कुछ जलपान की इच्छा हो तो शर्बत बनाऊँ। फैजुल्लाह ने उनके बैठने को अपना कालीन बिछा दिया। चौधरी प्रसन्न हो गये। अपनी झोली से एक जडी निकाल कर दी और कहा, यह मिर्गी की आजमायी हुई दवा है। जनम की मिर्गी भी इससे जाती रहती है। इसे हिफाजत से रखना और देखो, आज ही मुकदमा उठा लेना। यह एक हजार के नोट हैं, गिन लो। सब असामियो को अलग-अलग बाकी की रसीद दे देना। अब मैं जाता हूँ। कुछ दिनो मे फिर आऊँगा।

३७

प्रातःकाल ज्यो ही मनोहर की आत्म-हत्या का समाचार विदित हुआ, जेल मे हाहाकार मच गया। जेल के दारोगा, अमले, सिपाही, पहरेदार—सब के हाथो के तोते उड गये। जरा देर मे पुलिस को खबर मिली, तुरन्त छोटे-बडे अधिकारियो का दल आ पहुँचा। मौके की जाँच होने लगी, जेल कर्मचारियो के बयान लिखे जाने लगे। एक घटे मे सिविल सर्जन और डाक्टर प्रियनाथ भी आ गये। फिर मजिस्ट्रेट, कमिश्नर और सिटी मजिस्ट्रेट का आगमन हुआ। दिन भर तहकीकात होती रही। दूसरे दिन भी यही जमघट रहा और यही कार्यवाही होती रही, लेकिन साँप मर चुका था, उसकी बाँबी को लाठी से पीटना व्यर्थ था। हाँ, जेल-कर्मचारियो पर बन आयी, जेल दारोगा ६ महीने के लिए मुअत्तल कर दिये गये, रक्षको पर कडे जुर्माने हुए। जेल के नियमो मे सुधार किया गया, खिडकियो पर दोहरी छडे लगा दी गयी। शेष अभियुक्तो के हाथो मे हथकडियाँ न डाली गयी थी, अब दोहरी हथकडियाँ डाल दी गयी। प्रेमशकर यह खबर पाते ही दौडे हुए जेल आये; पर अधिकारियो ने उन्हे फाटक के सामने से ही भगा दिया। अब तक जेल-कर्मचारियो ने उनके साथ सब प्रकार की रियायत की थी। अभियुक्तो से उनकी मुलाकात करा देते थे, उनके यहाँ

से आया हुआ भोजन अभियुक्तो तक पहुँचा देते थे। पर आज उन सबका रुख बदला हुआ था। प्रेमशंकर जेल के सामने खड़े सोच रहे थे, अब क्या करूँ कि पुलिस का प्रधान अफसर जेल से निकला और उन्हे देख कर बोला, यह तुम्हारे ही उपदेशों का फल है, तुम्ही ने शेष अपराधियो को बचाने के लिए यह आत्म-हत्या करायी है। जेल के दारोगा ने भी उनसे इसी तरह की बाते की। इन तिरस्कारों से प्रेमशंकर को बड़ा दुःख हुआ। जीवन उन्हे नये-नये अनुभवो की पाठशाला सा जान पड़ता था। यह पहला ही अवसर था कि उनकी दयार्द्रता और सदिच्छा की अवहेलना की गयी। वह आध घटे तक चिन्ता मे डूबे वही खड़े रहे, तब अपने झोपड़े की ओर चले: मानो अपने किसी प्रियबन्धु की दाह-क्रिया करके आ रहे हो।

घर पहुँच कर वह फिर उन्ही विचारो मे मग्न हुए। कुछ समझ में न आता था कि जीवन का क्या लक्ष्य बनाया जाय। क्षुद्र लौकिकता से चित्त को घृणा होती थी और उत्कृष्ट नियमों पर चलने के नतीजे उलटे होते थे। उन्हे अपनी विवशता का ऐसा निराशा-जनक अनुभव कभी न हुआ था। मानव-बुद्धि कितनी भ्रमयुक्त है, उसकी दृष्टि कितनी सकीर्ण—इसका ऐसा स्पष्ट प्रमाण कभी न मिला था। यद्यपि वह अहंकार को अपने पास न आने देते थे, पर वह किसी गुप्त मार्ग से उनके हृदयस्थल मे पहुँच जाता था। अपने सद्कार्यों को सफल होते देख कर उनका चित्त उल्लसित हो जाता था और हृदय-कर्णों मे किसी ओर से मन्द स्वरों मे सुनायी देता था—मैंने कितना अच्छा काम किया! लेकिन ऐसे प्रत्येक अवसर पर एक ही क्षण के उपरान्त उन्हें कोई ऐसी चेतावनी मिल जाती थी, जो उनके अहकार को चूर-चूर कर देती थी। मूर्ख! तुझे अपनी सिद्धान्त-प्रियता का अभिमान है! देख वह कितने कच्चे हैं। तुझे अपनी बुद्धि और विद्या का घमड है! देख, वह कितनी भ्रांतिपूर्ण है। तुझे अपने ज्ञान और सदाचार का गरूर है! देख वह कितना [illegible] और भ्रष्ट है। क्या तुम्हे निश्चय है कि तुम्हारी ही उत्तेजनाएँ [illegible] खाँ की हत्या का कारण नही हुई? तुम्हारे ही कटु उपदेशो ने मनोहर की जान नहीं ली? तुम्हारे ही वक्र नीति-पालन ने ज्ञानशंकर की श्रद्धा को तुमसे विमुख नही किया?

वह सोचते-सोचते उनका ध्यान अपनी आर्थिक कठिनाइयों की ओर गया। अभी न जाने यह मुकदमा कितने दिनों चलेगा। इर्फानअली कोई तीन हजार ले चुके और शायद अभी उनका इतना ही बाकी है। गन्ने तैयार हैं, लेकिन हजार रुपये से ज्यादा न ला सकेंगे। बेचारे गाँववालो को कहाँ तक दबाऊँ? फलों से जो कुछ मिला वह सब खर्च हो गया। किसी को अभी हिसाब तक नही दिखाया। न जाने वह सब अपने मन में क्या समझते हो। लखनपुर की कुछ खबर न ले सका। मालूम नही उन दुखियों पर क्या बीत रही है।

अकस्मात् भोला की स्त्री बुधिया आ कर बोली बाबू, दो दिन से घर में चूल्हा नही जला और आपका हलवाहा मेरी जान खाये जाता है। बताइए मैं क्या करूँ। क्या चोरी करूँ? दिन भर चक्की पीसती हूँ और जो कुछ पाती हूँ, वह सब गृहस्थी मे झोंक

देती हूँ, तिसपर भी भरपेट दाना नसीब नही होता। आप उसके हाथ मे तलब न दिया करे। सब जुए मे उडा देता है। आप उसे न डाँटते हैं, न समझाते है। आप समझते है कि मजदूरी बढ़ाते हीं वह ठीक हो जायगा। आप उसे हजार का महीना भी दे तो भी उसके लिए पूरे न पडेगे। आज से आप तलब मेरे हाथ मे दिया करे।

प्रेमशकर—जुआ खेलना तो उसने छोड दिया था ?

बुधिया—वही दो-एक महीने नही खेला था। बीच-बीच मे भी कभी छोड देता है, लेकिन उसकी तो लत पड गयी है। आप तलब मुझे दे दिया करे, फिर देखूं कैसे जुआ खेलता है। आपका सीधा सुभाव है, जब माँगता है तभी निकाल कर दे देते हैं।

प्रेम—मुझसे तो वह यही कहता है कि मैंने जुआ छोड दिया। जब कभी रुपये माँगता है, तो यही कहता है कि खाने को नही है। न दूं तो क्या करूँ ?

बुधिया—तभी तो उसके मिजाज नही मिलते। कुछ पेशगी तो नही ले गया है ?

प्रेम—उसी से पूछो, ले गया होगा तो बतायेगा न।

बुधिया—आपके यहाँ हिसाब-किताब नही है क्या ?

प्रेम—मुझे कुछ याद नही है।

बुधिया—आपको याद नही है तो वह बता चुका। शराबियो-जुआरियो के भी कही ईमान होता है ?

प्रेम—क्यो, क्या शराब से ईमान घुल जाता है ?

बुधिया—घुल नही जाता तो और क्या ? देखिए, बुलाके आपके मुँह पर पूछती हूँ। या नारायण, निगोडा तलब की तलब उडा देता है, उसपर पेशगी ले कर खेल डालता है। अब देखूं, कहाँ से भरता है ?

यह कह कर वह झल्लायी हुई गयी और जरा देर मे भोला को साथ लिये आयी। भोला की आँखे लाल थी। लज्जा से सिर झुकाये हुए था। बुधिया ने पूछा, बताओ, तुमने बाबू जी से कितने रुपये पेशगी लिये है ?

भोला ने स्त्री की ओर सरोष नेत्रो से देख कर कहा—तू कौन होती है पूछने वाली ? बाबू जी जानते नही क्या ?

बुधिया—बाबू जी ही तो पूछते हैं, नही तो मुझे क्या पडी थी ?

भोला—इनके मेरे ऊपर लाख आते है और मैं इनका जन्म भर का गुलाम हूँ।

बुधिया—देखा बाबू जी ! कहती न थी, वह कुछ न बतायेगा ? जुआरी कभी ईमान के सच्चे हुए हैं कि यही होगा ?

भोला—तू समझती है कि मैं बाते बना रहा हूँ। बाते उनसे बनायी जाती है जो दिल के खोटे होते है, जो एक धेला दे कर पैसे का काम कराना चाहते है। देवताओ से बात नही बनायी जाती। यह जान इनकी है, यह तन इनका है, इशारा भर मिल जाय।

बुधिया—अरे जा, जालिये कही के ! बाबू जी बीसो बार समझा के हार गये।

तुझसे एक जुआ तो छोडा जाता नही, तू और क्या करेगा ? जान पर खेलनेवाले और होते हैं।

भोला—झूठी कही की, मै कब जुआ खेलता हूँ ?

प्रेम—सच कहना भोला, क्या तुम अब भी जुआ खेलते हो ? तुम मुझसे कई बार कह चुके हो कि मैंने बिलकुल छोड दिया।

भोला का गला भर आया। नशे मे हमारे मनोभाव अतिशयोक्ति-पूर्ण हो जाते है। वह जोर से रोने लगा। जब ग्लानि का वेग कम हुआ तो सिसिकियाँ लेता हुआ बोला—मालिक, यही आपका एक हुकुम है, जिसे मैंने टाला है। और कोई बात नही टाली। आप मुझे यही बैठा कर सिर पर १०० जूते गिन कर लगायें, तब यह भूत उतरेगा। मैं रोज सोचता हूँ कि अब कभी न खेलूंगा, पर साँझ होते ही मुझे जैसे कोई ढकेल कर फड की ओर ले जाता है। हा ! मैं आपसे झूठ बोला, आपसे कपट किया, भगवान् मेरी क्या गति करेंगे ? यह कह कर वह फिर फूट-फूट कर रोने लगा।

लज्जा-भाव की यह पवित्रता देख कर प्रेमशकर की आँखें भी भर आयी। वह शराबी और जुआरी भोला, जिसे वह नीच समझते थे, ऐसा पवित्रात्मा, ऐसा निर्मल-हृदय था ! उन्होने उसे गले लगा लिया, तुम क्यो रोते हो ? मैं तुम्हे कुछ कहता थोडे ही हूँ ?

भोला—आपका कुछ न कहना ही तो मुझे मार डालता है। मुझे गालियाँ दीजिए, कोडे से मारिए, तब यह नशा उतरेगा। हम लातो के देवता बातो से नही मानते।

प्रेम—तुम्हारी तलब बुधिया को दे दिया करूँ ?

भोला—जी हाँ, आज से मुझे एक कौडी भी न दिया करें।

प्रेम—(बुधिया से) लेकिन जो यह जुए से भी बुरी कोई आदत पकड़ ले तो ?

बुधिया—जुए से बुरी चोरी है। जिस दिन इसे चोरी करते देखूंगी, जहर दे दूंगी। मुझे राँड़ बनना मजूर है, चोर की लुगाई नही बन सकती।

उसने भोला का हाथ पकड कर घर चलने का इशारा किया और प्रेमशकर के लिए एक जटिल समस्या छोड़ गयी।

३८

डा० इर्फान अली बैठे सोच रहे थे कि मनोहर की आत्म-हत्या का शेष अभियुक्तो पर क्या असर पड़ेगा ? कानूनी ग्रन्थो का ढेर सामने रखा हुआ था। बीच मे विचार करने लगते थे, मैंने यह मुकदमा नाहक लिया। रोज १०० रु० का नुकसान हो रहा है और अभी मालूम नही कितने दिन लगेंगे। लाहौल ! फिर रुपये की तरफ ध्यान गया। कितना ही चाहता हूँ कि दिल को इधर न आने दूं, मगर ख्याल आ ही जाता है। वकालत छोडते भी नही बनती। ज्ञानशकर से प्रोफेसरी के लिए कह तो आया हूँ, लेकिन जो सचमुच यह जगह मिल गयी तो टेढी खीर होगी ! मैं अब ज्यादा दिनो तक इस पेशे मे रह नही सकता, और न सही तो सेहत के लिए जरूर ही छोड़

देना पडेगा। बस, यही चाहता हूँ कि घर बैठे १००० रु० माहवारी रकम मिल जाया करे। अगर प्रोफेसरी से १००० रु० भी मिले तो भी काफी होगा। नही, अभी छोडने का वक्त नही आया। ३ साल तक सख्त मेहनत करने के बाद अलबत्ता छोडने का इरादा कर सकता हूँ। लेकिन इन तीन बरसो तक मुझे चाहिए कि रियायत और मुरौवत को बालायताक रख दूँ। सबसे पूरा मेहनताना लूँ, वरना आजकल की तरह फँसता रहा तो जिन्दगी भर छुटकारा न होगा।

हाँ, तो आज इस मुकदमे में बहस होगी। उफ ! अभी तक तैयार नही हो सका। गवाहो के बयानो पर निगाह डालने का भी मौका न मिला। खैर, कोई मुजायका नही। कुछ न कुछ बातें तो याद ही हैं। बहुत कुछ उधर के वकील की तकरीर से सूझ जायेंगी। जरा नमक मिर्च और मिला दूँगा, खासी बहस हो जायगी। यह तो रोज का ही काम है, इसकी क्या फिक्र ...

इतने मे अमोली के राजा साहब की मोटर आ पहुँची। डाक्टर साहब ने बाहर निकल कर राजा साहब का स्वागत किया। राजा साहब अँगरेजी मे कोरे, लेकिन अँगरेजी रहन-सहन, रीति-नीति मे पारगत थे। उनके कपडे विलायत से सिल कर आते थे। लड़को को पढाने के लिए लेडियाँ नौकर थी और रियासत का मैनेजर भी अँगरेज था। राजा साहब का अधिकाश समय अँगरेजी दुकानो की सैर मे कटता था। टिकट और सिक्के जमा करने का शौक था। थियेटर जाने में कभी नागा न करते थे। कुछ दिनो से उनके मैनेजर ने रियासत की आमदनी पर हाथ लपकाना शुरू किया था। इसलिए उन्हे हटाना चाहते थे; किन्तु अँगरेज अधिकारियो के भय से साहस न होता था। मैनेजर स्वयं राजा को कुछ न समझता था, आमदनी का हिसाब देना तो दूर रहा। राजा साहब इस मामले को दीवानी मे लाने का विचार कर रहे थे। लेकिन मैनेजर साहब की जज से गहरी मैत्री थी, इसलिए अदालत के और वकीलो ने इस मुकदमे को हाथ मे लेने से इनकार कर दिया था। निराश हो कर राजा साहब ने इर्फान अली की शरण ली थी। डाक्टर साहब देर तक उनकी बाते सुनते रहे। बीच-बीच मे तस्कीन देते जाते थे। आप घबराये नही। मैं मैनेजर साहब से एक-एक कौडी वसूल कर लूंगा। यहाँ के वकील दब्बू है, खुशामदी टट्टू—पेशे को बदनाम करनेवाले। हमारा पेशा आजाद है। हक की हिमायत करना हमारा काम है, चाहे बादशाह से ही क्यो न मुकाबला करना पडे। आप जरा भी तरद्दुद न करें। मैं सब बाते ऐसी खूबसूरती से तय कर दूँगा कि आप पर छीटा भी न आने पायेगा। अकस्मात् तार के चपरासी ने आ कर डाक्टर साहब को एक तार का लिफाफा दिया। ज्ञानशकर ने एक मुकदमे की पैरवी करने के लिए ५०० रु० रोज पर बुलाया था।

डाक्टर महोदय ने राजा साहब से कहा यह पेशा बडी मूजी है। कभी आराम से बैठना नसीब नही होता। रानी गायत्रीदेवी का तार है, गोरखपुर बुला रही है।

राजा—मैं अपने मुकदमे को मुलतवी नही कर सकता। मुमकिन है मैनेजर कोई और चाल खेल जाय।

डाक्टर—आप मुतलक अन्देशा न करे, मैने मुकदमे को हाथ मे ले लिया। अपने दीवान साहब को भेज दीजिएगा, वकालतनामा तैयार हो जायगा। मै कागजात देखकर फौरन दावा दायर कर दूंगा। गोरखपुर गया भी तो आपके कागजात लेता जाऊँगा।

घडी मे दस बजे। खानसामा ने दस्तरखान बिछाया। भोजनालय इस दफ्तर के बगल ही मे था। मसाले की सुगन्ध कमरे मे फैल गयी, लेकिन डाक्टर साहब अपना शिकार फँसाने मे तल्लीन थे। भय होता था मै भोजन करने चला जाऊँ और शिकार हाथ से निकल जाय। लगभग आध घटे तक वह राजा साहब से मुकदमे के सम्बन्ध मे बाते करते रहे। राजा साहब के जाने के बाद वह दस्तरखान पर बैठे। खाना ठढा हो गया था। दो-चार ही कौर खाने पाये थे कि ११ बज गये। दस्तरखान से उठ बैठे। जल्दी-जल्दी कपडे पहने और कचहरी चले। रास्ते मे पछताते जाते थे कि भरपेट खाने भी न पाया। आज पुलाव कैसा लजीज बना था। इस पेशे का बुरा हो, खाने की फुर्सत नही। हाँ, रानी को क्या जवाब दूं? नीति तो यही है कि जब तक किसानो का मामला तय न हो जाय, कही न जाऊँ। लेकिन यह ५०० रु० रोज का नुकसान कैसे बर्दाश्त करूँ? फिर एक बडी रियासत से ताल्लुक हो रहा है, साल मे सैकडो मुकदमे होते होगे, सैकडो अपीले होती होगी। वहाँ अपना रग जरूर जमाना चाहिए। मुहर्रिर साहब सामने ही बैठे थे, पूछा—क्यो मुन्शी जी, रानी साहब को क्या जवाब दूं? आप के ख्याल मे इस वक्त वहाँ मेरा जाना मुनासिब है?

मुहर्रिर—हजूर किसी के ताबेदार नही है। शौक से जायें। सभी वकील यही करते है। ऐसे मौके को न छोडे।

डाक्टर—बदनामी होती है।

मुहर्रिर—जरा भी नही। जब यही आम रिवाज है तो कौन किसे बदनाम कर सकता है।

इन शब्दो ने इर्फान अली की दुविधाओ को दूर कर दिया। औघते को लेटने का बहाना मिल गया। ज्यो ही मोटर कचहरी मे पहुँची, प्रेमशकर दौडे हुए आए और बोले, मैं तो बड़ी चिन्ता मे था। पेशी हो गयी।

डाक्टर—अमौली के राजा साहब आ गये, इससे जरा देर हो गयी, खाना भी नही नसीब हुआ। इस पेशे की न जाने क्यो लोग इतनी तारीफ करते है? असल मे इससे बदतर कोई पेशा नही। थोडे दिनो मे आदमी कोल्हू का बैल बन जाता है।

प्रेमशकर—आप उधर कहाँ तशरीफ लिए जाते हैं?

डाक्टर—जरा सब-जज के इजलास मे एक बात पूछने। आप चले, मैं अभी आता हूँ।

प्रेम—सरकारी वकील ने बहस शुरू कर दी है।

डाक्टर—कोई मुजायका नही, करने दीजिए। मैं उसका जवाब पहले ही तैयार कर चुका हूँ।

प्रेमशकर उनके साथ सब-जज के इजलास तक गये। डाक्टर साहब लगभग एक

घटे तक दफ्तरवालो से बाते करते रहे। अन्त मे निकले तो बडे सकोच भाव से बोले आप को यहाँ खडे-खडे बेहद तकलीफ हुई, मुआफ फरमाइएगा। मुझे यह कहते हुए आपसे बहुत नादिम होना पडता है कि मैं तीन-चार दिन इस मुकदमे की पैरवी न कर सकूँगा।

प्रेम—यह तो आप ने बुरी खबर सुनायी। आप खुद अन्दाज कर सकते है कि ऐसे नाजुक मौके पर आप का न रहना कितना जुल्म है।

डाक्टर—मजबूर हूँ, आप के भाई साहब ने तार से गोरखपुर बुलाया है।

प्रेम—इस खबर से मेरी तो रूह ही फना हो गयी। आप इन बेचारे किसानो को मझधार मे छोडे देते है। ख्याल फरमाइए, इनकी क्या हालत होगी। यहाँ इतने तग वक्त मे कोई दूसरा वकील भी तो नही मिल सकता।

डाक्टर—मुझे खुद निहायत अफसोस है। मगर जब तक दूकान है तब तक खरीदारो की खातिर करनी ही पडेगी। यह पेशा एसा मनहूस है कि इसमे आईन पर कायम रहना दुश्वार है। मुझे इन मुसीबतजदो का खुद ख्याल है, लेकिन मिस्टर ज्ञानशकर को नाराज भी तो नही कर सकता। और जनाब, साफ बात तो यह है कि जब काफिर हुए तो शराब से क्यो तोबा करे? जब वकालत का सियाह जामा पहना तो उसपर शराफत का सुफेद दाग क्यों लगाये? जब लूटने पर आये तो दोनो हाथो से क्यो न समेटे? दिल मे दौलत का अरमान क्यो रह जाय? बनियो को लोग ख्वाहमख्वाह लालची कहते है। इस लकब का हक हमको है। दौलत हमारा दीन है, हमारा ईमान है। यह न समझिए कि इस पेशे के जो लोग चोटी पर पहुँच गये है वे ज्यादा रोशन ख्याल है। नही जनाब, वे बगुले भगत है। ऐसे खामोश बैठे रहते है, गोया दुनिया से कोई वास्ता ही नही, लेकिन शिकार नजर आते ही आप उनकी झपट और फुरती देख कर दग हो जायेंगे। जिस तरह कसाई बकरे को सिर्फ उसके वजन के एतबार से देखता है उसी तरह हम इन्सान को महज इस एतबार से देखते है कि वह कहाँ तक आँख का अन्धा और गाँठ का पूरा है। लोग इसे आजाद पेशा कहते है, मैं इसे इन्तहा दरजे की गुलामी कहता हूँ। अभी चन्द महीने हुए मेरे भाई की शादी दरपेश थी। सादात के कस्बे मे बारात गयी थी। तीन दिन बारात वहाँ मुकीम रही। मैं रोज सवेरे यहाँ चला आता था और रात की गाडी से लौट जाता था। सभी रस्मे मेरी गैरहाजिरी मे अदा हुईं। एक दिन भी कचहरी का नागा नही किया। मैं अपनी इस हवस को मकरूह समझता हूँ और जिन्दगी भर उस आदमी का शुक्रगुजार रहूँगा जो मुझे इस मर्ज से नजात दे दे।

यह कह कर डाक्टर साहब मोटर पर आ बैठे और एक क्षण मे घर पहुँच गये। एक बजे गाडी जाती थी। सफर का सामान होने लगा। दो चमडे के सन्दूक, एक हैंड बेग, हैट रखने का सदूक, आफिस बक्स, भोजन सामग्रियो का सदूक आदि सभी सामान बग्घी पर लादा गया। प्रत्येक वस्तु पर डाक्टर साहब का नाम लिखा हुआ था। समय बहुत कम था, डाक्टर साहब घर मे न गये। मोटर पर बैठना ही चाहते थे कि

महरी ने आ कर कहा, हजूर, जरा अन्दर चले, बेगम साहब बुला रही है। मुनीरा को कई दस्त और कै आये हैं।

डाक्टर साहब—तो जरा कपूर का अर्क क्यो नही पिला देती? खाने मे कोई बदपरहेजी हुई होगी। चीखने-चिल्लाने की क्या जरूरत है?

महरी—हजूर, दवा तो पिलायी है। जरा आप चल कर देख लें। बेगम साहब डाक्टर बुलाने को कहती हैं।

इर्फान अली झल्लाये हुए अन्दर गये और बेगम से बोले, तुमने क्या जरा सी बात का तूफान मचा रखा है?

बेगम—मुनीरा की हालत अच्छी नही मालूम होती। जरा चल कर देखो तो। उसके हाथ-पाँव अकड़े जाते है। मुझे तो खौफ होता है, कही कालरा न हो।

इर्फान—यह सब तुम्हारा बहम है। सिर्फ खाने-पीने की बेएहतियाती है, और कुछ नही। अर्क-कपूर दो-दो घंटे बाद पिलाती रहो, शाम तक सारी शिकायत दूर हो जायगी। घबडाने की जरूरत नही। मैं इसी ट्रेन से जरा गोरखपुर जा रहा हूँ। तीन-चार दिन मे वापस आऊँगा। रोजाना खैरियत की इत्तला देती रहना। मैं रानी गायत्री के बँगले मे ठहरूँगा।

बेगम ने उन्हे तिरस्कार भाव से देख कर कहा, लड़की की यह हालत है और आप इसे छोड़े चले जाते हैं। खुदा न करे, उसकी हालत ज्यादा खराब हुई तो?

इर्फान—तो मैं रह कर क्या करूँगा? उसकी तीमारदारी तो मुझसे होगी ही नही और न बीमारी से मेरी दोस्ती है कि मेरे साथ रियायत करे।

बेगम—लड़की की जान को खुदा के हवाले करते हो, लेकिन रुपये खुदा के हवाले नही किये जाते! लाहौल विलाकूवत! आदमी मे इन्सानियत न हो, औलाद की मुहब्बत तो हो! दौलत की हवस औलाद के लिए होती है। जब औलाद ही न रही, तो रुपयो का क्या अलाव लगेगा?

इर्फान—तुम अहमक हो, तुमसे कौन सिर-मगजन करे?

यह कह कर वह बाहर चले आये, मोटर पर बैठे और स्टेशन की तरफ चल पड़े।

३९

सैयद ईजाद हुसेन का घर दारानगर की एक गली मे था। बरामदे मे दस बारह वस्त्र विहीन बालक एक फटे हुए बोरिये पर बैठे करीमा और खालिकबारी की रट लगाया करते थे। कभी-कभी जब वे उमंग मे आ कर उच्च स्वर से अपने पाठ याद करने लगते तो कानो पड़ी आवाज न सुनायी देती। मालूम होता, बाजार लगा हुआ हो। इस हरबोग मे लौंडे गालियाँ बकते, एक दूसरे को मुँह चिढ़ाते, चुटकियाँ काटते। यदि कोई लड़का शिकायत करता तो सब के सब मिल कर ऐसा कोलाहल मचाते कि उसकी आवाज ही दब जाती थी। बरामदे के मध्य मे मौलवी साहब का तख्त था। उस पर

एक दढियल मौलवी लुगी बाँधे, एक मैला-कुचैला तकिया लगाये अपना मदरिया पिया करते और इस कलरव मे भी शान्तिपूर्वक झपकियाँ लेते रहते थे। उन्हे हुक्का पीने का रोग था। एक किनारे अँगीठी मे उपले सुलगा करते थे और चिमटा पडा रहता था। चिलम भरना बालको के मनोरजन की मुख्य सामग्री थी। उनकी शिक्षोन्नति चाहे बहुत प्रशसा के योग्य न हो, लेकिन गुरु-सेवा मे सबके सब निपुण थे। यहाँ सैयद ईजाद हुसेन का "इत्तहादी यतीमखाना" था।

किन्तु बरामदे के ऊपरवाले कमरे मे कुछ और ही दृश्य था। साफ-सुथरा फर्श बिछा हुआ था, कालीन और मसनद भी करीने से सजे हुए थे। पानदान, खसदान, उगालदान आदि मौके से रखे हुए थे। एक कोने मे नमाज पढने की दरी बिछी हुई थी। तस्वीह खूँटी पर लटक रही थी। छत मे झालरदार छतगीर थी, जिसकी शोभा रँगीन हाँडियो से और भी बढ गयी थी। दीवारे बडी-बडी तस्वीरो से अलकृत थी।

प्रातःकाल था। मिर्जा साहब मसनद लगाये हारमोनियम बजा रहे थे। उनके सम्मुख तीन छोटी छोटी सुन्दर बालिकाएँ बैठी हुई डाक्टर इकबाल की सुविख्यात रचना 'शिवाजी' के शेरो को मधुर स्वर मे गा रही थी। ईजाद हुसेन स्वय उनके साथ गा कर ताल-स्वर बताते जाते थे। यह "इत्तहादी यतीमखाने" की लडकियाँ बतायी जाती थी, किन्तु वास्तव मे एक उन्ही की पुत्री और दो भाजियाँ थी। 'इत्तहाद' के प्रचार मे यह त्रिमूर्ति लोगो को वशीभूत कर लेती थी। एक घटे के अभ्यास के बाद मिर्जा साहब ने प्रसन्न हो सगर्व नेत्रो से लडकियो को देखा और उन्हे छुट्टी दी। इसके बाद लडको की बारी आयी। किन्तु यह मकतबवाले, दुर्बल, वस्त्रहीन बालक न थे। थे तो चार ही, पर चारो स्फूर्ति और सजीवता की मूर्ति थे। सुन्दर, सुकुमार, सवस्त्रित, चहकते हुए घर मे से आये और फर्श पर बैठ गये। मिर्जा साहब ने फिर हारमोनियम के स्वर मिलाये और लड़को ने हक्कानी मे एक गजल गानी शुरू की, जो स्वय मिर्जा साहब की सुरचना थी। इसमे हिन्दू-मुस्लिम एकता की एक सुन्दर वाटिका से उपमा दी गयी थी और जनता से अत्यन्त करुण और प्रभावयुक्त शब्दो मे प्रेरणा की गयी थी कि वह इस बाग को अपनाये, उसकी रमणीकता का आनन्द उठायें और द्वेष तथा वैमनस्य की कटकमय झाडियो मे न उलझे। लडको के सुकोमल, ललित स्वरो मे यह गजब ढाती थी। भावो को व्यक्त करने मे भी यह बहुत चतुर थे। यह 'इत्तहादी यतीमखाने' के लडके बताये जाते थे, किन्तु वास्तव मे यह मिर्जा साहब की दोनो बहनो के पुत्र थे।

मिर्जा साहब अभी गानाभ्यास मे मग्न थे कि इतने मे एक आदमी नीचे से आया और सामने खडा हो कर बोला, लाला गोपालदास ने भेजा है और कहा है आज हिसाब चुकता न हो गया तो कल नालिश कर दी जायगी। कपडे का व्यवहार महीने दो महीने का है और आपको कपडे लिये तीन साल से ज्यादा हो गये।

मिर्जा साहब ने ऐसा मुँह बनाया, मानो समस्त ससार का चिन्ता-भार उन्ही के सिर पर लदा हुआ हो और बोले, नालिश क्यो करेंगे ? कह दो थोडा सा जहर भेज दे, खा कर मर जाऊँ। किसी तरह दुनियाँ से नजात मिले। उन्हे तो खुदा ने लाखो दिये

हैं, घर में रुपयों के ढेर लगे हुए हैं। उन्हें क्या खबर कि यहाँ जान पर क्या गुजर रही है? कुन्बा बड़ा, आमदनी का कोई जरिया नहीं, दुनिया चालाक हत्थे नहीं चढ़ती, क्या करूँ! मगर इन्शा अल्लाह—एक महीने के अन्दर आ कर सब नया-पुराना हिसाब साफ कर दूंगा। अबकी मुझे वह चाल सूझी है जो कभी पट ही नहीं पड़ सकती। इन लड़कों की गजलें सुन कर मजलिसें फड़क उठेंगी। जा कर सेठ जी से कह दो, जहाँ इतने दिनों सब्र किया है, एक महीना और करें।

प्यादे ने हँस कर कहा, आप तो मिर्जा साहब, ऐसे ही बातें करके टाल देते हैं और वहाँ मुझपर लताड़ पड़ती है। मुनीम जी कहते हैं, तुम जाते ही न होगे या कुछ ले-दे के चले आते होगे!

मिर्जा साहब ने एक चवन्नी उसके भेंट की। उसके चले जाने के बाद उन्होंने मौलवी साहब को बुलाया और बोले, क्यों मियाँ अमजद, मैंने तुमसे ताकीद कर दी थी कि कोई आदमी ऊपर न आने पाये। इस प्यादे को क्यों आने दिया? मुँह में दही जमा हुआ था? इतना कहते न बनता था कि कहीं बाहर गये हुए हैं। अगर इस तरह तुम लोगों को आने दोगे तो सुबह से शाम तक ताँता लगा रहेगा। आखिर तुम किस मरज की दवा हो?

अमजद—मैं तो उससे बार-बार कहता रहा कि मियाँ कहीं बाहर गये हुए हैं, लेकिन वह जबरदस्ती जीने पर चढ़ आया। क्या करता, उससे क्या फौजदारी करता?

मिर्जा—बेशक उसे धक्का दे कर हटा देना चाहिए था।

अमजद—तो जनाब रूखी रोटी और पतली दाल में इतनी ताकत नहीं होती, उसपर दिमाग लौंडे चर जाते हैं। हाथा-पाई किस बूते पर करूँ? कभी सालन तक नसीब नहीं होता। दरवाजे पर पड़ा-पड़ा मसाले और प्याज की खुशबू लिया करता हूँ। सारा घर पुलाव और जरदे उड़ाता है, यहाँ खुश्क रोटियों पर ही बसर है। दस्तर-ख्वान पर खाने को तरस गया। रोज वही मिट्टी की प्याली सामने आ जाती है। मुझे भी तर माल खिलाइए। फिर देखूँ, कौन घर में कदम रखता है।

मिर्जा—लाहौल विलाकूवत, तुम हमेशा पेट का ही रोना रोते रहे। अरे मियाँ, खुदा का शुक्र करो कि बैठे-बैठे रोटियाँ तो तोड़ने को मिल जाती हैं, वर्ना इस वक्त कहीं फक-फक फाँय-फाँय करते होते।

अमजद—आपसे दिल की बात कहता हूँ तो आप गालियाँ देने लगते हैं। लीजिए, जाता हूँ, अब अगर सूरत दिखाऊँ तो समझिएगा कोई कमीना था। खुदा ने मुँह दिया तो रोजी भी देगा। इस मुदेशी के जमाने में मैं भूखों न मरूँगा।

यह कह मियाँ अमजद सजल नेत्र हो उतरने लगे, कि ईजाद हुसेन ने फिर बुलाया और नम्रता से बोले, आप तो बस जरा सी बात पर बिगड़ जाते हैं। देखते नहीं हो यहाँ घर में कितना खर्च है? औलाद की कसरत खुदा की मार है, उस पर रिश्तेदारों का बटोर टिड्डियों का दल है जो आन की आन दरख्त ठूँठ कर देता है। क्या करूँ? औलाद की परवरिश फर्ज ही है और रिश्तेदारों से बेमुरौवत करना अपनी आदत नहीं।

इस ज़ाल मे फँस कर तरह तरह की चाले चलता हूँ, तरह-तरह के स्वाँग भरता हूँ, फिर भी चूल नही बैठती। अब ताकीद कर दूंगा कि जो कुछ पके वह आपको जरूर मिले। देखिए, अब कोई ऊपर न आने पाये।

अमजद—मैंने तो कसम खा ली है।

ईजाद—अरे मियाँ कैसी बाते करते हो ? ऐसी कस्मे दिन मे सैकड़ो बार खाया करते हैं। जाइए देखिए, फिर कोई शैतान आया है।

मियाँ अमजद नीचे आये तो सचमुच एक शैतान खडा था। ठिगना कद, उठा हुआ शरीर, श्याम वर्ण, तजेब का नीचा कुरता पहने हुए। अमजद को देखते ही बोला मिर्जा जी से कह दो वफाती आया है।

अमजद ने कड़क कर कहा—मिर्जा साहब कही बाहर तशरीफ ले गये है।

वफाती—मियाँ, क्यो झूठ बोलते हो ? अभी गोपालदास का आदमी मिला था। कहता था ऊपर कमरे मे बैठे हुए हैं। इतनी जल्दी क्या उठ कर चले गये ?

अमजद—उसने तुम्हे झाँसा दिया होगा। मिर्जा साहब कल से ही नही है।

वफाती—तो मैं जरा ऊपर जा कर देख ही न आऊँ !

अमजद—ऊपर जाने का हुक्म नही है। बेगमात बैठी होगी। यह कह कर वे जीने का द्वार रोक कर खडे हो गये। वफाती ने उनका हाथ पकड कर अपनी ओर घसीट लिया और जीने पर चढा। अमजद ने पीछे से उनको पकड लिया। वफाती ने झल्ला कर ऐसा झोका दिया कि मियाँ अमजद गिरे और लुढकते हुए नीचे आ गये। लौडो ने जोर से कहकहा मारा। वफाती ने ऊपर जा कर देखा तो मिर्जा साहब साक्षात् मसनद लगाये विराजमान हैं। बोला, वाह मिर्जा जी वाह, आपका निराला हाल है कि घर मे बैठे रहते हैं और नीचे मियाँ अमजद कहते है, बाहर गये हुए हैं। अब भी दाम दीजिएगा या हशर के दिन ही हिसाब होगा ? दौडते-दौडते तो पैरो मे छाले पड गये।

मिर्जा—वाह, इससे बेहतर क्या होगा ! हश्र के दिन तुम्हारा कौडी-कौडी चुका दूंगा उस वक्त जिन्दगी भर की कमाई पास रहेगी, कोई दिक्कत न होगी।

वफाती—लाइए-लाइए, आज दिलवाइए, बरसो हो गये। आप यतीमखाने के नाम पर चारो तरफ से हजारो रुपये लाते हैं, मेरा क्यो नही देते ?

मिर्जा—मियाँ, कैसी बातें करते हो ? दुनिया न ऐसी अन्धी है, न ऐसी अहमक। अब लोगो के दिल पत्थर हो गये है। कोई पसीजता नही। अगर इस तरह रुपये बरसते तो तकाजो मे ऐसा क्या मजा है जो उठाया करता ? यह अपनी बेबसी है जो तुम लोगो से नादिम कराती है। खुदा के लिये एक माह और सब्र करो। दिसम्बर का महीना आने दो। जिस तरह क्वार और कातिक हकीमो के फस्ल के दिन होते है, उसी तरह दिसम्बर मे हमारी भी फस्ल तैयार होती है। हर एक शहर मे जलसे होने लगते हैं। अबकी मैंने वह मन्त्र जगाया है जो कभी खाली जा ही नही सकता।

वफाती—इस तरह हीला-हवाला करते तो आपको बरसो हो गये। आज कुछ न कुछ पिछले हिसाब मे तो दे दीजिए।

मिर्जा—आज तो अगर हलाल भी कर डालो तो लाश के सिवा और कुछ न पाओगे।

वफाती निराश हो कर चला गया। मिर्जा साहब ने अबकी जा कर जीने का द्वार भीतर से बन्द कर दिया और फिर हारमोनियम सँभाला कि अकस्मात् डाकिये ने पुकारा। मिर्जा साहब चिट्ठियों के लिए बहुत उत्सुक रहा करते थे। जा कर द्वार खोला और समाचार-पत्रों तथा चिट्ठियों का एक पुलिन्दा लिये प्रसन्न मुख ऊपर आये। पहला पत्र उनके पुत्र का था, जो प्रयाग में कानून पढ़ रहे थे। उन्होंने एक सूट और कानूनी पुस्तकों के लिए रुपये माँगे थे। मिर्जा ने झुंझला कर पत्र को पटक दिया। जब देखो, रुपयों का तकाजा, गोया यहाँ रुपयें फलते हैं। दूसरा पत्र एक अनाथ बालक का था। मिर्जा जी ने उसे सन्दूक में रखा। तीसरा पत्र एक सेवा-समिति का था। उसने 'इत्त-हादी' अनाथालय के लिए २० रु० महीने की सहायता देने का निश्चय किया था। इस पत्र को पढ़ कर वे उछल पड़े और उसे कई बार आँखों से लगाया। इसके बाद समा-चार पत्रों की बारी आयी। लेकिन मिर्जा जी की निगाह लेखों या समाचारों पर न थी। वह केवल 'इत्तहादी' अनाथालय की प्रशंसा के इच्छुक थे। पर इस विषय में उन्हें बड़ी निराशा हुई। किसी पत्र में भी इसकी चर्चा न देख पड़ी। सहसा उनकी निगाह एक ऐसी खबर पर पड़ी कि वह खुशी के मारे फड़क उठे! गोरखपुर में सनातन धर्म-सभा का अधिवेशन होनेवाला था। ज्ञानशंकर प्रबन्धक मन्त्री थे। विद्वज्जनों से प्रार्थना की गयी थी कि वह उत्सव में सम्मिलित हो कर उसकी शोभा बढ़ायें। मिर्जा साहब यात्रा की तैयारियाँ करने लगे।

४०

महाशय ज्ञानशंकर का धर्मानुराग इतना बढ़ा कि सांसारिक बातों से उन्हें अरुचि-सी होने लगी, दुनिया से जी उचाट हो गया। वह अब भी रियासत का प्रबन्ध उतने ही परिश्रम और उत्साह से करते थे, लेकिन अब सख्ती की जगह नरमी से काम लेते थे। निर्दिष्ट लगान के अतिरिक्त प्रत्येक असामी से ठाकुरद्वारे और धर्मशाले का चन्दा भी लिया जाता था; पर इस रकम को वह इतनी नम्रता से वसूल करते थे कि किसी को शिकायत न होती थी। अब वह एतराज, इजाफा और बकाये के मुकदमे बहुत कम दायर करते। असामियों को बैंक से नाम-मात्र ब्याज ले कर रुपये देते और डेवढ़े सवाई की जगह केवल अष्टांश वसूल करते। इन कामों से जितना अवकाश मिलता उसका अधिकांश ठाकुरद्वारे और धर्मशाले की निगरानी में व्यय करते। दूर-दूर से कुशल कारीगर बुलाये गये थे जो पच्चीकारी, गुलकारी, चित्रांकण, कटाव और जड़ाव की कलाओं में निपुण थे। जयपुर से संगमर्मर की गाड़ियाँ भरी चली आती थीं। चुनार, ग्वालियर आदि स्थानों से तरह तरह के पत्थर मँगाये जाते थे। ज्ञानशंकर की परम इच्छा थी कि यह दोनों इमारतें अद्वितीय हों और गायत्री तो यहाँ तक तैयार थी

कि रियासत की सारी आमदनी निर्माणकार्य के ही भेंट हो जाय तो चिन्ता नही। 'मैं केवल सीर की आमदनी पर निर्वाह कर लूंगी।' लेकिन ज्ञानशकर आमदनी के ऐसे-ऐसे विधान ढूंढ निकालते थे कि इतना सब कुछ व्यय होने पर भी रियासत की वार्षिक आय मे जरा भी कमी न होती थी। बडे-बड़े ग्रामो मे पांच-छह् बाजार लगवा दिये। दो-तीन नालो पर पुल बनवा दिये। कई कई जगह् पानी को रोकने के लिए बाँध बँधवा दिये। सिंचाई की कल मँगा कर किराये पर लगाने लगे। तेल निकालने का एक बडा कारखाना खोल दिया। इन आयोजनो से इलाके का नफा घटने के बदले कुछ और वढ गया। गायत्री तो उनकी कार्यपटुता की इतनी कायल हो गयी थी कि किसी विषय मे जबान न खोलती।

ज्ञानशकर के आहार-व्यवहार, रग-ढग मे भी अब विशेष अन्तर दीख पडता था। सिर पर बडे-बडे केश थे, बूट की जगह् प्राय. खडाऊँ, कोट के बदले एक ढीला-ढाला घुटनियो से नीचे तक का गेरुवे रग मे रँगा हुआ कुरता पहनते थे। यह पहनावा उनके सौम्य रूप पर बहुत खिलता था। उनके मुखारविन्द पर अब एक दिव्य ज्योति आभासित होती थी और बातो मे अनुपम माधुर्यपूर्ण सरलता थी। अब तर्क और न्याय से उन्हे रुचि न थी। इस तरह् बातें करते मानो उन्हे दिव्य ज्ञान प्राप्त हो गया है। यदि कोई उनसे भक्ति या प्रेम के विषय मे शका करता तो वह् उसका उत्तर एक मार्मिक मुस्कान से देते थे, जो हजारो दलीलो से अधिक प्रभावोत्पादक होती थी।

उनके दीवानखाने मे अब कुरसियो और मेजो के स्थान पर एक साफ-सुथरा फर्श था, जिस पर मसनद और गाव तकिये लगे हुए थे। सामने एक चन्दन के सुन्दर रत्न-जटित सिंहासन पर कृष्ण की बालमूर्ति विराजमान थी। कमरे मे नित अगर की बत्तियाँ जला करती थी। उसके अन्दर जाते ही सुगन्धि से चित्त प्रसन्न हो जाता था। उसकी स्वच्छता और सादगी हृदय को भक्ति-भाव से परिपूर्ण कर देती थी। वह् श्रीवलभ-सम्प्रदाय के अनुयायी थे। फूलो से, ललित गान से, सुरम्य दृश्यो से, काव्यमय भावो से उन्हे विशेष चि हो गयी थी, जो आध्यात्मिक विकास के लक्षण है। सौन्दर्योपासना ही उनके धर्म का प्रधान तत्व था। इस समय वह् एक सितारिये से सितार बजाना सीखते थे और सितार पर सूर के पदो को सुन कर मस्त हो जाते थे।

गायत्री पर इस प्रेम-भक्ति का रग और भी गाढा चढ गया था। वह् मीराबाई के सदृश कृष्ण की मूर्ति को स्नान कराती, वस्त्राभूषणो से सजाती, उनके लिए नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोग बनाती और मूर्ति के सम्मुख अनुराग मग्न हो कर घटो कीर्तन किया करती। आधी रात तक उनकी क्रीडाएँ और लीलाएँ सुनती और सुनाती। अब उसने पर्दा करना छोड दिया था। साधु-सन्तो के साथ बैठ कर उनकी प्रेम और ज्ञान की बाते सुना करती। लेकिन इस सत्सग से शान्ति मिलने के बदले उसका हृदय सदैव एक तृष्णा, एक विरहमय कल्पना से विकल रहता था। उसकी हृदय-वीणा एक अज्ञात आकाक्षा से गूंजती रहती थी। वह् स्वय निश्चय न कर सकती थी कि मैं क्या चाहती हूँ। वास्तव मे वह् राधा और कृष्ण के प्रेम तत्व को समझने मे असमर्थ थी। उसकी

भौतिक दृष्टि उन प्रेम के ऐन्द्रिक स्वरूप से आगे न बढ सकती थी और उसका हृदय इन प्रेम-मुग्ध कल्पनाओं से तृप्त न होता था। वह उन भावो को अनुभव करना चाहती थी। विरह और वियोग, ताप और व्यथा, मान और मनावन, रास और विहार, आमोद और प्रमोद का प्रत्यक्ष स्वरूप देखना चाहती थी। पहले पति-प्रेम उसका सर्वस्व था। नदी अपने पेटे मे ही हलकोरें लिया करती थी। अब उसे उस प्रेम का स्वरूप कुछ मिटा हुआ, फीका, विकृत मालूम होता था। नदी उमड गयी थी। पति-भक्ति का वह बाँध जो कुल-मर्यादा और आत्मगौरव पर आरोपित था इस प्रेमभक्ति की बाढ से टूट गया। भक्ति लौकिक बन्धनो को कब ध्यान मे लाती है? वह अब उन भावनाओ और कल्पनाओ को बिना किसी आत्मिक सकोच के हृदय मे स्थान देती थी, जिन्हे वह पहले अग्नि-ज्वाला समझा करती थी। उसे अब केवल कृष्ण-क्रीडा के दर्शन-मात्र से सन्तोष न होता था। वह स्वय कोई न कोई रास रचना चाहती थी। वह उन मनोभावो को वाणी से, कर्म से, व्यक्त करना चाहती थी जो उसके हृदयस्थल मे पक्षियो की भाँति अबाध्य रूप से उडा करते थे। और उसका कृष्ण कौन था? वह स्वय उसे स्वीकार करने का साहस न कर सकती थी, पर उसका स्वरूप ज्ञानशकर से बहुत मिलता था। वह अपने कृष्ण को इसी रूप मे प्रगट देखती थी।

गायत्री का हृदय पहले भी उदार था। अब वह और भी दानशीला हो गयी थी। उसके यहाँ अब नित्य सदाव्रत चलता था और जितने साधु-सन्त आ जायँ सबको इच्छापूर्वक भोजन-वस्त्र दिया जाता था। वह देश की धार्मिक और पारमार्थिक सस्थाओ की भी यथासाध्य सहायता करती रहती थी। अब उसे सनातन धर्म से विशेष अनुराग हो गया। अतएव अब की जब सनातन-धर्म-मण्डल का वार्षिकोत्सव गोरखपुर मे होना निश्चय किया गया तब सभासदो ने बहुमत से रानी गायत्री को सभापति नियुक्त किया। यह पहला अवसर था कि यह सम्मान एक विदुषी महिला को प्राप्त हुआ। गायत्री को रानी की पदवी मिलने से भी इतनी खुशी न हुई थी जितनी इस सम्मान पद से हुई। उसने ज्ञानशकर को, जो सभा के मन्त्री थे, बुलाया और अपने गहनो का सन्दूक दे कर बोली, इसमे ५० हजार के गहने है, मैं इन्हे सनातन धर्मसभा को समर्पण करती हूँ।

समाचार पत्रो मे यह खबर छप गयी। तैयारियाँ होने लगी। मन्त्री जी का यह हाल कि दिन को दिन और रात को रात न समझते। ऐसा विशाल सभा भवन कदाचित् ही पहले कभी बना हो। मेहमानो के आगत-स्वागत का ऐसा उत्तम प्रबन्ध कभी न किया गया था। उपदेशको के लिए ऐसे बहुमूल्य उपहार न रखे गये थे और न जनता ने कभी सभा से इतना अनुराग ही प्रकट किया था। स्वयसेवको के दल के दल भड़कीली वर्दियाँ पहने चारो तरफ दौडते फिरते थे। पंडाल के अहाते मे सैकडो दूकाने सजी हुई नजर आती थी। एक सरकस और दो नाटक समितियाँ बुलायी गयी थी। सारे शहर मे चहल-पहल देख पडती थी। बाजारो मे भी विशेष सजावट और रौनक थी। सडको पर दोनो तरफ बन्दनवारे और पताकाएँ शोभायमान थी।

जल्से के एक दिन पहले उपदेशकगण आने लगे। उनके लिए स्टेशन पर मोटरे

खडी रहती थी। इनमे कितने ही महानुभाव सन्यासी थे। वह तिलकधारी पडितो को तुच्छ समझते थे और मोटर पर बैठने के लिए अग्रसर हो जाते थे। एक सन्यासी महात्मा, जो विद्यारत्न की पदवी से अलकृत थे, मोटर न मिलने से इतने अप्रसन्न हुए कि वहुत आरजू-मिन्नत करने पर भी फिटन पर न बैठे। सभा-भवन तक पैदल आये।

लेकिन जिस समारोह से सैयद ईजाद हुसेन का आगमन हुआ वह और किसी को नसीव न हुआ। जिस समय वह पडाल मे पहुँचे, जलसा शुरू हो गया था और एक विद्वान् पडित जी विधवा-विवाह पर भाषण कर रहे थे। ऐसे निन्द्य विषय पर गम्भीरता से विचार करना अनुपयुक्त समझ कर वह इसकी खूब हँसी उडा रहे थे और यथोचित हास्य और व्यग, धिक्कार और तिरस्कार से काम लेते थे।

'सज्जनो, यह कोई कल्पित घटना नही, मेरी आँखो देखी वात है। मेरे पडोस मे एक वावू साहव रहते है। एक दिन वह अपनी माता से विधवा-विवाह की प्रशसा कर रहे थे। माता जी चुपचाप सुनती जाती थी। जव वावू साहव की वार्ता समाप्त हुई तो माता ने वडे गम्भीर भाव से कहा, बेटा, मेरी एक विनती है, उसे मानो। क्यो मेरा भी किसी से पाणिग्रहण नही करा देते ? देश भर की विधवाएँ सोहागिन हो जायँगी तो मुझसे क्योकर रहा जायगा ? श्रोताओ ने प्रसन्न होकर तालियाँ बजायी, कहकहो से पडाल गूँज उठा।'

इतने मे सैयद ईजाद हुसेन ने पडाल मे प्रवेश किया। आगे-आगे चार लडके एक कतार मे थे, दो हिन्दू, दो मुसलमान। हिन्दू वालको की धोतियाँ और कुरते पीले थे, मुसलमान वालको के कुरते और पाजामे हरे। इनके पीछे चार लडकियो की पक्ति थी—दो हिन्दू और दो मुसलमान। उनके पहनाव मे भी वही अन्तर था। सभी के हाथो मे रगीन झडियाँ थी, जिनपर उज्ज्वल अक्षरो मे अकित था—'इत्तहादी यतीमखाना।' इनके पीछे सैयद ईजाद हुसेन थे। गौर वर्ण, श्वेत केश, सिर पर हरा अमामा, काले अल्पाके का आवा, सुफेद तजेव की अचकन, सलेमशाही जूते, सौम्य और प्रतिभा की प्रत्यक्ष मूर्ति थे। उनके हाथ मे भी वैसा ही झडी थी। उनके पीछे उनके सुपुत्र सैयद इर्शाद हुसेन थे—लम्बा कद, नाक पर सुनहरी ऐनक, अल्वर्ट फैशन की दाढी, तुर्की टोपी, नीची अचकन, सजीवता की प्रत्यक्ष मूर्ति मालूम होते थे। सवसे पीछे साजिन्दे थे। एक के हाथ मे हारमोनियम था, दूसरे के हाथ मे तवले, शेष दो आदमी करताल लिये हुए थे। इन सवो की वर्दी एक ही तरह की थी और उनकी टोपियो पर 'अजुमन इत्तहाद' की मोहर लगी हुई थी। पडाल मे कई हजार आदमी जमा थे। सब के सब 'इत्तहाद' के प्रचारको की ओर टकटकी वाँध कर देखने लगे। पडित जी का रोचक व्याख्यान फीका पड गया। उन्होने वहुत उछल-कूद की, अपनी सम्पूर्ण हास्य-शक्ति व्यय कर दी, अश्लील कवित्त सुनाये, एक भद्दी सी गजल भी वेसुरे राग से गायी, पर रग न जमा। समस्त श्रोतागण 'इत्तहादियो' पर आसक्त हो रहे थे। ईजाद हुसेन एक शान के साथ मच पर जा पहुँचे। वहाँ कई सन्यासी, महात्मा, उपदेशक चाँदी की कुर्सियो पर वैठे हुए थे। सैयद साहव को सवने ईर्षापूर्ण नेत्रो से देखा और जगह

से न हटे। केवल भक्त ज्ञानशकर ही एक व्यक्ति थे जिन्होने उनका सहर्ष स्वागत किया और मच पर उनके लिए एक कुर्सी रखवा दी। लडके और साजिन्दे मच के नीचे बैठ गये। उपदेशकगण मन ही मन ऐसे कुढ रहे थे, मानो हस समाज मे कोई कौवा आ गया हो। दो-एक सहृदय महाशयो ने दबी जबान से फबतियाँ भी कसी, पर ईजाद हुसेन के तेवर जरा भी मैले न हुए। वह इस अवहेलना के लिए तैयार थे। उनके चेहरे से वह शान्तिपूर्ण दृढता झलक रही थी, जो कठिनाइयो की परवा नही करती और काँटो मे भी राह निकाल लेती है।

पडित जी ने अपना रग जमते न देखा तो अपनी वक्तृता समाप्त कर दी और जगह पर आ बैठे। श्रोताओ ने समझा अब इत्तहादियो के राग सुनने मे आयेगे। सबने कुर्सियाँ आगे खिसकायी और सावधान हो बैठे, किन्तु उपदेशक-समाज इसे कब पसन्द कर सकता था कि कोई मुसलमान उनसे बाजी ले जाय ? एक सन्यासी महात्मा ने चट अपना व्याख्यान शुरू कर दिया। यह महाशय वेदान्त के पडित और योगाभ्यासी थे। सस्कृत के उद्भट विद्वान थे। वह सदैव सस्कृत मे ही बोलते थे। उनके विषय मे किंवदन्ती थी कि सस्कृत ही उनकी मातृ-भाषा है। उनकी वक्तृता को लोग उसी शौक से सुनते थे, जैसे चडूल का गाना सुनते है। किसी की भी समझ मे कुछ न आता था, पर उनकी विद्वत्ता और वाक्य प्रवाह का रोब लोगो पर छा जाता था। वह एक विचित्र जीव समझे जाते थे और यही उनकी बहुप्रियता का मन्त्र था। श्रोता-गण कितने ही ऊबे हुए हो, उनके मच पर आते ही उठनेवाले बैठ जाते थे, जानेवाले थम जाते थे। महफिल जम जाती थी। इसी घमड पर इस वक्त उन्होने अपना भाषण आरम्भ किया पर आज उनका जादू भी न चला। इत्तहादियो ने उनका रग भी फीका कर दिया ? उन्होने सस्कृत की झडी लगा दी, खूब तडपे, खूब गरजे, पर-यह भादो की नही, चैत की वर्षा थी। अन्त मे वह भी थक कर बैठ रहे और अब किसी अन्य उपदेशक को खडे होने का साहस न हुआ। इत्तहादियो ने मैदान मार लिया।

ज्ञानशकर ने खडे हो कर कहा, अब इत्तहाद सस्था के सचालक सैयद ईजाद हुसेन अपनी अमृत वाणी सुनायेगे। आप लोग ध्यानपूर्वक श्रवण करे।

सभा भवन मे सन्नाटा छा गया। लोग सँभल बैठे। ईजाद हुसेन ने हारमोनियम उठा कर मेज पर रखा, साजिन्दो ने साज निकाले, अनाथ बालकवृन्द वृत्ताकार बैठे। सैयद इजाद हुसेन ने इत्तहाद सभा की नियमावली का पुलिन्दा निकाला। एक क्षण मे ईशवन्दना के मधुर स्वर पडाल मे गूँजने लगे। बालको की ध्वनि मे एक खास लोच होता है। उनका परस्पर स्वर मे स्वर मिला कर गाना, उसपर साजो का मेल, एक समाँ छा गया—सारी सभा मुग्ध हो गयी।

राग बन्द हो गया और सैयद ईजाद हुसेन ने बोलना शुरू किया—प्यारे दोस्तो, आपको यह हैरत होगी कि हसो मे यह कौवा क्योकर आ घुसा, औलिया की जमघट मे यह भाँड कैसे पहुँचा ? यह मेरी तकदीर की खूबी है। उलमा फरमाते हैं, जिस्म हादिस (अनित्य) है, रूह कदीम (नित्य) है। मेरा तजुर्बा बिलकुल बरअक्स (उल्टा)

है। मेरे जाहिर मे कोई तबदीली नही हुई। नाम वही है, लम्बी दाढी वही है, लिबास-पोशाक वही है, पर मेरे रूह की काया पलट गयी। जाहिर से मुगालते मे न आइए, दिल मे बैठ कर देखिए, वहाँ मोटे हरूफ मे लिखा हुआ है—'हिन्दी है हम, वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा।'

लडको और साजिन्दो ने इकबाल की गजल अलापनी शुरू की। सभा लोट-पोट हो गयी। लोगो की आँखो से गौरव की किरणें सी निकलने लगी, कोई मूँछो पर ताव देने लगा, किसी ने बेबसी की लम्बी साँस खीची, किसी ने अपनी भुजाओ पर निगाह डाली और कितने ही सहृदय सज्जनो की आँखें भर आयी। विशेष करके इस मिसरे पर—'हम बुलबुले है इसकी, यह गुलिस्ताँ हमारा' तो सारी मजलिस तडप उठी, लोगो ने कलेजे थाम लिये, "वन्देमातरम्" से भवन गूंज उठा। गाना बन्द होते ही फिर व्याख्यान शुरू हुआ—

'भाइयो, मजहब दिल की तस्कीन के लिए है, दुनिया कमाने के लिए नही, मुल्की हकूम हासिल करने के लिए नही। वह आदमी जो मजहब की आड़ मे दौलत और इज्जत हासिल करना चाहता है, अगर हिन्दू है तो मलिच्छ है, मुसलमान है तो काफिर है। हाँ काफिर है, मजदूर है, रूसियाह है।'

करतल ध्वनि से पडाल काँप उठा।

'हम सत्तर पुश्तो से इसी सरजमीन का दाना खा रहे है, इसी सरजमीन के आब व गिल (पानी और मिट्टी) से हमारी शिरशिरी हुई है। तुफ है उस मुसलमान पर जो हिजाज और इराक को अपना वतन कहता है।'

फिर तालियाँ बजी। एक घटे तक व्याख्यान हुआ। सैयद ने सारी सभा पर मानो मोहिनी डाल दी। उनकी गौरवयुक्त विनम्रता, उनकी निर्भीक यथार्थवादिता, उनकी मीठी चुटकियाँ, उनकी जातीयता मे डूबी हुई वाक्य-कुशलता, उनकी उत्तेजनापूर्ण आलोचना, उनके स्वदेशाभिमान, उसपर उनके शब्दप्रवाह, भावोत्कर्ष और राष्ट्रीय गाने ने लोगो को उन्मत्त कर दिया। हृदयो मे जागृति की तरगे उठने लगी। कोई सोचता था, न हुए मेरे पास एक लाख रुपये नही तो इसी दम लुटा देता। कोई मन मे कहता था, बाल-बच्चो की चिन्ता न होती तो गले मे झोली लटका कर जाति के लिए भिक्षा माँगता।

इस तरह जातीय भावो को उभाड कर भूमि को पोली बना कर सैयद साहब मतलब पर आये, बीज डालना शुरू किया।

'दोस्तो, अब मजहबपरवरी का जमाना नही रहा। पुरानी बातो को भूल जाइए। एक जमाना था कि आरियो ने यहाँ के असली बाशिन्दो पर सदियो तक हुकूमत की, आज वही शूद्र आरियो मे घुले-मिले हुए है। दुश्मनो को अपने सलूक से दोस्त बना लेना आपके बुजुर्गो का जौहर था। वह जौहर आप मे मौजूद है। आप बारहा हमसे गले मिलने के लिए बढे, लेकिन हम पिदरम सुलतानबूद के जोश मे हमेशा आप से दूर भागते रहे। लेकिन दोस्तो, हमारी बदगुमानी से नाराज न हो। तुम जिन्दा कौम हो। तुम्हारे दिल मे दर्द है, हिम्मत है, फैयाजी है। हमारी तगदिली को भूल जाइए।

उसी बेगाना कौम का एक फर्द हकीर आज आपकी खिदमत मे इत्तहाद का 'पैगाम लेकर हाजिर हुआ है, उसकी अर्ज कबूल कीजिए। यह फकीर इत्तहाद का शैदाई है, इत्तहाद का दीवाना है, उसका हौसला बढाइए।' इत्तहाद का यह नन्हा-सा मुर्झाया हुआ पौधा' आपकी तरफ भूखी-प्यासी आँखो से ताक रहा है। उसे अपनी दरियादिली के उबलते हुए चश्मो से सैराब कर दीजिए। तब आप देखेंगे कि यह पौधा कितनी जल्द तनावर दरख्त हो जाता है और उसके मीठे फलो से कितनो की जबाने, तर होती हैं। हमारे दिल मे बडे-बडे हौसले है। बडे-बडे मनसूबे है। हम इत्तहाद की सदा से इस पाक जमीन के एक-एक गोशे को भर देना चाहते है। अब तक जो कुछ किया है आप ही ने किया है, आइन्दा जो कुछ करेंगे आप ही करेंगे। चन्दे की फिहरिस्त देखिए, वह आपके ही नामो से भरी हुई है और हक पूछिए तो आप ही उसके बानी हैं। रानी गायत्री कुँवर साहिबा की सखावत की इस वक्त सारी दुनिया मे शोहरत है। भगत ज्ञानशकर की कौमपरस्ती क्या पोशीदा है? वजीर ऐसा, बादशाह ऐसा? ऐसी पाक रूहे जिस कौम मे हो वह खुशनसीब है। आज जब मैंने इस शहर की पाक जमीन पर कदम रखा तो बाशिन्दो के एखलाक और मुरौवत, मेहमाननवाजी और खातिर-दारी ने मुझे हैरत मे डाल दिया। तहकीकात करने से मालूम हुआ कि यह इसी मजहबी जोश की बरकत है। यह प्रेम के औतार सिरी किरिश्न की भगती का असर है जिसने लोगो को इन्सानियत के दर्जे से उठा कर फरिश्तो का हमसर बना दिया है। हजरात, मैं अर्ज नही कर सकता कि मेरे दिल मे सिरी किरिश्न जी की कितनी इज्जत है। इससे चाहे मेरी मुसलमानी पर ताने ही क्यो न दिये जायँ, पर मैं बेखौफ कहता हूँ कि वह रूहे पाक उलूहियत (ईश्वरत्व) के उस दर्जे पर पहुँची हुई थी जहाँ तक किसी नबी या पैगम्बर को पहुँचना नसीब न हुआ। आज इस सभा मे मैं सच्चे दिल से अजुमन इत्तहाद को उसी रूहेपाक के नाम मानूम (समर्पित) करता हूँ। मुझे उम्मीद ही नही, यकीन है कि उनके भगतो के सामने मेरा सवाल खाली न जायगा। इत्तहादी यतीमखाने के बच्चे और बच्चियाँ आप ही की तरफ बेकस निगाहो से देख रही है। यह कौमी भिखारी आपके दरवाजे पर खडा दुआएँ दे रहा है। इस लम्बी दाढी पर निगाह डालिए, इन सुफेद बालो की लाज रखिए।'

फिर हारमोनियम बजा, तबले पर थाप पडी, करताल ने झकार ली और ईजाद हुसेन की करुण-रस-पूर्ण गजल शुरू हुई। श्रोताओ के कलेजे मसोस उठे। चन्दे की अपील हुई तो रानी गायत्री की ओर से १००० रु० की सूचना हुई, भक्त ज्ञानशकर ने यतीमखाने के लिए एक गाय भेट की, चारो तरफ से लोग चन्दा देने को लपके। इधर तो चन्दे की सूची चक्कर लगा रही थी, उधर इर्शाद हुसेन ने अजुमन के पैम्फलेट और तमगे बेचने शुरू किये। तमगे अतीव सुन्दर बने हुए थे। लोगो ने शौक से हाथो-हाथ लिये। एक क्षण मे हजारो वक्षस्थलो पर यह तमगे चमकने लगे। हृदयो पर दोनो तरफ से इत्तहाद की छाप पड गयी। कुल चन्दे का योग ५००० रु० हुआ। ईजाद हुसेन

का चेहरा फूल की तरह खिल उठा। उन्होने लोगो को धन्यवाद देते हुए एक गजल गायी और आज की कार्यवाही समाप्त हुई। रात के दस बजे थे।

जब ईजाद हुसेन भोजन करके लेटे और खमीरे का रस-पान करने लगे तव उनके सुपुत्र ने पूछा, इतनी उम्मीद तो आपको भी न थी।

ईजाद—हर्गिज नही। मैंने ज्यादा से ज्यादा १००० रु० का अन्दाज किया था, मगर आज मालूम हुआ कि ये सब कितने अहमक होते है। इसी अपील पर किसी इस्लामी जलसे मे मुश्किल से १०० रु० मिलते। इन वछिया के ताउओ की खूब तारीफ कीजिए। हर्जोमलीह की हद तक हो तो मुजायका नही, फिर इनसे जितना चाहे वसूल कर लीजिए।

इर्शाद—आपकी तकरीर लाजवाब थी।

ईजाद—उसी पर तो जिन्दगी का दारमदार है। न किसी के नौकर, न गुलाम। वस, दुनिया मे कामयावी का नुसखा है तो वह शतरजवाजी है। आदमी जरा लस्सान (वाक्-चतुर) हो, जरा मर्दुमशनास हो और जरा गिरहवाज हो, वस उसकी चाँदी है। दौलत उसके घर की लौडी है।

इर्शाद—सच फरमाइएगा अव्वा जान, क्या आपका कभी यह खयाल था कि यह सव दुनियासाजी है ?

ईजाद—क्या मुझे मामूली आदमियो से भी गया-गुजरा समझते हो ? यह दगावाजी है, पर करूँ क्या ? औलाद और खानदान की मुहव्वत अपनी नजात की फिकर से ज्यादा है।

४१

जलसा वडी सुन्दरता से समाप्त हुआ। रानी गायत्री के व्याख्यान पर समस्त देश मे वाह-वाह मच गयी। उसमे सनातन-धर्म सस्था का ऐतिहासिक दिग्दर्शन कराने के वाद उसकी उन्नति और पतन, उसके उद्धार और सुधार और उसकी विरोधी तथा सहायक शक्तियो का वडी योग्यता से निरूपण किया गया था। सस्था की वर्तमान दशा और भावी लक्ष्य की वडी मार्मिक आलोचना की गयी थी। पत्रो मे उस वक्तृता को पढ कर लोग चकित हो जाते थे और जिन्होने उसे अपने कानो से सुना वे उसका स्वर्गीय आनन्द कभी न भूलेगे। क्या वाक्यशैली थी, कितनी सरल, कितनी मधुर, कितनी प्रभावशाली, कितनी भावमयी ! वक्तृता क्या थी—एक मनोहर गान था !

तीन दिन वीत चुके थे। ज्ञानशकर अपने भव्य-भवन मे समाचार-पत्रो का एक दफ्तर सामने रखे बैठे हुए थे। आजकल उनका यही काम था कि पत्रो मे जहाँ कही इस जलसे की आलोचना हुई तुरत काट कर रख लेते। गायत्री अव ज्ञानशकर को देवतुल्य समझती थी। उन्ही की वदौलत आज समस्त देश मे उसकी सुकीर्ति की

धूम मची हुई थी। उनके इस अतुल उपकार का एक ही उपहार था और वह प्रेम-पूर्ण श्रद्धा थी।

सन्ध्या हो गयी थी कि अकस्मात् ज्ञानशंकर पत्रो की एक पोट लिए हुए अन्दर गये और गायत्री से बोले, देखिए, रायसाहब ने यह नया शिगूफा छोड़ा।

गायत्री ने भौंहें चढ़ा कर कहा, मेरे सामने उनका नाम न लीजिए। मैंने उनकी कितनी चिरौरी की थी कि एक दिन के लिए जलसे मे अवश्य आइए, पर उन्होंने जरा भी परवाह न की। पत्र का उत्तर तक न दिया। बाप हैं तो क्या, मैं उनके हाथो भी अपना अपमान नही सह सकती।

ज्ञान—मैंने तो समझा था, यह उनकी लापरवाही है, लेकिन इस पत्र से विदित होता है कि आजकल वह एक दूसरी ही धुन मे हैं। शायद इसी कारण अवकाश न मिला हो।

गायत्री—क्या बात है, किसी अँगरेज से लड़ तो नही बैठे?

ज्ञान—नही, आजकल एक संगीत-सभा की तैयारी कर रहे है।

गायत्री—उनके यहाँ तो बारहो मास संगीत-सभा होती रहती है।

ज्ञान—नही, यह उत्सव बड़ी धूम से होगा। देश के समस्त गवैयो के नाम निमन्त्रण-पत्र भेजे गये हैं। यूरोप से भी कोई जगद्विख्यात गायनाचार्य बुलाये जा रहे हैं। रईसो और अधिकारियो को दावत दी गयी है। एक सप्ताह तक जलसा होगा। यहाँ के संगीत-शास्त्र और पद्धति मे सुधार करना उनका उद्देश्य है।

गायत्री—हमारा संगीत-शास्त्र ऋषियो का रचा हुआ है। उसमे कोई क्या सुधार करेगा? इसी भैरव और ध्रुपद के शब्द यशोदानन्दन की वंशी से निकलते थे। पहले कोई गा तो ले, सुधारना तो छोटा मुँह बड़ी बात है।

ज्ञान—राय साहब को कोई और चिन्ता तो है नही, एक न एक स्वाँग रचते रहते हैं, कर्ज बढ़ता जाता है, रियासत बोझ से दबी जाती है, पर वह अपनी धुन मे किसी की कब सुनते हैं! मेरा अनुमान है कि इस समय उनपर कोई ३॥ लाख देना है।

गायत्री—इतना धन कृष्ण भगवान की सेवा मे खर्च करते तो परलोक बन जाता! चिट्ठियाँ तो खोलिए, जरूर कोई पत्र होगा।

ज्ञान—हाँ, देखिए यह लिफाफा उन्ही का मालूम होता है। हाँ, उन्ही का है। मुझे बुला रहे हैं और आपको भी बुला रहे हैं।

गायत्री—मैं जा चुकी। जब वह यहाँ आने मे अपनी हेठी समझते हैं, तो मुझे क्या पड़ी है कि उनके जलसो-तमाशो मे जाऊँ? हाँ, विद्या को चाहे पहुँचा दीजिए, मगर शर्त यह है कि आप दो दिन से ज्यादा वहाँ न ठहरें।

ज्ञान—इसके विषय मे सोच कर निश्चय करूँगा। यह दो पत्र बरहल और आमगाँव के कारिन्दो के हैं। दोनो लिखते हैं कि असामी सभा का चन्दा देने से इन्कार करते हैं।

गायत्री की त्योरियाँ बदल गयी। प्रेम की देवी क्रोध की मूर्ति बन गयी। बोली,

क्या देहातो मे भी वह हवा फैलने लगी ? कारिन्दो को लिख दीजिए कि इन पाजियो के घर मे आग लगवा दे और उन्हे कोड़ो से पिटवाये। उनका यह दिल कि मेरी आज्ञा का अनादर करें ! देवकीनन्दन, तुम इन नर-पिशाचो को क्षमा करो ! आप आज ही वहाँ आदमी रवाना करे ! मैं यह अवज्ञा नही सह सकती। यह सब के सब कृतघ्न है। किसी दूसरे राज मे होते तो आटे-दाल का भाव खुलता। मै उनके साथ उतनी रिआ-यत करती हूँ, उनकी मदद के लिए तैयार रहती हूँ, उनके लिए नुकसान उठाती हूँ और उसका यह फल !

ज्ञान—यह मुन्शी रामसनेही का पत्र है। लिखते है, ठाकुरद्वारे का काम तीन दिन से बन्द है। बेगारो को कितनी ताकीद की जाती है, मगर काम पर नही आते।

गायत्री—उन्हे मजूरी दी जाती है न ?

ज्ञान—जी हाँ, लेकिन जमीदारी की दर से दी जाती है। जमीदारी शरह दो आने है, आम शरह छह आने है।

गायत्री—आप उचित समझे तो रामसनेही को लिख दीजिए कि चार आने के हिसाब से मजूरी दी जाय।

ज्ञान—लिख तो दूं, वास्तव मे दो आने मे एक पेट भी नही भरता, लेकिन इन मूर्ख, उजड्ड गँवारो पर दया भी की जाय तो वह समझते है कि दब गये। कल को छह आने माँगने लगेगे और फिर बात भी न सुनेगे।

गायत्री—फिर लिख दीजिए कि बेगारो को जबरदस्ती पकडवा ले। अगर न आयें तो उन्हे गाँव से निकाल दीजिए। हम स्वय दया-भाव से उनके साथ चाहे जो सलूक करें मगर यह कदापि नही हो सकता कि कोई असामी मेरे सामने हेकडी जताये। अपना रोब और भय बनाये रखना चाहिए।

ज्ञान—यह पत्र अमेलिया के बाजार से आया है। ठेकेदार लिखता है कि लोग गोले के भीतर गाडियाँ नही लाते। बाहर ही पेडो के नीचे अपना सौदा बेचते हैं। कहते है, हमारा जहाँ जी चाहेगा बैठेंगे। ऐसी दशा मे ठीका रद्द कर दिया जाये, अन्यथा मुझे बडी हानि होगी।

गायत्री—बाजार के बाहर भी तो मेरी ही जमीन है, वहाँ किसी को दूकान रखने का क्या अधिकार ?

ज्ञान—कुछ नही, बदमाशी है। बाजारो मे रुपये पीछे एक पैसा बयाई देनी पडती है, तौल ठीक ठीक होती है, कुछ धर्मार्थ कटौती देनी पडती है, बाहर मनमाना राज है !

गायत्री—यह क्या बात है कि जो काम जनता के सुभीते और आराम के लिए किये जाते है, उनका भी लोग विरोध करते है।

ज्ञान—कुछ नही, यह मानव-प्रकृति है। मनुष्य को स्वभावत दबाव से, रोक-थाम से, चाहे वह उसी के उपकार के लिए क्यो न हो, चिढ होती है। किसान अपने मूर्ख पुरोहित के पैर धो-धो पीयेगा, लेकिन कारिन्दा को, चाहे वह विद्वान ब्राह्मण ही क्यो न हो, सलाम करने मे भी उसे सकोच होता है। यो चाहे वह दिन भर धूप मे खडा

रहे, लेकिन कारिन्दा या चपरासी को देख कर चारपाई से उठना उसे असह्य होता है। वह आठो पहर अपनी दीनता और विवशता के भार से दबा रहना नही चाहता। अपनी खुशी से नीम की पत्तियाँ चबायेगा, लेकिन जबर्दस्ती दूध और शर्बत भी न पीयेगा। यह जानते हुए भी हम उनपर सख्ती करने के लिए बाध्य है।

इतने मे मायाशकर एक पीताम्बर ओढे हुए ऊपर से उतरा। अभी उसकी उम्र चौदह वर्ष से अधिक न थी, किन्तु मुख पर एक विलक्षण गम्भीरता और विचारशीलता झलक रही थी जो इस अवस्था मे बहुत कम देखने मे आती है। ज्ञानशकर ने पूछा, कहाँ चले मुन्नू ?

माया ने तीव्र नेत्रो से देखते हुए कहा, घाट की तरफ सन्ध्या करने जाता हूँ।

ज्ञान—आज सर्दी बहुत है। यही बाग मे क्यो नही कर लेते ?

माया—वहाँ एकान्त मे चित्त खूब एकाग्र हो जाता है।

वह चला गया तो ज्ञानशकर ने कहा, इस लडके का स्वभाव विचित्र है। समझ मे ही नही आता। सवारियाँ सब तैयार है, पर पैदल ही जायगा। किसी को साथ भी नही लेता।

गायत्री—महरियाँ कहती है, अपना बिछावन तक किसी को नही छूने देते। वह बेचारियाँ इनका मुँह जोहा करती है कि कोई काम करने को कहे, पर किसी से कुछ मतलब ही नही।

ज्ञान—इस उम्र मे कभी-कभी यह सनक सवार हो जाया करती है। ससार का कुछ ज्ञान तो होता नही। पुस्तको मे जिन नियमो की सराहना की गयी है, उनके पालन करने को प्रस्तुत हो जाता है। लेकिन मुझे तो यह कुछ मन्दबद्धि सा जान पड़ता है। इतना बडा हुआ, पैसे की कदर ही नही जानता। अभी १०० रु० दे दीजिए तो शाम तक पास कौड़ी न रहेगी। न जाने कहाँ उड़ा देता है, किन्तु इसके साथ ही माँगता कभी नही। जब तक खुद न दीजिए, अपनी जबान से कभी न कहेगा।

गायत्री—मेरी समझ मे तो यह पूर्व जन्म मे कोई सन्यासी रहे होगे।

ज्ञानशकर ने आज की गाडी से बनारस जा कर विद्या को साथ लेते हुए लखनऊ जाने का निश्चय किया। गायत्री बहुत कहने-सुनने पर भी राजी न हुई।

४२

राय कमलानन्द को देखे हुए हमे लगभग सात वर्ष हो गये, पर इस कालक्षेप का उनपर कोई चिह्न नही दिखाई देता। बल-पौरुष, रग-ढग सब कुछ वही है। यथा-पूर्व उनका समय सैर और शिकार, पोलो और टेनिस, राग और रग मे व्यतीत होता है। योगाभ्यास भी करते जाते हैं। धन पर वह कभी लोलुप नही हुए और अब भी उसका आदर नही करते। जिस काम की धुन हुई उसे करके छोडते है। इसकी जरा भी चिन्ता नही करते कि रुपये कहाँ से आयेंगे। वह अब भी सलाहकारी सभा के

मेम्बर है। इस बीच मे दो वार चुनाव हुआ और दोनो वार वही वहुमत से चुने गये। यद्यपि किसानो और मध्यश्रेणी के मनुष्यो को भी वोट देने का अधिकार मिल गया था, तथापि राय साहव के मुकावले मे कौन जीत सकता था ? किसानो के वोट उनके और उनके अन्य भाइयो के हाथो मे थे और मध्य श्रेणी के लोगो को जातीय सस्थाओ मे चन्दे देकर वशीभूत कर लेना कठिन न था।

राय साहव इतने दिनो तक मेम्बर वने रहे, पर उन्हे इस वात का अभिमान था कि मैंने अपनी ओर से कौसिल मे कभी कोई प्रस्ताव न किया। वह कहते, मुझे खुशामदी टट्टू कहने मे अगर किसी को आनन्द मिलता है तो कहे, मुझे देश और जाति का द्रोही कहने से अगर किसी का पेट भरता है तो मुझे कोई शिकायत नही है, पर मै अपने स्वभाव को नही वदल सकता। अगर रस्सी तुडा कर मै जगल मे अवाध्य फिर सकूं तो मै आज ही खूंटा उखाड फेकूं। लेकिन जव जानता हूँ कि रस्सी तुडाने पर भी मै वाडे से वाहर नही जा सकता, वल्कि ऊपर से और डडे पडेगे तो फिर खूंटे पर चुपचाप खडा क्यो रहूँ ? और कुछ नही तो मालिक की कृपा-दृष्टि तो रहेगी। जव राज-सत्ता अधिकारियो के हाथ मे है, हमारे असहयोग और असम्मति से उसमे कोई परिवर्तन नही हो सकता तो इसकी क्या जरूरत है कि हम व्यर्थ अधिकारियो पर टीका-टिप्पणी करने वैठे और उनकी आँखो मे खटके ? हम काठ के पुतले है, तमाशे दिखाने के लिए खडे किये गये है, इसलिए हमे डोरी के इशारे पर नाचना चाहिए। यह हमारी खामखयाली है कि हम अपने को राष्ट्र का प्रतिनिधि समझते है। जाति हम जैसो को, जिसका अस्तित्व ही उसके रक्त पर अवलम्वित है, कभी अपना प्रतिनिधि न बनायेगी। जिस दिन जाति मे अपना हानि-लाभ समझने की शक्ति होगी, हम और आप खेतो मे कुदाली चलाते नजर आयेगे। हमारा प्रतिनिधित्व सम्पूर्णतः हमारी स्वार्थ-परता और सम्मान लिप्सा पर निर्भर है। हम जाति के हितैषी नही है, हम उसे केवल स्वार्थ-सिद्धि का यन्त्र वनाये हुए हैं। हम लोग अपने वेतन की तुलना अँगरेजो से करते है। क्यो ? हमे तो सोचना चाहिए कि ये रुपये हमारी मुट्ठी मे न आ कर यदि जाति की उन्नति और उपकार मे खर्च हो तो अच्छा है। अँगरेज अगर दोनो हाथो से धन वटोरते हैं तो बटोरने दीजिए। वे इसी उद्देश्य से इस देश मे आये है। उन्हे हमारे जाति-प्रेम का दावा नही है। हम तो जाति-भक्ति की हाँक लगाते हुए भी देश का गला घोट देते है। हम अपने जातीय व्यवसाय के अध.पतन का रोना रोते हैं। मैं कहता हूँ आपके हाथो यह दशा और भी असाध्य हो जायगी। हम अगणित मिले खोलेंगे, वडी सख्या मे कारखाने कायम करेंगे, परिणाम क्या होगा ? हमारे देहात वीरान हो जायेंगे, हमारे कृषक कारखानो के मजदूर बन जायेंगे, राष्ट्र का सत्यानाश हो जायेगा। आप इसी को जातीय उन्नति की चरम सीमा समझते है। मेरी समझ मे यह जातीयता का घोर अध पतन है। जाति की जो कुछ दुर्गत हुई है हमारे हाथो हुई है। हम जमीदार हैं, साहूकार है, वकील है, सौदागर है, डाक्टर है, पदाधिकारी है, इनमे कौन जाति की सच्ची वकालत करने का दावा कर सकता है ? आप जाति के साथ

वडी भलाई करते हैं तो कौंसिल मे अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव पेश करा देते है। अगर आप जाति के सच्चे नेता होते तो यह निरकुशता कभी न करते। कोई अपनी इच्छा के विरुद्ध स्वर्ग भी नही चाहता। हममें तो कितने ही महोदयों ने बड़ी-बड़ी उपाधियाँ प्राप्त की हैं। पर उस शिक्षा ने हममें सिवा विलास-लालसा और सम्मान प्रेम, स्वार्थ-सिद्धि और अहम्मन्यता के और कौन सा सुधार कर दिया। हम अपने घमड मे अपने को जाति का अत्यावश्यक अंग समझते है, पर वस्तुत. हम कीट-पतंग से भी गये बीते है। जाति-सेवा करने के लिए दो हजार मासिक, मोटर, बिजली, पखे, फिटन, नौकर या चाकर की क्या जरूरत है? आप रूखी रोटियाँ खा कर जाति की सेवा इससे कही उत्तम रीति से कर सकते है। आप कहेगे—वाह, हमने परिश्रम से विद्योपार्जन किया है इसीलिए। तो जब आपने अपने कायिक सुखभोग के लिए इतना अध्यवसाय किया है तब जाति पर इसका क्या एहसान? आप किस मुँह से जाति के नेतृत्व का दावा करते हैं? आप मिले खोलते है तो समझते हैं हमने जाति की बड़ी सेवा की, पर यथार्थ मे आपने दस-बीस आदमियों को बनबास दे दिया। आपने उनके नैतिक और सामाजिक पतन का सामान पैदा कर दिया। हाँ, आपने और आपके साझेदारो ने ४५ रु० प्रति सैकडे लाभ अवश्य उठाया। तो भाई, जब तक यह धीगा-धीगी चलती है चलने दो। न तुम मुझे बुरा कहो, न मै तुम्हे बुरा कहूँ। हम और आप, नरम और गरम दोनो ही जाति के शत्रु है। अन्तर यह है कि मैं अपने को शत्रु समझता हूँ और आप अहंकार के मद मे अपने को उसका मित्र समझते है।

इन तर्कों को सुन कर लोग उन्हे बक्की और झक्की कहते थे। अवस्था के साथ राय-साहब का सगीत-प्रेम और भी बढता जाता था। अधिकारियो से मुलाकात का उन्हे अब इतना व्यसन नही था। जहाँ किसी उस्ताद की खबर पाते, तुरन्त बुलाते और यथा-योग्य सम्मान करते। सगीत की वर्तमान अभिरुचि को देख कर उन्हे भय होता था कि अगर कुछ दिनो यही दशा रही तो इसका स्वरूप ही मिट जायगा, देश और भैरव की तमीज भी किसी को न होगी। वह संगीत-कला को जाति की सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति समझते थे। उसकी अवनति उनकी समझ मे जातीय पतन का निकृष्टतम स्वरूप था। व्यय का अनुमान चार लाख किया गया था। राय साहब ने किसी से सहायता माँगना उचित न समझा था, लेकिन कई रईसो ने स्वय २-२ लाख के वचन दिये थे। तब भी राय साहब पर २-२॥ लाख का भार पडना सिद्ध था। यूरोप से छह नामी सगीतज्ञ आ गये थे—दो जर्मनी से, दो इटली से, एक फ्रास और एक इँगलिस्तान से। मैसूर, ग्वालियर, ढाका, जयपुर, काश्मीर के उस्तादो को निमन्त्रण-पत्र भेज दिये गये थे। राय साहब का प्राइवेट सेक्रेटरी सारे दिन पत्र-व्यवहार मे व्यस्त रहता था, तिस पर चिट्ठियो की इतनी कसरत हो जाती थी कि बहुधा राय साहब को स्वय जवाब लिखने पडते थे। इसी काम को निवटाने के लिए उन्होने ज्ञानशंकर को बुलाया और वह आज ही विद्या के साथ आ गये थे। राय साहब ने गायत्री के न आने पर बहुत खेद प्रकट किया और बोले, वह इसी लिए नही आयी है कि मैं सनातनधर्म सभा के उत्सव मे न आ सका था।

अब रानी हो गयी है ! क्या इतना गर्व भी न होगा ? यहाँ तो मरने की भी छुट्टी न थी, जाता क्योकर ?

ज्ञानशकर रात भर के जागे थे, भोजन करके लेटे तो तीसरे पहर उठे। राय साहब दीवानखाने मे बैठे हुए चिट्ठियाँ पढ रहे थे। ज्ञानशकर को देख कर बोले, आइए, भगत जी, आइए ! तुमने तो काया ही पलट दी। वडे भाग्यवान हो कि इतनी ही अवस्था मे ज्ञान प्राप्त कर लिया। यहाँ तो मरने के किनारे आये, पर अभी माया मोह से मुक्त न हुआ। यह देखो, पूना से प्रोफेसर माघोल्लकर ने यह पत्र भेजा है। उन्हे न जाने कैसे यह शका हो गयी है कि मैं इस देश मे विदेशी सगीत का प्रचार करना चाहता हूँ। इस पर आपने मुझे खूब आडे हाथो लिया है।

ज्ञानशकर मतलब की बात छेडने के लिए अधीर हो रहे थे, अवसर मिल गया, बोले—आपने यूरोप से लोगो को नाहक वुलाया। इसी से जनता को ऐसी शकाएँ हो रही है। उन लोगो की फीस तय हो गयी है ?

राय साहब—हाँ, यह तो पहली बात थी। दो सज्जनो की फीस तो रोजाना दो-दो हजार है। सफर का खर्च अलग। जर्मनी के दोनो महाशय डेढ-डेढ हजार रोजाना लेंगे। केवल इटली के दोनो आदमियो ने नि स्वार्थ भाव से शरीक होना स्वीकार किया है।

ज्ञान—अगर यह चारो महाशय यहाँ १५ दिन भी रहे तो एक लाख रुपये तो उन्ही को चाहिए ?

राय—हाँ, इससे क्या कम होगा।

ज्ञान—तो कुल खर्च चाहे ५-५॥ लाख तक जा पहुँचे।

राय—तखमीना तो ४ लाख का किया गया था, लेकिन शायद इससे कुछ ज्यादा ही पड जाय।

ज्ञान—यहाँ के रईसो ने भी कुछ हिम्मत दिखायी ?

राय—हाँ, कई सज्जनो ने वचन दिये है। सम्भव है दो लाख मिल जायँ।

ज्ञान—अगर वह अपने वचन पूरे भी कर दें तो आपको २॥-३ लाख की जेरवारी होगी।

राय साहब ने व्यगपूर्ण हास्य के साथ कहा, मैं उसे जेरबारी नही समझता। धन सुख-भोग के लिए है। उसका और कोई उद्देश्य नही है। मैं धन को अपनी इच्छाओ का गुलाम समझता हूँ, उसका गुलाम बनना नही चाहता।

ज्ञान—लेकिन वारिसो को भी तो सुख-भोग का कुछ न कुछ अधिकार है ?

राय साहब—ससार मे सब प्राणी अपने कर्मानुसार सुख-दु ख भोगते हैं। मैं किसी के भाग्य का विधाता हूँ ?

ज्ञान—क्षमा कीजिएगा, यह शब्द ऐसे पुरुष के मुँह से शोभा नही देते जो अपने जीवन का अधिकाश बिता चुका हो।

राय साहब ने कठोर स्वर से कहा, तुमको मुझे उपदेश करने का कोई अधिकार नही है। मैं अपनी सम्पत्ति का स्वामी हूँ, उसे अपनी इच्छा और रुचि के अनुसार खर्च

करूँगा। यदि इससे तुम्हारे सुख-स्वप्न नष्ट होते है तो हो, मैं इसकी परवाह नही करता। यह मुमकिन नही कि सारे ससार मे इस कान्फ्रेंस की सूचना देने के बाद अब मैं उसे स्थगित कर दूं। मेरी सारी जायदाद बिक जाय तो भी मैंने जो काम उठाया है उसे अत तक पहुँचा कर छोडूंगा। मेरी समझ मे नही आता कि तुम कृष्ण के ऐसे भक्त और त्याग तथा वैराग्य के ऐसे साधक हो कर माया-मोह मे इतने लिप्त क्यो हो ? जिसने कृष्ण का दामन पकडा, प्रेम का आश्रय लिया, भक्ति की शरण गही, उसके लिए सासारिक विभव क्या चीज है ! तुम्हारी बाते सुन कर और तुम्हारे चित्त की यह वृत्ति देख कर मुझे सशय होता है कि तुमने वह रूप धरा है और प्रेम-भक्ति का स्वाद नही पाया। कृष्ण का अनुरागी कभी इतना सकीर्ण हृदय नही हो सकता। मुझे अब शका हो रही है कि तुमने यह जाल कही सरल-हृदय गायत्री के लिए न फैलाया हो।

यह कह कर राय साहब ने ज्ञानशंकर को तीव्र नेत्रों से देखा। उनके सदेह का निशाना इतना ठीक बैठा था कि ज्ञानशंकर का हृदय कांप उठा। इस भ्रम का मूलोच्छेद करना परमावश्यक था। रायसाहब के मन मे इसका जगह पाना अत्यन्त भयकर था। इतना ही नही, इस भ्रम को दूर करने के लिए निर्भीकता की आवश्यकता थी। शिष्टाचार का समय न था। बोले, आपके मुख से स्वांग और बहुरूप की लाछना सुन कर एक मसल याद आती है, लेकिन आप पर उसे घटित करना नही चाहता। जो प्राणी धर्म के नाम पर विषय-वासना और विष पान को स्तुत्य समझता हो वह यदि दूसरो की धार्मिक वृत्ति को पाखड समझे तो क्षम्य है।

राय साहब ने ज्ञानशकर को फिर चुभती हुई दृष्टि से देखा और कडी आवाज से बोले, तुम्हे सच कहना होगा !

ज्ञानशकर को ऐसा अनुभव हुआ मानो उनके हृदय पर से कोई पर्दा सा उठा जा रहा है। उनपर एक अर्द्ध विस्मृति की दशा छा गयी। दीन भाव से बोले—जी हाँ, सच कहूँगा।

राय—तुमने यह जाल किसके लिए फैलाया है ?

ज्ञान—गायत्री के लिए।

राय—तुम उससे क्या चाहते हो ?

ज्ञान—उसकी सम्पत्ति और उसका प्रेम।

राय साहब खिलखिलाकर हँसे। ज्ञानशकर को जान पडा, मैं कोई स्वप्न देखते-देखते जाग उठा। उनके मुंह से जो बातें निकली थी, वह उन्हे याद थी। उनका कृत्रिम क्रोध शान्त हो गया था। उसकी जगह उस लज्जा और दीनता ने ले ली थी जो किसी अपराधी के चेहरे पर नजर आती है। वह समझ गये कि राय साहब ने मुझे अपने आत्मबल से वशीभूत करके मेरी दुष्कल्पनाओं को स्वीकार करा लिया। इस समय वह उन्हे अत्यन्त भयावह रूप मे देख पडते थे। उनके मन मे अत्याचार का प्रत्याघात करने की घातक चेष्टा लहरें मार रही थी, पर इसके साथ ही उनपर एक विचित्र भय आच्छादित हो गया था। वह इस शैतान के सामने अपने को सर्वथा निर्बल और

अशक्त पाते थे। इन परिस्थितियो से वह ऐसे उद्विग्न हो रहे थे कि जी चाहता था आत्महत्या कर लूं। जिस भवन को वह छह सात वर्षो से एक-एक ईंट जोड कर बना रहे थे इस समय वह हिल रहा था और निकट था कि गिर पडे। उसे सँभालना उनकी शक्ति के बाहर था। शोक! मेरे मन्सूबे मिट्टी मे मिले जाते है। इधर से भी गया। यकायक राय साहब बोले—बेटा, तुम व्यर्थ मुझपर इतना कोप कर रहे हो। मैं इतना क्षुद्र-हृदय नही हूँ कि तुम्हे गायत्री की दृष्टि मे गिराऊँ। उसकी जायदाद तुम्हारे हाथ लग जाय तो मेरे लिए इससे ज्यादा हर्ष की बात और क्या होगी? लेकिन तुम्हारी चेष्टा उसकी जायदाद ही तक रहती तो मुझे कोई आपत्ति न होती। आखिर वह जायदाद किसी न किसी को तो मिलेगी ही और जिन्हे मिलेगी वह मुझे तुमसे ज्यादे प्यारे नही हो सकते। किन्तु मैं उसके सतीत्व को उसकी जायदाद से कही ज्यादा बहुमूल्य समझता हूँ और उसपर किसी की लोलुप दृष्टि का पडना सहन नही कर सकता। तुम्हारी सच्चरित्रता की मैं सराहना किया करता था, तुम्हारी योग्यता और कार्यपटुता का मै कायल था, लेकिन मुझे इसका गुमान भी न था कि तुम इतने स्वार्थ-भक्त हो। तुम मुझे पाखडी और विषयी समझते हो, मुझे इसका जरा भी दुख नही है। अनात्मवादियो को ऐसी शका होनी स्वाभाविक है। किंतु मैं तुम्हे विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने कभी सौदर्य को वासना की दृष्टि से नही देखा। मैं सौदर्य की उपासना करता हूँ, उसे अपने आत्म-निग्रह का साधन समझता हूँ, उससे आत्म-बल सग्रह करता हूँ, उसे अपनी चेष्टाओ की सामग्री नही बनाता। और मान लो, मैं विषयी ही सही। बहुत दिन बीत गये हैं, थोड़े दिन और बाकी है, जैसा अब तक रहा वैसा ही आगे भी रहूँगा। अब मेरा सुधार नही हो सकता। लेकिन तुम्हारे सामने अभी सारी उम्र पडी हुई है, इसलिए मैं तुमसे अनुरोध करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि इच्छाओ के, कुवासनाओ के गुलाम मत बनो। तुम इस भ्रम मे पडे हुए हो कि मनुष्य अपने भाग्य का विधाता है। यह सर्वथा मिथ्या है। हम तकदीर के खिलौने है, विधाता नही। वह हमे अपने इच्छानुसार नचाया करती है। तुम्हे क्या मालूम है कि जिसके लिए तुम सत्यासत्य मे विवेक नही करते, पुण्य और पाप को समान समझते हो उस शुभ मुहूर्त तक सभी विघ्न बाधाओ से सुरक्षित रहेगा? सम्भव है कि ठीक उस समय जब जायदाद पर उसका नाम चढाया जा रहा हो एक फुसी उसका काम तमाम कर दे। यह न समझो कि मैं तुम्हारा बुरा चेत रहा हूँ। तुम्हे आशाओ की असारता का केवल एक स्वरूप दिखाना चाहता हूँ। मैंने तकदीर की कितनी ही लीलाएँ देखी है और स्वय उसका सताया हुआ हूँ। उसे अपनी शुभ कल्पनाओ के साँचे मे ढालना हमारी सामर्थ्य से वाहर है। मैं नही कहता कि तुम अपने और अपनी सन्तान के हित की चिंता मत करो, धनोपार्जन न करो। नही, खूब धन कमाओ और खूब समृद्धि प्राप्त करो, किंतु अपनी आत्मा और ईमान को उसपर वलिदान न करो। धूर्तता और पाखड, छल और कपट से बचते रहो। मेरी जायदाद २० लाख से कम की मालियत नही है। अगर दो-चार लाख कर्ज ही हो जायें तो तुम्हे घवड़ाना नही चाहिए। क्या इतनी

सम्पत्ति मायाशकर के लिए काफी नही है। तुम्हारी पैतृक सम्पत्ति भी २ लाख से कम की नही है। अगर इसे काफी नही समझते तो गायत्री की जायदाद पर भी निगाह रखो, इसे मैं बुरा नही कहता। अपने सुप्रबन्ध से, कार्य कुशलता से, किफायत से, हितेच्छा से उसके कृपा-पात्र बन जाओ, न कि उसके भोलेपन, उसकी सरलता और मिथ्या भक्ति को अपनी कूटनीति का लक्ष्य बनाओ और प्रेम का स्वाँग भर कर उसके जीवन-रत्न पर हाथ बढाओ।

इतने मे प्राइवेट सेक्रेटरी साहब आये। राय साहब उनकी ओर आकृष्ट हो गये। ज्ञानशकर रो रहे थे। भेद खुल जाने का शोक था, चिरसचित अभिलाषाओ के विनष्ट हो जाने का दुख, कुछ ग्लानि, कुछ अपनी दुर्जनता का खेद, कुछ निर्बल क्रोध। तर्कना शक्ति इतने आघातो का प्रतिरोध न कर सकती थी।

ज्ञानशकर उठ कर बगल मे एक बेच पर जा बैठे। माघ का महीना था और सध्या का समय। लेकिन उन्हे इस समय जरा भी सरदी न लगती थी। समस्त शरीर अतरस्थ चिन्ता दाह से खौल रहा था। राय साहब का उपदेश सम्पूर्णत विस्मृत हो गया था। केवल यह चिंता थी कि गिरती हुई दीवार को क्यो कर थामे, मरती हुई अभिलाषाओ को क्यो कर सँभाले ? यह महाशय कहते हैं कि मैं गायत्री से कुछ न कहूँगा, लेकिन इनका एतबार ही क्या ? इन्होने जहाँ उनके कान भरे वह मेरी सूरत से घृणा करने लगेगी। गौरवशील स्त्री है, उसे अपने सतीत्व पर घमड है। यद्यपि उसे मुझसे प्रेम है किन्तु अभी तक उसका आधार धर्म पर है, मनोवेगो पर नही। उसकी स्थिति का क्या भरोसा ? दुष्ट अपनी जायदाद का सर्वनाश तो किये ही डालता है, उधर का द्वार भी बन्द किये देता है कि मुझे कही निकलने का मार्ग ही न मिले। मै इतनी निराशाओ का भार नही सह सकता। इस जीवन मे अब कोई आनन्द नही रहा। जब अभिलाषाओ का ही अन्त हुआ जाता है तब जी कर ही क्या करना है ? हा ! क्या सोचता था और क्या हो रहा है ?

राय साहब तो शाम को क्लब चले गये और ज्ञानशकर उसी निर्जन स्थान पर बैठे हुए जीवन और मृत्यु का निर्णय करते रहे। उनकी दशा उस व्यापारी की सी थी जिनका सब कुछ जलमग्न हो गया हो, याउस विद्यार्थी की सी थी जो वर्षो के कठिन श्रम के बाद परीक्षा मे गिर गया हो। जब बाग मे खूब ओस पडने लगी तो वह उठ कर कमरे मे चले गये। फिर उन्ही चिन्ताओ ने आ घेरा। जीवन मे अब निराशा और अपमान के सिवा और कुछ नही रहा। ठोकरें खाता रहूँगा। जीवन का अन्त ही अब मेरे डूबते हुए बेडे को पार लगा सकता है। राय साहब इतने नीच नही है कि मरने पर भी मुझे बदनाम करे। उन्होने बहुत सच कहा था कि मनुष्य अपने भाग्य का खिलौना है। मै इस दशा मे हूँ कि मृत्यु ही मेरे सारे दुखो का एकमात्र उपाय है। सामान्यत लोग यही समझेंगे कि मैंने ससार से विरक्त हो कर प्राण त्याग दिये, माया मोह के बन्धन से मुक्त हो गया। ऐसी मुक्त आत्मा के लिए यह अन्धकारमय जगत अनुकूल न था। विद्या की निगाह मे मेरा आदर कई गुना बढ जायगा और गायत्री तो मुझे

कृष्ण का अवतार समझने लगेगी। बहुत सम्भव है कि मेरी आत्मा को प्रसन्न करने के लिए वह माया को गोद ले ले। चाचा और भाई दोनो मुझपर कुपित है। मौत उनको भी नर्म कर देगी। और मुश्किल ही क्या है? कल गोमती स्नान करने जाऊँ। एक सीढी भी नीचे उतर गया तो काम तमाम है। बीस हजार जो मैं नगद छोड़े जाता हूँ, विद्या के निर्वाह के लिए काफी हैं। लखनपुर की आमदनी अलग।

यह सोचते-सोचते ज्ञानशकर इतने शोकातुर हुए कि जोर-जोर से सिसकियाँ भर कर रोने लगे। यही जीवन का फल है? इसी लिए दुनियाँ भर के मनसूबे बाँधे थे? यह दुष्ट कमलानन्द मेरी गर्दन पर छुरी फेर रहा है। यही निर्दय मेरी जान का गाहक हो रहा है।

इतने मे विद्यावती आ गयी और बोली, आज दादा जी से तुमसे कुछ तकरार हो गयी क्या? मुख्तार साहब कहते थे कि राय साहब बडे क्रोध मे थे। तुम नाहक उनके बीच मे बोला करते हो। वह जो कुछ करें करने दो। अम्मा समझाते-समझाते मर गयी, इन्होंने कभी रत्ती भर परवाह न की। अपने सामने किसी को कुछ समझते ही नहीं।

ज्ञान—मैंने तो केवल इतना कहा कि आप को व्यर्थ २-३ लाख रुपया फूंक देना उचित नहीं हैं। बस इतनी सी बात पर बिगड गये।

विद्या—यह तो उनका स्वभाव ही है। जहाँ उनकी बात किसी ने काटी और वह आग हुए। बुरा मुझे भी लग रहा है, पर मुँह खोलते काँपती हूँ।

ज्ञान—मुझे इनकी जायदाद की परवाह नहीं है। मैंने वृन्दावनविहारी का आश्रय लिया है, अब किसी बात की अभिलाषा नहीं, लेकिन यह अनर्थ नही देखा जाता।

विद्या चली गयी। थोड़ी देर मे महाराज ने भोजन की थाली ला कर रख दी। लेकिन ज्ञानशकर को कुछ खाने की इच्छा न हुई। थोडा सा दूध पी लिया और फिर विचारो मे मग्न हुए—स्त्रियो के विचार कितने सकुचित होते हैं! तभी तो इन्हे सन्तोष हो जाता है। वह समझती है, आदमी को चैन से भोजन वस्त्र मिल जाँय, गहने-जेवर बनते जायें, संतानें होती जायें, बस और क्या चाहिए। मानो मानव-जीवन भी अन्य जीवधारियो की भाँति केवल स्वाभाविक आवश्यकताएँ पूरी करने के ही लिए है। विद्या को कितना सन्तोष है! लोग स्त्रियो के इस गुण की बडी प्रशसा करते है। मेरा विचार तो यह है कि धैर्य और सतोष उनकी बुद्धि-हीनता का प्रमाण है। उनमे इतना बुद्धि-सामर्थ्य ही नही होता कि अवस्था और स्थिति का यथार्थ अनुमान कर सकें। राय साहब की फूंक ताप विद्या को भी अखरती है, लेकिन कुछ बोलती नही, जरा भी चिन्तित नही है। यह नही समझती कि वह सरासर अपनी ही हानि, अपना ही सर्वनाश है। दशा ने कैसा पलटा खाया है। अगर मेरे मनसूबे सफल हो जाते तो दो-चार वर्ष मे मैं ३ लाख रुपये वार्षिक का आदमी होता। दस-पन्द्रह वर्षों में अतुल सम्पत्ति का स्वामी होता लेकिन मन की मिठाई खाने से क्या होता है?

ज्ञानशकर बड़ी गम्भीर प्रकृति के मनुष्य थे। उनमे शुद्ध सकल्प की भी कमी न थी। झोको मे उनके पैर न उखड़ते थे, कठिनाइयो मे उनकी हिम्मत न छूटती थी।

गोरखपुर मे उनपर चारो ओर से दाँव-पेच होते रहे लेकिन उन्होने कभी परवाह न की। लेकिन उनकी अविचलता वह थी जो परिस्थित-ज्ञान-शून्यता की हद तक जा पडती है। वह उन जुआरियो मे न थे, जो अपना सब कुछ एक दाँव पर हार कर अकडते हुए चलते है। छोटी-छोटी हारो का, छोटी-छोटी असफलताओ का असर उन पर न होता था, लेकिन उन मन्तव्यो का नष्ट भ्रष्ट हो जाना, जिन पर जीवन उत्सर्ग कर दिया गया हो, धैर्य को भी विचलित, अस्थिर कर लेता है, और फिर यहाँ केवल नैराश्य आर शोक न था। मेरे छल कपट का पर्दा खुल गया! मेरी भक्ति और धर्म-निष्ठा की, मेरे वैराग्य और त्याग की, मेरे उच्चादर्शों की, मेरे पवित्र आचरण की कलई खुल गयी! ससार अब मुझे यथार्थ रूप मे देखेगा। अब तक मैंने अपनी तर्कनाओ से, अपनी प्रगल्भता से, अपनी कलुपता को छिपाया। अब वह बात कहाँ?

ज्ञानशकर को नीद न आयी। जरा आँखे झपक जाती तो भयावह स्वप्न दिखायी देने लगते। कभी देखते, मैं गोमती मे डूब गया हूँ और मेरा शव चिता पर जलाया जा रहा है। कभी नजर आता, मेरा विशाल भवन विध्वस हो गया है और मायाशकर उसके भग्नावेश पर बैठा हुआ रो रहा है। एक बार ऐसा जान पडा कि गायत्री मेरी ओर कोप-दृष्टि से देख कर कह रही है, तुम मक्कार हो, आँखो से दूर हो जाओ!

प्रात काल ज्ञानशकर उठे तो चित्त बहुत खिन्न था। ऐसे अलसाये हुए थे, मानो कोई मजिल तय करके आये हो। उन्होने किसी से कुछ बातचीत न की। धोती उठायी और पैदल गोमती की ओर चले। अभी सूर्योदय नही हुआ था, लेकिन तमाखूवालो की दूकाने खुल गयी थी। ज्ञानशकर ने सोचा, क्या तमाखू ही जीवन की मुख्य वस्तु है कि सबसे पहले इनकी दूकान खुलती है? जरा देर मे मलाई-मक्खन की ध्वनि कानो मे आयी। दुष्ट कितना जीभ ऐंठ कर बोलता है! समझता होगा कि यह कर्णकटु शब्द रुचिवर्द्धक होगे। भला गाता तो एक बात भी थी। अच्छा, 'चाय गरम' भी आ पहुँची। गर्म तो अवश्य ही होगी, बिना फूँके पियो तो जीभ जल जाय, मगर स्वाद वही गर्म पानी का। यह कौन महाशय घोडा दौडाये चले आते है। घोडा ठोकर ले तो साहब बहादुर की हड्डियाँ चूर हो जायँ।

वह गोमती के तट पर पहुँचे तो भक्त जनो की भीड देखी। श्यामल जलधारा पर श्यामल कुहिर घटा छायी हुई थी। सूर्य की सुनहरी किरणे इस श्याम घटा मे प्रविष्ट होने के लिए उत्सुक थी। दो-चार नौकाएँ पानी मे खडी काँप रही थी।

ज्ञानशकर ने धोती चौकी पर रख दी और पानी मे घुसे तो सहसा उनकी आँखें सजल हो गयी। कमर तक पानी मे गये, आगे बढने का साहस न हुआ। अपमान और नैराश्य के जिन भावो ने उनकी प्रेरणाओ को उत्तेजित कर रखा था वह अकस्मात् शिथिल पड गये। कितने रण-मद के मतवाले रणक्षेत्र मे आ कर पीठ फेर लेते है। मृत्यु दूर से इतनी विकराल नही दीख पडती, जितनी सम्मुख आ कर। सिंह कितना भयकर जीव है, इसका अनुमान उसे सामने देख कर हो सकता है। पहाडो को दूर से देखो तो ऊँची मेड के सदृश देख पडते है, उनपर चढना आसान मालूम होता है, किन्तु

समीप जाइए तो उनकी गगन-स्पर्शी चोटियो को देख कर चित्त कैसा भयभीत हो जाता है ! ज्ञानशकर ने मरने को जितना सहज समझा था उससे कही कठिन ज्ञात हुआ। उन्हे विचार हुआ, मैं कैसा मन्द बुद्धि हूँ कि एक जरा सी बात के लिए प्राण देने पर तत्पर हो रहा हूँ। माना, मैं राय साहब की नजरो मे गिर गया, माना गायत्री भी मुझे मुँह न लगायेगी और विद्या भी मुझसे घृणा करने लगेगी, तब भी क्या मैं जीवनकाल मे कुछ काम नही कर सकता ? अपना जीवन सफल नही बना सकता ? ससार का कर्म क्षेत्र इतना तग नही है। मैं इस समय आज से छह सात वर्ष पूर्व की अपेक्षा कही अच्छी दशा मे हूँ। मेरे २० हजार रुपये बैंक मे जमा है, २०० रु० मासिक की आमदनी गाँव से है, बँगला है, मोटर है, मकान किराये पर उठा दूँ तो ५०-६० रु० माहवार और मिलने लगे। अगर किसी की चाकरी न करूँ तो भी एक भले आदमी की भाँति जीवन व्यतीत कर सकता हूँ। राय साहब यदि मेरी कलई खोल दे तो क्या मैं उनकी खबर नही ले सकता ? उन्हे अपने कलम के जोर से इतना बिगाड सकता हूँ कि वह किसी को मुँह दिखाने योग्य न रहेगे। गायत्री भी मेरे पजो मे है, मेरी तरफ से जरा भी निगाह मोटी करे तो आन की आन मे उसे इस उच्चासन से गिरा सकता हूँ। उसे मैंने ही इतना नेकनाम बनाया है और बदनाम भी कर सकता हूँ। मेरी बुद्धि न जाने कहाँ चली गयी थी। कूटनीति की रगभूमि क्या इतनी सकीर्ण है ? अब तक मुझे जो कुछ सफलता हुई है इसी की बदौलत हुई है, तो अब मैं उसका दामन क्यो छोड़ूँ ? उससे निराश क्यो हो जाऊँ ? अगर इस टूटी हुई नौका पर बैठ कर मैंने आधी नदी पार कर ली है तो अब उसपर से जल मे क्यो कूद पड़ूँ।

ज्ञानशकर स्नान करके जल से निकल आये। उनका चेहरा विजय-ज्योति से चमक रहा था।

लेकिन जिस प्रकार विजयी सेना शत्रुदल को मैदान से हटा कर और भी उत्साहित हो जाती है और शत्रु को इतना निर्बल और अपग बना देती है कि फिर उसके मैदान मे आने की सम्भावना ही न रहे, उसी प्रकार ज्ञानशकर के हौसले भी बढे। सोचा, इसकी नौबत ही क्यो आने दूँ कि मुझपर चारो ओर से आक्षेप होने लगें और मैं अपनी सफाई देता फिरूँ ? मै मर कर नेकनाम बनना चाहता था, क्यो न मार कर वही उद्देश्य पूरा करूँ ? इस समय यही पुरुषोचित कर्तव्य है। मरने से मारना कही सुगम है। भाग्य-विधाता ! तुम्हारी लीला कितनी विचित्र है। तुमने मुझको मृत्यु के मुख से निकाल लिया ! बाल-बाल बचा ! मैं अब भी अपने मनसूबो को पूरा कर सकता हूँ। विभव, यश, सुकीर्ति सब कुछ मेरे अधीन है, केवल थोडी सी हिम्मत चाहिए। ईश्वर का कोई भय नही, वह सर्वज्ञ है। पर्दा तो केवल मनुष्यो की आँखो पर डालना है, और मैं इस काम मे सिद्धहस्त हूँ।

ज्ञानशकर एक किराये के ताँगे पर बैठ कर घर आये। रास्ते भर वह इन्ही विचारो मे लीन रहे। उनकी ऋद्धि-प्राप्ति के मार्ग मे रायसाहब ही बाधक हो रहे थे। इस बाधा को हटाना आवश्यक था। पहले ज्ञानशंकर ने निराश हो कर मार्ग से लौट जाने

का निश्चय किया था। अपने प्राण दे कर इस संकट से निवृत्त होना चाहते थे। अब उन्होंने रायसाहब को ही अपनी आकाक्षाओ की वेदी पर बलिदान करने की ठानी। ससार इसे हिंसा कहेगा, उसकी दृष्टि मे यह घोर पाप है—सर्वथा अक्षम्य, अमानुषीय। लेकिन दार्शनिक दृष्टि से देखिए तो इसमे पाप का सम्पर्क तक नही है। रायसाहब के मरने से किसी को क्या हानि होगी? उनके बाल-बच्चे नही हैं जो अनाथ हो जायेगे। वह कोई ऐसा महान कार्य नही कर रहे है जो उनके मर जाने से अधूरा रह जायगा, उनकी जायदाद का भी ह्रास नही होता; बल्कि एक ऐसी व्यवस्था का आरोपण हुआ जाता है जिससे वह सुरक्षित रहेगी। समाज और अर्थशास्त्र के सिद्धान्तो के अनुसार तो इसे हत्या कह ही नही सकते। नैतिक दृष्टि से भी इसपर कोई आपत्ति नही हो सकती। केवल धार्मिक दृष्टि से इसे पाप कहा जा सकता है। और लौकिक रीति के अनुसार तो यह काम केवल सराहनीय ही नही परमावश्यक है। यह जीवन सग्राम है। इस क्षेत्र मे विवेक, धर्म और नीति का गुजर नही। यह कोई धर्मयुद्ध नही है! यहाँ कपट, दगा, फरेब सब कुछ उपयुक्त है, अगर उससे अपना स्वार्थ सिद्ध होता है। यहाँ छापा मारना, आड से शस्त्र चलाना विजय प्राप्ति के साधन हैं। यहाँ औचित्य अनौचित्य का निर्णय हमारी सफलता के आधीन है। अगर जीत गये तो सारे धोखे और मुगालते सुअवसर के नाम से पुकारे जाते हैं, हमारी कार्य कुशलता की प्रशसा होती है। हारे तो उन्हे पाप कहा जाता है। बस, इस पत्थर को मार्ग से हटा दूँ और मेरा रास्ता साफ है।

ज्ञानशकर ने नाना प्रकार के तर्कों से इन मनोगत विचारो को उसी तरह प्रोत्साहित किया, जैसे कोई कबूतरबाज बहके हुए कबूतरो को दाने बिखेर-बिखेर कर अपनी छतरी पर बुलाता है। अन्त मे उनकी हिंसात्मक प्रेरणा दृढ हो गयी। जगत हिंसा के नाम से काँपता है, हिंसक पर बिना समझे बूझे चारो ओर से वार होने लगते हैं। वह दुरात्मा है, दंडनीय है, उसका मुँह देखना भी पाप है। लेकिन यह अनन्त ससार केवल मूर्खों की बस्ती है। इसके विचारो का, इसके भावो का सम्मान करना काँटो पर चलना है। यहाँ कोई नियम नही, कोई सिद्धान्त नही, कोई न्याय नही। इसकी जबान बन्द करने का बस एक ही उपाय है। इसकी आँखो पर परदा डाल दो और वह तुमसे जरा भी एतराज न करेगी। इतना ही नही, तुम समाज के सम्मान के अधिकारी हो जाओगे।

घर पहुँच कर ज्ञानशकर तुरन्त राय साहब के पुस्तकालय मे गये और अँगरेजी का वृहत् रसायन कोष निकाल कर विषाक्त पदार्थों के गुण और प्रभाव का अन्वेषण करने लगे।

४३

दो दिन हो गये और ज्ञानशकर ने राय साहब से मुलाकात न की। राय साहब उन निर्दय पुरुषो मे न थे जो घाव लगा कर उसपर नमक छिड़कते हैं। वह जब किसी

पर नाराज होते तो यह मानी हुई बात थी कि उसका नक्षत्र बलवान है, सौभाग्य चन्द्र उसके दाहिने हैं, क्योकि क्रोध शान्त होते ही वह अपने कटु व्यवहारो का बड़ी उदारता के साथ प्रायश्चित किया करते थे। एक बार एक टहलुवे को इसलिए पीटा था कि उसने फर्श पर पानी गिरा दिया था। दूसरे ही दिन पाँच बीघे जमीन उसे मुआफी दे दी। एक कारिन्दे से गबन के मामले मे बहुत बिगड़े और अपने हाथो से हटर लगाये, किन्तु थोडे ही दिन पीछे उसका वेतन बढा दिया। हाँ, यह आवश्यक था कि चुपचाप धैर्य के साथ उनकी बाते सुन ली जायँ, उनसे बातबढाव न किया जाय। ज्ञानशकर को धिक्कारने के एक ही क्षण पीछे उन्हे पश्चात्ताप होने लगा। भय हुआ कि कही वह रूठ कर चल न दें। ससार मे ऐसा कौन प्राणी है जो स्वार्थ के लिए अपनी आत्मा का हनन न करता हो। मैं खुद भी तो निःस्पृह नही हूँ। जब ससार की यही प्रथा है तो मुझे उनका इतना तिरस्कार करना उचित न था। कम से कम मुझे उनके आचरण को कलकित न करना चाहिए था। विचारशील पुरुष हैं, उनके लिए इशारा काफी है लेकिन मैंने गुस्से मे आ कर खुली-खुली गालियाँ दी। अतएव आज वह भोजन करने बैठे तो महाराज से कहा, बाबू जी को भी यहाँ बुला लो और उनकी थाली भी यहां लाओ। न आयें तो कहना आप न चलेंगे तो वह भी भोजन न करेंगे। ज्ञानशकर राजी न होते थे, पर विद्या ने समझाया, चले क्यो नही जाते! जब वह बड़े हो कर बुलाते हैं तो न जाने से उन्हे दु.ख होगा। उनकी आदत है कि गुस्से मे जो कुछ मुँह मे आया बक जाते हैं, लेकिन पीछे से लज्जित होते हैं। ज्ञानशकर अब कोई हीला न कर सके। रोनी सूरत बनाये हुए आये और राय साहब से जरा हट कर आसन पर बैठ गये। राय साहब ने कहा, इतनी दूर क्यो बैठे हो। मेरे पास आ जाओ। देखो, आज मैंने तुम्हारे लिए कई अँग्रेजी चीजें बनवायी है। लाओ महाराज, यहीं थाली रखो।

ज्ञानशकर ने दबी जबान से कहा, मुझे तो इस समय जरा भी इच्छा नही है, क्षमा कीजिए।

राय साहब—इच्छा तो सुगन्ध से हो जायगी, थाली सामने तो आने दो। महाराज को मैंने इनाम देने का वादा किया है। उसने अपनी सारी अक्ल खर्च कर दी होगी।

महाराज ने थाली ला कर ज्ञानशकरके सामने रख दी। ज्ञानशकर के चेहरे पर हवाइयाँ उड रही थी। एक रंग आता था, एक रग जाता था। छाती बडे वेग से धड़क रही थी। भय ने आशा को दबा दिया था। वह किसी प्रकार यहाँ से भागना चाहते थे। यह दृश्य उनके लिए असह्य था। उनके शरीर का एक-एक अग थर-थर कांप रहा-था, यहाँ तक कि स्वर भी भग हो रहा था। उन्हे इस समय अनुभव हो रहा था कि जान लेना देनें से कही दुस्तर है।

राय साहब ने पाँच ही चार कौर खाये थे कि सहसा उन्होंने था। से हाथ खींच लिया और ज्ञानशकर को तीव्र और मर्म-भेदी दृष्टि से देखा। ज्ञानशकर के प्राण सूख

गये। राय साहब ने यदि गोली चलायी होती तो भी उन्हे इतनी चोट न लगती। सज्ञा-शून्य से हो गये। ऐसा जान पड़ता था मानो कोई आकर्षण शक्ति प्राणों को खीच रही है। अपनी नाव को भँवर मे डूबते पा कर भी कोई इतना यभीत, इतना असावधान न होता होगा। रायसाहब की तीव्र दृष्टि ने सिद्ध कर दिया कि रहस्य खुल गया, सारे यत्न, सारी योजनाएँ निष्फल हो गयी! हा हतभाग! कही का न रहा! क्या जानता था कि यह महाशय ऐसे आत्मदर्शी है।

इतने मे रायसाहब ने अपमानसूचक भाव से मुस्करा कर कहा, मैंने एक बार तुमसे कह दिया कि धन-सम्पत्ति तुम्हारे भाग्य मे नही है, तुम जो चाले चलोगे वह सब उल्टी पडेंगी। केवल लज्जा और ग्लानि हाथ रहेगी।

ज्ञानशकर ने अज्ञान भाव से कहा, मैंने आपका आशय नही समझा।

रायसाहब—बिलकुल झूठ है। तुम मेरा आशय खूब समझ रहे हो। इससे ज्यादा कुछ कहूँगा तो उसका परिणाम अच्छा न होगा। मै चाहूँ तो सारी राम कहानी तुम्हारी जबान से कहला लूं, लेकिन इसकी जरूरत नही। तुम्हे बडा भ्रम हुआ। मै तुम्हे बडा चतुर समझता था, लेकिन अब विदित हुआ कि तुम्हारी निगाह बहुत मोटी है। तुम्हारा इतने दिनो तक मुझसे सम्पर्क रहा, लेकिन अभी तक तुम मुझे पहचान न सके। तुम सिंह का शिकार बाँस की तीलियो से करना चाहते हो, इसलिए अगर उसके दबोच मे आ जाओ तो वह तुम्हारा अपना दोष है। मुझे मनुष्य मत समझो, मैं सिंह हूँ। अगर अभी अपने दाँत और पजे दिखा दूं तो तुम काँप उठोगे। यद्यपि यह थाल बीस-पच्चीस आदमियो को सुलाने के लिए काफी है, शायद यह एक कौर खाने के बाद उन्हे दूसरे कौर की नौवत न आयेगी, लेकिन मै पूरा थाल हजम कर सकता हूँ और तुम्हे मेरे माथे पर बल भी न दिखायी देगा। मै शक्ति का उपासक हूँ, ऐसी वस्तुएँ मेरे लिए दूध और पानी हैं।

यह कहते-कहते राय साहब ने थाल से कई कौर उठा कर जल्द-जल्द खाये। अकस्मात् ज्ञानशकर तेजी से लपके, थाल उठा कर भूमि पर पटक दिया और रायसाहब के पैरो पर गिर कर बिलख बिलख रोने लगे। राय साहब की योगसिद्धि ने आज उन्हे परास्त कर दिया। उन्हे आज ज्ञात हुआ कि यह चूहे और सिंह की लड़ाई है।

राय साहब ने उन्हे उठा कर बिठा दिया और बोले—लाला, मैं इतना कोमल हृदय नही हूँ कि इन आँसुओ से पिघल जाऊँ। आज मुझे तुम्हारा यथार्थ रूप दिखायी दिया। तुम अधम स्वार्थ के पजे मे दबे हुए हो। यह तुम्हारा दोष नही, तुम्हारी धर्म-विहीन शिक्षा का दोष है। तुम्हे आदि से ही भौतिक शिक्षा मिली। हृदय के भाव दब गये। तुम्हारे गुरुजन स्वय स्वार्थ के पुतले थे। उन्होंने कभी सरल सन्तोषमय जीवन का आदर्श तुम्हारे सामने नही रखा। तुम अपने घर मे, स्कूल मे, जगत् मे नित्य देखते थे कि बुद्धि-बल का कितना मान है। तुमने सदैव इनाम और पदक पाये, कक्षा मे तुम्हारी प्रशसा होती रही, प्रत्येक अवसर पर तुम्हे आदर्श बना कर दूसरो को दिखाया जाता था। तुम्हारे आत्मिक विकास की ओर किसी ने ध्यान नही दिया, तुम्हारे मनो-

गत भावो को, तुम्हारे उद्गारो को सन्मार्ग पर ले जाने की चेष्टा नही की गयी। तुमने धर्म और भक्ति का प्रकाश कभी नही देखा, जो मन पर छाये हुए तिमिर को नष्ट करने का एक ही साधन है। तुम जो कुछ हो, अपनी शिक्षा प्रणाली के बनाये हुए हो। पूर्व के सस्कारो ने जो अंकुर जमाया था, उसे शिक्षा ने सघन वृक्ष वना दिया। तुम्हारा कोई दोष नही, काल और देश का दोष है। मैं क्षमा करता हूँ और ईश्वर से विनती करता हूँ कि वह तुम्हे सद्बुद्धि दे।

राय साहब के ओठ नीले पड गये, मुख कान्तिहीन हो गया, आँखे पथराने लगी। माथे पर स्वेद बिन्दु चमकने लगे, पसीने से सारा शरीर तर हो गया, साँस बडे वेग से चलने लगी। ज्ञानशंकर उनकी यह दशा देख कर विकल हो गये, काँपते हुए हाथो से पखा झलने लगे, लेकिन राय साहव ने इशारा किया कि यहाँ से चले जाओ, मुझे अकेला रहने दो और तुरन्त भीतर से द्वार बन्द कर दिया। ज्ञानशकर मूर्तिवत् द्वार पर खडे थे, मानो किसी ने उनके पैरो को गाड दिया हो। इस समय उन्हे अपने कुकृत्य पर इतना अनुताप हो रहा था कि जी चाहता था उसी थाल का एक कौर खा कर इस जीवन का अन्त कर लूँ। पहले राय साहव की अभिमानपूर्ण वातें सुन कर उन्हे आशा हो गयी थी कि विष का इनपर कुछ असर न होगा। लेकिन अव इस आशा की जगह भय हो रहा था कि उन्होंने अपनी योग-शक्ति का भ्रमात्मक अनुमान किया था? क्या करूँ! किसी डाक्टर को बुलाऊँ? उस धन-लिप्सा का सत्यानाश हो जिसने मेरे मन मे यह विषम प्रेरणा उत्पन्न की, जिसने मुझसे यह हत्या करायी। हा कुटिल स्वार्थ! तूने मुझे नर-पिशाच वना दिया! मैं क्यो इनका शत्रु हो रहा हूँ? इसी जायदाद के लिए, इसी रियासत के लिए, इसी सम्पत्ति के लिए! क्या वह सम्पत्ति मेरे हाथों मे आ कर दूसरो को मेरा शत्रु न वना देगी? कौन कह सकता है कि मेरा भी यही अन्त न होगा।

ज्ञानशकर ने द्वार पर कान लगा कर सुना। ऐसा जान पडा कि राय साहव हाथ-पैर पटक रहे है। मारे भय के ज्ञानशकर को रोमाच हो गया। उन्हे अपनी अधम नीचता, अपनी घोरतम पैशाचिक प्रवृत्तियो पर ऐसा शोकमय पश्चात्ताप कभी न हुआ था। उन्हे इस समय परिणाम की चिन्ता न थी, न यह शका थी, कि मेरा क्या हाल होगा! वस, यही धडका लगा हुआ था कि रायसाहव की न जाने क्या गति हो रही है। कोई जबरदस्ती भी करता तो वह वहाँ से न हटते। मालूम नही, एक क्षण मे क्या हो जाय।

इतने मे महाराज थाली मे कुछ और पदार्थ लाया। उसे देखते ही ज्ञानशकर का रक्त सूख गया। समझ गये कि अव प्राण न वचेंगे। यह दुष्ट अभी यहाँ का हाल देख कर शोर मचा देगा। खोज-पूछ होने लगेगी, गिरफ्तार हो जाऊँगा। वह इस समय उन्हे काल स्वरूप देख पडता था। उन्होने उसे समीप न आने दिया, दूर से ही कहा, हम लोग भोजन कर चुके, अव कुछ न लाओ।

महाराज ने बन्द किवाडो को कुतूहल से देखा और आगे वढने की चेष्टा की कि

अकस्मात् ज्ञानशंकर बाज की तरह झपटे और उसे जोर से धक्का दे कर कहा, तुमसे कहता हूँ कि यहाँ किसी चीज की जरूरत नही है, बात क्यो नही सुनते ? महाराज हक्का-बक्का हो कर ज्ञानशकर का मुँह ताकने लगा। ज्ञानशकर इस समय उस सशक दशा मे थे, जब कि मनुष्य पत्ते का खुडका सुन कर लाठी सँभाल लेता है। उन्हे अब राय साहब की चिन्ता न थी। उनके विचार मे वह चिन्ता की उद्घाटक शक्ति से बाहर हो गये थे। वह अब अपनी जान की खैर मना रहे थे। सम्पूर्ण इच्छा शक्ति इस रहस्य को गुप्त रखने मे व्यस्त हो रही थी।

यकायक भीतर से द्वार खुला और रायसाहब बाहर निकले। उनका मुखड़ा रक्त-वर्ण हो रहा था। आँखें भी लाल थी। पसीने से तर थे मानो कोई लोहार भट्टी के सामने से उठ कर आया हो। दोनों थाल समेट कर एक जगह रख दिये गये थे। कटोरे भी साफ थे। सब भोजन एक अँगेठी मे जल रहा था। अग्नि उन पदार्थों का रसास्वादन कर रही थी।

क्षण-मात्र मे ज्ञानशंकर के विचारो ने पलटा खाया। जब तक उन्हे शका थी कि राय साहब दम तोड़ रहे थे तब तक वह उनकी प्राण-रक्षा के लिए ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे। जब बाहर खडे-खड़े निश्चय हो गया कि राय साहब के प्राणान्त हो गये तब वह अपनी जान की खैर मनाने लगे। अब उन्हे सामने देख कर क्रोध आ रहा था कि वह मर क्यो न गये। इतना तिरस्कार, इनना मानसिक कष्ट व्यर्थ सहना पडा। उनकी दशा इस समय उस थके-माँदे हलवाहे की सी हो रही थी जिसके बैल खेत से द्वार पर आकर बिदक गये हो, दिन भर के कठिन परिश्रम के बाद सारी रात अँधेरे मे बैलो के पीछे दौडने की सम्भावना उसकी हिम्मत को तोड़े डालती हो।

राय साहब ने बाहर निकल कर कई बार जोर से साँस ली मानो दम घुट रहा हो, तब काँपते हुए स्वर से बोले, मरा नही, लेकिन मरने से बदतर हो गया। यद्यपि मैंने विष को योग-क्रियाओं से निकाल दिया, लेकिन ऐसा मालूम हो रहा है कि मेरी धमनियो मे रक्त की जगह कोई पिघली हुई धातु दौड़ रही है। वह दाह मुझे कुछ दिन मे भस्म कर देगी। अब मुझे फिर पोलो और टेनिस खेलना नसीब न होगा। मेरे जीवन की अनन्त शोभा का अन्त हो गया। अब जीवन मे वह आनन्द कहाँ, जो शोक और चिन्ता को तुच्छ समझता था। मैंने वाणी से तो तुम्हें क्षमा कर दिया है, लेकिन मेरी आत्मा तुम्हे क्षमा न करेगी। तुम मेरे लड़के हो, मैं तुम्हारे पिता के तुल्य हूँ, लेकिन हम अब एक दूसरे का मुँह न देखेंगे। मैं जानता हूँ कि इसमे तुम्हारा कोई दोष नही है, यह हमारे वर्तमान लोक-व्यवहार का दोष है; किन्तु यह जानकर भी हृदय को सन्तोष नही होता। यह सारी विडम्बना इसी जायदाद का फल है। इसी जायदाद के कारण हम और तुम एक दूसरे के खून के प्यासे हो रहे है। संसार मे जिधर देखो ईर्षा और द्वेष आघात और प्रत्याघात का साम्राज्य है। भाई भाई का वैरी, बाप बेटे का बैरी, पुरुष स्त्री का वैरी, इसी जायदाद के लिए! इनके हाथो जितना अनर्थ हुआ, हो रहा है और होगा उसके देखने कही अच्छा है कि अधिकार की प्रथा ही मिटा

दी जाती। यही वह खेत है जहाँ छल और कपट के पौधे लहराते हैं, जिसके कारण ससार रणक्षेत्र बना हुआ है। इसी ने मानव जाति को पशुओ से भी नीचे गिरा दिया है।

यह कहते-कहते राय साहब की आँखे बन्द हो गयी। वह दीवार का सहारा लिए हुए दीवानखाने मे आये और फर्श पर गिर पडे। ज्ञानशकर भी पीछे-पीछे थे, मगर इतनी हिम्मत न पडती थी कि उन्हे सँभाल ले। नौकरो ने यह हालत देखी तो दौडे और उन्हे उठाकर कोच पर लिटा दिया। गुलाब और केवडे का जल छिडकने लगे। कोई पखा झलने लगा, कोई डाक्टर के लिए दौडा। सारे घर मे खलबली मच गयी। दीवानखाने मे एक मेला सा लग गया। दस मिनट के बाद राय साहब ने आँखें खोलीं और सबको हट जाने का इशारा दिया। लेकिन जब ज्ञानशकर भी औरो के साथ जाने लगे तो राय साहब ने उन्हे बैठने का सकेत किया और बोले, यह जायदाद नही है। इसे रियासत कहना भूल है। यह निरी दलाली है। इस भूमि पर मेरा क्या अधिकार है ? मैंने इसे बाहुबल से नही लिया। नवाबो के जमाने मे किसी सूबेदार ने इस इलाके की आमदनी वसूल करने के लिए मेरे दादा को नियुक्त किया था। मेरे पिता पर भी नवाबो की कृपा-दृष्टि बनी रही। इसके बाद अँगरेजो का जमाना आया और यह अधिकार पिता जी के हाथ से निकल गया। लेकिन राज-विद्रोह के समय पिता जी ने तन-मन से अँगरेजो की सहायता की। शान्ति स्थापित होने पर हमे वही पुराना अधिकार फिर मिल गया। यही इस रियासत की हकीकत है। हम केवल लगान वसूल करने के लिए रखे गये है। इसी दलाली के लिए हम एक दूसरे के खून से अपने हाथ रँगते हैं। इसी दीन-हत्या को हम रोब कहते है, इसी कारिन्दगिरी पर हम फूले नही समाते। सरकार अपना मतलब निकालने के लिए हमे इस इलाके का मालिक कहती है, लेकिन जब साल मे दो बार हमसे मालगुजारी वसूल की जाती है तब हम मालिक कहाँ रहे ? यह सब धोखे की टट्टी है। तुम कहोगे, यह सब कोरी बकवाद है, रियासत इतनी बुरी चीज है तो उसे छोड क्यो नही देते ? हा ! यही तो रोना है कि इस रियासत ने हमे विलासी, आलसी और अपाहिज बना दिया। हम अब किसी काम के नही रहे। हम पालतू चिडिया है, हमारे पख शक्ति-हीन हो गये है। हममे अब उडने की सामर्थ्य नही है। हमारी दृष्टि सदैव अपने पिंजरे के कुल्हिये और प्याली पर रहती है। अपनी स्वाधीनता को मीठे टुकडे पर बेच दिया है।

राय साहब के चेहरे पर एक दुस्सह आन्तरिक वेदना के चिह्न दिखायी देने लगे। लेटे थे, कराह कर उठ बैठे। मुखाकृति विकृत हो गयी। पीडा से विकल हृदय-स्थल पर हाथ रखे हुए बोले, आह ! बेटा, तुमने वह हलाहल खिला दिया कि कलेजे के टुकडे-टुकडे हुए जाते है। अब प्राण न बचेंगे। अगर एक मरणासन्न पुरुष के शाप मे कुछ शक्ति है तो तुम्हे इस रियासत का सुख भोगना नसीब न होगा। आँखो के सामने से हट जाओ। सभव है, मैं इस क्रोधावस्था मे तुम्हे दोनो हाथो मे दबा कर मसल डालूँ। मैं अपने आपे मे नही हूँ। मेरी दशा मतवाले सर्प की सी हो रही है। मेरी आँखो से दूर हो जाओ और फिर कभी मुँह मत दिखाना। मेरे मर जाने पर तुम्हें

आने का अख्तियार है। और याद रखो कि अगर तुम फिर गोरखपुर गये या गायत्री से कोई सम्बन्ध रखा तो तुम्हारे हक मे बुरा' होगा। मेरे दूत परछाही की भाँति तुम्हारे साथ लगे रहेगे। तुमने इस चेतावनी का जरा भी उल्लघन किया तो जीते न बचोगे। हाय! शरीर फुंका जाता है। पापी, दुष्ट, अभी गया नही! शेरखाँ . कोई है?...मेरी पिस्तौल लाओ, (चिल्लाकर) मेरी पिस्तौल लाओ.. क्या सब मर गये?

ज्ञानशकर तुरन्त उठ कर यहाँ से भागे। अपने कमरे मे आ कर द्वार बन्द कर लिया। जल्दी से कपडे पहने, मोटर साइकिल निकलवायी और सीधे रेलवे स्टेशन की ओर चले। विद्या से मिलने का भी अवसर न मिला।

४४

सन्ध्या का समय था। बनारस के सेशन जज के इजलास मे हजारो आदमी जमा थे। लखनपुर के मामले से जनता को अब एक विशेष अनुराग हो गया था। मनोहर की आत्महत्या ने उसकी चर्चा सारे शहर मे फैला दी थी। प्रत्येक पेशी के दिन नगर की जनता अदालत मे आ जाती थी। जनता को अभियुक्तो की निर्दोषिता का पूरा विश्वास हो गया था। मनोहर के आत्मघात की विविध प्रकार से मीमासा की जाती थी और सभी का तत्त्व यही निकलता था कि वही कातिल था, और लोग तो केवल अदालत के कारण फँसा दिये गये है डाक्टर प्रियनाथ और इर्फान अली की स्वार्थपरता पर खुली-खुली चोटें की जाती थी। प्रेमशकर की निष्काम सेवा की सभी सराहना किया करते थे। इस मुकदमे ने उन्हे बहुजनप्रिय बना दिया था।

आज फैसला सुनाया जानेवाला था, इसलिए जमाव भी और दिनो से अधिक था। लखनपुर के लोग तो आये ही थे, आस-पास के देहातो से लोग बड़ी सख्या मे आ पहुँचे थे। ठीक चार बजे जज ने तजवीज सुनायी—बिसेसर साह रिहा हो गये, बलराज और कादिरखाँ को कालापानी हुआ, शेष अभियुक्तो को सात-सात वर्ष का सपरिश्रम कारावास दिया गया। बलराज ने बिसेसर को सरोष नेत्रो से देखा जो कह रहे थे कि अगर क्षण भर के लिए भी छूट जाऊँ तो खून पी लूँ। कादिर खाँ बहुत दुखी थे और उदास थे। यह तजवीज सुनी तो आँसू की कई बूँदे मोछो पर गिर पडी। जीवन का अन्त ही हो गया। कब से पैर लटकाये बैठे, सजा मिली कालेपानी की! चारो ओर कुहराम मच गया। दर्शकगण अभियुक्तो की ओर लपके, पर रक्षको ने किसी को उनसे कुछ कहने-सुनने की आज्ञा न दी। मोटर तैयार खडी थी। सातो आदमी उसमे बिठाये गये, खिडकियाँ बन्द कर दी गयी और मोटर जेल की तरफ चली।

प्रेमशकर चिन्ता और शोक की मूर्ति बने एक वृक्ष के नीचे खडे सकरुण नेत्रो से मोटर की ओर ताक रहे थे, जैसे गाँव की स्त्रियाँ सीवान पर खडी सजल नेत्रो से ससुराल जानेवाली लड़की की पालकी को देखती है। मोटर दूर निकल गयी तो दर्शको ने उन्हे घेर लिया और तरह-तरह के प्रश्न करने लगे। प्रेमशकर उनकी ओर मर्माहत

भाव से देखते थे, पर कुछ उत्तर न देते थे। सहसा उन्हे कोई बात याद आ गयी। जेल की ओर चले। जनता का दल भी उनके साथ-साथ चला। सबको आशा थी कि शायद अभियुक्तो को देखने का, उनकी बाते सुनने का सौभाग्य प्राप्त हो जाय। अभी यह लोग कचहरी के आहाते से निकले ही थे कि डाक्टर इर्फान अली अपनी मोटर पर दिखायी दिये। आज ही गोरखपुर से लौटे थे। हवा खाने जा रहे थे। प्रेमशकर को देखते ही मोटर रोक ली और पूछा, कहिए, आज तजवीज सुना दी गयी?

प्रेमशकर ने रुखाई सेउत्तर दिया, जी हाँ।

इतने मे सैकडो आदमियो ने चारो ओर से मोटर को घेर लिया और एक तगडे आदमी ने सामने आ कर कहा—इन्ही की गरदन पर इन बेगुनाहो का खून है।

सैकडो स्वरो से निकला—मोटर से खीच लो, जरा इसकी खिदमत कर दी जाय। इसने जितने रुपये लिये है सब इसके पेट से निकाल लो।

उसी वृहद्काय पुरुष ने इर्फान अली का पहुँचा पकड कर इतने जोर से झटक दिया कि वह बेचारे गाडी से बाहर निकल पडे। जब तक मोटर मे थे क्रोध से चेहरा लाल हो रहा था। बाहर आ कर धक्के खाये तो प्राण सूख गये। दया प्रार्थी नेत्रो से प्रेमशकर को देखा। वह हैरान थे कि क्या करूँ? उन्हे पहले कभी ऐसी समस्या नही हल करनी पडी थी और न उस श्रद्धा का ही कुछ ज्ञान था जो लोगों की उनमे थी। हाँ, वह सेवाभाव जो दीन जनो की रक्षा के लिए उद्यत रहता था, सजग हो गया। उन्होने इर्फान अली का दूसरा हाथ पकड कर अपनी ओर खीचा और क्रोधोन्मत्त हो कर बोले, यह क्या करते हो, हाथ छोड दो।

एक बलवान युवक बोला, इनकी गर्दन पर गाँव भर का खून सवार है।

प्रेमशकर—खून इनकी गर्दन पर नही, इनके पेशे की गर्दन पर सवार है।

युवक—इनसे कहिए इस पेशे को छोड दें।

कई कठो से आवाज आयी, बिना कुछ जलपान किये इनकी अकल ठिकाने न आयगी।

सैकडो आवाजे आयी—हाँ, हाँ, लग, बेभाव की पडे!

प्रेमशकर ने गरज कर कहा—खबरदार, जो एक हाथ भी उठा, नही तो तुम्हे यहाँ मेरी लाश दिखाई पडेगी। जब तक मुझमे खडे होने की शक्ति है, तुम इनका बाल भी बाँका नही कर सकते।

इस वीरोचित ललकार ने तत्क्षण असर किया। लोग डाक्टर साहब के पास से हट गये। हाँ उनकी सेवा-सत्कार के ऐसे सुदर अवसर के हाथ से निकल जाने पर आपस मे कानाफूसी करते रहे। डाक्टर साहब ने ज्यो ही मैदान साफ पाया, कृतज्ञनेत्रो से प्रेमशकर को देखा और मोटर पर बैठ कर हवा हो गये। हजारो आदमियो ने तालियाँ बजायी—भागा! भागा!!

प्रेमशकर बड़े सकट मे पडे हुए थे। प्रतिक्षण शका होती थी कि ये लोग न जाने क्या ऊधम मचाये। किसी बग्घी या फिटन को आते देख कर उनका दिल धडकने

लगता कि ये लोग उसे रोक न ले। वह किसी तरह उनसे पीछा छुडाना चाहते थे, पर इसका कोई उपाय न सूझता था। हजारो झल्लाये हुए आदमियो को काबू मे लाना कठिन था। सोचते थे, अब की तो मेरी धमकी ने काम किया, कौन कह सकता है कि दूसरी बार भी वह उपयुक्त होगी। कही पुलिस आ गयी तो अनर्थ ही हो जायगा। अवश्य दो-चार आदमियो की जान पर आ बनेगी। वह इन्ही चिन्ताओ मे डूबे हुए आगे बढे। रास्ते मे ही डाक्टर प्रियनाथ का बँगला था। वह इस वक्त बरामदे मे टहल रहे थे। टेनिस का रैकेट हाथमे था। शायद गाड़ी की राह देख रहे थे। यह भीड-भाड देखी तो अपने फाटक पर आ कर खडे हो गये।

सहसा किसी ने कहा—जरा इनकी भी खबर लेते चलो। सच पूछिए तो इन्ही महाशय ने बेचारो की गर्दन काटी है।

कई आदमियो ने इसका अनुमोदन किया—हाँ हाँ, पकड लो जाने न पाये।

जब तक प्रेमशकर डाक्टर साहब के पास पहुँचे-पहुँचे तब तक सैकडो आदमियो ने उन्हे घेर लिया। उसी बलिष्ठ युवक ने आगे बढकर डाक्टर साहब के हाथ से रैकेट छीन लिया और कहा—बताइए साहब, लखनपुर के मामले मे कितनी रिश्वत खायी है।

कई आदमियो ने कहा—बोलते क्यो नही, कितने रुपये उडाये थे ?

डाक्टर महोदय ने चिल्ला-चिल्ला कर नौकरो को पुकारना शुरू किया किन्तु नौकरो ने आना उचित न समझा।

एक आदमी बोला—यह बिना समझावन-बुझावन के न बतायेंगे।

प्रियनाथ—मैं सबको जेल भेजवा दूंगा, रैसकल्स !

डाक्टर साहब ने भय दिखला कर काम निकालना चाहा, पर यह न समझे कि साधारणत जो लोग आँख के इशारे पर काँप उठते हैं वे विद्रोह के समय गोलियो की भी परवाह नही करते। उनके मुंह से इतना निकला था कि लोगो के तेवर बदल गये। शोर मचा, जाने न पाये, मार कर गिरा दो, देखा जायगा।

इतने मे प्रेमशकर डाक्टर साहब के पास जा कर खडे हो गये। सैकडो लाठियाँ, छतरियाँ और छडियाँ उठ चुकी थी। प्रेमशकर को सम्मुख देख कर सब की सब हवा मे रह गयी, केवल एक लाठी न रुक सकी, वह प्रेमशकर के कन्धे मे जोर से लगी।

उसी बलिष्ठ युवक ने डाक्टर साहब को धिक्कार कर कहा, उनके पीछे क्या चोरो की तरह छिपे खड़े हो ! सामने आ जाओ तो मजा चखा दूं। खूब रिश्वतें ले-ले कर खफीफ को शदीद और शदीद को खफीफ बनाया।

अभी यह वाक्य पूरा न होने पाया था कि लोगो ने प्रेमशकर को लडखडा कर जमीन पर गिरते देखा। किसी ने किसी से कुछ कहा नही, पर सबको किसी अनिष्ट की सूचना हो गयी। चारो तरफ सन्नाटा छा गया। लोगो की उद्दडता शका मे परि-वर्तित हो गयी। लोग पूछने लगे, यह किसकी लाठी थी, यह किसने मारा ? उसके हाथ तोड दो, पकड़ कर गर्दन मरोड दो ! किसकी लाठी थी ? सामने क्यो नही आता ? क्या ज्यादा चोट आयी ?

सहसा डाक्टर प्रियनाथ ने उच्च स्वर से कहा, अधमरा ही क्यो छोड दिया ? एक लाठी और क्यों न जड़ दी कि काम तमाम हो जाता ? मूर्खो ! तुम्हारा अपराधी तो मैं था, इन्होने तुम्हारा क्या बिगाडा था ?

यह कह कर वह प्रेमशकर के पास घुटनो के वल वैठ गये और घाव को भलीभाँति देखा। कंधे की हड्डी टूट गयी थी। तुरन्त रूमाल निकाल कर कन्धे मे पट्टी वाँधी। तव अस्पताल जा कर एक चारपाई लिवा लाये और प्रेमशकर को उठाकर ले गये। हजारो आदमी अस्पताल के सामने चिन्ता मे डूबे खडे थे। सबको यही भय हो रहा था कि कही चोट ज्यादा न आ गयी हो। लेकिन जब डाक्टर साहब ने मरहम पट्टी के वाद आ कर कहा, चोट तो बहुत ज्यादा आयी है, कन्धे की हड्डी टूट गयी है, लेकिन आशा है कि बहुत जल्द अच्छे हो जायँगे तब लोगो के चित्त शान्त हुए। एक-एक करके सभी वहाँ से चले गये।

लाला प्रभाशंकर को ज्यो ही यह शोक सम्वाद मिला वह बदहवास दौडे हुए आये और प्रेमशकर के पास बैठ कर देर तक रोते रहे। प्रेमशकर सचेत हो गये थे। हाँ विषम-पीड़ा से विकल थे। डाक्टर ने बोलने या हिलने को मना कर दिया था, इसलिए चुपचाप पड़े हुए थे। लेकिन जब प्रभाशकर को बहुत अधीर देखा तो धीरे से बोले, आप घबराये नही, मैं जल्द अच्छा हो जाऊँगा। कन्धो मे दर्द हो रहा है। इसके सिवा मुझे और कोई कष्ट नही है। ये वातें सुन कर प्रभाशकर को तस्कीन हुई। चलते समय उन्होंने डाक्टर साहब के पास जा कर बडे विनीत भाव से कहा—वाबू जी, यह लड़का मेरे कुल का दीपक है। आप इस पर कृपा-दृष्टि रखिएगा। इसके प्राण बच गये तो यथाशक्ति आपकी सेवा करने मे कोई वात उठा न रखूंगा। यद्यपि मैं किसी लायक नही हूँ तथापि अपने से जो कुछ हो सकेगा वह अवश्य आपको भेंट करूँगा।

प्रियनाथ ने कहा—लाला जी, आप यह क्या कहते है ? अगर मैं इनकी सेवा-सुश्रूषा मे तन-मन से न लगूँ तो मुझसे ज्यादा कृतघ्न प्राणी ससार मे न होगा। मेरे ही कारण इन्हे यह चोट आयी है। अगर यह वहाँ न होते तो मेरी हड्डियो का भी पता न मिलता। इन्होंने जान पर खेल कर मेरी प्राण-रक्षा की। इनका एहसान कभी मेरे सिर से नही उतर सकता।

तीन-चार दिन मे प्रेमशकर इतने स्वस्थ हो गये कि तकिये के सहारे बैठ सके। लकडी ले कर औषधालय के बरामदे मे टहलने भी लगे। उनका कुशल समाचार पूछने के लिए शहर मे सैकड़ो आदमी प्रतिदिन आते रहते थे। प्रेमशकर सबसे डाक्टर साहब की मुक्त कठ से प्रशसा करते। प्रियनाथ के सेवा-भाव ने उन्हे मोहित कर दिया था। वह दिन मे कई बार उन्हे देखने आते। कभी-कभी समाचार-पत्र पढ कर सुनाते, उनके लिए अपने घर मे विशेष रीति से भोजन बनवाते। प्रेमशकर मन मे बहुत लज्जित थे कि ऐसे सज्जन, ऐसे देवतुल्य पुरुष के विषय मे मैंने क्यो अनुचित सन्देह किये। वह अपनी विमल श्रद्धा से उस अभक्ति की पूर्ति कर रहे थे।

एक सप्ताह बीत चुका था। प्रेमशकर उदास बैठे हुए सोच रहे थे कि उन दीन

अभियुक्तो का अब क्या हाल होगा ? मैं यहाँ पड़ा हूँ। अपीलो का अभी तक कुछ निश्चय न हो सका और अपील होगी कैसे ? इतने रुपये कहाँ से आयेंगे ? आजकल तो न्याय गरीबो के लिए एक अलभ्य वस्तु हो गया है। पग-पग पर रुपये का खर्च। और यह क्या मालूम कि अपील का नतीजा हमारे अनुकूल होगा। कही ये ही सजाएँ बहाल रह गयी तो अपील करना निष्फल हो जायेगा; लेकिन कुछ भी हो अपील करनी चाहिए। रुपये का कोई न कोई उपाय निकल ही आयेगा। और कुछ न होगा तो दूकान-दूकान और घर-घर घूम कर चन्दा माँगूंगा। दीनो से स्वभावत: लोगों की सहानुभूति होती है। सम्भव है काफी धन हाथ आ जाय। ज्ञानशंकर को बुरा लगेगा लगे, इसमे मेरा कुछ वस नही। क्या उन्हे इस दुर्घटना की खबर न मिली होगी ? आना तो दूर रहा, एक पत्र भी न लिखा कि मुझे तस्कीन होती।

वह इन विचारो में मग्न थे कि प्रियनाथ आ गये और बोले, आप इस समय बहुत चिन्तित मालूम होते हैं। थोड़ी सी चाय पी लीजिए, चित्त प्रसन्न हो जाय।

प्रेमशंकर—जी नही, बिलकुल इच्छा नही है। आप मुझे यहाँ से कब तक बिदा करेंगे ?

प्रियनाथ—अभी शायद आपको यहाँ एक सप्ताह और नजरबन्द रहना पडेगा, अभी हड्डी के जुडने मे थोडी सी कसर है; और फिर ऐसी जल्दी क्या है ? यह भी तो आपका ही घर है।

प्रेमशंकर—आप मेरे सिर पर उपकारो का इतना बोझ रखते जाते है कि मैं शायद हिल भी न सकूँ। यह आपकी कृपा, स्नेह और शालीनता का फल है कि मुझे पीड़ा कष्ट कभी जान ही न पड़ा। मुझे याद नही आता कि इतनी शाति कही और मिली हो। आपकी हार्दिक समवेदना ने मुझे दिखा दिया कि ससार मे भी देवताओ का वास हो सकता है। सभ्य जगत पर से मेरा विश्वास उठ गया था। आपने उसे फिर जीवित कर दिया।

प्रेमशंकर की नम्रता और सरलता डाक्टर महोदय के हृदय को दिनोदिन मोहित करती जाती थी। ऐसे शुद्धात्मा, साधु और निस्पृह पुरुष का श्रद्धा-पात्र बन कर उनकी क्षुद्रताएँ और मलिनताएँ आप ही आप मिटती जाती थी। वह ज्योति दीपक की भाँति उनके अन्त करण के अन्धेरे को विच्छिन्न किये देती थी। इस श्रद्धा-रत्न को पा कर वह ऐसे मुग्ध थे जैसे कोई दरिद्र पुरुष अनायास कोई सम्पत्ति पा जाय। उन्हे सदैव यही चिन्ता रहती थी कि कही यह रत्न मेरे हाथ से निकल न जाय। उन्हे कई दिनों से यह इच्छा हो रही थी कि लखनपुर के मुकदमे के विषय मे प्रेमशकर से अपनी स्थिति स्पष्ट रूप से प्रकट कर दे, पर इसका कोई अवसर न पाते थे। इस समय अवसर पा कर बोले, आप मुझे बहुत लज्जित कर रहे हैं। किसी दूसरे सज्जन के मुँह से ये बातें सुनकर मैं अवश्य समझता कि वह मुझे बना रहा है। आप मुझे उससे कहीं ज्यादा विवेक-परायण और सच्चरित्र समझ रहे हैं जितना मैं हूँ। साधारण मनुष्यो की भाँति लोभ से ग्रसित, इच्छाओ का दास और इन्द्रियों का भक्त हूँ। मैंने अपने जीवन

मे घोर पाप किये है। यदि वह आपसे बयान करूँ तो आप चाहे कितने ही उदार क्यो न हो, मुझे तुरन्त नजरो से गिरा देंगे। मैं स्वय अपने कुकृत्यो का परदा बना हुआ हूँ, इन्हे वाह्य आडम्बरो से ढाँके हुए हूँ, लेकिन इस मुकदमे के सम्बन्ध मे जनता ने मुझे जितना वदनाम कर रखा है उसका मैं भागी नही हूँ। मैं आपसे सत्य कहता हूँ कि मुझपर जो आक्षेप किये गये हैं वे सर्वथा निर्मूल है। सम्भव है हत्या-निरूपण मे मुझे भ्रम हुआ हो और अवश्य हुआ है, लेकिन मैं इतना निर्दय और विवेकहीन नही हूँ कि अपने स्वार्थ के लिए इतने निरपराधियो का गला काटता। यह मेरी दासवृत्ति है जिसने मेरे माथे पर अपयश का टीका लगा दिया।

प्रेमशंकर ने ग्लानिमय भाव से कहा—भाई साहब, आपकी इस बदनामी का सारा दोष मेरे सिर है। मैं ही आपका अपराधी हूँ। मैंने ही दूसरो के कहने मे आ कर आप पर अनुचित सन्देह किये। इसका मुझे जितना दु ख और खेद है वह आप से कह नही सकता। आप जैसे साधु पुरुष पर ऐसा घोर अन्याय करने के लिए परमात्मा मुझे न जाने क्या दड देंगे? पर आपसे मेरी यह प्रार्थना है कि मेरी अल्पज्ञता पर विचार कर मुझे क्षमा कीजिए।

प्रियनाथ के हृदय पर से एक बोझ सा उतर गया। प्रमशकर इसके दो-चार दिन वाद हाजीपुर लौट आये, पर डाक्टर साहव रोज सन्ध्या समय उनसे मिलने आया करते। अव वह पहले से कही ज्यादा कर्त्तव्य-परायण हो गये थे। दस वजे के पहले प्रात.काल चिकित्सा भवन मे आ वैठते, रोगियो की दशा ध्यान से देखते, उन्हे सान्त्वना देते। इतना ही नही, पहले वह पूरी फीस लिये बिना जगह से हिलते न थे, अब वहुधा गरीबो को देखने विना फीस लिये ही चले जाते। छोटे-छोटे कर्मचारियो से आधी ही फीस लेते। नगर की सफाई का नियमानुसार निरीक्षण करते। जिस गली या सडक से निकल जाते, लोग बड़े आदर से उन्हे सलाम करते। चन्द महीनो में सारे नगर मे उनका वखान होने लगा। काशी का प्रसिद्ध समाचार-पत्र 'गौरव' उनका पुराना शत्रु था। पहले उन पर खूव चोटें किया करता था। अब वह भी उनका भक्त हो गया। उसने अपने एक लेख मे यह आलोचना की 'काशी के लिए यह परम सौभाग्य की वात है कि वहुत दिनो के वाद उसे ऐसा प्रजावत्सल, ऐसा सहृदय, ऐसा कर्त्तव्यपरायण डाक्टर मिला। चिकित्सा का लक्ष्य धनोपार्जन नही, यशोपार्जन होना चाहिए और महाशय प्रियनाथ ने अपने व्यवहार से सिद्ध कर दिया है कि वह इस उच्चादर्श का पालन करना अपना ध्येय समझते है।' डाक्टर साहव को सुकीर्ति का स्वाद मिल गया। अव दीनो की सेवा मे उनका चित्त जितना उल्लसित होता था उतना पहले सचित धन की वढ़ती हुई सख्याओ से भी न हुआ था। यद्यपि धन की तृष्णा से वह अभी मुक्त नही हुए थे, पर कीर्ति-लाभ की सदिच्छा ने धन-लिप्सा परास्त कर दिया था। प्रेम-शंकर के सम्मुख जाते ही उनका हृदय ओस विन्दुओ से धुलें हुए फूलो के सदृश निर्मल हो जाता, निखर उठता। उस सरल सन्तोषमय, कामनारहित जीवन के सामने उन्हे अपनी धन-लालसा तुच्छ मालूम होने लगती थी। सन्तान की चिन्ता का वोझ कुछ

हलका हो जाता था। जब इस दशा में भी हम सतुष्ट और प्रसन्न रह सकते हैं, यशस्वी बन सकते हैं, दूसरो की सहायता कर सकते हैं, प्रेम और श्रद्धा के पात्र बन सकते हैं तो फिर धन पर जान देना व्यर्थ है। उन्हे ज्ञात होता था कि सफल जीवन के लिए धन कोई अनिवार्य साधन नही है। उन्हे खेद होता था कि मेरी आवश्यकताएँ क्यो इतनी बढ़ी हुई हैं, मैं डाक्टर हो कर रसना का दास क्यो बना हूँ, सुन्दर वस्त्रों पर क्यों मरता हूँ। इन्ही के कारण तो मैं सारे नगर मे बदनाम था, लोभी, स्वार्थी, निर्दय बना हुआ था और अब भी हूँ। लोगों को शका होती थी कि कही यह रोग को बढ़ा न दे, इस लिए जल्दी कोई मुझे बुलाता न था। इन/विचारो का डाक्टर साहब के रहन-सहन पर प्रभाव पड़ने लगा।

एक दिन डाक्टर साहब किसी मरीज को देख कर लौटते हुए प्रेमशंकर की कृषि शाला के सामने से निकले। दस बज गये थे। धूप तेज थी। सूर्य की प्रखर किरणें आकाश मडल को बाणो से छेदती हुई जान पडती थी। डाक्टर साहब के जी में आया देखता चलूं। क्या कर रहे हैं? अन्दर पहुँचे तो देखा कि वह अपने झोपड़े के वृक्ष के नीचे खड़े गेहूँ के पोले बिखेर रहे थे। कई मजूर छौनी कर रहे थे। प्रियनाथ को देखते ही प्रेमशकर झोपड़े मे आ गये और बोले धूप तेज है।

प्रियनाथ—लेकिन आप तो इस तरह काम मे लगे हुए है मानो धूप है ही नही।

प्रेम—उन मजूरो को देखिए! धूप की कुछ परवाह नही करते।

प्रियनाथ—हमे इस कृत्रिम जीवन ने चौपट कर दिया, नहीं तो हम भी ऐसे ही आदमी होते और श्रम को बुरा न समझते।

प्रेमशकर कुछ और कहना चाहते थे कि इतने मे दो वृद्धाएँ सिर पर लकडी के गट्ठे, रखे आयी और पूछने लगी—सरकार, लकड़ी ले लों। इन स्त्रियो के पीछे-पीछे लड़के भी लकडी के बोझ लिये हुए थे। सबो के कपड़े तरबतर हो रहे थे। छाती और पसली की हड्डियां निकली हुई थी, ओठ सूखे हुए, देह पर मैल जमी हुई, उस पर सूखे हुए पसीने की धारियाँ सी बन गयी थी। प्रेमशंकर ने लकड़ी के दाम पूछे, सबके गट्ठे उतरवा लिये, लेकिन देखा तो सन्दूक मे पैसे न थे। गुमास्ता को रुपया भुनाने को दिया। दोनो वृद्धाएँ वृक्ष के नीचे छाँह मे बैठ गयी और लड़के बिखरे हुए दाने चुन-चुन खाने लगे। प्रेमशंकर को उन पर दया आ गयी। थोड़े-थोड़े मटर सब लडको को दे दिये। दोनो स्त्रियाँ आशीष देती हुई बोली—बाबू जी, नारायण तुम्हे सदा सुखी रखें। इन बेचारो ने अभी कलेवा नही किया है।

प्रेम—तुम्हारा घर कहाँ है?

एक बुढ़िया—सरकार, लखनपुर का नाम सुना होगा।

प्रियनाथ—आपने गट्ठे देखे नही, सबो ने खूब कैची लगायी है।

प्रेमशकर—दरिद्रता सब कुछ करा देती है। (वृद्धा से) तुम लोग इतनी दूर लकडी बेचने आ जाती हो?

वृद्धा—क्या करे मालिक, बीच कोई बस्ती नही है। घडी रात के चले है, दुप-

हरी हो गयी, किसी पेड के नीचे पडे रहेंगे, दिन ढलेगा तो साँझ तक घर पहुँचेंगे। करम का लिखा भोग है! जो कभी न करना था, वह मरते समय करना पड़ा!

प्रेम—आज कल गाँव का क्या हाल है?

वृद्धा—क्या हाल बतायें सरकार, जमीदार की निगाह टेढी हो गयी, सारा गाँव बँध गया, कोई डामिल गया, कोई कैद हो गया। उनके बाल-बच्चे अब दाने-दाने को तरस रहे हैं। मेरे दो बेटे थे। दो हल की खेती होती थी। एक तो डामिल गया, दूसरे की साल भर से कुछ टोह ही नही मिली। बैल थे, वे चारे बिना टूट गये। खेती बारी कौन करे? बहुएँ हैं वे बाहर आ-जा नही सकती। मैं ही उपले बेच कर ले जाती हूँ तो सब के मुँह मे दाना पडता है। पोते थे, उन्हे भगवान ने पहले ही ले लिया। बुढापे मे यही भोगना लिखा था।

प्रेम—तुम डपटसिंह की मा तो नही हो?

वृद्धा—हाँ सरकार, आप कैसे जानते हैं?

प्रेम—ताऊन के दिनो मे जब तुम्हारे पोते बीमार थे तब मैं वहाँ था। कई बेर और हो आया हूँ। तुमने मुझे पहचाना नही? मेरा नाम प्रेमशकर है।

वृद्धा ने थोडा सा घूँघट निकाल लिया। दीनता की जगह लज्जा का हल्का सा रंग चेहरे पर आ गया। बोली, हाँ बेटा अब मैंने पहचाना। आँखो से अच्छी तरह सूझता नही। भैया, तुम जुग-जुग जियो। आज सारा गाँव तुम्हारा यश गा रहा है। तुमने अपनी वाली कर दी, पर भाग मे जो कुछ लिखा था वह कैसे टलता? बेटा! सारे गाँव मे हाहाकार मचा हुआ है। दुखरन भगत को तो जानते ही होगे? यह बुढिया उन्ही की घरवाली है। पुराना खाती थी, नया रखती थी। अब घर मे कुछ नही रहा। यह दोनो लड़के बधूके हैं। एक रगी का लड़का है और ये दोनो कादिर मियाँ के पोते हैं। न जाने क्या हो गया कि घर से मरदो के जाते ही जैसे बरक्कत ही उठ गयी। सुनती थी कि कादिर मियाँ के पास बडा धन है, पर इतने ही दिनो मे यह हाल हो गया कि लडके मजदूरी न करे तो मुँह मे मक्खी आये-जाये। भगवान इस कल-मुँहे फैजू का सत्यानाश करे, इसने और भी अन्धेर मचा रखा है। अब तक तो उसने गाँव भर को बेदखल कर दिया होता, पर नारायण सुक्खू चौधरी का भला करे कि उन्होंने सारी बाकी कौड़ी पाई-पाई चुका दी। पर अबकी उन्होंने भी खबर न ली और फिर अकेला आदमी सारे गाँव को कहाँ तक सँभाले? साल दो साल की बात हो तो निबाह दे, यहाँ तो उम्र भर का रोना है। कारिन्दा अभी से धमका रहे है कि अब की बेदखल करके तभी दम लेंगे। अब की साल तो कुछ आधे-साझे में खेती हो गयी थी। खेत निकल जायेंगे तो क्या जाने क्या गति होगी?

यह कहते कहते बुढिया रोने लगी। प्रेमशकर की आँखे भी भर गयी पूछा—बिसेसर साह का क्या हाल है?

बुढिया—क्या जानूँ भैया, मैंने तो साल भर से उसके द्वार पर झाँका भी नही। अब कोई उधर नही जाता। ऐसे आदमी का मुँह देखना पाप है। लोग दूसरे गाँव से

नोन तेल लाते है। वह भी अब घर से बाहर नही निकलता। दूकान उठा दी है। घर मे बैठा न जाने क्या-क्या करता है? जो दूसरे को गड्ढा खोदेगा, उसके लिए कुआँ तैयार है। देखा तो नही पर सुनती हूँ, जब से यह मामला उठा है उसके घर मे किसी को चैन नही है। एक न एक परानी के सिर भूत आया ही रहता है। ओझे-सयाने रात-दिन जमा रहते हैं। पूजा-पाठ, जप-तप हुआ करता है। एक दिन बिलासी से रास्ते मे मिल गया था। रोने लगा। बहुत पछताता था कि मैंने दूसरो की बातो मे आ कर यह कुकर्म किया। मनोहर उसके गले पडा हुआ है। मारे डर के साँझ से केवाड बन्द हो जाता है। रात को बाहर नही निकलता। मनोहर रात-दिन उसके द्वार पर खडा रहता है, जिसको पाता है उसी को चपेट लेता है। सुनती हूँ, अब गाँव छोड कर किसी दूसरे गाँव मे बसनेवाला है।

प्रेमशकर यह बातें सुन कर गहरे सोच मे डूब गये। मैं कितना बेपरवाह हूँ। इन बेचारो को सजा पाये हुए साल भर होने आते हैं और मैंने उनके बाल-बच्चो की सुधि तक न ली। वह सब अपने मन मे क्या कहते होगे? ज्ञानशकर से बात हार चुका हूँ। लेकिन अब वहाँ जाना पडेगा। अपने बचन के पीछे इतने दुखियारो को मरने दूँ? यह नही हो सकता। इनका जीवन मेरे बचन से कही ज्यादा मूल्यवान है। अकस्मात् बुढिया ने कहा—कहो भैया, अब कुछ नही हो सकता? लोग कहते हैं, अभी किसी और बड़े हाकिम के यहाँ फरियाद लग सकती है।

प्रेमशकर ने इसका कुछ उत्तर न दिया। धन का प्रबन्ध तो बहुत कठिन न था, लेकिन उन्हे अपील से उपकार होने की बहुत कम आशा थी। वकीलो की भी यही राय थी। इसीलिए इस प्रश्न को टाल आते थे। डाक्टर साहब से भी उन्होने अपील की चर्चा कभी न की थी। प्रियनाथ उनके मुख की ओर ध्यान से देख रहे थे। उनके मन के भावो को भाँप गये और उनके असमजस को दूर करने के लिए बोले—हाँ, फरियाद लग सकती है, उसका बन्दोबस्त हो रहा है, धीरज रक्खो, जल्दी ही अपील दायर कर दी जायेगी।

वृद्धा—बेटा, दूधो नहाव पूतो फलो। सुनती हूँ कोई बडा डाक्टर था, उसी ने जमीदार से कुछ ले दे कर इन गरीबो को फँसा दिया। न हो, तुम दोनो उसी डाक्टर के पास जा कर हाथ-पैर जोडो, कौन जाने तुम्हारी बात मान जाये। उसके आगे भी तो बाल-बच्चे होगे? क्यो हम गरीबो को बेकसूर मारता है? किसी की हाय बटोरना अच्छा नही होता।

प्रेमशकर जमीन मे गडे जा रहे थे। डाक्टर साहब को कितना दुख हो रहा होगा, अपने मन मे कितने लज्जित हो रहे होगे। कही बुढिया गाली न देने लगे, इसे कैसे चुप कर दूँ? इन विचारो से वह बहुत विकल हो रहे थे, किन्तु प्रियनाथ के चेहरे पर उदारता झलक रही थी, नेत्रो से वात्सल्य-भाव प्रस्फुटित हो रहा था। मुस्कुराते हुए बोले—हम लोग उस डाक्टर के पास गये थे। उसे खूब समझाया। है तो लालची, पर कहने-सुनने से राह पर आ गया है, अब सच्ची गवाही देगा।

इतने मे मस्ता पैसे ले कर आ गया। प्रेमशकर ने लकडी के दाम दिये। बुढिया लकडी के साथ आशीर्वाद दे कर चली गयी। द्वार पर पहुँच कर उसने फिर कहा—भैया भूल मत जाना, धरम का काम है, तुम्हे बडा जस होगा।

उनके चले जाने के बाद कुछ देर तक प्रेमशकर और प्रियनाथ दोनो मौन बैठे रहे। प्रेमशकर का मुँह संकोच ने बन्द कर दिया था, डाक्टर का लज्जा ने।

सहसा प्रियनाथ खडे हो गये और निश्चयात्मक भाव से बोले—भाई साहब, अवश्य अपील कीजिए। आप आज ही इलाहाबाद चले जाइए। आज के दृश्य ने मेरे हृदय को हिला दिया। ईश्वर ने चाहा तो अब की सत्य की विजय होगी।

४५

डाक्टर इर्फानअली उस घटना के बाद हवा खाने न जा सके, सीधे घर की ओर चले। रास्ते भर उन्हे सशय हो रहा था कि कही उन उपद्रवियो से फिर मुठभेड न हो जाय नही तो अब की जान के लाले पड जायँगे। आज बड़ी खैरियत हुई कि प्रेमशकर मौजूद थे, नही तो इन बदमाशो के हाथो मेरी न जाने क्या दुर्गति होती। जब वह अपने घर पर सकुशल पहुँच गये और बरामदे मे आराम कुर्सी पर लेटे तो इस समस्या पर आलोचना करने लगे। अब तक वह न्याय और सत्य के निर्भीक समर्थक समझे जाते थे। पुलिस के विरुद्ध सदैव उनकी तलवार निकली ही रहती थी। यही उनकी सफलता का तत्त्व था। वह बहुत अध्ययनशील, तत्त्वान्वेषी, तार्किक वकील न थे, लेकिन उनकी निर्भीकता इन सारी त्रुटियो पर पर्दा डाल दिया करती थी। पर इस लखनपुरवाले मुकदमे मे पहली बार उनकी स्वार्थपरता की कलई खुली। पहले वह प्राय पुलिस से हार कर भी जीत मे रहते थे, जनता का विश्वास उनके ऊपर जमा रहता था, बल्कि और बढ जाता था। आज पहली बार उनकी सच्ची हार हुई। जनता का विश्वास उनपर से उठ गया। लोकमत ने उनका तिरस्कार कर दिया। उनके कानो मे उपद्रवियो के ये शब्द गूँज रहे थे, 'इन दीनो का खून इन्ही की गर्दन पर है।' इर्फानअली उन मनुष्यो मे न थे जिनकी आत्मा ऋद्धि-लालसा के नीचे दब कर निर्जीव हो जाती है। वह सदैव अपने इष्ट-मित्रो से कठिनाइयो का रोना रोया करते थे और निस्सन्देह ये आँसू उनके हृदय से निकलते थे। वह बार-बार इरादा करते थे कि इस पेशे को छोड दे, लेकिन जुआरियो की प्रतिज्ञा की भाँति उनका निश्चय भी दृढ न होता था, बल्कि दिनो-दिन वह लोभ मे और भी डूबते जाते थे। उनकी दशा उस पथिक की सी थी जो सन्ध्या होने के पहले ठिकाने पर पहुँचने के लिए कदम तेजी से बढाता है। इर्फानअली वकालत छोडने के पहले इतना धन कमा लेना चाहते थे कि जीवन सुख से व्यतीत हो। अतएव वह लोभमार्ग मे और भी तीव्र गति से चल रहे थे।

लेकिन आज की घटना ने उन्हे मर्माहत कर दिया। अब तक उनकी दशा उन

रईसों की सी थी जो वहम की दवा किया करते हैं। कभी कोई स्वादिष्ट अवलेह बनवा लिया, कभी कोई सुगन्धित अर्क खिंचवा लिया और रुचि के अनुसार उसका सेवन करते रहे। किन्तु आज उन्हें ज्ञात हुआ कि मैं एक जीर्ण रोग से ग्रसित हूँ, अब अर्क और अवलेह से काम न चलेगा। इस रोग का निवारण तेज नश्तरो और तीक्ष्ण औषधियों से होगा। मैं सत्य का सेवक बनता था। वास्तव मे अपनी इच्छाओ का दास हूँ। प्रेमशंकर ने मुझे नाहक बचा लिया। जरा दो-चार चोटे पड जाती तो मेरी आँखें और खुल जाती।

मुआजल्लाह! मैं कितना स्वार्थी हूँ? अपने स्वार्थ के सामने दूसरो की जान की भी परवाह नही करता। मैंने इस मुआमले मे आदि से अन्त तक कपट-व्यवहार से काम लिया। कभी मिसलो को गौर से नही पढा, कभी जिरह के प्रश्नो पर विचार नही किया, यहा तक कि गवाहो के बयान भी आद्योपान्त न सुने, कभी दूसरे मुकदमे मे चला जाता था, कभी मित्रो से बाते करने लगता था। मैंने थोडा सा अध्ययन किया होता तो प्रियनाथ को चुटकियो पर उडा देता। मुखबिर को दो-चार जिरहो मे उखाड सकता था। थानेदार का बयान भी कुछ ऐसा प्रामाणिक न था, लेकिन मैंने तो अपने कर्त्तव्य पर कभी विचार ही नही किया। अदालत मे इस तरह जा बैठता था जैसे कोई मित्रो की सभा मे जा बैठता हो। मैं इस पेशे को बुरा कहता हूँ, यह मेरी मक्कारी है। हमारी अनीति है जिसने इस पेशे को बदनाम कर रखा है। उचित तो यह है कि हमारी दृष्टि सत्य पर हो, पर इसके बदले हमारी निगाह सदैव रुपये पर रहती है। खुदा ने चाहा तो आइन्दा से अब वही करूँगा जो मुझे करना चाहिए। हाँ, अब से ऐसा ही होगा। अब मैं भी प्रेमशंकर के जीवन को अपना आदर्श बनाऊँगा, सन्तोष और सेवा के सन्मार्ग पर चलूँगा।

जब तक प्रेमशंकर औषधालय मे रहे, इर्फानअली प्राय: नित्य उनका समाचार पूछने जाया करते थे। उनके धैर्य और साहस पर डाक्टर साहब को आश्चर्य होता था। प्रेमशंकर के प्रति उनकी श्रद्धा दिनो-दिन बढती जाती थी। अपने मुवक्किलो के साथ उनका व्यवहार अब अधिक विनयपूर्ण होता था। वह उनके मुआमले ध्यान से देखते, एक समय एक से अधिक मुकदमा न लेते और एक मुकदमे को इजलास पर छोड कर दूसरे मुकदमे की पैरवी करने की तो उन्होंने मानो शपथ ही खा ली। वह अपील करने के लिए बार-बार प्रेमशंकर को प्रेरित करना चाहते थे, पर अपनी असज्जनता को याद करके सकुच जाते थे। अन्त मे उन्होंने सीतापुर जा कर बाबू ज्वालासिंह से इस विषय मे परामर्श करने का निश्चय किया; किन्तु वह महाशय अभी तक दुविधा मे पड़े हुए थे। प्रेमशंकर को लिख चुके थे कि त्याग-पत्र दे कर शीघ्र ही आप की सेवा मे आता हूँ। लेकिन फिर कोई न कोई ऐसी बात आ जाती थी कि उन्हें अपने इरादे को स्थगित करने पर विवश होना पड़ता था। यह बात थी कि शीलमणि उनके इस्तीफा देने पर राजी न होती थी। वह कहती—बला से तुम्हारे अफसर तुमसे अप्रसन्न हैं, तरक्की नही होती है, न सही। तुम्हारे हाथो मे न्याय करने का अधिकार तो है।

अगर तुम्हारे विधातागण तुम्हारे व्यवहार से असन्तुष्ट हो कर तुम्हे पदच्युत कर दे, तो तुम्हे अपील करनी चाहिए और चोटी के हाकिमो से लड़ना चाहिए। यह नही कि अफसरो ने जरा तोवर वदला और तुमनें भयभीत हो कर त्याग-पत्र देने की ठान ली। तुम्हारी इस अकर्मण्यता से तुम्हारे कितने ही न्यायशील और आत्माभिमानी सहवर्गियो की हिम्मत टूट जायेगी और वह भाग निकलने का उपाय करने लगेंगे। यह विभाग मज्जनो से खाली हो जायगा और वही खुशामदी टट्टू, हाकिमो के इशारे पर नाचनेवाले वाकी रह जायेंगे। ज्वालासिंह इस दलील का कोई जवाव न दे सकते थे। जव डाक्टर इर्फानअली सिर पर जा पहुँचे तो वह अपनी शिथिलता और अधिकार-प्रेम का दोप शीलमणि पर रख कर अपने को मुक्त न कर सके।

शीलमणि समझ गयी कि अव इन्हे रोकना कठिन है, मेरी एक न सुनेंगे। ज्यो ही अवसर मिला उसने ज्वालासिंह से पूछा—डाक्टर साहव को क्या जवाव दिया?

ज्वालासिंह—जवाव क्या देना है, इस्तीफा दिये देता हूँ। अव हीला-हवाला करने से काम न चलेगा। जब तक मैं न जाऊँगा, वावू प्रेमशकर कुछ न कर सकेंगे। दुर्भाग्य से वह मुझपर उससे कही ज्यादा विश्वास करते है, जिसके योग्य मैं हूँ। अपील की अवधि वीत जायगी तो फिर कुछ वनाये न वनेगी। अपील के सफल होने की वहुत कुछ आशा है और यदि मेरे सदुद्योग से कई निरपराधो की जाने वच जायँ, तो मुझे अव एक क्षण भी विलम्व न करना चाहिए।

शीलमणि—तो अधिक दिनो की छुट्टी क्यो नही ले लेते?

ज्वालासिंह—तुम तो जान वूझ कर अनजान वनती हो। वहाँ मुझे कितनी ही ऐसी वातें करनी पडेगी जो दासत्व की वेडियाँ पहने हुए नही कर सकता। रुपये के लिए चन्दे माँगना, वकीलो से मिलना-जुलना, लखनपुरवालो के कष्ट-निवारण की आयोजना करना, यह सभी काम करने पडेगे। पुलिसवालो की निगाह पर चढ जाऊँगा, अधिकारी वर्ग तन जायेंगे, तो इस वेडी को काट ही क्यो न दूँ? मुझे पूरा विश्वास है कि मैं स्वाधीन हो कर जितनी जाति-सेवा कर सकता हूँ, उतनी इस दशा मे कभी न कर सकूँगा।

शीलमणि वहुत देर तक उनसे तर्क-वितर्क करती रही, अन्त मे क्रुद्ध हो कर वोली—उँह, जो इच्छा हो करो। मुझे क्या करना है? जैसा सूखा सावन वैसा भरा भादो। आप ही पछताओगे। यह सव आदर-सम्मान तभी तक है, जव तक हाकिम हो। जव जाति सेवको मे जा मिलोगे तो कोई वात भी न पूछेगा। क्या वहाँ सव के सव मज्जन ही भरे हुए है? अच्छे-बुरे सभी जगह होते हैं। प्रेमशकर की तो मैं नही कहती, वह देवता है, लेकिन जाति-सेवको मे तुम्हे सैकडो आदमी ऐसे मिलेंगे जो स्वार्थ के पुतले है और सेवा भेप वना कर गुलछर्रे उडाते है। वह निस्पृह, पवित्र आत्माओ को फूटी आँख नही देख सकते। तुम्हे उनके वीच मे रहना दुर्भर हो जायेगा। उनका अन्याय, कपट-व्यवहार और सकीर्णता देख कर तुम कुढोगे, पर उनसे कुछ कह न सकोगे। इसलिए जो कुछ करो, सोच-समझ कर करो।

ये वही बातें थी जो ज्वालासिंह ने स्वय शीलमणि से कही थी। कदाचित् यही बाते सुन-सुन कर वह इस्तीफे के विपक्ष मे हो गयी थी पर इस समय वह यह निराशा-जनक बातें न सुन सके, उठ कर बाहर चले आये और उसी आवेश मे आ कर त्यागपत्र लिखना शुरू किया।

४६

कई महीने बीत चुके, लेकिन प्रेमशकर अपील दायर करने का निश्चय न कर सके। जिस काम से उन्हे किसी दूसरे से मदद मिलने की आशा न होती थी, उसे वह बडी तत्परता के साथ करते थे, लेकिन जब कोई उन्हे सहारा देने के लिए हाथ बढा देता था, तब उन पर एक विचित्र शिथिलता सी छा जाती थी। इसके सिवा धनाभाव भी अपील का बाधक था। दिवानी के खर्च ने उन्हे इतना जेरबार कर दिया था कि हाईकोर्ट जाने की हिम्मत न पडती थी। यद्यपि कितने ही आदमियो को उनसे श्रद्धा थी और वह इस पुण्य कार्य के लिए पर्याप्त धन एकत्र कर सकते थे, पर उनकी स्वाभाविक सरलता और कातरता इस आधार को उनकी कल्पना मे भी न आने देती थी।

एक दिन सन्ध्या समय प्रेमशकर बैठे हुए समाचार-पत्र देख रहे थे। गोरखपुर के सनातन धर्म महोत्सव का समाचार मोटे अक्षरो मे छपा हुआ दिखायी दिया। गौर से पढ़ने लगे। ज्ञानशंकर को उन्होंने मन मे धूर्त और स्वार्थ-परायणता का पुतला समझ रखा था। अब उनकी इस सत्य-निष्ठा और धर्म-परायणता का वृत्तान्त पढ कर उन्हे अपनी सकीर्णतापर अत्यन्त खेद हुआ। मैं कितना निर्बुद्धि हूँ! ऐसी दिव्य और विमल आत्मा पर अनुचित सन्देह करने लगा। ज्ञानशकर के प्रति उनके हृदय मे भक्ति की तरगे सी उठने लगी। उनकी सराहना करने की ऐसी उत्कट इच्छा हुई कि उन्होने मस्ता और भोला को कई बार पुकारा। जब उनमे से किसी ने जवाब न दिया तो वह मस्ता की झोपडी की ओर चले कि अकस्मात् दुर्गा, मस्ता और कृषिशाला के कई और नौकर एक मनुष्य को खीच-खीच कर लाते हुए दिखायी दिये। सब के सब उसे गालियाँ दे रहे थे और मस्ता रह-रह कर एक धौल जमा देता था। प्रेमशकर ने आगे बढ कर तीव्र स्वर मे कहा, क्या है भोला, इसे क्यो मार रहे हो?

मस्ता—भैया, यह न जाने कौन आदमी है। फाटक से चिमटा खडा था। अभी मैं फाटक बन्द करने गया तो इसे देखा। मुझे देखते ही और दबक गया। बस, मैंने चुपके से आकर सबको साथ लिया और बच्चू को पकड लिया। जरूर से जरूर कोई चोर है।

प्रेम—चोर सही, तुम्हारा कुछ चुराया तो नही? फिर क्यो मारते हो?

यह कहते हुए अपने बरामदे मे आ कर बैठ गये। चोर को भी लोगो ने वही ला कर खड़ा किया। ज्यो ही लालटेन के प्रकाश मे उसकी सूरत दिखायी दी, प्रेमशकर के मुँह से एक चीख सी निकल आयी, अरे, यह तो बिसेसर साह है!

बिसेसर ने आँसू पोंछते हुए कहा, हाँ सरकार, मैं बिसेसर ही हूँ।

प्रेमशंकर ने अपने नौकरों से कठोर स्वर में कहा, तुम लोग निरे गँवार और मूर्ख हो। न जाने तुम्हें कभी समझ आयेगी भी या नहीं।

मस्ता—भैया, हम तो बार-बार पूछते रहे कि तुम कौन हो? वह कुछ बोले ही नहीं, तो मैं क्या करता?

प्रेम—बस, चुप रह गँवार कहीं का!

नौकरों ने देखा कि हमसे भूल हो गयी तो चुपके से एक एक करके सरक गये। प्रेमशंकर को क्रोध में देख कर सब के सब थर-थर काँपने लगते थे। यद्यपि प्रेमशंकर उन सबसे भाई चारे का बर्ताव करते थे, पर वह सब उनका बड़ा अदब करते थे। उनके सामने चिलम तक न पीते। उनके चले जाने के बाद प्रेमशंकर ने बिसेसर साह को खाट पर बैठाया और अत्यन्त लज्जित हो कर बोले, साह जी, मुझे बड़ा दुःख है कि मेरे आदमियों ने आपके साथ अनुचित व्यवहार किया। सब के सब उजड्ड और मूर्ख हैं।

बिसेसर ने ठंडी साँस ले कर कहा, नहीं भैया, इन्होंने कोई बुरा सलूक नहीं किया। मैं इसी लायक हूँ। आप मुझे खम्भे में बाँध कर कोड़े लगवायें तब भी बुरा न मानूँगा। मैं विश्वासघाती हूँ। मुझे जो सजा मिले वह थोड़ी है। मैंने अपनी जान के डर से सारे गाँव को मटिया मेट कर दिया। न जाने मेरी बुद्धि कहाँ चली गयी थी। पुलिस-वालों की भभकी में आ गया। वह सब ऐसी-ऐसी बातें करते हैं, इतना डराते और धमकाते हैं कि सीधा-सादा आदमी बिलकुल उनकी मुट्ठी में आ जाता है। उन्हें जरूर से जरूर किसी देवता का इष्ट है कि जो कुछ वह कहलाते हैं, वही मुँह से निकलता है। भगवान जानते हैं जो गौसखाँ के बारे में मुझे किसी से कुछ बात हुई हो। मुझे तो उनके कतल का हाल दिन चढ़े मालूम हुआ, जब मैं पूजा-पाठ करके दूकान पर आया। पर जब दरोगा जी थाने में ले जा कर मेरी साँसत करने लगे तब मुझपर जैसे कोई जादू हो गया। उनकी एक-एक बात दुहराने लगा। जब मैं अदालत में बयान दे रहा था तब सरम के मारे मेरी आँखें ऊपर न उठती थीं। मेरे जैसा कुकर्मी संसार में न होगा। जिन आदमियों के साथ रात-दिन का रहना-सहना उठना-बैठना था, जो मेरे दुःख दर्द में शरीक होते थे, उन्हीं के गर्दन पर मैंने छुरी चलायी। जब कादिर ने मेरा बयान सुन कर कहा, 'बिसेसर, भगवान से डरो' उस घड़ी मेरा ऐसा जी चाहता था कि धरती फट जाये और मैं उसमें समा जाऊँ। मन होता था कि साफ-साफ कह दूँ 'यह सब सिखायी-पढ़ाई बातें हैं' पर दारोगा जी की ओर ज्यों ही आँख उठती थी मेरा हियाव छूट जाता था। जिस दिन से मनोहर ने अपने गले में फाँसी लगायी है उस दिन से मेरी नींद हराम हो गयी। रात को सोते-सोते चौंक पड़ता हूँ, जैसे मनोहर सिरहाने खड़ा हो। साँझ होते ही घर के केवाड़ बन्द कर देता हूँ। बाहर निकलता हूँ तो जान पड़ता है, मनोहर सामने आ रहा है। घरवाली उसी दिन से बीमार पड़ी हुई है। घर की तो यह दुर्दशा है, उधर गाँव में अन्धेर मचा हुआ है। सबके बाल-बच्चे भूखों मर रहे हैं। फैजू और कर्तार नित नये तूफान रचते रहते हैं। भगवान् सुक्खू चौधरी का

भला करे. उनके हृदय में दया आयी. दो साल की मालगुजारी अदा कर दी,-नहीं तो अब तक सारा गाँव बेदखल हो गया होता। इस पर फैजू जला जाता है। जब सुक्खू आ जाते हैं तो भीगी बिल्ली बन जाता है. लेकिन ज्यों ही वह चले जाते हैं फिर वही उपद्रव करने लगता है। इन गरीबों का कष्ट मुझसे नहीं देखा जाता। जिसे चाहता है मारता है डाँट लेता है। एक दिन कादिर मियाँ के घर में आग लगवा दी। और तो और अब गाँव की बहूबेटियों की इज्जत-हुरमत भी बचती नहीं दिखायी देती। मनोहर के घर सास-बहू में रार मची हुई है। दोनों अलग-अलग रहती हैं। परसों रात की बात है, फैजू और कर्तार दोनों बहू के घर में घुस गये। उस बेचारी ने चिल्लाना शुरू किया। सास पहुँच गयी, और लोग भी पहुँच गये। दोनों निकल कर भागे। सवेरा होते ही इसकी कसर निकली। कर्तार ने मनोहर की दुलहिन को इतना मारा कि बेचारी पड़ी हल्दी पी रही है। यह सब पाप मेरे सिवा और किसके सिर पड़ता होगा? मैं ही इस सारी विपद् लीला की जड़ हूँ। भगवान् मेरी न जाने क्या दुर्गत करेंगे! काहे भैया, क्या अब कुछ नहीं हो सकता? सुनते हैं तुम अपील करनेवाले हो, तो जल्दी कर क्यों नहीं देते? ऐसा न हो कि मियाद गुजर जाय। तुम मुझे तलब करा देना। मुझपर दरोग-हलफी का इलजाम आवेगा तो क्या! पर मैं अबकी सब कुछ सच-सच कह दूंगा। यही न होगा, मेरी सजा हो जायगी, गाँव का तो भला हो जायगा। मैं हजार पाँच सौ से मदद भी कर सकता हूँ।

प्रेमशंकर—हाईकोर्ट में तो मिसल देख कर फैसला होता है, किसी के बयान नहीं लिये जाते।

बिसेसर—भैया, कुछ देने-लेने से काम चले तो दे दो, हजार-पाँच सौ का मुँह मत देखो। मुझसे जो कुछ फरमाओ उसके लिए हाजिर हूँ। यह बात मेरे मन में महीनों से समायी हुई है, पर आपको मुँह दिखाने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। आज कुछ सौदा लेने चला तो चौपाल के सामने फैजू मिल गये। कहने लगे—जाते हो तो यह रुपये लेते जाओ, मालिकों के घर भेजवा देना। मैंने रुपये लिए और डेवढ़ी पर जाकर छोटी बहू के पास रुपये भेज दिये। जब चलने लगा तो बड़ी बहू ने दीवानखाने में मुझे बुलाया। उनको देख कर ऐसा जान पड़ा मानो साक्षात् देवी के दर्शन हो गये। उन्होंने मुझे ऐसा-ऐसा उपदेश किया कि आपसे क्या कहूँ। मेरी आँख खुल गयी। मन में ठान कर चला कि आपसे अपील दायर करने को कहूँ जिसमें मेरा भी उद्धार हो जाये। लेकिन दो-तीन बार आ-आ कर लौट गया। आपको मुँह दिखाते लाज आती थी। सूरज डूबते वक्त फिर आया, पर वहीं फाटक के पास दुविधा में खड़ा सोच रहा था कि क्या करूँ? इतने में आपके आदमियों ने देख लिया और आपकी शरण में ले आये। मुझ जैसे झूठे दगाबाज आदमी का इतबार ही क्या? पर अब मैं सौगन्ध खा के कहता हूँ कि फिर जो मेरा बयान लिया जायगा तो मैं एक-एक बात खोल कर कह दूंगा। चाहे उल्टी पड़े या सीधी। आप जरूर अपील कीजिए।

प्रेमशंकर बिसेसर साह को महानीच, कपटी, अधम मनुष्य समझते थे। उनके

विचार मे वह मनुष्य कहलाने के योग्य भी न था। लेकिन उसकी इन ग्लानि-सूचक बातो ने उसे पिशाच श्रेणी से उठा कर देवासन पर बैठा दिया। भगवान्! जिसे मैं इतना दुरात्मा समझता था, उसके हृदय मे आत्मग्लानि का यह पवित्र भाव! यह आत्मोत्कर्ष, यह ईश्वर-भीरुता, यह सद्‌गार! मैं कितने भ्रम मे पडा हुआ था? दुनिया के लोग अनायास ही बदनाम करते हैं, पर मैंने तो हर एक बुरे को अच्छा ही पाया। इसे अपने सौभाग्य के सिवा और क्या कहूँ? ईश्वर मुझे इस अविश्वास के लिए क्षमा करना। यह सोचकर उनकी आँखो मे आँसू भर आये। बोले—साह जी, तुम्हारी बातें सुन कर मुझे वही आनन्द हुआ जो किसी सच्चे साधु के उपदेश से होता। मैं बहुत जल्द अपील करनेवाला हूँ। अड़चन यही है कि गवाहो के बयान कैसे बदले जायें? सम्भव है हाईकोर्ट मुकदमे पर नजरसानी करने की आज्ञा दे दे और फिर इसी अदालत मे मामला पेश हो, लेकिन बयान बदलने से तुम और डाक्टर प्रियनाथ दोनो ही फँस जाओगे। प्रियनाथ ने तो अपने बचाव की युक्ति सोच ली, लेकिन तुम्हारा बचाव कठिन है। इसे अच्छी तरह सोच लो।

बिसेसर—खूब सोच लिया है।

प्रेमशंकर—ईश्वर ने चाहा तो तुम भी बच जाओगे। मैं कल वकीलो से इस विषय मे सलाह लूँगा।

यह कह कर वह बिसेसर के खाने-पीने का प्रबन्ध करने चले गये।

४७

ज्ञानशंकर लखनऊ से सीधे बनारस पहुँचे, किन्तु उदास और खिन्न रहते। न हवा खाने जाते, न किसी से मिलने-जुलते। उनकी दशा इस समय उस पक्षी की सी थी जिसके दोनो पख कट गये हो, या उस स्त्री की सी जो किसी दैवी प्रकोप से पति-पुत्र-विहीन हो गयी हो। उनके जीवन की सारी आकाक्षाएँ मिट्टी मे मिलती हुई जान पडती थी। अभी एक सप्ताह पहले उनकी आशा-लता सुखद समीरण से लहरा रही थी। उस स्थान पर अब केवल झुलसी हुई पत्तियो का ढेर था। उन्हे पूरा विश्वास था कि राय साहब ने सारा वृत्तान्त गायत्री को लिख दिया होगा। पूरी के लिए लपके थे, आधी भी हाथ से गयी। उन्हे सबसे विषम वेदना यह थी कि मेरे मनोभावो की कलई खुल गयी। अगर धैर्य का कोई आधार था तो यही दार्शनिक विचार था कि इन अवस्थाओ मे मेरे लिए अपने लक्ष्य पर पहुँचने का और कोई मार्ग न था। उन्हें अपने कृत्यो पर लेशमात्र भी ग्लानि या लज्जा न थी। बस, यही खेद था कि मेरे सारे षड्यन्त्र निष्फल हो गये।

लखनऊ से उन्होंने गायत्री को कई पत्र लिखे थे, पर बनारस से उसे पत्र लिखने की हिम्मत न पडती थी। उसके पास से आयी हुई चिट्ठियो को भी वह बहुत डरते-डरते खोलते थे। समाचार पत्रो को खोलते हुए उनके हाथ काँपने लगते थे। विद्या के पत्र रोज आते थे। उन्हें पढना ज्ञानशंकर के लिए अपनी भाग्य रेखा पढने से कम

रोमांचकारी न था। वह एक-एक वाक्य को इस तरह डर-डरकर पढ़ते, मानो किसी अँधेरी गुफा में कदम रखते हों। भय लगा रहता था कि कहीं उस दुर्घटना का जिक्र न आ जाय। बहुधा साधारण वाक्यों पर विचार करने लगते कि इसमें कोई गूढ़ाशय, कोई रहस्य, कोई उक्ति तो नहीं है। दसवें दिन गायत्री के यहाँ से एक बहुत लम्बा पत्र आया। ज्ञानशंकर ने उसे हाथ में लिया तो उनकी छाती बल्लियों उछलने लगी। बड़ी मुश्किल से पत्र खोला और जैसे हम कड़वी दवा को एक ही घूंट में पी जाते हैं, उन्होंने एक ही सरसरी निगाह में सारा पत्र पढ़ लिया। चित्त शांत हुआ। रायसाहब की कोई चर्चा न थी। तब उन्होंने निश्चिन्त हो कर पत्र को दुबारा पढ़ा। गायत्री ने उनके पत्र न भेजने पर मर्मस्पर्शी शब्दों में अपनी विकलता प्रकट की थी और उन्हें शीघ्र ही गोरखपुर आने के लिए बड़े विनीत भाव से आग्रह किया था। ज्ञानशंकर ने सावधान हो कर साँस ली। गायत्री ने अपने चित्त की दशा को छिपाने का बहुत प्रयत्न किया था, पर उनका एक-एक शब्द ज्ञानशंकर की मरणासन्न आशाओं के लिए सुधा के तुल्य था। आशा बँधी, सन्तोष हुआ कि अभी बात नहीं बिगड़ी, मैं अब भी जरूरत पड़ने पर शायद उसकी दृष्टि में निर्दोष बन सकूँ, शायद राय साहब के लांछनों को मिथ्या सिद्ध कर सकूँ, शायद सत्य को असत्य कर सकूँ। सम्भव है, मेरे सजल नेत्र अब भी मेरी निर्दोषिता का विश्वास दिला सकें। इसी आवेश में उन्होंने गायत्री को पत्र लिखा, जिसका अधिकांश विरह-व्यथा में भेंट करने के बाद उन्होंने राय साहब के मिथ्याक्षेप की ओर भी संकेत किया। उनके अन्तिम शब्द थे—'आप मेरे स्वभाव और मनोविचारों से भलीभाँति परिचित हैं। मुझे अगर जीवन में कोई अभिलाषा है तो यही कि मुरली की धुनि सुनते हुए इस असार संसार से प्रस्थान कर जाऊँ। मरने लगूँ तो उसी मुरलीवाले की सूरत आँखों के सामने हो, और यह सिर राधा की गोद में हो। इसके अतिरिक्त मुझे कोई इच्छा और कोई लालसा नहीं है। राधिका की एक तिरछी चितवन, एक मृदुल मुस्कान, एक मीठी चुटकी, एक अनोखी छटा पर समस्त संसार की सम्पदा को न्योछावर कर सकता हूँ। पर जब तक संसार में हूँ संसार की कालिमा से क्योंकर बच सकता ? मैंने राय साहब से संगीत-परिषद् के विषय में कुछ स्पष्ट भाषण किया था। उसका फल यह हुआ कि अब वे मेरी जान के दुश्मन हो गये हैं। आपसे अपनी विपत्ति-कथा क्या कहूँ, आपको सुन कर दुःख होगा। उन्होंने मुझे मारने के लिए पिस्तौल हाथ में लिया था। अगर भाग न आता तो यह पत्र लिखने के लिए जीवित न रहता। मुझे हुक्म हुआ है कि अब फिर उन्हें मुँह न दिखलाऊँ। इतना ही नहीं, मुझे आपसे भी पृथक् रहने की आज्ञा मिली है। इस आज्ञा को भंग करने का ऐसा कठोर दंड निर्वाचित किया गया है कि उसका उल्लेख करके मैं आपके कोमल हृदय को दुःखाना नहीं चाहता। मेरे मौनव्रत का यही कारण है। सम्भव है, आपके पास भी इस आशय का कोई पत्र पहुँचा हो और आपको भी मुझे दूध की मक्खी समझने का उपदेश किया गया हो। ऐसी दशा में आप जो उचित समझें करें। पिता की आज्ञा के सामने सिर झुकाना आपका कर्तव्य है। उसका आप पालन करें। मैं आपसे दूर रह

कर भी आपके निकट हूँ, ससार की कोई शक्ति मुझे आपसे अलग नही कर सकती। आध्यात्मिक बन्धन को कौन तोड सकता है ? यह कृष्ण का प्रेमी निरन्तर राधा की गोद मे सलग्न रहेगा। आपसे केवल यही भिक्षा माँगता हूँ कि मेरी ओर से मनमुटाव न करे और अपने उदार हृदय के एक कोने मे मेरी स्मृति बनाये रखे।'

ज्ञानशकर के जाने के बाद गायत्री को एक-एक क्षण काटना दुस्तर हो गया था। उसे अब ज्ञात हुआ कि मै कितने गहरे पानी मे आ गयी हूँ। जब तक ज्ञानशकर के हाथो का सहारा था उस गहराई का अन्दाज न होता था। उस सहारे के टूटते ही उसके पैर फिसलने लगे। वह सँभलना चाहती थी, पर तरग का वेग सँभलने न देता था। अबकी ज्ञानशकर पूरे साल भर के बाद गोरखपुर से निकले थे। वह नित्य उन्हे देखती थी, नित्य उनसे बाते करती थी और यद्यपि यह अवसर दिन मे एक या दो बार से अधिक न मिलता था, पर उन्हे अपने समीप देख कर उसका हृदय सन्तुष्ट रहता था। अब पिजरे को खाली देख कर उसे पक्षी की बार-बार याद आती थी। वह सरल और गौरवशील थी, लेकिन उसके हृदय-स्थल मे प्रेम का एक उबलता हुआ सोता छिपा हुआ था। वह अब तक अभिमान के मोटे कत्तल से दबा हुआ प्रवाह का कोई मार्ग न पा कर एक सुषुप्तावस्था मे पडा हुआ था। यही सुषुप्ति उसका सतीत्व थी। पर भक्ति और अनुराग ने उस अभिमान के कत्तल को हटा दिया था और उबलता हुआ सोता प्रबल वेग से द्रवित हो रहा था। वह आत्मविस्मृति की दशा मे मग्न हो गयी थी। वह अचेत सी हो गयी थी। उसे लेश मात्र भी अनुमान न होता था कि वह भक्ति मुझे वासना की ओर खीचे लिये जाती है। वह इस प्रेम के नशे मे कितनी ही ऐसी बाते करती थी और कितनी ही ऐसी बाते सुनती थी जिन्हे सुन कर वह पहले कानो पर हाथ रख लेती, जो पहले मन मे आती तो वह आत्मघात कर लेती, परन्तु अब वह गोपिका थी, वह सदनुराग की साक्षात् प्रतिमा थी। इस आध्यात्मिक उद्गार मे वासना का लगाव कहाँ ? ऐन्द्रिक तृष्णाओ का मिश्रण कहाँ ? कृष्ण का नाम, कृष्ण की भक्ति, कृष्ण की रट ने उसके हृदय और आत्मा को पवित्र प्रेम से परिपूरित कर दिया था। गायत्री जब ज्ञानशकर की ओर चचल चितवनो से ताकती या उनके सतृष्ण लोचनो को अपनी मृदुल मुसक्यान सुधा से प्लावित करती तो वह अपने को गोपिका समझती जो कृष्ण से ठिठोली या रहस्य कर रही हो। उसकी इस चितवन और इस मुसक्यान मे सच्चा प्रेमानुराग झलकता था। ज्ञानशकर अब उसे प्रेमोन्मत्त नेत्रो से देखते या उसकी निठुरता और अकृपा का गिला करते तो उसे इसमे भी उन्ही पवित्र भावो की झलक दिखायी देती थी। इस प्रेम रहस्य और आमोद-विनोद का चस्का दिनो-दिन बढता जाता था। उन प्रेम कल्पनाओ के बिना चित्त उचटा रहता था। गायत्री इसी विकलता की दशा मे कभी ज्ञानशकर के दीवानखाने की ओर जाती, कभी ऊपर, कभी नीचे, कभी बाग मे, पर कही जी न लगता। वह गोपिकाओ की विरह-व्यथा की अपने वियोग-दुख से तुलना करती। सूरदास के उन पदो को गाती जिनमे गोपिकाओ का विरह वर्णन किया गया। उसके बाग मे एक कदम का पेड

था। उसकी छाँह मे हरी घास पर लेटी हुई वह कभी गाती, कभी रोती, कभी-कभी उद्विग्न हो कर टहलने लगती। कभी सोचती, लखनऊ चलूँ, कभी ज्ञानशकर को तार दे कर बुलाने का इरादा करती, कभी निश्चय करती, अब उन्हे कभी बाहर न जाने दूँगी। उनकी सूरत उसकी आँखो मे फिरा करती, उनकी बाते कानो मे गूँजा करती। कितना मनोहर स्वरूप है, कितनी रसीली बाते! साक्षात् कृष्णरूप है! उसे आश्चर्य होता कि मैंने उन्हे अकेले क्यो जाने दिया? क्या मैं उनके साथ न जा सकती थी? वह ज्ञानशकर को पत्र लिखती तो उनकी निर्दयता और हृदय-शून्यता का खूब रोना रोती। उनके पत्र आते तो बार-बार पढती। उसके प्रेम-कथन मे अब सकोच या लज्जा बाधक न होती थी। गोपियो की विरह-कथा मे उसे अब एक करुण वेदनामय आनन्द मिलता था। प्रेमसागर की दो-चार चौपाइयाँ भी न पढने पाती कि आँखो से आँसू की झडी लग जाती।

लेकिन जब ज्ञानशकर बनारस चले गये और उनकी चिट्‌ठयो का आना बिलकुल बन्द हो गया तब गायत्री को ऐसा अनुभव होने लगा मानो मै इस ससार मे हूँ ही नही। यह कोई दूसरा निर्जन, नीरव, अचेतन ससार है। उसे ज्ञानशकर के बनारस आने का समाचार ज्ञात न था। वह लखनऊ के पते से नित्यप्रति पत्र भेजती रही, लेकिन जब लगातार कई पत्रो का जवाब न आया तब उसे अपने ऊपर झुँझलाहट होने लगी। वह गोपियो की भाँति अपना ही तिरस्कार करती कि मैं क्यो ऐसे निर्दय, निष्ठुर, कठोर मनुष्य के पीछे अपनी जान खपा रही हूँ। क्या उनकी तरह मैं भी निष्ठुर नही बन सकती। वह मुझे भूल सकते है तो मैं उन्हे नही भूल सकती? किन्तु एक ही क्षण मे उसका यह मान लुप्त हो जाता और वह फिर खोयी हुई सी इधर-उधर फिरने लगती।

किन्तु जब दसवें दिन ज्ञानशकर का विवशता सूचक पत्र पहुँचा तो पढते ही गायत्री का चचल हृदय अधीर हो उठा। वह उस विवशकारी आवेश के साथ उनकी ओर लपकी। यह उसकी प्रीति की पहली परीक्षा थी। अब तक उसका प्रेम-मार्ग काँटो से साफ था। यह पहला काँटा था जो उसके पैरो मे चुभा। क्या यह पहली ही बाधा मुझे प्रेम-मार्ग से विचिलित कर देगी? मेरे ही कारण तो ज्ञानशकर पर मुसीबते आयी है। मैं ही तो उनकी इन विडम्बनाओ की जड हूँ? पिता जी उनसे नाराज है तो हुआ करे, मुझे इसकी चिन्ता नही। मैं क्यो प्रेम नीति से मुँह मोडूँ? प्रेम का सम्बन्ध केवल दो हृदयो से है, किसी तीसरे प्राणी को उसमे हस्तक्षेप करने का अधिकार नही। आखिर पिता जी ने उन्हे क्यो मुझसे पृथक् रहने का आदेश किया? वे मुझे क्या समझते हैं? उनका सारा जीवन भोग-विलास मे गुजरा है। वह प्रेम के गूढाशय क्या जाने? इस पवित्र मनोवृत्ति का क्या ज्ञान? परमात्मा ने उन्हे ज्ञानज्योति प्रदान की होती तो वह ज्ञान-शकर के आत्मोत्कर्ष को जानते, उनकी आत्मा का महत्त्व पहचानते। तब उन्हे विदित होता कि मैंने ऐसी पवित्रात्मा पर दोषारोपण करके कितना घोर अन्याय किया है। पिता की आज्ञा मानना मेरा धर्म अवश्य है, किन्तु प्रेम के सामने पिता की आज्ञा

की क्या हस्ती है। यह ताप अनादि ज्योति की एक आभा है, यह दाह अनन्त शान्ति का एक मन्त्र है। इस ताप को कौन मिटा सकता है ?

दूसरे दिन गायत्री ने ज्ञानशकर को तार दिया, 'मैं आ रही हूँ', और शाम की गाडी से मायाशकर को साथ ले कर बनारस चली।

४८

ज्ञानशकर को बनारस आये दो सप्ताह से अधिक बीत चुके थे। सगीत-परिषद् समाप्त हो चुकी थी और अभी सामयिक पत्रो मे उसपर वादविवाद हो रहा था। यद्यपि अस्वस्थ होने के कारण राय साहब उसमे उत्साह के साथ भाग न ले सके थे, पर उनके प्रबन्ध-कौशल ने परिषद् की सफलता मे कोई बाधा न होने दी। सन्ध्या हो गयी थी। विद्यावती अन्दर बैठी हुई एक पुराना शाल रफू कर रही थी। राय साहब ने उसके सैर करने के लिए एक बहुत अच्छी सेजगाडी दे दी थी और कोचवान को ताकीद की थी कि जब विद्या का हुक्म मिले, तुरन्त सवारी तैयार करके उसके पास ले जाये, लेकिन इतने दिनो से विद्या एक दिन भी कही सैर करने न गयी। उसका मन घर के धन्धो मे अधिक लगता था। उसे न थियेटर का शौक था, न सैर करने का, न गाने बजाने का। इनकी अपेक्षा उसे भोजन बनाने या सीने-पिरोने मे ज्यादा आनन्द मिलता था। इस एकान्त-सेवन के कारण उसका मुखकमल मर्झाया रहता था। बहुधा शिर-पीडा से ग्रसित रहती थी। वह परम सुन्दरी, कोमलागी रमणी थी, पर उसमे अभिमान का लेश भी न था। उसे माँग-चोटी, आइने-कघी से अरुचि थी। उसे आश्चर्य होता था कि गायत्री क्योकर अपना अधिकाश समय बनाव सँवार मे व्यतीत किया करती है। कमरे मे अँधेरा हो रहा था, पर वह अपने काम मे इतनी रत थी कि उसे बिजली के बटन दबाने का भी ध्यान न था। इतने मे राय साहब उसके द्वार पर आ कर खडे हो गये और बोले—ईश्वर से बडी भूल हो गयी कि उसने तुम्हे दर्जिन न बना दिया। अँधेरा हो गया, आँखो से सूझता नही, लेकिन तुम्हे अपने सूई-तागे से छुट्टी नही।

विद्या ने शाल समेट दिया और लज्जित हो कर बोली—थोड़ा सा बाकी रह गया था, मैंने सोचा इसे पूरा कर लूँ तो उठूँ।

राय साहब पलँग पर बैठ गये और कुछ कहना चाहते थे कि जोर से खाँसी आयी और थोडा सा खून मुँह से निकल पडा, आँखे निस्तेज हो गयी और हृदय मे विषम पीडा होने लगी। मुखाकार विकृत हो गया। विद्या ने घबरा कर पूछा—पानी लाऊँ ? यह मरज तो आपको न था। किसी डाक्टर को बुला भेजूँ ?

राय साहब—नही, कोई जरूरत नही। अभी अच्छा हो जाऊँगा। यह सब मेरे सुयोग्य, विद्वान् और सर्वगुण सम्पन्न पुत्र बाबू ज्ञानशकर की कृपा का फल है।

विद्या ने प्रश्नसूचक विस्मय से राय साहब की ओर देखा और कातर भाव से जमीन की ओर ताकने लगी। राय साहब सँभल कर बैठ गये और एक बार पीडा से

कराह कर बोले—जी तो नही चाहता कि मुझपर जो कुछ बीती है वह मेरे और ज्ञानशकर के सिवा किसी दूसरे व्यक्ति के कानो तक पहुँचे, किन्तु तुमसे पर्दा रखना अनुचित ही नही अक्षम्य है। तुम्हे सुनकर दुःख होगा, लेकिन सम्भव है इस समय का शोक और खेद तुम्हे आनेवाली मुसीबतो से बचाये, जिनका सामान प्रारब्ध के हाथो हो रहा है। शायद तुम अपनी चतुराई से उन विपत्तियो का निवारण कर सको।

विद्या के चित्त मे भाँति-भाँति की शकाएँ आन्दोलित होने लगी। वह एक पक्षी की भाँति डालियो-डालियो मे उडने लगी। मायाशकर का ध्यान आया, कही वह बीमार तो नही हो गया। ज्ञानशकर तो किसी बला मे नही फँस गये। उसने सशकर और सजल लोचनो से राय साहब की तरफ देखा।

राय साहब बोले, मैं आज तक ज्ञानशकर को एक धर्मपरायण, सच्चरित्र और सत्य-निष्ठ युवक समझता था। मै उनकी योग्यता पर गर्व करता था और अपने मित्रो से उनकी प्रशसा करते कभी न थकता था। पर अबकी मुझे ज्ञात हुआ कि देवता के स्वरूप मे भी पिशाच का वास हो सकता है।

विद्या की तेवरियो पर अब बल पड गये। उसने कठोर दृष्टि से राय साहब को देखा, पर मुँह से कुछ न बोली। ऐसा जान पडता था कि वह इन बातो को नही सुनना चाहती।

राय साहब ने उठ कर बिजली का बटन दबाया और प्रकाश मे विद्या की अनिच्छा स्पष्ट दिखायी दी, पर उन्होने इसका कुछ परवाह न करके कहा—यह मेरा बहत्तरवाँ साल है। हजारो आदमियो से मेरा व्यवहार रहा, किन्तु मेरे चरित्रज्ञान ने मुझे कभी धोखा नही दिया। इतना बडा धोखा खाने का मुझे जीवन मे यह पहला ही अवसर है। मैंने ऐसा स्वार्थी आदमी कभी नही देखा।

विद्या अधीर हो गयी, पर मुँह से कुछ न बोली। उसकी समझ मे ही न आता था कि राय साहब यह क्या भूमिका बाँध रहे है, क्यो ऐसे अपशब्दो का प्रयोग कर रहे है ?

राय साहब—मेरा इस मनुष्य के चरित्र पर अटल विश्वास था। मेरी ही प्रेरणा से गायत्री ने इसे अपनी रियासत का मैनेजर बनाया। मैं जरा भी सचेत होता तो गायत्री पर उसकी छाया भी न पडने देता। ज्ञान और व्यवहार मे इतना घोर विरोध हो सकता है इसका मुझे अनुमान भी न था। जिसकी कलम मे इतनी प्रतिभा हो, जिसके मुख मे स्वच्छ, निर्मल भावो की धारा बहती हो, उसका अन्तःकरण ऐसा कलुषित, इतना मलीन होगा यह मैं बिलकुल न जानता था। विद्या से न रहा गया। यद्यपि वह ज्ञानशकर की स्वार्थ-भक्ति से भली-भाँति परिचित थी, जिसका प्रमाण उसे कई बार मिल चुका था, पर उसका आत्म-सम्मान उनका अपमान सह न सकता था। उनकी निन्दा का एक शब्द भी वह अपने कानो से न सुनना चाहती थी। उसकी धर्मनीति मे यह घोर पातक था। तीव्र स्वर से बोली—आप मेरे सामने उनकी बुराई

न कीजिए। यह कहते-कहते उसका गला रुँध गया और वह भाव जो व्यक्त न हो सके थे आँखो से बह निकले।

राय साहब ने सकोच-पूर्ण शब्दो मे कहा—बुराई नही करता, यथार्थ कहता हूँ। मुझे अब मालूम हुआ कि उसने महात्माओ का स्वरूप क्यो बनाया है, और धार्मिक कार्यो मे क्यो इतना प्रवृत्त हो गया है। मैंने उसके मुंह से सब कुछ निकलवा लिया। यह रगीन जाल उसने भोली-भाली गायत्री के लिए बिछाया है और वह कदाचित् इसमे फँस भी चुकी है।

विद्या की भौहे तन गयी, मुखराशि रक्तवर्ण हो गयी। गौरवयुक्त भाव से बोली—पिता जी, मैंने सदैव आपका अदब किया है और आपकी अवज्ञा करते हुए मुझे जितना दु ख हो रहा है वह वर्णन नही कर सकती, पर यह असम्भव है कि उनके विषय मे यह लाछन अपने कानो से सुनूँ। मुझे उनकी सेवा मे आज सत्रह वर्ष बीत गये, पर मैंने उन्हे कभी कुवासनाओ की ओर झुकते नही देखा। जो पुरुष अपने यौवन-काल मे भी सयम से रहा हो उसके प्रति ऐसे अनुचित सन्देह करके आप उसके साथ नही, गायत्री बहिन के साथ भी घोर अत्याचार कर रहे हैं। इससे आपकी आत्मा को पाप लगता है।

राय साहब—तुम मेरी आत्मा की चिन्ता मत करो। उस दुष्ट को समझाओ, नही तो उसकी कुशल नही है। मैं गायत्री को उसकी काम-चेष्टा का शिकार न बनने दूंगा। मैं तुमको वैधव्य रूप मे देख सकता हूँ, पर अपने कुल-गौरव को यो मिट्टी मे मिलते नही देख सकता। मैंने चलते-चलते उससे ताकीद कर दी थी, गायत्री से कोई सरोकार न रखे, लेकिन गायत्री के पत्र नित्य चले आ रहे है, जिससे विदित होता है कि वह उसके फन्दो से कैसी जकडी हुई है। यदि तुम उसे बचा सकती हो तो बचाओ, अन्यथा यही हाथ जिन्होने एक दिन उसके पैरो पर फूल और हार चढाये थे, उसे कुल गौरव की वेदी पर बलिदान कर देगे।

विद्या रोती हुई बोली—आप मुझे अपने घर बुला कर इतना अपमान कर रहे है, यह आपको शोभा नही देता। आपका हृदय इतना कठोर हो गया है। जब आपके मन मे ऐसे-ऐसे भाव उठ रहे हैं तब मैं यहाँ एक क्षण भी नही रहना चाहती। मैं जिस पुरुष की स्त्री हूँ उसपर सन्देह करके अपना परलोक नही बिगाड़ सकती। वह आपके कथनानुसार कुचरित्र सही, दुरात्मा सही, कुमार्गी सही, परन्तु मेरे लिए पूज्य और देवतुल्य है। यदि मैं जानती कि आप मेरा इतना अपमान करेंगे तो भूल कर भी न आती। अगर आपका विचार है कि मैं रियासत के लोभ से यहाँ आती हूँ और आपको फन्दे मे फँसाना चाहती हूँ तो आप बडी भूल करते हैं। मुझे रियासत की जरा भी परवाह नही। मैं ईश्वर को साक्षी दे कर कहती हूँ कि मैं अपनी स्थिति से सन्तुष्ट हूँ और मुझे पूरा विश्वास है कि मायाशकर भी सन्तोषी बालक है। उसे आपके चित्त की यह वृत्ति मालूम हो गयी तो वह इस रियासत की ओर आँख उठा कर भी न देखेगा। आपको इस विषय मे आदि से अन्त तक धोखा हुआ है।

इस तिरस्कार से राय साहब कुछ धीमे पड गये। लज्जित हो कर बोले, हाँ, सम्भव है, इसलिए कि अब मैं बूढा हुआ। कुछ का कुछ देखता हूँ, कुछ का कुछ सुनता हूँ। अधिक लोभी, अधिक शक्की हो गया हूँ। मैं नही चाहता था कि तुम्हारी आँखो मे तुम्हारे पति को उससे ज्यादा गिराऊँ जितना कि उसकी प्राण-रक्षा के लिए आवश्यक है, पर तुम्हारी मिथ्या पति-भक्ति मुझे मजबूर कर रही है कि उसके कुकृत्यो को सविस्तार बयान करूँ। तुमने मुझे पहले भी देखा था, क्या मेरी यह दशा थी? मैं ऐसा ही दुर्बल, रुग्ण और जर्जर था? क्या इसी तरह मुझे एक पग चलना भी कठिन था? मै इसी तरह रुधिर थूकता था? यह सब उसी का किया हुआ है। उसने मुझे भोजन के साथ इतना विष खिला दिया कि यदि उसे बीस आदमी खाते तो एक की भी जान न बचती। यह केवल भ्रम नही है। मैं उसका सदेह प्रमाण बना बैठा हूँ। उसने स्वय इस पापाचार को स्वीकार किया। पहला ग्रास खाते ही मुझपर सारा रहस्य खुल गया। पर मैंने केवल यह दिखलाने के लिए कि मुझे मारना इतना सुलभ नही है जितना उसने समझा था, पूरी थाली साफ कर दी। मुझे विश्वास था कि मैं योग क्रियाओ द्वारा विष को शरीर से निकाल डालूँगा, पर क्षण मात्र मे विष रोम-रोम मे घुस गया, मै उसे निकाल न सका। मैंने अपनी स्वास्थ्य-रक्षा और दीर्घ जीवन के लिए वह सब कुछ किया जो मनुष्य कर सकता है और जिसका फल यह था कि मैं बहत्तर साल का बुड्ढा हो कर एक पच्चीस वर्ष के युवक से अधिक बलवान और साहसी था। मैं अपने जीवन को चरम सीमा तक ले जाना चाहता था। इसके लिये मैने कितना सयम किया, कितनी योग क्रियाएँ की, साधु-सन्तो की कितनी सेवा की, जडी-बूटियो की खोज मे कहाँ-कहाँ मारा-मारा फिरा, तिब्बत और काश्मीर की खाक छानता फिरा, पर इस नराधम ने मेरी सारी आयोजनाओ पर पानी फेर दिया! मैंने अपनी सारी सम्पत्ति कार्य-सिद्धि पर अर्पण कर दी थी। योग और तन्त्र का अभ्यास इसी हेतु से किया था कि अक्षय यौवन तेज का आनन्द उठाता रहूँ। विलास-भोग ही मेरे जीवन का एक मात्र उद्देश्य था। चिन्ता को मैं सदैव काला नाग समझता रहा। मेरे नौकर-चाकर प्रजा पर नाना प्रकार के अत्याचार करते, पर मैंने उनकी फरियाद को कभी अपने सुख-भोग मे बाधक नही होने दिया। अगर कभी अपने इलाके मे जाता भी था तो प्रजा का कष्ट निवारण करने के लिए नही बल्कि केवल सैर और शिकार के लिए, किन्तु इस निर्दयी पिशाच की बदौलत सारे गुनाह बेलज्जत हो गये। अब मैं केवल एक अस्थिपिंजर हूँ—प्राण-शून्य शक्तिहीन।

यह कहते-कहते राय साहब विषम पीडा से कराह उठे। जोर से खाँसी आयी और खून के लोथडे मुँह से निकल आये। कई मिनट तक वह मूर्छावस्था मे पडे रहे। सहसा लपक कर उठे और बोले—तुम प्रात काल बनारस चली जाओ और हो सके तो अपने पति को अग्निकुंड मे गिरने से बचाओ। तुम्हारी पति-भक्ति ने मुझे शात कर दिया। मै उसे प्राण-दान देता हूँ। लेकिन सरल-हृदय गायत्री की रक्षा का भार तुम्हारे ही ऊपर है। अगर उसके सतीत्व पर जरा भी धब्बा लगे तो तुम्हारे कुल का सर्वनाश

हो जायगा। यही मेरी अतिम चेतावनी है। इस पाप का निवारण गायत्री की सतीत्व रक्षा से ही होगा। तुम्हारे कल्याण की और कोई युक्ति नही है।

यह कह कर राय साहब धीरे से उठे और चले गये। तब विद्या ग्लानि, लज्जा और नैराश्य से मर्माहत हो कर पलग पर लेट गयी और बिलख-बिलख कर रोने लगी। राय-साहब के पहले आक्षेप का उसने प्रतिवाद किया था, पर इस दूसरे अपराध के विषय मे वह अविश्वास का सहारा न ले सकी। अपने पति की स्वार्थ नीति से वह खूब परिचित थी, पर उनकी वक्रता इतनी घोर और घातक हो सकती है इसका उसे अनुमान भी न था। अब तक उनकी कुवृत्तियो का पर्दा ढँका हुआ था। जो कुछ दु ख और सन्ताप होता था वह उसी तक रहता था, पर यहाँ आ कर पर्दा खुल गया। वह अपने पिता की निगाह मे गिर गयी, उसके मुँह मे कालिख लग गयी। राय साहब का यह समझना स्वाभाविक था कि इस दुष्कर्म मे विद्या का भी कुछ न कुछ भाग अवश्य होगा। कदाचित् यही समझ कर वह उसे यह वृत्तान्त कहने आये थे। वह सारा दोष पति के सिर मढ कर अपने को क्योकर मुक्त कर सकती ? इस उधेड-बुन मे विद्या का ध्यान जब पाप-परिणाम की ओर गया तो वह काँप उठी। भगवान् ! मैं दुखिया हूँ, अभागिनी हूँ, मुझपर दया करो, तुम्हारी शरण हूँ। भाँति-भाँति की शकाएँ उसके चित्त को विचलित करने लगी। मायाशकर की सूरत आँखो मे फिरने लगी। ऐसा जी चाहता था कि पैरो मे पर लग जायँ और उड कर उसके पास जा पहुँचूं। रह-रह कर हृदय मे एक हूक सी उठती थी और अनिष्ट कल्पना से चित्त विकल हो जाता था।

एक क्षण मे इन ग्लानि और शकाओ ने उग्र रूप धारण किया। आग की बिखरी हुई चिनगारियाँ एक प्रचड ज्वाला के रूप मे ज्ञानशकर की ओर लपकी। तुम इतने नीच, इतने क्रूर, इतने दुर्बल हो ! तुमने कही का न रखा। तुम्हारे कारण मेरी यह दुर्दशा हो रही है और अभी न जाने क्या-क्या होगी। तुम धूर्त हो। न जाने पूर्व जन्म मे ऐसा क्या पाप किया था कि तुम्हारे पल्ले पडी। उसने ज्ञानशकर को उसी दम एक पत्र लिखने का निश्चय किया और सोचने लगी, उसकी शैली क्या हो ? इसी सोच मे पडे-पडे उसे नीद आ गयी। वह बहुत देर तक पडी रही। जब सर्दी लगी तो चौकी, कमरे मे सन्नाटा था, सारे घर मे निस्तब्धता छायी थी। महरियाँ भी सो गयी थी। उसके ब्यालू का थाल सामने मेज पर रखा हुआ था और एक पालतू बिल्ली उसके निकट उन चूहो की ताक मे बैठी हुई थी जो भोज्य पदार्थो का रसास्वादन करने के लिए आलमारी के कोने से निकल कर आते थे और अज्ञात भय के कारण आधे रास्ते से लौट जाते थे। विद्या कई मिनट तक इस दृश्य मे मग्न रही। निद्रा ने उसके चित्त को शात कर दिया था। उसे चूहे पर दया आयी जो एक क्षण मे बिल्ली के मुँह का ग्रास बन जायगा। इसके साथ ही उसकी कल्पना चूहे से ज्ञानशकर की अवस्था की तुलना करने लगी। क्या उसकी दशा भी इसी चूहे की-सी नही है ? उन पर क्रोध क्यो करूँ ? वह दया के योग्य है। वह इसी चूहे की भाँति स्वाद के वश हो कर काल के मुँह मे दौडे जा रहे है, और माया लोभ के हाथो मे काठ की पुतली बने हुए नाच रहे है। मैं जा कर उन्हे

समझाऊँगी, उनसे विनय करूँगी कि मुझे इसी सम्पत्ति की लालसा नही है जिस पर आत्मा और विवेक का बलिदान किया गया हो। ऐसी जायदाद को मेरी तिलांजलि है। मेरा लडका गरीब रहेगा, अपने पसीने की कमाई खायेगा, लेकिन जब तक मेरा वश चलेगा मैं उसे इस जायदाद की हवा भी न लगने दूँगी।

४६

गायत्री बनारस पहुँच कर ऐसी प्रसन्न हुई जैसे कोई बालू पर तडपती हुई मछली पानी मे जा पहुँचे। ज्ञानशकर पर राय साहब की धमकियो का ऐसा भय छाया हुआ था कि गायत्री के आने पर वह और भी सशक हो गये। लेकिन गायत्री की सान्त्वनाओ ने शनै शनै उन्हे सावधान कर दिया। उसने स्पष्ट कह दिया कि मेरा प्रेम पिता की आज्ञा के अधीन नही हो सकता। वह ज्ञानशकर को अन्याय पीडित समझती थी और अपनी स्नेहमयी बातो से उनका क्लेश दूर करना चाहती थी। ज्ञानशकर जब गायत्री की ओर से निश्चिन्त हो गये तो उसे बनारस के घाटो और मन्दिरो की सैर कराने लगे। प्रात काल उसे ले कर गगा-स्नान करने जाते, सध्या समय बजरे पर या नौका पर बैठा कर घाटो की बहार दिखाते। उनके द्वार पर पडो की भीड लगी रहती। गायत्री की दानशीलता की सारे नगर मे धूम मच गयी। एक दिन वह हिन्दू विश्वविद्यालय देखने गयी और बीस हजार दे आयी। दूसरे दिन "इत्तहादी यतीमखाने" का मुआइना किया और दो हजार रुपये बिल्डिग फड को प्रदान किये। सनातन-धर्म के नेतागण गुरुकुल आश्रम के लिए चन्दा मांगने आये। चार हजार उनके नजर किये। एक दिन गोपाल मन्दिर मे पूजा करने गयी और महन्त जी को दो हजार रुपये भेट कर आयी। आधी रात तक कीर्तन का आनन्द उठाती रही। उसका मन कीर्तन मे सम्मिलित होने के लिए लालायित हो रहा था पर ज्ञानशकर को यह अनुचित जान पडता था। ऐसा कीर्तन उसने कभी न सुना था।

इसी भाँति एक सप्ताह बीत गया। सन्ध्या हो गयी थी। गायत्री बैठी हुई बनारसी साड़ियो का निरीक्षण कर रही थी। वह उनमे से एक साडी लेना चाहती थी, पर रग का निश्चय न कर सकती थी। एक-एक साडी को सिर पर ओढ कर आईने मे देखती और उसे तह करके रख देती। कौन रग सबसे अधिक खिलता है, इसका फैसला न होता था। इतने मे श्रद्धा आ कर खड़ी हो गयी। गायत्री ने कहा, बहिन, भली आयी। बताओ, इसमे से कौन साडी लूं? मुझे तो सब एक सी लगती है।

श्रद्धा ने मुस्कुरा कर कहा—मैं गँवारिन इन बातो को क्या समझूं।

गायत्री—चलो, बातें न बनाओ। मैं इसका फैसला तुम्हारे ही ऊपर छोडती हूँ। एक अपने लिए चुनो और एक मेरे लिए।

श्रद्धा—आप ले लीजिए, मुझे जरूरत नही है। यह फिरोजी साडी आप पर खूब खिलेगी।

गायत्री—मेरी खातिर से एक साडी ले लो।

श्रद्धा—ले कर क्या करूँगी ? धरे-धरे कीडे खायेंगे।

श्रद्धा ने यह बात कुछ ऐसे करुण भाव से कही कि गायत्री के हृदय पर चोट सी लग गयी। बोली, कब तक यह योग साधोगी। बाबू प्रेमशकर को मना क्यो नही लेती ?

श्रद्धा ने सजल नेत्रो से मुस्कुरा कर कहा—क्या करूँ, मुझे मनाना नही आता।

गायत्री—मैं मना दूँ ?

श्रद्धा—इससे बडा और कौन उपकार होगा, पर मुझे आपके सफल होने की आशा नही है। उन्हे अपनी टेक है और मैं धर्म-शास्त्र से टल नही सकती। फिर भला मेल क्योकर होगा ?

गायत्री—प्रेम से।

श्रद्धा—मुझे उनसे जितना प्रेम है वह प्रकट नही कर सकती, अगर उनका जरा भी इशारा पाऊँ तो आग मे कूद पडूँ। और मुझे विश्वास है कि उन्हे भी मुझसे इतना ही प्रेम है, लेकिन प्रेम केवल हृदयो को मिलाता है, देह पर उसका वस नही है।

इतने मे ज्ञानशकर आ गये और गायत्री से बोले, मैं जरा गोपाल मदिर की ओर चला गया था। वहाँ कुछ भक्तो का विचार है कि आपके शुभागमन के उत्सव मे कृष्ण लीला करे। मैंने उनसे कह दिया है कि इसी बँगले के सामनेवाले सहन मे नाट्य-शाला बनायी जाय। गायत्री का मुख-कमल खिल उठा। बोली, यह जगह काफी होगी ?

ज्ञान—हाँ, बहुत जगह है। उन लोगो की यह भी इच्छा है कि आप भी कोई पार्ट ले।

गायत्री—(मुस्कुरा कर) आप लेंगे तो मैं भी लूँगी।

ज्ञानशकर दूसरे ही दिन से रगभूमि के बनाने मे दत्तचित्त हो गये। एक विशाल मडप बनाया गया। कई दिनो तक उसकी सजावट होती रही। फर्श, कुर्सियाँ, शीशे के सामान, फूलो के गमले, अच्छी-अच्छी तस्वीरें सभी यथा स्थान शोभा देने लगी। बाहर विज्ञापन बाँटे गये। रईसो के पास छपे हुए निमन्त्रण-पत्र भेजे गये। चार दिन तक ज्ञानशकर को बैठने का अवकाश न मिला। एक पैर दीवानखाने मे रहता था, जहाँ अभिनेतागण अपने-अपने पार्ट का अभ्यास किया करते थे, दूसरा पैर शामियाने मे रहता था, जहाँ सैकडो मजदूर, बढई, चित्रकार अपने-अपने काम कर रहे थे। स्टेज की छटा अनुपम थी। जिधर देखिए हरियाली की बहार थी। पर्दा उठते ही बनारस मे ही वृन्दावन का दृश्य आँखो के सामने आ जाता था। यमुना तट के कुज, उनकी छाया मे विश्राम करती हुई गाये, हिरनो के झुड, कदम की डालियो पर बैठे हुए मोर और पपीहे—सम्पूर्ण दृश्य काव्य रस मे डूबा हुआ था।

रात के आठ बजे थे। बिजली की बत्तियो से सारा मडप ज्योतिर्मय हो रहा था। सदर फाटक पर बिजली का एक सूर्य बना हुआ था, जिसके प्रकाश मे जमीन पर रेंगने-वाली चीटियाँ भी दिखायी देती थी। सात ही बजे से दर्शको का समारोह होने लगा।

लाला प्रभाशकर अपना काला चोगा पहने, एक केसरिया पाग बाँधे, मेहमानो का स्वागत कर रहे थे। महिलाओ के लिए दूसरी ओर पर्दे डाल दिये गये थे। यद्यपि श्रद्धा को इन लीलाओ से विशेष प्रेम न था तथापि गायत्री के अनुरोध से उसने महिलाओ के आदर-सत्कार का भार अपने सिर ले लिया था। आठ बजते-बजते पडाल दर्शको से भर गया, जैसे मेले मे रेलगाडियाँ ठस जाती है। मायाशकर ने सबके आग्रह करने पर भी कोई पार्ट न लिया था। मडप के द्वार पर खडा लोगो के जूतो की रखवाली कर रहा था। इस वक्त तक शामियाने मे बाजार सा लगा हुआ था, कोई हँसता था, कोई अपने सामनेवालो को धक्के देता था, कुछ लोग राजनीतिक प्रश्नो पर वाद-विवाद कर रहे थे, कही जगह के लिए लोगो मे हाथापाई हो रही थी। बाहर सर्दी से हाथ-पाँव अकड़े जाते थे, पर मडप मे खासी गर्मी थी।

ठीक नौ बजे पर्दा उठा। राधिका हाथ मे वीणा लिये, कदम के नीचे खडी सूरदास का एक पद गा रही थी। यद्यपि राधिका का पार्ट उस पर फबता न था, उसकी गौर-वशीलता, उसकी प्रौढता, उसकी प्रतिभा एक चंचल ग्वाल कन्या के स्वभावानुकूल न थी, किंतु जगमगाहट ने सबकी समालोचक शक्तियो को वशीभूत कर लिया था। सारी सभा विस्मय और अनुराग मे डूबी हुई थी, यह तो कोई स्वर्ग की अप्सरा है ! उसकी मृदुल वाणी, उसका कोमल गान, उसके अलकार और भूषण, उसके हाव-भाव उसके स्वर-लालित्य, किस-किस की प्रशसा की जाय ! वह एक थी, अद्वितीय थी, कोई उसका सानी, उसका जवाब न था।

राधा के पीछे तीन सखियाँ और आयी—ललिता, चन्द्रावली और श्यामा। सब अपनी-अपनी बिरह-कथा सुनाने लगी। कृष्ण की निष्ठुरता और कपट की चर्चा होने लगी। उस पर घरवालों की रोक-थाम, डाँट-डपट भी मारे डालती थी। एक बोली—मुझे तो पनघट पर जाने की रोक हो गयी है, दूसरी बोली—मैं तो द्वार पर खड़ी हो कर झाँकने भी नही पाती, तीसरी बोली—जब दही बेचने जाती हूँ तब बुढ़िया साथ हो लेती है। राधिका ने सजल नेत्र हो कर कहा, मैं तो बदनाम हो गयी, अब किसी से उनकी बात नही हो सकती। ललिता बोली—वह आप ही निर्दयी है, नही तो क्या मिलने का कोई उपाय ही न था ?

चन्द्रावली—उन्हे हमको जलाने और तडपाने में आनन्द मिलता है ?

श्यामा—यह बात नही, वह हमारे घरवालो से डरते हैं।

राधा—चल, तू उनका यो ही पक्ष लिया करती है। बडे चतुर तो बनते हैं ? क्या इन बुढ्ढओ को भी धता नही बता सकते ? बात यह है कि उन्हे हमारी सुध ही नही है।

ललिता—चलो, आज हम सब उनको परखें।

इस पर सब सहमत हो गयी। इधर-उधर चौकन्नी आँखो से ताक-ताक कर हाथों से बता-बता कर, भौहे नचा-नचा कर आपस मे सलाह होने लगी। परीक्षा मे क्या रूप होगा, इसका निश्चय हो गया। चारो प्रसन्न हो कर एक गीत गाती हुई स्टेज से चली गयी। पर्दा गिर गया। फिर पर्दा उठा। वृक्षो के समूह मे एक छोटा सा गाँव दिखाई

दिया। फूस के कई झोपडे थे, बहुत ही साफ-सुथरे, फूल-पत्तियो से सजे हुए। उनमे कही-कही गायें बँधी हुई थी, कही बछडे किलोलें करते थे, कही दूध बिलोया जाता था। बड़ा सुरम्य दृश्य था! एक मकान मे चन्द्रावली पलँग पर पडी कराह रही थी। उसके सिरहाने कई आदमी बैठे पखा झल रहे थे, कई स्त्रियाँ पैर की ओर खडी थी। 'बैद! बैद!' की पुकार हो रही थी। दूसरी झोपडी मे ललिता पडी थी। उसके पास भी कई स्त्रियाँ बैठी टोना-टोटका कर रही थी, कोई कहती थी, आसेव है, कोई चुडैल का फेर बतलाती थी। ओझा जो को बुलाने की बातचीत हो रही थी। एक युवक खडा कह रहा था—यह सब तुम्हारा ढकोसला है, इसे कोई हृद्‌रोग है, किसी चतुर वैद्य को बुलाना चाहिए। तीसरे झोपडे मे श्यामा की खटोली थी, वहाँ भी यही वैद्य की पुकार थी। चौथा मकान बहुत बडा था। द्वार पर बड़ी-बडी गाये थी। एक ओर अनाज के ढेर लगे हुये थे, दूसरी ओर मटको मे दूध भरा रखा था। चारो तरफ सफाई थी। इसमे राधिका रुग्णावस्था मे बेचैन पडी थी। उसके समीप एक पण्डित जी आसन पर बैठे हुए पाठ कर रहे थे। द्वार पर भिक्षुको को अन्नदान दिया जा रहा था। घर के लोग राधिका को चिन्तित नेत्रो से देखते थे और 'बैद! बैद!' पुकारते थे।

सहसा दूर से आवाज आयी—वैद! बैद! सब रोगो का वैद, काम का बैद, क्रोध का बैद, मोह का बैद, लोभ का बैद, धर्म का वैद, कर्म का वैद, मोक्ष का बैद! मन का मैल निकाले, अज्ञान का मैल निकाले, ज्ञान की सीगी लगाये, हृदय की पीर मिटाये! बैद! बैद!! लोगो ने बाहर निकल कर वैद्य जी को बुलाया। उसके काँधे पर झोली थी, सिर पर एक लाल गोल पगडी, देह पर एक हरी बनात की गोटेदार चपकन थी। आँखो में सुरमा, अधरो पर पान की लाली, चेहरे पर मुस्कुराहट थी। चाल-ढाल से बाँकापन बरसता था स्टेज पर आते ही उन्होंने झोली उतार कर रख दी और बाँसुरी बजा-बजा कर गाने लगे—

मैं तो हरत विरह की पीर।
प्रेमदाह को शीतल करता जैसे अग्नि को नीर।
मै तो हरत······
निर्मल ज्ञान की बूटी दे कर देत हृदय को धीर—
मैं तो हरत····

राधा के घरवाले उन्हे हाथो हाथ अन्दर ले गये। राधिका ने उन्हे देखते ही मुस्कुरा कर मुँह छिपा लिया। वैद्य जी ने उसकी नाडी देखने के बहाने से उसकी गोरी गोरी कलाई पकड कर धीरे से दबा दी। राधा ने झिझक कर हाथ छुडा लिया; तब प्रेम-नीति की भाषा मे बाते होने लगी।

राधा—नदी मे अथाह जल है।

वैद्य—जिसके पास नौका है उसे जल का क्या भय?

राधा—आँधी है, भयानक लहरे है और बड़े-बडे भयकर जलजन्तु हैं।

वैद्य—मल्लाह चतुर है।

राधा—सूर्य भगवान निकल आये, पर तारे क्यो जगमगा रहे हैं ?

वैद्य—प्रकाश फैलेगा तो वह स्वय लुप्त हो जायेंगे ।

वैद्य जी ने घरवालो को आँखो के इशारे से हटा दिया । जब एकान्त हो गया तब राधा ने मुस्कुरा कर कहा—प्रेम का धागा कितना दृढ है ?

ज्ञानशकर ने इसका कुछ उत्तर न दिया ।

गायत्री फिर बोली—आग लकडी को जलाती है, पर लकडी जल जाती है तो आग भी बुझ जाती है ।

ज्ञानशकर ने इसका भी कुछ जवाब न दिया ।

गायत्री ने उसके मुख की ओर विस्मय से देखा, यह मौन क्यो ? अपना पार्ट भूल तो नही गये ? तब तो बडी हँसी होगी ।

ज्ञानशकर के होठ बन्द ही थे, साँस बड़े वेग से चल रही थी । पाँव काँप रहे थे, नेत्रो मे विषम प्रेरणा झलक रही थी और मुख से एक भयकर संकल्प प्रकट होता था, मानो कोई हिंसक पशु अपने शिकार पर टूटने के लिए अपनी शक्तियो को एकाग्र कर रहा हो । वास्तव मे ज्ञानशकर ने छलाँग मारने का निश्चय कर लिया था । इसी एक छलाँग मे वह सौभाग्य शिखर पर पहुँचना चाहते थे, इसके लिए महीनो से तैयार हो रहे थे, इसीलिए उन्होने यह ड्रामा खेला था, इसीलिए उन्होने यह स्वाँग भरा था । छलाँग मारने का यही अवसर था । इस वक्त चूकना पाप था । उन्होने तोते को दाना खिला कर परचा लिया था, नि शक हो कर उनके आँगन मे दाना चुगता फिरता था । उन्हे विश्वास था कि दाने की चाट उसे पिंजरे मे खीच ले जायगी । उन्होने पिंजरे का द्वार खोल दिया था । तोते ने पिंजरे को देखते ही चौक कर पर खोले और मुँड़ेरे पर उड कर जा बैठा । दाने की चाट उसकी स्वेच्छावृत्ति का सर्वनाश न कर सकी थी । गायत्री की भी यही दशा थी । ज्ञानशकर की यह अव्यक्त प्रेरणा देख कर झिझकी । यह उसका इच्छित क्रम न था । वह प्रेम का रस-पान कर चुकी थी, उसकी शीतल दाह और सुखद पीडा का स्वाद चख चुकी थी, वशीभूत हो चुकी थी, पर सतीत्व-रक्षा की आन्तरिक प्रेरणा अभी शिथिल न हुई थी । वह झिझकी और उसी भाँति उठ खडी हुई जैसे किसी आकस्मिक आघात को रोकने के लिये हमारे हाथ स्वय अनिच्छित रूप से उठ जाते है । वह घबरा कर उठी और वेग से स्टेज के पीछे की ओर निकल गयी । वहाँ पर चारपाई पडी हुई थी, वह उस पर जा कर गिर पड़ी । वह सज्ञा-शून्य सी हो रही थी जैसे रात के सन्नाटे से कोई गीदड बादल की आवाज सुने और चिल्ला कर गिर पड़े । उसे कुछ ज्ञान था तो केवल भय का ।

लेकिन उसमे तोते की सी स्वाभाविक शका थी, तो इसी तोते का सा अल्प आत्म-सम्मान भी था । जैसे तोता एक ही क्षण मे फिर दाने पर गिरता है और अन्त में पिंजर-बद्ध हो जाता है उसी भाँति गायत्री भी एक ही क्षण मे अपनी झिझक पर लज्जित हुई । उसकी मानसिक पवित्रता कब की विनष्ट हो चुकी थी । अब वह अनि-च्छित प्रतिकार की शक्ति भी विलुप्त हो गयी । उसके मनोभाव का क्षेत्र अब बहुत

विस्तृत हो गया था। पति-प्रेम उसके एक कोने मे पैर फैला कर बैठ सकता था, अब हृदेश पर उसका आधिपत्य न था। एक क्षण मे वह फिर स्टेज पर आयी, शरमा रही थी कि ज्ञानशकर मन में क्या कहते होगे। हा। मैं भक्ति के वेग मे अपने को न भूल सकी। यहाँ भी अहकार को न मिटा सकी। दर्शक-वृन्द मन मे न जाने क्या विचार कर रहे होगे! वह स्टेज पर पहुँची तो ज्ञानशकर एक पद गा कर लोगो का मनोरजन कर रहे थे। उसके स्टेज पर आते ही पर्दा गिर गया।

आध घटे के बाद तीसरी बार पर्दा उठा। फिर वही कदम का वृक्ष था, वहीं सघन कुज। चारो सखियाँ बैठी हुई कृष्ण के वैद्य रूप धारण की चर्चा कर रही थी। वह कितने प्रेमी, कितने भक्तवत्सल है, स्वय भक्तो के भक्त है।

इस वार्तालाप के उपरान्त एक पद्य-बद्ध रामायण होने लगा जिसमे ज्ञान और भक्ति की तुलना की गयी और अन्त मे भक्ति पक्ष को ही सिद्ध किया गया। चारो सखियो ने आरती गायी और अभिनय समाप्त हुआ। पर्दा गिर गया। गायत्री के भाव-चित्रण, स्वर-लालित्य और अभिनय-कौशल की सभी प्रशसा कर रहे थे। कितने ही सरल हृदय भक्तजनो को तो विश्वास हो गया कि गायत्री को राधिका का इष्ट है। सभ्य समाज इतना प्रगल्भ तो न था, फिर भी गायत्री की प्रतिभा, उसके विशाल गाम्भीर्य, उसकी अलौकिक मृदुलता का जादू सभी पर छाया हुआ था। ज्ञानशकर के अभिनय-कौशल की भी सराहना हो रही थी। यद्यपि उनका गाना किसी को पसन्द न आया, उनकी आवाज मे लोच का नाम भी न था, फिर भी उनकी वैद्य-लीला निर्दोष बतायी जाती थी।

गायत्री अपने कमरे मे आ कर कोच पर बैठी तो एक बज गया था। वह आनन्द से फूली न समाती थी, चारो तरफ उसकी वाह-वाह हो रही थी, शहर के कई रसिक सज्जनो ने चलते समय आ कर उसके मानव चरित्र-ज्ञान की प्रशसा की थी, यहाँ तक कि श्रद्धा भी उसके अभिनय नैपुण्य पर विस्मित हो रही। उसका गौरवशील हृदय इस विचार से उन्मत्त हो रहा था कि आज सारे नगर मे मेरी ही चर्चा, मेरी ही धूम है। और यह सब किसके सत्सग का, किसकी सत्य प्रेरणा का फल था? गायत्री के रोम-रोम से ज्ञानशकर के प्रति श्रद्धाध्वनि निकलने लगी। उसने ज्ञानशकर पर अनुचित सन्देह करने के लिए अपने को तिरस्कृत किया। मुझे उनसे क्षमा माँगनी चाहिए, उनके पैरो पर गिर कर उनके हृदय से इस दुख को मिटाना चाहिए। मैं उनकी पदरज हूँ, उन्होने मुझे धरती से उठा कर आकाश पर पहुँचाया है। मैंने उनपर सन्देह किया! मुझसे बडा कृतघ्न और कौन होगा? वह इन्ही विचारो मे मग्न थी कि ज्ञानशकर आ कर खडे हो गये और बोले—आज आपने मजलिस पर जादू कर दिया।

गायत्री बोली—यह जादू आपका ही सिखाया हुआ है।

ज्ञानशकर—सुना करता था कि मनुष्य का जैसा नाम होता है वैसे ही गुण भी उसमे आ जाते है, पर विश्वास न आता था। अब विदित हो रहा है कि यह कथन सर्वथा निस्सार नहीं है। मुझे दो बार से अनुभव हो रहा है कि जब अपना पार्ट

खेलने लगता हूँ तब किसी दूसरे ही जगत मे पहुँच जाता हूँ। चित्त पर एक विचित्र आनन्द छा जाता है, ऐसा भ्रम होने लगता है कि मैं वास्तव मे कृष्ण हूँ।

गायत्री—मैं भी यही कहनेवाली थी। मैं तो अपने को बिलकुल भूल ही जाती हूँ।

ज्ञान—सम्भव है उस आत्म-विस्मृति की दशा मे मुझसे कोई अपराध हो गया हो तो उसे क्षमा कीजिएगा।

गायत्री सकुचाती हुई बोली—प्रेमोद्गार मे अन्त करण निर्मल हो जाता है, वासनाओ का लेश भी नही रहता।

ज्ञानशकर एक मिनट तक खडे इन शब्दो के आशय पर विचार करते रहे और तब बाहर चले गये।

दूसरे दिन विद्यावती बनारस पहुँची। उसने अपने आने की सूचना न दी थी, केवल एक भरोसे के नौकर को साथ ले कर चली आयी थी। ज्यो ही द्वार पर पहुँची उसे वृहत् पडाल दिखायी दिया। अन्दर गयी तो श्रद्धा दौड कर उससे गले मिली। महरियाँ दौडी आयी। वह सब की सब विद्या को करुणा-सूचक नेत्रो से देख रही थी। गायत्री गगा स्नान करने गयी थी। विद्या के कमरे मे गायत्री का राज्य था। उसके सन्दूक और अन्य सामान चारो ओर भरे हुए थे। विद्या को ऐसा क्रोध आया कि गायत्री का सब सामान उठा कर बाहर फेंक दे, पर कुछ सोच कर रह गयी। गायत्री के साथ कई महरियाँ भी आयी थी। वे वहाँ की महरियो पर रोब जमाती थी। विद्या को देख कर सब इधर-उधर हट गयी, कोई कुशल-समाचार पूछने पर भी न आयी। विद्या इन परिस्थितियो को उसी दृष्टि से देख रही थी जैसे कोई पुलिस का अफसर किसी घटना के प्रमाणो को देखता है। उसके मन मे जो शका आरोपित हुई थी उसकी पग-पग पर पुष्टि होती जाती थी। ज्यो ही एकान्त हुआ, विद्या ने श्रद्धा से पूछा—यह शामियाना कैसा तना हुआ है?

श्रद्धा—रात को यहाँ कृष्णलीला हुई थी।

विद्या—बहिन ने भी कोई पार्ट लिया?

श्रद्धा—वह राधिका बनी थी और बाबू जी ने कृष्ण का पार्ट लिया था।

विद्या—बहिन से खेलते तो न बना होगा?

श्रद्धा—वाह! वह इस कला मे निपुण है। सारी सभा लट्टू हो गयी। आती होगी, आप ही कहेगी।

विद्या—क्या नित्य गगा स्नान करने जाती हैं?

श्रद्धा—हाँ, प्रात काल गगा स्नान होता है, सन्ध्या को कीर्तन सुनने जाती है।

इतने मे मायाशकर ने आकर माता के चरण स्पर्श किये। विद्या ने उसे छाती से लगाया और बोली—बेटा, आराम से तो रहे?

माया—जी हाँ, खूब आराम मे था।

विद्या—बहिन, देखो इतने ही दिनो मे इसकी आवाज कितनी बदल गयी है! बिल्कुल नही पहचानी जाती। मौसी जी के क्या रग-ढग है? खूब प्यार करती है न?

माया—हाँ, मुझे बहुत चाहती है, बहुत अच्छा मिजाज है।

विद्या—वहाँ भी कृष्णलीला होती थी कि नही ?

माया—हाँ, वहाँ तो रोज ही होती रहती थी। कीर्तन नित्य होता था। मथुरा-वृन्दावन से रासवाले बुलाये जाते थे। बाबू जी भी कृष्ण का पार्ट खेलते हैं। उनके केश खूब बढ गये हैं। सूरत से महन्त मालूम होते है। तुमने तो देखा होगा ?

विद्या—हाँ, देखा क्यो नही ! बहिन अब भी उदास रहती है ?

माया—मैंने तो उन्हे कभी उदास नही देखा। हमारे घर मे तो ऐसा प्रसन्नचित्त कोई है ही नही।

विद्या यह प्रश्न यो पूछ रही थी जैसे कोई वकील गवाह से जिरह कर रहा हो। प्रत्येक उत्तर उसके सन्देह को दृढ करता था। दस बजे द्वार पर मोटर की आवाज सुनायी दी। सारे घर मे हलचल मच गयी। कोई महरी गायत्री का पलँग बिछाने लगी, कोई उसके स्लीपरो को पोछने लगी, किसी ने फर्श झाडना शुरू किया, कोई उसके जलपान की सामग्रियाँ निकाल कर तश्तरी मे रखने लगी और एक ने लोटा-गिलास माँज कर रख दिया। इतने मे गायत्री ऊपर आ पहुँची। पीछे-पीछे ज्ञानशंकर भी थे। विद्या अपने कमरे से न निकली, लेकिन गायत्री लपक कर उसके गले से लिपट गयी और बोली—तुम कब आयी ? पहले से खत भी न लिखा ?

विद्या गला छुडा कर अलग खडी हो गयी और रुखाई से बोली—खत लिख कर क्या करती ? यहाँ किसे फुरसत थी कि मुझे लेने जाता। दामोदर महाराज के साथ चली आयी।

ज्ञानशकर ने विद्या के चेहरे की ओर प्रश्नात्मक दृष्टि से देखा। उत्तर मोटे अक्षरों मे स्पष्ट लिखा हुआ था। विद्या भावो को छिपाने मे कच्ची थी। सारी कथा उसके चेहरे पर अंकित थी। उसने ज्ञानशकर को आँख उठा कर भी न देखा, कुशल-समाचार पूछने की बात ही क्या ! नगी तलवार बनी हुई थी। उसके तेवर साफ कह रहे थे कि वह भरी-भरी बैठी है और अवसर पाते ही उबल पडेगी। ज्ञानशकर का चित्त उद्विग्न हो गया। वे शकाएँ, वह परिणाम-चिन्ता जो गायत्री के आने से दब गयी थी, फिर जाग उठी और उनके हृदय मे काँटो के समान चुभने लगी। उन्हे निश्चय हो गया कि विद्या सब कुछ जान गयी, अब वह मौका पाते ही ईर्ष्यावेग मे गायत्री से सब कुछ कह सुनायेगी। मैं उसे किसी भाँति नही रोक सकता। समझाना, डराना, धमकाना, बिन और चिरौरी करना सब निष्फल होगा। बस अगर अब प्राण-रक्षा का कोई उपाय है तो यही कि उसे गायत्री से बात-चीत करने का अवसर ही न मिले। या तो आज ही शाम की गाडी से गायत्री को ले कर गोरखपुर चला जाऊँ या दोनो बहनो मे ऐसा मन-मुटाव करा दूँ कि एक दूसरी से खुल कर मिल ही न सकें। स्त्रियो को लडा देना कौन सा कठिन काम है ! एक इशारे मे तो उनके तेवर बदलते है। ज्ञानशकर को अभी तक यह ध्यान भी न था कि विद्या मेरी भक्ति और प्रेम के मर्म तक पहुँची हुई है।

वह केवल अभी तक राय साहब वाली दुर्घटनाओं को ही इस मनोमालिन्य का कारण समझ रहे थे ।

विद्या ने गायत्री से अलग हट कर उसके नख-शिख को चुभती हुई दृष्टि से देखा । उसने उसे छह साल पहले देखा था । तब उसका मुख-कमल मुर्झाया हुआ था, वह सन्ध्या-काल के सदृश उदास, मलिन, निश्चेष्ट थी । पर इस समय उसके मुख पर खिले हुए कमल की शोभा थी । वह उषा की भाँति विकसित, तेजोमय, सचेष्ट स्फूर्ति से भरी हुई दीख पड़ती थी । विद्या इस विद्युत प्रकाश के सम्मुख दीपक के समान ज्योति-हीन मालूम होती थी ।

गायत्री ने पूछा—सगीत सभा का तो खूब आनन्द उठाया होगा ?

ज्ञानशकर का हृदय धकधक करने लगा । उन्होंने विद्या की ओर बडी दीन दृष्टि से देखा पर उसकी आँखे जमीन की तरफ थी, बोली—मै तो कभी सगीत के जलसे मे गयी ही नही । हाँ, इतना जानती हूँ कि जलसा कुछ फीका रहा । लाला जी बहुत बीमार हो गये और एक दिन भी जलसे मे शरीक न हो सके ।

गायत्री—मेरे न जाने से नाराज तो अवश्य ही हुए होगे ?

विद्या—तुम्हे उनके नाराज होने की क्या चिन्ता है ? वह नाराज हो कर तुम्हारा क्या बिगाड सकते है ?

यद्यपि यह उत्तर काफी तौर पर द्वेषमूलक था, पर गायत्री अपनी कृष्णलीला की चर्चा करने के लिए इतनी उतावली हो रही थी कि उसने इस पर कुछ ध्यान न दिया । बोली, क्या कहूँ तुम कल न आ गयी नही तो यहाँ कृष्णलीला का आनन्द उठाती । भगवान् की कुछ ऐसी दया हो गयी कि सारे शहर मे इस लीला की वाह-वाह मच गयी । किसी प्रकार की त्रुटि न रही । रगभूमि तो तुमको अभी दिखाऊँगी पर उसकी सजावट ऐसी मनोहर थी कि तुमसे क्या कहूँ ! केवल पर्दो के बनवाने मे हजारो रुपये खर्च हो गये । बिजली के प्रकाश से सारा मडप ऐसा जगमगा रहा था कि उसकी शोभा देखते ही बनती थी । मैं इतनी बडी सभा के सामने आते डरती थी, पर कृष्ण भगवान् ने ऐसी कृपा की कि मेरा पार्ट सबसे बढ कर रहा । पूछो बाबू जी से, शहर मे उसका कैसी चर्चा हो रही है ? लोगो ने मुझसे एक-एक पद कई-कई बार गवाया ।

विद्या ने व्यग भाव से कहा—मेरा अभाग्य था कि कल न आ गयी ।

गायत्री—एक बार फिर वही लीला करने का विचार है । अबकी तुम्हे भी कोई न कोई पार्ट दूँगी ।

विद्या—नही, मुझे क्षमा करना । नाटक खेल कर स्वर्ग मे जाने की मुझे आशा नही है ।

गायत्री विस्मित हो कर विद्या का मुँह ताकने लगी । लेकिन ज्ञानशकर मन मे मुग्ध हुए जाते थे । दोनो बहिनो मे वह जो भेद-भाव डालना चाहते थे वह आप ही आप आरोपित हो रहा था । ये शुभ लक्षण थे । गायत्री से बोले—मेरे विचार मे यहाँ

अब आपको कष्ट होगा। क्यो न बँगले मे एक कमरा आपके लिए खाली करा दूं? वहाँ आप ज्यादा आराम से रह सकेंगी।

गायत्री ने विद्या की तरफ देखते हुए कहा—क्यो विद्या, बँगले मे चली जाऊँ? बुरा तो न मानोगी? मेरे यहाँ रहने से तुम्हारे आराम मे विघ्न पडेगा। मैं बहुधा भजन गाया करती हूँ।

विद्या—तुम मेरे आराम की चिन्ता मत करो, मैं इतनी नाजुक दिमाग नही हूँ। हाँ, अगर तुम्हे यहाँ कोई असमजस हो तो शौक से बँगले मे चली जाओ।

ज्ञानशकर ने गायत्री का असबाब उठा कर बँगले मे रखवा दिया। गायत्री ने भी विद्या से और कुछ न कहा। उसे मालूम हो गया कि यह इस समय ईर्षा के मारे मरी जाती है। और ऐसा कौन प्राणी होगा, जो ईर्षा की क्रीडा का आनन्द न उठाना चाहे? उसने एक बार विद्या को सगर्व नेत्रो से देखा और जीने की तरफ चली गयी।

५०

रात का एक बजा था। गायत्री वीणा पर गा रही थी कि ज्ञानशकर ने कमरे में प्रवेश किया। उन्होने आज देवी से वरदान माँगने का निश्चय कर लिया था। लोहा लाल हो रहा था, अब आगा-पीछा करने का अवसर न था, ताबडतोड चोटो की जरूरत थी। एक दिन की देर भी बरसो के अविरल उद्योग पर पानी फेर सकती थी, जीवन की समस्त आशाओ को मिट्टी मे मिला सकती थी। विद्या की एक अनुचित बात सारी बाजी को पलट सकती थी, उसका एक द्वेषमूलक सकेत उनके सारे हवाई किलो को विध्वस कर सकता था। कदाचित् किसी सेनापति को रणक्षेत्र मे इतना महत्त्वपूर्ण और निश्चयकारी अवसर न प्रतीत होगा, जितना इस समय ज्ञानशकर को मालूम हो रहा था। उनकी अवस्था उस सिपाही की सी थी जो कुछ दूर पर खडा शस्त्रशाला मे आग की चिनगारी पडते देखे और उसको बुझाने के लिए बेतहाशा दौडे। उसका द्रुतवेग कितना महत्त्वपूर्ण, कितना मूल्यवान है! एक क्षण का विलम्ब सेना के सर्वनाश, दुर्ग के दमन, राज्य के विक्षेप और जाति के पददलित होने का कारण हो सकता है। ज्ञानशकर आज दोपहर से इसी समस्या के हल करने मे व्यस्त थे। क्योकर विषय को छेडूं? ऐसा अन्दाज होना चाहिए कि मेरी निष्काम-वृत्ति का पर्दा न खुलने पाये। उन्होंने अपने मन मे विषय-प्रवेश का ऐसा क्रम बाँधा था कि मायाशकर को गोद लेने का प्रस्ताव गायत्री की ओर से हो और मैं उसके गुण-दोषो की नि स्वार्थ भाव से व्याख्या करूँ। मेरी हैसियत एक तीसरे आदमी की सी रहे, एक शब्द से भी पक्षपात न प्रकट हो। उन्होने अपनी बुद्धि, विचार, दूरदर्शिता और पूर्व-चिन्ता से कभी इतना काम न लिया था। सफलता मे जो बाधाएँ उपस्थित होने की कल्पना हो सकती थी उन सबो की उन्होने योजना कर ली थी। अपने मन मे एक-एक शब्द, एक-एक इशारे, एक-एक भाव का निश्चय कर लिया था। वह एक केशरिया रग की रेशमी चादर ओढे हुए थे, लम्बे केश चादर पर बिखरे

पडे थे, आँखो से भक्ति का आनन्द टपक रहा था और मुखारविन्द प्रेम की दिव्यज्योति से आलोकित था।

उन्होने गायत्री को अनुराग दृष्टि से देख कर कहा—आपके पदो मे गजब का जादू है। हृदय मे प्रेम की तरगें उठने लगती है, चित्त भक्ति से उन्मत्त हो जाता है।

गायत्री ने मुस्कुरा कर कहा, यह जादू मेरे पदो मे नही है, आपके कोमल हृदय मे है। वाहर की फीकी नीरस ध्वनि भी अन्दर जा कर सुरीली और रसमयी हो जाती है। साधारण दीपक भी मोटे शीशे के अन्दर विजली का लैम्प बन जाता है।

ज्ञानशकर—मेरे चित्त की आजकल एक विचित्र दशा हो गयी है। मुझे अब विश्वास हो गया है कि मनुष्य में एक ही साथ दो भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियो का समावेश नही हो सकता, एक आत्मा दो रूप नही धारण कर सकती।

गायत्री ने उनकी ओर जिज्ञासा भाव से देखा और वीणा को मेज पर रख कर उनका मुंह देखने लगी।

ज्ञानशकर ने कहा—हम जो रूप धारण करते है उसका हमारी बातचीत और आचार व्यवहार पर इतना असर पडता है कि हमारी वास्तविक स्थिति लुप्त सी हो जाती है। अब मुझे अनुभव हो रहा है कि लोग क्यो लडको को नाटको मे स्त्रियो का रूप घरने, नाचने और भाव बताने पर आपत्ति करते है। एक दयालु प्रकृति का मनुष्य सेना मे रह कर कितना उद्दड और कठोर हो जाता है। परिस्थितियाँ उसकी दयालुता का नाश कर देती है। मेरे कानो मे अब नित्य वशी की मधुर-ध्वनि गूंजा करती है और आँखो के सामने गोकुल और बरसाने की छटा फिरा करती है। मेरी सत्ता कृष्ण मे विलीन होती जाती है, राधा अब एक क्षण के लिए भी मेरे ध्यान से नही उतरती। कुछ समझ मे नही आता कि मेरा मन मुझे किधर लिये जाता है ?

यह कहते-कहते ज्ञानशकर की आँखो से ज्योति सी निकलने लगी, मुखमडल पर अनुराग छा गया और वाणी माधुर्य रस मे डूब गयी। बोले—गायत्री देवी, चाहे यह छोटा मुँह और वडी वात हो, पर सच्ची बात यह है कि इस आत्मोत्सर्ग की दशा मे तुम्हारा उच्च पद, तुम्हारा धन-वैभव, तुम्हारा नाता सब मेरी आँखो से लुप्त हो जाता है और तुम मुझे वही राधा, वही वृन्दावन की अलबेली, तिरछी चितवनवाली, मीठी मुस्कानवाली, मृदुल भावोवाली, चचल-चपल राधा मालूम होती हो। मैं इन भावनाओ को हृदय से मिटा देना चाहता हूँ, लाखो यत्न करता हूँ, पर वह मेरी नही मानता। मैं चाहता हूँ कि तुम्हे रानी गायत्री समझूँ जिसका मैं एक तुच्छ सेवक हूँ, पर बार-बार भूल जाता हूँ। तुम्हारी एक आवाज, तुम्हारी एक झलक, तुम्हारे पैरो की आहट, यहाँ तक कि केवल तुम्हारी याद मुझे इस वाह्य जगत् से उठा कर किसी दूसरे जगत् मे पहुँचा देती है। मैं अपने को बिलकुल भूल जाता हूँ। अब तक इस चित्तवृत्ति को तुमसे गुप्त रखा था, लेकिन जैसे मिजराब की चोट से सितार ध्वनित हो जाता है उसी भाँति प्रेम की चोट से हृदय स्वरयुक्त हो जाता है। मैंने आपसे अपने चित्त की दशा कह

सुनायी, सन्तोष हो गया। इस प्रीति का अन्त क्या होगा, इसे उसके सिवा और कौन जानता है जिसने हृदय मे यह ज्वाला प्रदीप्त की है !

जिस प्रकार प्यास से तड़पता हुआ मनुष्य ठडा पानी पी कर तृप्त हो जाता है, एक-एक घूंट उसकी आँखो मे प्रकाश और चेहरे पर विकास उत्पन्न कर देता है, उसी प्रकार यह प्रेम वृत्तान्त सुन कर गायत्री का मुखचन्द्र उज्ज्वल हो गया, उसकी आँखे उन्मत्त हो गयी, उसे अपने जीवन मे एक नयी स्फूर्ति का अनुभव होने लगा। उसके विचारो मे यह आध्यात्मिक प्रेम था, इसमे वासना का लेश भी न था। इसके प्रेरक कृष्ण थे। वही ज्ञानशकर के दिल में बैठे हुए उनके कठ मे से यह प्रेम-स्वर अलाप रहे थे। उसके मनमे भी ऐसे भाव पैदा होते थे, लेकिन लज्जावश उन्हे प्रकट न कर सकती थी। राधा का पार्ट खेल चुकने के बाद वह फिर गायत्री हो जाती थी, किन्तु इस समय ये बाते सुन कर उस पर एक नशा सा छा गया। उसे ज्ञात हुआ कि राधा मेरे हृदय-स्थल मे विराज रही है, उसकी वाणी लज्जा के बन्धन से मुक्त हो गयी। इस आध्यात्मिक रत्न के सामने समग्र ससार, यहाँ तक कि अपना जीवन भी तुच्छ प्रतीत होने लगा। आत्म-गौरव से आँखें चमकने लगी। बोली—प्रियतम, मेरी भी यह दशा है। मैं भी इसी ताप से फुंक रही हूँ। यह तन और मन अब तुम्हारी भेट है। तुम्हारे प्रेम जैसा रत्न पा कर अब मुझे कोई आकाक्षा, लालसा नही रही। इस आत्म-ज्योति ने मायो और मोह के अन्धकार को मिटा दिया, सासारिक पदार्थों से जी भर गया। अब यही अभिलाषा है कि यह मस्तक तुम्हारे चरणो पर हो और तुम्हारे कीर्ति-गान मे जीवन समाप्त हो जाय। मै रानी नही हूँ, गायत्री नही हूँ, मैं तुम्हारे प्रेम की भिखारिनी, तुम्हारे प्रेम की मतवाली, तुम्हारी चेरी राधा हूँ। तुम मेरे स्वामी, मेरे प्राणाधार, मेरे इष्टदेव हो। मैं तुम्हारे साथ बरसाने की गलियो मे विचरूँगी, यमुना के तट पर तुम्हारे प्रेम-राग गाऊँगी। मैं जानती हूँ कि मैं तुम्हारे योग्य नही हूँ, अभी मेरा चित्त भोग-विलास का दास है। अभी मैं धर्म और समाज के बन्धनो को तोड नही सकी हूँ, पर जैसी कुछ हूँ अब तुम मेरी सेवाओ को स्वीकार करो। तुम्हारे ही सत्सग ने इस स्वर्गीय सुख का रस चखाया है, क्या वह मन के विकारो को शान्त न कर देगा ?

यह कहते-कहते गायत्री के लोचन सजल हो गये। वह भक्ति के आवेग मे ज्ञानशकर के पैरो पर गिर पड़ी। ज्ञानशकर ने उसे तुरन्त उठा कर छाती से लगा लिया। अकस्मात् कमरे का द्वार धीरे से खुला और विद्या ने अन्दर कदम रखा। ज्ञानशकर और गायत्री दोनो ने चौक कर द्वार की ओर देखा और झिझक कर अलग खडे हो गये। दोनो की आँखे जमीन की तरफ झुक गयी, चेहरे पर हवाइयाँ उडने लगी। ज्ञानशकर तो सामने की आलमारी मे से एक पुस्तक निकाल कर पढने लगे, किन्तु गायत्री ज्यो की त्यो अवाक् और अचल, पाषाण मूर्ति के सदृश खड़ी थी। माथे पर पसीना आ गया। जी चाहता था, धरती फट जाय और मैं उसमे समा जाऊँ। वह कोई बहाना, कोई हीला न कर सकी। आत्मग्लानि ने दुस्साहस का स्थान ही न

छोड़ा था। उसे फर्श पर मोटे अक्षरो मे यह शब्द लिखे हुए दीखते थे, 'अब तू कहीं की न रही, तेरे मुँह मे कालिख पुत गयी !' यही विचार उसके हृदय को आन्दोलित कर रहा था, यही ध्वनि उसके कानो मे आ रही थी। वह विलख-विलख कर रोने लगी। अभी एक क्षण पहले उसकी आँखो से आत्माभिमान वरस रहा था, पर इस वक्त उससे दीन, उससे दलित प्राणी ससार मे न था। क्षण मात्र मे उसकी भक्ति और अनुराग, उसके प्रेम और ज्ञान का पर्दा खुल गया। उसे ज्ञात हुआ कि मेरी भक्ति के स्वच्छ जल के नीचे कीचड था, मेरे प्रेम के सुरम्य पर्वत शिखर के नीचे निर्मल अन्धकारमय गुफा थी। मैं स्वच्छ जल मे पैर रखते ही कीचड मे आ फँसी, शिखर पर चढते ही अँधेरी गुफा मे आ गिरी। हा ! इस उज्ज्वल, कचनमय, लहराते हुए जल नें मुझे धोखा दिया, इन मनोरम शुभ्र शिखरो ने मुझे ललचाया और अब मैं कही की न रही। अपनी दुर्बलता और क्षुद्रता पर उसे इतना खेद हुआ, लज्जा और तिरस्कार के भावो ने उसे इतना मर्माहत किया कि वह चीख मार कर रोने लगी। हा ! विद्या मुझे अपने मन मे कितना कुटिल समझ रही होगी ! वह मेरा कितना आदर करती थी, कितना लिहाज करती थी, अब मैं उसकी दृष्टि मे छिछोरी हूँ, कुलकलकिनी हूँ। उसके सामने सत्य और व्रत की कैसी डीगे मारती थी, सेवा और सत्कर्म की कितनी सराहना करती थी। मैं उसके सामने साध्वी, सती बनती थी, अपने पातिव्रत्य पर घमड करती थी, पर अब उसे मुँह दिखाने योग्य नही हूँ। हाय ! वह मुझे अपनी सौत समझ रही होगी, मुझे आँखो की किरकिरी, अपने हृदय का काँटा ख्याल करती होगी ! मैं उसकी गृह-विनाशिनी अग्नि, उसकी हाँडी मे मुँह डालने वाली कुतिया हूँ ! भगवान् ! मैं कैसी अन्धी हो गयी थी। यह मेरी छोटी बहिन है, मेरी कन्या के समान है। इस विचार ने गायत्री के हृदय को इतने जोर से मसोसा कि वह कलेजा थाम कर वैठ गयी। सहसा वह रोती हुई उठी और विद्या के पैरो पर गिर पडी।

विद्यावती इस वक्त केवल सयोग से यहाँ आ गयी थी। वह ऊपर अपने कमरे मे वैठी सोच रही थी कि गायत्री बहिन को क्या हो गया है ? उसे क्योकर समझाऊँ कि यह महापुरुष (ज्ञानशकर) तुझे प्रेम और भक्ति के सब्ज बाग दिखा रहे है। यह सारा स्वाँग तेरी जायदाद के लिए भरा जा रहा है। न जाने क्यो धन-सम्पत्ति के पीछे इतने अन्धे हो रहे हैं कि धर्म और विवेक को पैरो तले कुचले डालते हैं। हृदय का कितना धूर्त, कितना लोभी, कितना स्वार्थान्ध मनुष्य है कि अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए किसी की जान, किसी की आबरू की भी परवाह नही करता। बात तो ऐसी करता है मानो ज्ञान-चक्षु खुल गये हो, मानो ऐसा साधु-चरित्र, ऐसा विद्वान् परमार्थी पुरुष ससार मे न होगा, पर अन्त करण मे कूट-कूट कर पशुता, कपट और कुकर्म भरा हुआ है। बस, इसे यही धुन है कि गायत्री किसी तरह माया को गोद ले ले, उसकी लिखा-पढी हो जाय और इलाके पर मेरा प्रभुत्व जम जाय, उसका सम्पूर्ण अधिकार मेरे हाथो मे आ जाय। इसी लिए इसने ज्ञान और भक्ति का यह जाल फैला रखा है, भगत बन

गया है, बाल बढ़ा लिये है, नाचता है, गाता है, कन्हैया बनता है। कितनी भयकर धूर्तता है, कितना घृणित व्यवहार, कितनी आसुरी प्रवृत्ति !

वह इन्ही विचारो मे मग्न थी कि उसके कानो मे गायत्री के गाने की आवाज आयी। वह वीणा पर सूरदास का एक पद गा रही थी, राग इतना सुमधुर और भाव-मय था, ध्वनि मे इतनी करुणा और आकाक्षा भरी हुई थी, स्वर मे इतना लालित्य और लोच था कि विद्या का मन सुनने के लिए लोलुप हो गया, वह विवश हो गयी, स्वर-लालित्य ने उसे मुग्ध कर दिया। उसने सोचा, सच्चे अनुराग और हार्दिक वेदना के बिना गाने मे यह असर, यह विरक्ति असम्भव है। इसकी लगन सच्ची है, इसकी भक्ति सच्ची है। इस पर मन्त्र डाल दिया गया है। मैं इस मन्त्र को उतार दूँ, हो सके तो उसे गार मे गिरने से बचा लूँ, उसे जता दूँ, जगा दूँ। नि सन्देह यह महोदय मुझ से नाराज होगे मुझे वैरी समझेगे, मेरे खून के प्यासे हो जायँगे, कोई चिन्ता नही। इस काम मे अगर मेरी जान भी जाय तो मुझे विलम्ब न करना चाहिए। जो पुरुष ऐसा खूनी, ऐसा विघातक, ऐसा रँगा हुआ सियार हो उससे मेरा कोई नाता नहीं। उसका मुँह देखना, उसके घर मे रहना, उसकी पत्नी कहलाना पाप है।

वह ऊपर से उतरी और धीरे-धीरे गायत्री के कमरे मे आयी; किन्तु पहला ही पग अन्दर रखा था कि ठिठक गयी। सामने गायत्री और ज्ञानशकर आलिंगन कर रहे थे। वह इस समय बडी शुभ इच्छाओ के साथ आयी थी, लेकिन निर्लज्जता का यह दृश्य देख कर उसका खून खौल उठा, आँखो मे चिनगारियाँ सी उडने लगी, अपमान और तिरस्कार के शब्द मुँह से निकलने के लिए जोर मारने लगे। उसने आग्नेय नेत्रो से पति को देखा। उसके शाप मे यदि इतनी शक्ति होती कि वह उन्हे जला कर भस्म कर देता तो वह अवश्य शाप दे देती। उसके हाथ मे यदि इतनी शक्ति होती कि वह एक ही बार मे उनका काम तमाम कर दे तो वह अवश्य वार करती। पर उसके वश मे इसके सिवाय और कुछ न था कि वह वहाँ से टल जाय। इस उद्विग्न दशा मे वह वहाँ ठहर न सकती थी। वह उल्टे पाँव लौटना चाहती थी। खलिहान मे आग लग चुकी थी, चिडिया के गले पर छुरी चल चुकी थी, अब उसे बचाने का उद्योग करना व्यर्थ था। गायत्री से उसे एक क्षण पहले जो हमदर्दी हो गयी थी वह लुप्त हो गयी, अब वह सहानुभूति की पात्र न थी। हम सफेद कपडो को छीटो से बचाते है, लेकिन जब छीटे पड़ गये तो उसे दूर फेक देते हैं, उसे छूने से घृणा होती है। उसके विचार मे गायत्री अब इसी योग्य थी कि अपने किये का फल भोगे। मैं इस भ्रम मे थी कि इस दुरात्मा ने तुझे बहका दिया, तेरा अन्त करण शुद्ध है, पर अब यह विश्वास जाता रहा। कृष्ण की भक्ति और प्रेम का नशा इतना गाढा नही हो सकता कि सुकर्म और कुकर्म का विवेक न रहे। आत्म-पतन की दशा मे ही इतनी बेहयाई हो सकती है। हा अभागिनी ! आधी अवस्था बीत जाने पर तुझे यह सूझी ! जिस पति को तू देवता समझती थी, जिसकी पवित्रस्मृति की तू उपासना करती थी, जिसका नाम लेते ही आत्म गौरव से तेरे मुखपर लाली छा जाती थी उसकी आत्मा को तूने

यो भ्रष्ट किया, उसकी मिट्टी यो खराब की !

किन्तु जब उसने गायत्री को सिर झुका कर चीख-चीख कर रोते देखा तो उसका हृदय नम्र हो गया, और जब गायत्री आ कर पैरो पर गिर पड़ी तब स्नेह और भक्ति के आवेश से आतुर हो कर वह बैठ गयी और गायत्री का सिर उठा कर अपने कधे पर रख लिया। दोनो बहिने रोने लगी, एक ग्लानि दूसरी प्रेमोद्रेक से।

अब तक ज्ञानशकर दुविधा मे खडे थे, विद्या पर कुपित हो रहे थे, पर जबान से कुछ कहने का साहस न था। उन्हे शका हो रही थी कि कही यह शिकार फन्दा तोड कर भाग न जाय। गायत्री के रोने-धोने पर उन्हे बड़ा क्रोध आ रहा था। जब तक गायत्री अपनी जगह पर खडी रोती रही तब तक उन्हे आशा थी कि इस चोट की दवा हो सकती है, लेकिन जब गायत्री जा कर विद्या के पैरों पर गिर पड़ी और दोनो बहिने गले मिल कर रोने लगी तब वह अधीर हो गये। अब चुप रहना जीती-जितायी बाजी को हाथ से खोना, जाल मे फँसे हुए शिकार को भगाना था। उन्होंने कर्कश स्वर से विद्या से कहा—तुमको बिना आज्ञा किसी के कमरे में आने का क्या अधिकार है ?

विद्या कुछ न बोली। गायत्री ने उसकी गर्दन और जोर से पकड ली मानो डूबने से बचने का यही एक एकमात्र सहारा है।

ज्ञानशकर ने और सरोष हो कर कहा—तुम्हारे यहाँ आने की कोई जरूरत नही और तुम्हारा कल्याण इसी मे है कि तुम इसी दम यहाँ से चली जाओ नही तो मैं तुम्हारा हाथ पकड कर बाहर निकाल देने पर मजबूर हो जाऊँगा। तुम कई बार मेरे मार्ग का काँटा बन चुकी हो, लेकिन अब की बार मैं तुम्हे हमेशा के लिए रास्ते से हटा देना चाहता हूँ।

विद्या ने तेवरियाँ बदल कर कहा—मैं अपनी बहिन के पास आयी हूँ, जब तक वह मुझे जाने को न कहेगी, मैं न जाऊँगी।

ज्ञानशकर ने गरज कर कहा—चली जा, नही तो अच्छा न होगा !

विद्या ने निर्भीकता से उत्तर दिया—कभी नही, तुम्हारे कहने से नही !

ज्ञानशकर क्रोध से काँपते हुए तडिद्वेग से विद्या के पास आये और चाहा कि झपट कर उसका हाथ पकड़ लूँ कि गायत्री खड़ी हो गयी और गर्व से बोली—मेरी समझ में नही आता कि आप इतने क्रुद्ध क्यो हो रहे है ? मुझसे मिलने आयी है और मैं अभी न जाने दूँगी।

गायत्री की आँखो मे अब भी आँसू थे, गला अभी तक थरथरा रहा था, सिसकियाँ ले रही थी, पर यह विगत जलोद्वेग के लक्षण थे, अब सूर्य निकल आया था। वह फिर अपने आपे मे आ चुकी थी, उसका स्वाभाविक अभिमान फिर जाग्रत हो रहा था।

ज्ञानशकर ने कहा—गायत्री देवी, तुम अपने को बिल्कुल भूली जाती हो। मुझे अत्यन्त खेद है कि बरसो भक्ति और प्रेम की वेदी पर आत्म-समर्पण करके भी तुम ममत्व के बन्धनों मे जकड़ी हुई हो। याद करो तुम कौन हो ? सोचो मैं कौन हूँ ? सोचो मेरा

और तुम्हारा क्या सम्बन्ध है ? क्या तुम इस पवित्र सम्बन्ध को इतना जीर्ण समझ रही हो कि उसे वायु और प्रकाश से भी बचाया जाये ? वह एक आध्यात्मिक सम्बन्ध है, अटल और अचल है। कोई पार्थिव शक्ति उसे तोड नही सकती। कितने शोक की बात है कि हमारे आत्मिक ऐक्य से भली-भाँति परिचित हो कर भी तुम मेरी इतनी अवहेलना कर रही हो। क्या मैं यह समझ लूँ कि तुम इतने दिनो तक केवल गुडियो का खेल खेल रही थी ? अगर वास्तव मे यही बात है तो तुमने मुझे कही का न रखा। मैं अपना तन और मन, धर्म और कर्म सब प्रेम की भेंट कर चुका हूँ। मेरा विचार था कि तुमने भी सोच समझ कर प्रेम पथ पर पग रखा है और उसकी कठिनाइयो को जानती हो। प्रेम का मार्ग कठिन है, दुर्गम और अपार। यहाँ बदनामी है, कलक है। यहाँ लोकनिन्दा और अपमान है, लाछन है—व्यग है। यहाँ वही धाम पर पहुँचता है जो दुनियाँ से मुँह मोडे, ससार से नाता तोडे। इस मार्ग मे सासारिक सम्बन्ध पैरो की बेडी है, उसे तोडे बिना एक पग भी रखना असम्भव है। यदि तुमने परिणाम का विचार नही किया और केवल मनोविनोद के लिए चल खड़ी हुई तो तुमने मेरे साथ घोर अन्याय किया। इसका अपराध तुम्हारी गरदन पर होगा।

यद्यपि ज्ञानशकर मनोभावो को गुप्त रखने मे सिद्धहस्त थे, पर इस समय उनका खिसियाया हुआ चेहरा उनकी इस सारगर्भित प्रेमव्याख्या का पर्दा खोल देता था। मुलम्मे की अँगूठी ताव खा चुकी थी।

इससे पहले ज्ञानशकर के मुँह से ये बातें सुन कर कदाचित् गायत्री रोने लगती और ज्ञानशकर के पैरो पर गिर क्षमा माँगती, नही, बल्कि ज्ञानशकर की अभक्ति पर ये शब्द स्वय उसके मुँह से निकलते। लेकिन वह नशा हिरन हो चुका था। उसने ज्ञानशकर के मुँह की तरफ उड़ती हुई निगाह से देखा। वहाँ भक्ति का रोग न था। नट के लम्बे केश और भडकीले वस्त्र उतर चुके थे। वह मुखश्री जिसपर दर्शकगण लट्टू हो जाते थे और जिसका रगमच पर करतल-ध्वनि से स्वागत किया जाता था क्षीण हो गयी थी। जिस प्रकार कोई सीधा-सादा देहाती एक बार ताशवालो के दल मे आ कर फिर उसके पास खडा भी नही होता कि कही उनके बहकावे मे न आ जाये, उसी प्रकार गायत्री भी यहाँ से दूर भागना चाहती थी। उसने ज्ञानशकर को कुछ उत्तर न दिया और विद्या का हाथ पकड़े हुए द्वार की ओर चली। ज्ञानशकर को ज्ञात हो गया कि मेरा मत्र न चला। उन्हे क्रोध आया, मगर गायत्री पर नही, अपनी विफलता और दुर्भाग्य पर। शोक ! मेरी सात वर्षों की अविश्रान्त तपस्याएँ निष्फल हुई जाती हैं। जीवन की आशाएँ सामने आ कर रूठी जाती हैं—क्या करूँ ? उन्हे क्योकर मनाऊँ ? मैंने अपनी आत्मा पर कितना अत्याचार किया, कैसे-कैसे षड्यन्त्र रचे ? इसी एक अभिलाषा पर अपना दीन-ईमान न्यौछावर कर दिया। वह सब कुछ किया जो न करना चाहिए था। नाचना सीखा, नकल की, स्वाँग भरे, पर सारे प्रयत्न निष्फल हो गये। राय साहब ने सच कहा था कि सम्पत्ति तेरे भाग्य मे नही है। मेरा मनोरथ कभी पूरा न होगा। यह अभिलाषा चिता पर मेरे साथ जलेगी। गायत्री की निष्ठुरता भी कुछ कम हृदय-विदा-

रक न थी। ज्ञानशकर को गायत्री से सच्चा प्रेम न सही, पर वह उसके रूप-लावण्य पर मुग्ध थे। उसकी प्रतिभा, उदारता, स्नेहशीलता, बुद्धिमत्ता, सरलता उन्हे अपनी ओर खीचती थी। अगर एक ओर गायत्री होती और दूसरी ओर उसकी जायदाद और ज्ञानशकर से कहा जाता तुम इन दोनो मे से जो चाहो ले लो तो अवश्यम्भावी था कि वह उसकी जायदाद पर ही लपकते, लेकिन उसकी जान से अलग हो कर उसकी जायदाद लवण-हीन भोजन के समान थी। वही गायत्री उनसे मुँह फेर कर चली जाती थी।

इन क्षोभयुक्त विचारो ने ज्ञानशकर के हृदय को इतना मसोसा कि उनकी आँखे भर आयी। वह कुर्सी पर बैठ गये और दीवार की तरफ मुँह फेर कर रोने लगे। अपनी विवशता पर उन्हे इतना दुःख कभी न हुआ था। वे अपनी याद मे इतने शोकातुर कभी न हुए थे। अपनी स्वार्थपरता, अपनी इच्छा-लिप्सा अपनी क्षुद्रता पर इतनी ग्लानि कभी न हुई थी। जिस तरह बीमारी मे मनुष्य को ईश्वर याद आता है उसी तरह अकृतकार्य होने पर उसे अपने दुस्साध्यो पर पश्चात्ताप होता है। पराजय का आध्यात्मिक महत्त्व विजय से कही अधिक होता है।

गायत्री ने ज्ञानशकर को रोते देखा तो द्वार पर जा कर ठिठक गयी। उसके पग वाहर न पड सके। स्त्रियो के आँसू पानी है, वे धैर्य और मनोबल के ह्रास के सूचक है। गायत्री को अपनी निठुरता और अश्रद्धा पर खेद हुआ। आत्म-रक्षा की अग्नि जो एक क्षण पहले प्रदीप्त हुई थी इन आँसुओ से बुझ गयी। वे भावनाएँ सजीव हो गयी जो सात वरसो से मन को लालायित कर रही थी, वे सुखद वार्ताएँ, वे मनोहर क्रीडाएँ, वे आनन्दमय कीर्तन, वे प्रीति की बाते, वे वियोग-कल्पनाएँ नेत्रो के सामने फिरने लगी। लज्जा और ग्लानि के बादल फट गये, प्रेम का चाँद चमकने लगा। वह ज्ञानशकर के पास आकर खडी हो गयी और रूमाल से उनके आँसू पोछने लगी। प्रेमानुराग से विह्वल हो कर उसने उनका मस्तक अपनी गोद मे रख लिया। उन अश्रुप्लावित नेत्रो से उसे प्रेम का अथाह सागर लहरें मारता हुआ नजर आया। यह मुख-कमल प्रेम-सूर्य की किरणो से विकसित हो रहा था। उसने उनकी तरफ सतृष्ण नेत्रो से देखा, उनमे क्षमा प्रार्थना भरी हुई थी मानो वह कह रही थी, हा! मै कितनी दुर्बल, कितनी श्रद्धा-हीन हूँ। कितनी जडभक्त हूँ कि रूप और गुण का निरूपण न कर सकी। मेरी अभक्ति ने इनके विशुद्ध और कोमल हृदय को व्यथित किया होगा। तुमने मुझे धरती से आकाश पर पहुँचाया, तुमने मेरे हृदय मे शक्ति का अकुर जमाया, तुम्हारे ही सदुपदेशो से मुझे सत्प्रेम का स्वर्गीय आनन्द प्राप्त हुआ। एकाएक मेरी आँखो पर पर्दा कैसे पड गया? मैं इतनी अधी कैसे हो गयी? निस्सन्देह कृष्ण भगवान् मेरी परीक्षा ले रहे थे और मैं उसमे अनुत्तीर्ण हो गयी। उन्होने मुझे प्रेम-कसौटी पर कसा और मै खोटी निकली। शोक! मेरी सात वर्षो की तपस्या एक क्षण मे भग हो गयी। मैंने उस पुरुष पर सन्देह किया जिसके हृदय मे कृष्ण का निवास है, जिसके कठ मे मुरली की ध्वनि है। राधा! तुमने क्यो मेरे दिल पर से अपना जादू खीच लिया? मेरे हृदय मे आ कर बैठो और मुझे धर्म का अमृत पिलाओ।

यह सोचते-सोचते गायत्री की आँखें अनुरक्त हो गयी। वह कम्पित स्वर से बोली—भगवन्! तुम्हारी चेरी तुम्हारे सामने हाथ बाँधे खडी अपने अपराधों की क्षमा माँगती है।

ज्ञानशंकर ने उसे चुभती हुई दृष्टि से देखा और समझ गये कि मेरे आँसू काम कर गये। इस तरह चौंक पडे मानो नींद से जगे हो और बोले—राधा?

गायत्री—मुझे क्षमा दान दीजिए।

ज्ञान—तुम मुझसे क्षमा दान माँगती हो? यह तुम्हारा अन्याय है! तुम प्रेम की देवी हो, वात्सल्य की मूर्ति निर्दोष, निष्कलंक। यह मेरा दुर्भाग्य है कि तुम इतनी अस्थिर चित्त हो! प्रेमियो के जीवन मे सुख कहाँ? तुम्हारी अस्थिरता ने मुझे संज्ञाहीन कर दिया है। मुझे अब भी भ्रम हो रहा कि गायत्री देवी से बाते कर रहा हूँ या राधा रानी से। मै अपने आपको भूल गया हूँ। मेरे हृदय को ऐसा आघात पहुँचा है कि कह नही सकता यह घाव कभी भरेगा या नहीं? जिस प्रेम और भक्ति को मैं अटल समझता था, वह बालू की भीत से भी ज्यादा पोली निकली। उस पर मैंने जो आशा-लता आरोपित की थी, जो बाग लगाया था वह सब जलमग्न हो गया। अहा! मैं कैसे-कैसे मनोहर स्वप्न देख रहा था? सोचा था, यह प्रेम वाटिका कभी फूलो से लहरायेगी, हम और तुम सासारिक मायाजाल को हटा कर वृन्दावन के किसी शान्तिकुंज मे बैठे हुए भक्ति का आनन्द उठायेंगे। अपनी प्रेम-ध्वनि से वृक्ष कुंजो को गुंजित कर देंगे। हमारे प्रेम-गान से कालिन्दी की लहरे प्रतिध्वनित हो जायेगी। मै कृष्ण का चाकर बनूंगा, तुम उनके लिए पकवान बनाओगी। संसार से अलग, जीवन के अपवादो से दूर हम अपनी प्रेम-कुटी बनायेंगे और राधाकृष्ण की अटल भक्ति मे जीवन के बचे हुए दिन काट देंगे अथवा अपने ही कृष्ण मन्दिर मे राधाकृष्ण के चरणो से लगे हुए इस असार संसार से प्रस्थान कर जायेंगे। इसी सदुद्देश्य से मैंने आपकी रियासत की और यहाँ की पूरी व्यवस्था की। पर अब ऐसा प्रतीत हो रहा है कि वह सब शुभ कामनाएँ दिल मे ही रहेगी और मैं शीघ्र ही संसार से हताश और भग्न-हृदय विदा हूँगा।

गायत्री प्रेमोन्मत्त हो कर बोली—भगवन्, ऐसी बाते मुँह से न निकालो। मैं दीन अबला हूँ, अज्ञान के अन्धकार मे डूबी हुई, मिथ्या भ्रम मे पड जाती हूँ, पर मैंने तुम्हारा दामन पकडा है, तुम्हारी शरणागत हूँ, तुम्हे मेरी क्षुद्रताएँ, मेरी दुर्बलताएँ सभी क्षमा करनी पडेगी। मेरी भी यही अभिलाषा है कि तुम्हारे चरणो से लगी रहूँ। मैं भी संसार से मुँह मोड लूँगी, सबसे नाता तोड लूँगी और तुम्हारे साथ बरसाने और वृन्दावन की गलियो मे विचरूँगी। मुझे अगर कोई सांसारिक चिन्ता है तो वह यह है कि मेरे पीछे मेरे इलाके का प्रबन्ध सुयोग्य हाथो मे रहे, मेरी प्रजा पर अत्याचार न हो और रियासत की आमदनी परमार्थ मे लगे। मेरा और तुम्हारा निर्वाह दस-बारह हजार रुपयो मे हो जायगा। मुझे और कुछ न चाहिए। हाँ, यह लालसा अवश्य है कि मेरी स्मृति बनी रहे, मेरा नाम अमर हो जाये, लोग मेरे यश और कीर्ति की चर्चा करते रहे। यही चिन्ता है जो अब तक मेरे पैरो की बेडी बनी हुई है। आप इस बेडी को काटिए। यह भार मैं आप के ही ऊपर रखती हूँ। ज्यो ही आप इन दोनो बातो

की व्यवस्था कर देंगे मैं निश्चिन्त हो जाऊँगी और फिर यावज्जीवन हम मे वियोग न होगा। मेरी तो यह राय है कि एक 'ट्रस्ट' कायम कर दीजिए। मेरे पतिदेव की भी यह इच्छा थी।

ज्ञानशकर—ट्रस्ट कायम करना तो आसान है, पर मुझे आशा नही है कि उससे आपका उद्देश्य पूरा हो। मैं पहले भी दो-एक बार ट्रस्ट के विषय मे अपने विचार प्रकट कर चुका हूँ। आप अपने विचार मे कितने ही नि स्पृह, सत्यवादी ट्रस्टियो को नियुक्त करे, लेकिन अवसर पाते ही वे अपने घर भरने पर उद्यत हो जायेंगे। मानव स्वभाव बडा ही विचित्र है। आप किसी के विषय मे विश्वस्त रीति से नही कह सकती कि उसकी नीयत कभी डाँवाडोल न होगी, वह सन्मार्ग से कभी विचलित न होगा। हम तो वृन्दावन मे बैठे रहेगे, यहाँ प्रजा पर नाना प्रकार के अत्याचार होगे। कौन उसकी फरियाद सुनेगा ? सदाव्रत की रकम नाच मुजरे मे उडेगी, रासलीला की रकम गार्डन-पार्टियो मे खर्च होगी, मन्दिर की सजावट के सामान ट्रस्टियो के दीवानखाने मे नजर आयेगे, साधु-महात्माओ के सत्कार के बदले यारो की दावते होगी, आपको यश की जगह अपयश मिलेगा। यो तो कहिए आपकी आज्ञा का पालन कर दूँ, लेकिन ट्रस्टियो पर मेरा जरा भी विश्वास नही है। आपका उद्देश्य उसी दशा मे पूरा होगा जब रियासत किसी ऐसे व्यक्ति के हाथो मे हो जो आपको अपना पूज्य समझता हो, जिसे आपसे श्रद्धा हो, जो आपका उपकार माने, जो दिल से आपकी शुभेच्छाओ का आदर करता हो, जो स्वय आपके ही रग मे ही रँगा हुआ हो, जिसके हृदय मे दया और प्रेम हो; और यह सब गुण उसी मनुष्य मे हो सकते है जिसे आपसे पुत्रवत् प्रेम हो, जो आपको अपनी माता समझता हो। अगर आपको ऐसा कोई लड़का नजर आये तो मैं सलाह दूँगा उसे गोद ले लीजिए। इससे उत्तम मुझे और कोई व्यवस्था नही सूझती। सभव है कुछ दिनो तक हमको उसकी देख-रेख करनी पडे, किंतु इसके बाद हम स्वच्छन्द हो जायँगे। तब हमारे आनन्द और बिहार के दिन होगे। मैं अपनी प्यारी राधा के गले मे प्रेम का हार डालूँगा, उसे प्रेम के राग सुनाऊँगा, दुनिया की कोई चिन्ता, कोई उलझन, कोई झोका हमारी शाति मे विघ्न न डाल सकेगा।

गायत्री पुलकित हो गयी। उस आनन्दमय जीवन का दृश्य उसकी कल्पना मे सचित्र हो गया। उसकी तबियत लहराने लगी। इस समय उसे अपने पति की वह वसीयत याद न रही जो उन्होने जायदाद के प्रबन्ध के विषय मे की थी और जिसका विरोध करने के लिए वह ज्ञानशकर से कई बार गम हो पडी थी। वह ट्रस्ट के गुण-दोष पर स्वय कुछ विचार न कर सकी। ज्ञानशकर का कथन निश्चयवाचक था। ट्रस्ट पर से उसका विश्वास उठ गया। बोली—आपका कहना यथार्थ है। ट्रस्टियो का क्या विश्वास है। आदमी किसी के मन तो पैठ नही सकता, अन्दर का हाल कौन जाने ?

वह दो-तीन मिनट तक विचार मे मग्न रही। सोच रही थी कि ऐसा कौन लडका है जिसे मैं गोद ले सकूँ। मन ही मन अपने सम्बन्धियो और कुटुम्बियो का दिग्दर्शन किया, लेकिन यह समस्या हल न हुई। लड़के थे, एक नही अनेक, लेकिन किसी न

किसी कारण से वह गायत्री को न जँचते थे। सोचते-सोचते सहसा वह चौंक पड़ी और मायाशकर का नाम उसकी जबान पर आते-आते रह गया। ज्ञानशकर ने अब तक अपनी मनोवाछा को ऐसा गुप्त रखा था और अपने आत्म-सम्मान की ऐसी धाक जमा रखी थी कि पहले तो मायाशकर की ओर गायत्री का ध्यान ही न गया और जब गया तो उसे अपना विचार प्रकट करते हुए भय होता था कि कही ज्ञानशकर के मर्यादा-शील हृदय को चोट न लगे। हालाँकि ज्ञानशकर का इशारा साफ था, पर गायत्री पर इस समय वह नशा था जो शराब और पानी मे भेद नही कर सकता। उसने कई बार हिम्मत की कि यह जिक्र छेड़ूँ, किन्तु ज्ञानशकर के चेहरे से ऐसा निष्काम भाव झलक रहा था कि उसकी जबान न खुल सकी। मायाशकर की विचारशीलता, सच्चरित्रता, बुद्धिमत्ता आदि अनेक गुण उसे याद आने लगे। उससे अच्छे उत्तराधिकारी की वह कल्पना भी न कर सकती थी। ज्ञानशकर उसको असमजस मे देख कर बोले—आया कोई लडका ध्यान मे?

गायत्री सकुचाती हुई बोली—जी हाँ, आया तो, पर मालूम नही आप भी उसे पसद करेंगे या नही? मैं इससे अच्छा चुनाव नही कर सकती।

ज्ञानशकर—सुनूँ कौन है?

गायत्री—वचन दीजिए कि आप उसे स्वीकार करेंगे।

ज्ञानशकर के हृदय मे गुदगुदी होने लगी। बोले—बिना जाने-बूझे मैं यह वचन कैसे दे सकता हूँ?

गायत्री—मैं जानती हूँ कि आपको उसमे आपत्ति होगी और विद्या तो किसी प्रकार राजी ही न होगी, लेकिन इस बालक के सिवा मेरी नजर और किसी पर पडती ही नही।

ज्ञानशकर अपने मनोल्लास को छिपाये हुए बोले—सुनूँ तो किसका भाग्य-सूर्य उदय हुआ है।

गायत्री—बता दूँ? बुरा तो न मानिएगा न?

ज्ञान—जरा भी नही, कहिए।

गायत्री—मायाशकर।

ज्ञानशकर इस तरह चौक पडे मानो कानो के पास कोई बन्दूक छूट गयी हो। विस्मित नेत्रो से देखा और इस भाव से बोले मानो उसने दिल्लगी की है—मायाशकर!

गायत्री—हाँ, आप वचन दे चुके हैं, मानना पडेगा।

ज्ञानशकर—मैंने कहा था कि नाम सुन कर राय दूँगा। अब नाम सुन लिया और विवशता से कहता हूँ मैं आप से सहमत नही हो सकता।

गायत्री—मैं यह बात पहले से ही जानती थी, पर मुझमे और आप मे जो सम्बन्ध है उसे देखते हुए आपको आपत्ति न होनी चाहिए।

ज्ञानशकर—मुझे स्वय कोई आपत्ति नही है। मै अपना सर्वस्व आप पर समर्पण कर चुका हूँ, लडका भी आप की भेंट है, लेकिन आपको मेरी कुल-मर्यादा का हाल मालूम है। काशी मे इतना सम्मानित और कोई घराना नही है। सब तरह से पतन

होने पर भी उसका गौरव अभी तक बचा हुआ है। मेरे चाचा और सम्बन्धी इसे कभी मजूर न करेंगे और विद्या तो सुन कर विष खाने को उतारू हो जायेगी। इसके अतिरिक्त मेरी बदनामी भी है। सम्भव है लोग यह समझेंगे कि मैने आपकी सरलता और उदारता से अनुचित लाभ उठाया है और आपके कुटम्ब के लोग तो मेरी जान के गाहक ही हो जायेंगे।

गायत्री—मेरे कुटम्बियो की ओर से तो आप निश्चिन्त रहिए, मैं उन्हे आपस मे लडा कर मारूँगी। बदनामी और लोक-निन्दा आपको मेरी खातिर से सहनी पडेगी। रही विद्या, उसे मैं मना लूंगी।

ज्ञान—नही,यह आशा न रखिए। आप उसे मनाना जितना सुगम समझ रही है उससे कही कठिन है। आपने उसके तेवर नही देखे। वह इस समय सौतिया डाह से जल रही है। उसे अमृत भी दीजिए तो विष समझेगी। जब तक लिखा-पढी न हो जाय और प्रथानुसार सब सस्कार पूरे न हो जाये उसके कानो मे इसकी भनक भी न पडनी चाहिए। यह तो सच होगा, मगर उन लोगो की हाय किस पर पडेगी जो बरसो से रियासत पर दाँत लगाये बैठे है ? उनके घरो मे तो कुहराम मच जायगा। सब के सब मेरे खून के प्यासे हो जायेंगे। यद्यपि मुझे उनसे कोई भय नही है, लेकिन शत्रु को कभी तुच्छ न समझना चाहिए। हम जिससे धन और धरती छीन लें उससे कभी नि शक नही रह सकते।

गायत्री—आप इन दुष्टो का ध्यान ही न कीजिए। ये कुत्ते है, एक छीछडे पर लड मरेंगे।

ज्ञानशकर कुछ देर तक मौन रूप से जमीन की ओर ताकते रहे, जैसे कोई महान् त्याग कर रहे हो। फिर सजल नेत्रो से बोले, जैसी आपकी मरजी, आपकी आज्ञा सिर पर है। परमात्मा से प्रार्थना है कि यह लडका आपको मुबारक हो और उससे आपकी जो आशाएँ हैं वह पूरी हो। ईश्वर उसे सद्बुद्धि प्रदान करे कि वह आपके आदर्श को चरितार्थ करे। वह आज से मेरा लड़का नही , आपका है। तथापि अपने एकमात्र पुत्र को छाती से अलग करते हुए दिल पर जो कुछ बीत रही है वह मैं ही जानता हूँ, लेकिन वृन्दावनबिहारी ने आपके अन्त करण मे यह बात डाल कर मानो हमारे लिए भक्ति-पथ का द्वार खोल दिया है। वह हमे अपने चरणो की ओर बुला रहे है। यह हमारा परम सौभाग्य है।

गायत्री ने ज्ञानशकर का हाथ पकड कर कहा—कल ही किसी पडित से शुभ मुहूर्त्त पूछ लीजिए।

५१

रात के आठ बजे थे। ज्ञानशकर के दीवानखाने मे शहर के कई प्रतिष्ठित सज्जन जमा थे। बीच मे एक लोहे का हवनकुड रखा हुआ था, उसमे हवन हो रहा था। हवनकुड के एक तरफ गायत्री बैठी थी, दूसरी तरफ ज्ञानशकर और माया। एक

पडिताजी वेद-मन्त्रो का पाठ कर रहे थे। गायत्री का चम्पई वर्ण अग्नि-ज्वाला से प्रतिविम्वित हो कर कुन्दन हो रहा था। फिरोजी रग की साडी उसपर खूब खिल रही थी। सवकी आँखे उसी के मुख-दीपक की ओर लगी हुई थी। यह माया को गोद लेने का सस्कार था, वह गायत्री का धर्मपुत्र वन रहा था। कुछ सज्जन आपस मे कानाफूसी कर रहे थे, कैसा भाग्यवान लडका है! लाखो की सम्पत्ति का स्वामी वनाया जाता है, यहाँ आज तक एक पैसा भी पडा हुआ न मिला। कुछ लोग कह रहे थे—ज्ञानशकर एक ही वना हुआ आदमी है, ऐसा हत्थे पर चढाया कि जायदाद ले कर ही छोड़ा। अव मालूम हुआ कि महाशय ने स्वॉग किस लिए रचा था। यह जटाएँ इसी दिन के लिए वढायी थी। कुछ सज्जनो का मत था कि ज्ञानशकर इससे भी कही मलिन-हृदय है।

लाला प्रभाशंकर ने पहले यह प्रस्ताव सुना तो वहुत विगडे, लेकिन जव गायत्री ने वडी नम्रता से सारी परिस्थिति प्रकट की तो वह भी नीमराजी मे हो गये। हवन के पश्चात् दावत शुरु हुई। इसका सारा प्रवन्ध उन्ही के हाथो मे था। उनकी अर्व-स्वीकृति को पूर्ण वनाने का इससे उत्तम कोई अन्य उपाय न था। उन्हे पूरा अधिकार दे दिया गया था कि वह जितना चाहे खर्च करें, जो पदार्थ चाहे पकवायें। अतएव इस अवसर पर उन्होंने अपनी सम्पूर्ण पाककला प्रदर्शित कर दी थी। इस समय खुशी से उनकी वॉछें खिली जाती थी, लोगो के मुँह मे भोजन की सराहना सुन सुन कर फूले न समाते थे। इनमे कितने ही ऐसे सज्जन थे जिन्हे भोजन से नितान्त अरुचि रहती थी। जो दावतो मे शरीक होना अपने ऊपर अन्याय समझते थे। ऐसे लोग भी थे जो प्रत्येक वस्तु को गिन कर और तौल कर खाते थे। पर इन स्वादयुक्त पदार्थो ने तीव्र और मन्द अग्नि मे कोई भेद न रक्खा था। रुचि ने दुर्वल पाचनशक्ति को भी सवल वना दिया था।

दावत समाप्त हो गयी तो गाना शुरू हुआ। अलहदीन एक सात वर्ष का वालक था, लेकिन गानशास्त्र का पूरा पडित और सगीत कला मे अत्यन्त निपुण। यह उसकी ईश्वरदत्त शक्ति थी। जलतरग, ताऊस, सितार, सरोद, वीणा, पखावज, सारंगी—सभी यन्त्रो पर उसका विलक्षण आधिपत्य था। इतनी अल्पावस्था मे उसकी यह अलौकिक सिद्धि देख कर लोग विस्मित हो जाते थे। जिन गायनाचार्यो ने एक एक यन्त्र की सिद्धि मे अपना जीवन विता दिया वह भी उसके हाथो की सफाई और कोमलता पर सिर धुनते थे। उसकी वहुज्ञता उनकी विशेषता को लज्जित किये देती थी। इस समय समस्त भारत मे उसकी ख्याति थी, मानो उसने दिग्विजय कर लिया हो। ज्ञानशकर ने उस उत्सव पर उसे कलकत्ते से वुलाया था। वह वहुत दुर्वल, कुत्सित, कुरूप वालक था, पर उसका गुण उसके रूप को भी चमत्कृत कर देता था। उसके स्वर मे कोयल की कूक का सा माधुर्य्य था। सारी सभा मुग्ध हो गयी।

इधर तो यह राग-रग था, उधर विद्या अपने कमरे मे वैठी हुई भाग्य को रो रही थी। तवले की एक-एक थाप उसके हृदय पर हथौडे की चोट के समान लगती थी।

वह एक गर्वशीला, धर्मनिष्ठा, सन्तोष और त्याग के आदर्श का पालन करनेवाली महिला थी। यद्यपि पति की स्वार्थभक्ति से उसे घृणा थी, पर इस भाव को वह अपनी पति-सेवा में बाधक न होने देती थी। पर जब से उसने रायसाहब के मुँह से ज्ञानशंकर के नैतिक अध पतन का वृत्तान्त सुना था तब से उसकी पति-श्रद्धा क्षीण हो गयी थी! आज का लज्जास्पद दृश्य देख कर बची-खुची श्रद्धा भी जाती रही। जब ज्ञानशंकर को देख कर गायत्री दीवानखाने के द्वार पर आ कर फिर उनके पास चली गयी तो विद्या वहाँ न ठहर सकी। वह उन्माद की दशा में तेजी से ऊपर आयी और अपने कमरे में फर्श पर गिर पड़ी। यह ईर्षा का भाव न था जिसमें अहि चिन्ता होती है, यह प्रीति का भाव न था जिसमें रक्त की तृष्णा होती है। यह अपने आपको जलानेवाली आग थी, यह वह विघातक क्रोध था जो अपना ही ओठ चबाता है, अपना ही चमड़ा नोचता है, अपने ही अंगों को दाँतों से काटता है। वह भूमि पर पड़ी सारी रात रोती रही। अब मैं किसकी हो कर रहूँ? मेरा पति नहीं, मेरा घर अब मेरा घर नहीं। मैं अब अनाथ हूँ, कोई मेरा पूछनेवाला नहीं। ईश्वर! तुमने किस पाप का मुझे दंड दिया? मैंने तो अपने जानते किसी का बुरा नहीं चेता। तुमने मेरा सर्वनाश क्यों किया? मेरा सुहाग क्यों लूट लिया? यही एक मेरे धन था, इसी का मुझे अभिमान था, इसी का मुझे बल था। तुमने मेरा अभिमान तोड़ दिया, मेरा बल हर लिया। जब आग ही नहीं तो राख किस काम की। यह सुहाग की पिटारी है, यह सुहाग की टिकिया है, उन्हें ले कर क्या करूँ? विद्या ने सुहाग की पिटारी ताक पर से उतार ली और उसी आत्म-वेदना और नैराश्य की दशा में उनकी एक-एक चीज खिड़की से नीचे बाग में फेंक दी। कितना करुणाजनक दृश्य था? आँखों से अश्रु-धारा बह रही थी और वह अपनी चूड़ियाँ तोड़-तोड़कर जमीन पर फेंक रही थी। यह उसके निर्बल क्रोध की चरम सीमा थी! वह एक ऐश्वर्यशाली पिता की पुत्री थी, यहाँ उसे इतना आराम भी न था जो उसके मैके की महरियों को था, लेकिन उसके स्वभाव में सन्तोष और धैर्य था। अपनी दशा में सन्तुष्ट थी। ज्ञानशंकर स्वार्थ-सेवी थे, लोभी थे, निष्ठुर थे, कर्त्तव्यहीन थे, इसका उसे शोक था। मगर अपने थे, उनको समझाने का, उनका तिरस्कार करने का उसे अधिकार था। उनकी दुष्टता, नीचता और भोग-विलास का हाल सुन कर उसके शरीर में आग सी लग गयी थी। वह लखनऊ से शमिनी बनी हुई आयी। वह ज्ञान-शंकर पर तड़पना और उनकी कुवृत्तियों को भस्मीभूत कर देना चाहती थी, वह उन्हें व्यंग-शरों से छेदना और कटु शब्दों से उनके हृदय को वेधना चाहती थी। इस वक्त तक उसे अपने सोहाग का अभिमान था। रात के आठ बजे तक वह ज्ञानशंकर को अपना समझती थी, अपने को उन्हें कोसने की, उन्हें जलाने की अधिकारिणी समझती थी, उसे उनको लज्जित, अपमानित करने का हक था, क्योंकि वह अपने थे। हमसे अपने घर में आग लगते नहीं देखी जाती। घर चाहे मिट्टी का ढेर ही क्यों न हो, खण्डहर ही क्यों न हो, हम उसे आग में जलने नहीं देख सकते। लेकिन जब किसी कारण से वह घर अपना न रहे तो फिर चाहे अग्नि-शिखा आकाश तक जाये, हमको

शोक नही होता। रात के निन्द्य घृणित दृश्य ने विद्या के दिल से इस अपने-पन को, इस ममत्व को मिटा दिया था। अब उसे दुःख था तो अपने अभाग्य का, शोक था तो अपनी अवलम्ब-हीनता का। उसकी दशा उस पतग सी थी, जिसकी डोर टूट गयी हो, अथवा उस वृक्ष सी जिसकी जड कट गयी हो।

विद्या सारी रात इसी उद्विग्न दशा मे पडी रही। कभी सोचती लखनऊ चली जाऊँ और वहाँ जीवनक्षेप करूँ, कभी सोचती जीकर करना ही क्या है, ऐसे जीने से मरना क्या बुरा है? सारी रात आँखो मे कट गयी। दिन निकल आया, लेकिन उसका उठने का जी न चाहता था। इतने मे श्रद्धा आ कर खडी हो गयी और उसके श्रीहीन मुख की ओर देख कर बोली—क्या आज सारी रात जागती रही? आँखे लाल हो रही है।

विद्या ने आँखे नीची करके कहा—हाँ, आज नीद नही आयी।

श्रद्धा—गायत्री देवी से कुछ बातचीत नही हुई। मुझे तो ढग ही निराले दीखते है। तुम तो इनकी बडी प्रशसा किया करती थी।

विद्या—क्यो, कोई नयी बात देखी क्या?

श्रद्धा—नित्य ही देखती हूँ। लेकिन रात जो दृश्य देखा और जो बाते सुनी वह कहते लज्जा आती है। कोई ग्यारह बजे होगे। मुझे अपने कमरे मे पडे-पडे नीचे किसी के बोल-चाल की आहट मिली। डरी कि कही चोर न आये हो। धीरे से उठ कर नीचे गयी। दीवानखाने मे लैम्प जल रहा था। मैने शीशे के अन्दर झाँका तो मन मे कट कर रह गयी। अब तुमसे क्या कहूँ, मैं गायत्री को इतनी चचल न समझती थी। कहाँ तो कृष्ण की उपासना करती है, कहाँ छिछोरापन। मैं तो उन्हे देखते ही मन मे खटक गयी थी, पर यह न जानती थी कि इतने गहरे पानी मे है।

विद्या—मैने भी तो कुछ ऐसा तमाशा देखा था। तुम मेरे आने के बहुत देर पीछे गयी थी। मुझे लखनऊ मे ही सारी कथा मालूम हो गयी थी। इसी भयकर परिणाम को रोकने के लिए मैं वहाँ से दौडी आयी, किन्तु यहाँ का रग देख कर हताश हो गयी। ये लोग अब मँझधार मे पहुँच चुके है, उन्हे बचाना दुस्तर है। लेकिन मैं फिर कहूँगी कि इसमे गायत्री बहिन का दोष नही, सारी करतूत इन्ही महाशय की है जो जटा बढाये, पीताम्बर पहने भगत जी बने फिरते है। गायत्री बेचारी सीधी-सादी, सरल स्वभाव की स्त्री है। धर्म की ओर उसकी विशेष रुचि है, इसीलिए यह महाशय भी भगत बन बैठे और यह भेष धारण करके उसपर अपना मत्र चलाया। ऐसा पापात्मा ससार मे न होगा। बहिन, तुमसे दिल की बात कहती हूँ, मुझे इनकी सूरत से घृणा हो गयी। मुझपर ऐसा आघात हुआ है कि मेरा बचना मुश्किल है। इस घोर पाप का दड अवश्य मिलेगा। ईश्वर न करे मुझे इन आँखो से कुल का सर्वनाश देखना पडे। वह सोने की घडी होगी जब ससार से मेरा नाता टूटेगा।

श्रद्धा—किसी की बुराई करना तो अच्छा नही है और इसी लिए मैं अब तक सब कुछ देखती हुई भी अन्धी बनी रही, लेकिन अब बिना बोले नही रहा जाता। मेरा वश चले तो ऐसी कुटिलाओ का सिर कटवा लूँ। यह भोलापन नही है, बेहयाई

है। दिखाने के लिए भोली बनी बैठी हुई है। पुरुष हजार रसिया हो, हजार चतुर हो, हजार घातिया हो, हजार डोरे डाले, किन्तु सती स्त्रियो पर उसका एक मन्त्र भी नही चल सकता। वह आँख ही क्या जो एक निगाह मे पुरुष की चाल ढाल को ताड न ले। जलाना आग का गुण है, पर हरी लकडी को भी किसी ने जलते देखा है? हया स्त्रियो की जान है, इसके बिना वह सूखी लकडी है जिन्हे आग की एक चिनगारी जला कर राख कर देती है। इसे अपने पति देव की आत्मा पर भी दया न आयी। उसे कितना क्लेश हो रहा होगा? इसके आने से मेरा घर अपवित्र हो गया। रात को दोनो प्रेमियो की बातो की भनक जो मेरे कान मे पड़ी, उससे ऐसा कुछ मालूम होता है कि गायत्री माया को गोद लेना चाहती है।

विद्या ने भयभीत हो कर कहा—माया को ?

श्रद्धा—हाँ, शायद आज ही उसकी तैयारी है। शहर मे नेवता भेजे जा रहे है।

विद्या की आँखो मे आँसू की बडी-बडी बूँदे दिखायी दी जैसे मटर की फली मे दाने होते है। बोली, बहिन तब तो मेरी नाव डूब गयी। जो कुछ होना था हो चुका। अब सारी स्थिति समझ मे आ गयी। इस धूर्त ने इसीलिए यह जाल फैलाया था, इसीलिए इसने यह भेष रचा है, इसी नीयत से इसने गायत्री की गुलामी की थी। मैं पहले ही डरती थी। कितना समझाया, कितना मना किया, पर इसने मेरी एक न सुनी। अब मालूम हुआ कि इसके मन मे क्या ठनी थी। आज सात साल से यह इसी धुन मे पड़ा हुआ है। अभी तक मै यह समझती थी कि इसे गायत्री के रग-रूप, बनाव-चुनाव, बातचीत ने मोहित कर लिया है। वह निन्द्य कर्म होने पर भी घृणा के योग्य नही है। जो प्राणी प्रेम कर सकता है वह धर्म, दया, विनय आदि सद्गुणो से शून्य नही हो सकता, प्रेम की ज्योति उसके हृदय को प्रकाशित करती रहती है, लेकिन जो प्राणी प्रेम का स्वाँग भर कर उससे अपना कुटिल अर्थ सिद्ध करता है, जो टट्टी की आड से शिकार खेलता है उससे ज्यादा नीच नराधम कोई हो ही नही सकता। वह उस डाकू से भी गया बीता है जो धन के लिए लोगो के प्राण हर लेता है। वह प्रेम जैसी पवित्र वस्तु का अपमान करता है। उसका पाप अक्षम्य है। मैं बेचारी गायत्री को अब भी निर्दोष समझती हूँ। बहिन, अब इस कुल का सर्वनाश होने मे विलम्ब नही है। जहाँ इतना अधर्म, इतना पाप, इतना छल-कपट हो वहाँ कल्याण कैसे हो सकता है? अब मुझे पिता जी की चेतावनी याद आ रही है। उन्होने चलते समय मुझसे कहा था—अगर तूने यह आग न बुझायी तो तेरे वंश का नाम मिट जायगा। हाय! मेरे रोएँ खडे हो रहे है!, बेचारे माया पर क्या बीतेगी? यह हराम का माल, यह हराम की जायदाद उसकी जान की ग्राहक हो जायेगी, सर्प बन कर उसे डँस लेगी? बहिन, मेरा कलेजा फटा जाता है। मैं अपने माया को इस आग से क्योकर बचाऊँ? वह मेरी आँखो की पुतली है, वही मेरे प्राणो का आधार है। यह निर्दयी पिशाच, यह बधिक मेरे लाल की गर्दन पर छुरी चला रहा है। कैसे उसे गोद मे छिपा लूँ? कैसे उसे हृदय मे बिठा लूँ? बाप हो कर उसको विष दे

रहा है। पाप का अग्नि कुड जला कर मेरे लाल को उसमे झोक देता है। मैं अपनी आँखो यह सर्वनाश नही देख सकती ? बहिन, तुमसे आज कहती हूँ, मुन्नी के जन्म के बाद इस पापी ने मुझे न जाने क्या खिला कर मेरी कोख हर ली, न जाने कौन सा अनुष्ठान कर दिया ? वही विष इसने पहले ही खिला दिया होता, वही अनुष्ठान पहले ही करा दिया होता तो आज यह दिन क्यो आता ? बाँझ रहना इससे कही अच्छा है कि सन्तान गोद से छिन जाय। हाय मेरे लाल को कौन बचायेगा ? मैं अब उसे नही बचा सकती। आग की लहरें उसकी ओर दौडी चली आती है। बहिन, तुम जा कर उस निर्दयी को समझाओ। अगर अब भी हो सके तो मेरे माया को बचा लो। नही, अब तुम्हारे बस की बात नही है, यह पिशाच अब किसी के समझाने से न मानेगा। उसने मन मे ठान लिया हैं तो आज ही सब कुछ कर डालेगा।

यह कहते-कहते वह उठी और खिडकी से नीचे देखा। दीवानखाने के सामने वाले सहन की सफाई हो रही थी, दरियाँ झाडी जा रही थी। उसकी आँखे माया को खोज रही थी, वह माया को अपने हृदय मे चिपटाना चाहती थी। माया न दिखायी दिया। एक क्षण मे मोटर सहन मे आयी, गायत्री और ज्ञानशकर उस पर आ बैठे। माया भी एक मिनट मे दीवानखाने से निकला और मोटर पर आ बैठा। विद्या ने आतुरता से पुकारा—माया, माया! यहाँ आओ! लेकिन या तो माया ने सुना ही नही या सुन कर ध्यान ही नही दिया। वह खडी पुकारती ही रही और मोटर हवा हो गयी। विद्या को ऐसा जान पडा मानो पानी मे पैर फिसल गये। वह तुरत पछाड खा कर गिर पडी। लेकिन श्रद्धा ने सँभाल लिया, चोट नही आयी।

थोडी देर तक विद्या मूर्छित दशा मे पडी रही। श्रद्धा उसका सिर गोद मे लिये बैठी रोती रही। मैं अपने को अभागिनी समझती थी। इस दुखिया की विपत्ति और भी दुस्सह है। किसी रीति से उन्हे (प्रेमशकर को) यह खबरें होती तो वह अवश्य गायत्री को समझाते। गायत्री उनका आदर करती है। शायद मान जाती, लेकिन इस महापुरुष के सामने उनकी भेट तो गायत्री से नही हो सकती। इसी भय से तो घर से बाहर निकल गये हैं कि काम मे कोई विघ्न-बाधा न पडे। कुछ नही, यह सब इसी की भूल है। ज्यो ही मैंने इससे गोद लेने की बात कही, इसे उसी क्षण बाहर जा कर दोनो को फटकारना और माया का हाथ पकड कर खीच लाना चाहिए था। मजाल थी कि मेरे पुत्र को कोई मुझसे छीन ले जाता! सहसा विद्या ने आँखे खोल दी और क्षीण स्वर से बोली—बहिन, अब क्या होगा ?

श्रद्धा—होने को अब भी सब कुछ हो सकता है। करनेवाला चाहिए।

विद्या—अब कुछ नही हो सकता। सब तैयारियाँ हो रही हैं, चाचा जी न जाने कैसे राजी हो गये!

श्रद्धा—मै जरा जा कर कहारो से पूछती हूँ कि कब तक आने को कह गये है।

विद्या—शाम होने के पहले ये लोग कभी न लौटेंगे। माया को हटा देने के

लिए ही यह चाल चली गयी है। इन लोगो ने जो बात मन मे ठान ली है वह हो कर रहेगी। पिता जी का शाप मेरी आँखो के सामने है। यह अनर्थ होना है और होगा।

श्रद्धा—जब तुम्हारी यही दशा हे तो जो कुछ हो जाय वह थोडा है।

विद्या ने कुतूहल से देख कर कहा—भला मेरे बस की कौन सी बात है ?

श्रद्धा—बस की बात क्यो नही है ? अभी शाम को जब यह लोग लौटे तब नीचे चली जाओ और माया का हाथ पकड कर खीच लाओ। वह न आये तो सारी बाते खोल कर उससे कह दो। समझदार लड़का है, तुरन्त उनसे उसका मन फिर जायगा।

विद्या—(सोच कर) और यदि समझाने से भी न आये ? इन लोगो ने उसे खूब सिखा-पढा रखा होगा।

श्रद्धा—तो रात को जब शहर के लोग जमा हो, जा कर भरी सभा मे कह दो, यह सब मेरी इच्छा के विरुद्ध है। मैं अपने पुत्र को गोद नही देना चाहती। लोगो की सब चाले पट पड जाये। तुम्हारी जगह मै होती तो वह महनामथ मचते कि इनके दाँत खट्टे हो जाते। क्या करूँ, मेरा कुछ अधिकार नही है, नही तो इन्हे तमाशा दिखा देती!

विद्या ने निराश भाव से कहा—बहिन, मझसे यह न होगा। मुझमे न इतनी सामर्थ्य है, न साहस। अगर और कुछ न हो, माया ही मेरी बातो को दुलख दे तो उसी क्षण मेरा कलेजा फट जायगा। भरी सभा मे जाना तो मेरे लिए असम्भव है। उधर पैर ही न उठेंगे। उठें भी तो वहाँ जा कर जबान बन्द हो जायेगी।

श्रद्धा—पता नही ये लोग किधर गये है। एक क्षण के लिए गायत्री एकान्त मे मिल जाती तो एक बार मै भी समझा देखती।

५२

दीवानखाने मे आनन्दोत्सव हो रहा था। मास्टर अलहदीन का अलौकिक चमत्कार लोगो को मुग्ध कर रहा था। द्वारो पर दर्शको की भीड लगी हुई थी। सहन मे ठट के ठट कगले जमा थे। मायाशकर को दिन भर के बाद माँ की याद आयी। वह आज आनन्द से फूला न समाता था। जमीन् पर पाँव न पडते थे। दौड-दौड कर काम कर रहा था। ज्ञानशकर बार-बार कहते, तुम आराम से बैठो। इतने आदमी तो है ही, तुम्हारे हाथ लगाने की क्या जरूरत है ? पर उससे बेकार नही बैठा जाता था। कभी लैम्प साफ करने लगता, कभी खसदान उठा लेता। आज सारे दिन मोटर पर सैर करता रहा। लौटते ही पद्मशकर और तेजशकर से सैर का वृत्तान्त सुनाने लगा, यहाँ गये, वहाँ गये, यह देखा, वह देखा। उसे अतिशयोक्ति मे बडा मजा आ रहा था। यहाँ से छुट्टी मिली तो हवन पर जा बैठा। इसके बाद भोजन मे सम्मिलित हो गया। जब गाना आरम्भ हुआ तो उसका चचल चित्त स्थिर हुआ। सब लोग गाना सुनने मे तल्लीन हो रहे थे, उसकी बातें सुननेवाला कोई न था। अब उसे याद आया, अम्माँ को प्रणाम करने तो गया ही नही! ओहो, अम्माँ मुझे देखते ही दौड कर छाती

से लगा लेगी। आशीर्वाद देगी। मेरे इन रेशमी कपड़ों की खूब तारीफ करेगी। वह ख्याली पुलाव पकाता, मुस्कुराता हुआ विद्या के कमरे में गया। वहाँ सन्नाटा छाया हुआ था, एक धुंधली सी दीवालगीर जल रही थी। विद्या पलँग पर पड़ी हुई थी। महरियाँ नीचे गाना सुनने चली गयी थीं। लाला प्रभाशंकर के घर की स्त्रियों को न बुलावा दिया गया था और न वे आयी थीं। श्रद्धा अपने कमरे में बैठी हुई कुछ पढ़ रही थी। माया ने माँ के समीप जा कर देखा—उसके बाल बिखरे हुए थे, आँखों से आँसू बह रहे थे, ओठ नीले पड़ गये थे, मुख निस्तेज हो रहा था। उसने घबरा कर कहा—अम्माँ, अम्माँ! विद्या ने आँखें खोलीं और एक मिनट तक उसकी ओर टकटकी बाँधकर देखती रही मानो अपनी आँखों पर विश्वास नहीं है। तब वह उठ बैठी। माया को छाती से लगा कर उसका सिर अंचल में ढँक लिया मानो उसे किसी आघात से बचा रही हो और उखड़े हुए स्वर में बोली, आओ मेरे प्यारे लाल! तुम्हें आँख भर देख लूँ। तुम्हारे ऊपर बहुत देर से जी लगा हुआ था। तुम्हें लोग अग्निकुंड की ओर ढकेले लिये जाते थे। मेरी छाती धड़-धड़ करती थी! बार-बार पुकारती थी, लेकिन तुम सुनते ही न थे। भगवान् ने तुम्हें बचा लिया। वही दीनों के रक्षक हैं। अब मैं तुम्हें न जाने दूँगी। यहीं मेरी आँखों के सामने बैठो। मैं तुम्हें देखती रहूँगी—देखो, देखो! वह तुम्हें पकड़ने के लिए दौड़ा आता है, मैं किवाड़ बन्द किये देती हूँ। तुम्हारा बाप है। लेकिन उसे तुम्हारे ऊपर जरा भी दया नहीं आती। मैं किवाड़ बन्द कर देती हूँ। तुम बैठे रहो।

यह कहते हुए वह द्वार की ओर चली, मगर पैर लड़खड़ाये और अचेत हो कर फर्श पर गिर पड़ी। माया उसकी दशा देख कर और उसकी बहकी-बहकी बातें सुन कर थर्रा गया। मारे भय के वहाँ एक क्षण भी न ठहर सका। तीर के समान कमरे से निकला और दीवानखाने में आ कर दम लिया। ज्ञानशंकर मेहमानों के आदर सत्कार में व्यस्त थे। उनसे कुछ कहने का अवसर न था। गायत्री चिक की आड़ में बैठी हुई सोच रही थी, इस अलहदीन को कीर्तन के लिए नौकर रख लूँ तो अच्छा हो। मेरे मन्दिर की सारे देश में धूम मच जाय। माया ने आ कर कहा—मौसी जी, आप चल कर जरा अम्माँ को देखिए। न जाने कैसी हुई जाती हैं। उन्हें डेलिरियम सा हो गया है।

गायत्री का कलेजा सन्न सा हो गया। वह विद्या के स्वभाव से परिचित थी। यह खबर सुन कर उसमें कहीं ज्यादा शंका हुई जितनी सामान्य दशा में होनी चाहिए थी। वह कल से विद्या के बदले हुए तेवर देख रही थी। रात की घटना भी उसे याद आयी। वह जीने की ओर चली। माया भी पीछे-पीछे चला। इस कमरे में इस समय कितनी ही चीजें इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं! गायत्री ने कहा—तुम यहीं बैठो, नहीं तो इनमें से एक चीज का भी पता न चलेगा। मैं अभी आती हूँ। घबराने की कोई बात नहीं है, शायद उसे बुखार आ गया है।

गायत्री विद्या के कमरे में पहुँची। उसका हृदय बाँसों उछल रहा था। उसे

वास्तविक अवस्था का कुछ गुप्त ज्ञान सा हो रहा था। उसने बहुत धीरे से कमरे मे पैर रखा। धुँधली दीवालगीर अब भी जल रही थी और विद्या द्वार के पास फर्श पर बेखबर पडी हुई थी। चेहरे पर मुर्दनी छायी हुई थी, आँखे बन्द थी और जोर-जोर से साँस चल रही थी। यद्यपि खूब सर्दी पड रही थी, पर उसकी देह पसीने से तर थी। माथे पर स्वेद-बिन्दु झलक रहे थे जैसे मुर्झाये हुए फूल पर ओस की बूँद झलकती है। गायत्री ने लैम्प तेज करके विद्या को देखा। ओठ नीले पड गये थे और हाथ-पैर धीरे-धीरे काँप रहे थे। उसने उसका सिर अपनी गोद मे रख लिया, अपना सुगन्ध से डूबा हुआ रुमाल निकाल लिया। और उसके मुँह पर झलने लगी। प्रेममय शोक-वेदना से उसका हृदय विकल हो उठा। गला भर आया, बोली—विद्या, कैसा जी है ?

विद्या ने आँख खोल दी और गायत्री को देख कर बोली—बहिन ! इसके सिवा वह और कुछ न कह सकी। बोलने की बारबार चेष्टा करती थी, पर मुँह से आवाज न निकलती थी। उसके मुख पर एक अतीव करुणाजनक दीनता छा गयी। उसने विवश दृष्टि से फिर गायत्री को देखा। आँखे लाल थी, लेकिन उनमे उन्मत्तता या उग्रता न थी। उनमे आत्मज्योति झलक रही थी। वह विनय, क्षमा और शाति से परिपूर्ण थी। हमारी अतिम चितवने हमारे जीवन का सार होती हैं, निर्मल और स्वच्छ ईर्षा और द्वेष जैसी मलिनताओ से रहित। विद्या की जबान बन्द थी, लेकिन आँखें कह रही थी—मेरा अपराध क्षमा करना। मैं थोडी देर की मेहमान हूँ। मेरी ओर से तुम्हारे मन मे जो मलाल हो वह निकाल डालना। मुझे तुमसे कोई शिकायत नही है, मेरे भाग्य मे जो कुछ बदा था, वह हुआ। तुम्हारे भाग्य मे जो कुछ बदा है, वह होगा। तुम्हे अपना सर्वस्व सौप जाती हूँ। उसकी रक्षा करना।

गायत्री ने रोते हुए कहा—विद्या तुम कुछ बोलती क्यो नही ? कैसा जी है, डाक्टर बुलाऊँ ?

विद्या ने निराश दृष्टि से देखा और दोनो हाथ जोड लिये। आँखे बन्द हो गयी। गायत्री व्याकुल हो कर नीचे दीवानखाने मे गयी और माया से बोली, बाबू जी को ऊपर ले जाओ। मैं जाती हूँ, विद्या की दशा अच्छी नही है।

एक क्षण मे ज्ञानशकर और माया दोनो ऊपर आये। श्रद्धा भी हलचल सुन कर दौडी हुई आयी। ज्ञानशकर ने विद्या को दो-तीन बार पुकारा, पर उसने आँखे न खोली। तब उन्होंने अलमारी से गुलाबजल की बोतल निकाली और उसके मुँह पर कई बार छीटें दिये। विद्या की आँखें खुल गयी, किन्तु पति को देखते ही उसने जोर से चीख मारी। यद्यपि हाथ-पाँव अकडे हुए थे, पर ऐसा जान पडा कि उनमे कोई विद्युत्-शक्ति दौड गयी। वह तुरन्त उठ कर खड़ी हो गयी। दोनो हाथों से आँख बन्द किये द्वार की ओर चली। गायत्री ने उसे सँभाला और पूछा—विद्या, पहचानती नही, बाबू ज्ञानशकर हैं।

विद्या ने सशक और भयभीत नेत्रो से देखा और पीछे हटती हुई बोली—अरे, यह फिर आ गया। ईश्वर के लिए मुझे इससे बचाओ !

गायत्री—विद्या, तबीअत को जरा सँभालो। तुमने कुछ खा तो नही लिया है। डाक्टर को बुलाऊँ!

विद्या—मुझे इससे बचाओ, ईश्वर के लिए मुझे इससे बचाओ।

गायत्री—पहचानती नही हो, बाबूजी है।

विद्या—नही-नही यह पिशाच है। इसके लम्बे बाल है। वह देखो दाँत निकाले मेरी ओर दौडा आता है। हाय-हाय! इसे भगाओ, मुझे खा जायेगा। देखो-देखो मुझे पकडे लेता है। इसके सीग है, बडे-बडे दाँत है, बडे-बडे नख है। नही, मैं न जाऊँगी। छोड दे दुष्ट, मेरा हाथ छोड दे। हाय! मुझे अग्निकुड मे झोके देता है। अरे देखो, माया को पकड लिया। कहता है, बलिदान दूँगा। दुष्ट, तेरे हृदय मे जरा भी दया नही है? उसे छोड दे, मैं चलती हूँ, मुझे कुण्ड मे झोक दे, पर ईश्वर के लिए उसे छोड दे। यह कहते-कहते विद्या फिर मूर्छित हो कर गिर पडी। ज्ञानशकर ने लज्जायुक्त चिंता से कहा, जहर खा लिया। मैं अभी डाक्टर प्रियनाथ के यहाँ जाता हूँ। शायद उनके यत्न से अब भी इसके प्राण बच जाये। मुझे क्या मालूम था कि माया को तुम्हारी गोद मे देने का इसे इतना दुख होगा। मैंने इसे आज तक न समझा। यह पवित्र आत्मा थी, देवी थी, मेरे जैसे लोभी, स्वार्थी मनुष्य के योग्य न थी।

यह कह कर वह आँख मे आँसू भरे चले गये। श्रद्धा ने विद्या को उठा कर गोद मे ले लिया। गायत्री पखा झलने लगी। माया खडा रो रहा था। कमरे मे सन्नाटा छाया हुआ था, वह सन्नाटा जो मृत्यु-स्थान के सिवा और कही नही होता। सब की सब विद्या को होश मे लाने का प्रयास कर रही थी, पर मुँह से कोई कुछ न कहता था। सब के दिलो पर मृत्यु-भय छाया हुआ था।

आध घटे के बाद विद्या की आँखें खुली। उसने चारो ओर सहमे हुए नेत्रो से देख कर इशारे से पानी माँगा।

श्रद्धा ने गुलाबजल और पानी मिला कर कटोरा उसके मुँह से लगाया। उसने पानी पीने को मुँह खोला, लेकिन ओठ खुले रह गये, अगो पर इच्छा का अधिकार नही रहा। एक क्षण मे आँखो की पुतलियाँ फिर गयी।

श्रद्धा समझ गयी कि यह अतिम क्षण है। बोली—बहिन, किसी से कुछ कहना चाहती हो? माया तुम्हारे सामने खडा है।

विद्या की बुझी हुई आँखे श्रद्धा की ओर फिरी, आँसू की चन्द बूँदें गिरी, शरीर मे कम्पन हुआ और दीपक बुझ गया!

एक सप्ताह पीछे मुन्नी भी हुडक-हुडक कर बीमार पड गयी। रात-दिन अम्माँ-अम्माँ की रट लगाया करती। न कुछ खाती न पीती, यहाँ तक कि दवाएँ पिलाने के समय मुँह ऐसा बन्द कर लेती कि किसी तरह न खोलती। श्रद्धा गोद मे लिये पुचकारती-फुसलाती, पर सफल न होती। बेचारा माया गोद मे लिए उसके मुरझाये मुँह की ओर देखता और रोता। ज्ञानशकर को तो अवकाश न मिलता था, पर लाला प्रभाशकर दिन मे कई बार डाक्टर के पास जाते, दवाएँ लाते, लडकी का मन बहलाने के लिए

तरह-तरह के खिलौने लाते, पर मुन्नी उनकी ओर आँख उठा कर भी न देखती। गायत्री से उसे न जाने क्या चिढ थी। उसकी सूरत देखते ही रोने लगती। एक बार गायत्री ने गोद मे उठा लिया तो उसे दाँतो से काट लिया। चौथे दिन उसे ज्वर हो आया और तीन दिन बीमार रह कर मातृ-हृदय की भूखी बालिका चल बसी।

विद्या के मरने के पीछे विदित हुआ कि वह कितनी बहुप्रिय और सुशीला थी। मुहल्ले की स्त्रियाँ श्रद्धा के पास आ कर चार आँसू बहा जाती। दिन भर उनका ताँता लगा रहता। बडी बहू और उनकी बहू भी सच्चे दिल से उसका मातम कर रही थी। उस देवी ने अपने जीवन मे किसी को 'रे' या 'तू' नही कहा, महरियो से भी हँस-हँस बाते करती। नसीब चाहे खोटा था, पर हृदय मे दया थी। किसी का दुख न देख सकती थी। दानशीला ऐसी थी कि किसी भूखे भिखारी, दुखियारे को द्वार से फिरने न देती थी, धेले की जगह पैसा और आध पाव की जगह पाव देने की नीयत रखती थी। गायत्री इन स्त्रियो से आँखें चुराया करती। अगर वह कभी आ पडती तो सब की सब चुप हो जाती और उसकी अवहेलना करती। गायत्री उनकी श्रद्धापात्र बनने के लिए उनके बालको को मिठाइयाँ और खिलौने देती, विद्या की रो-रो कर चर्चा करती पर उसका मनोरथ पूरा न होता था। यद्यपि कोई स्त्री मुँह से कुछ न कहती थी, लेकिन उनके कटाक्ष व्यंग से भी अधिक मर्मभेदी होते थे। एक दिन बडी बहू ने गायत्री के मुँह पर कहा—न जाने ऐसा कौन सा काँटा था जिसने उसके हृदय मे चुभ कर जान ली। दूध-पूत सब भगवान् ने दिया था, पर इस काँटे की पीडा न सही गयी। यह काँटा कौन था, इस विषय मे महिलाओ की आँखें उनकी वाणी से कही सशब्द थी। गायत्री मन मे कट कर रह गयी।

वास्तव मे कुटुम्ब या मुहल्ले की स्त्रियो को विद्या के मरने का जितना शोक था उससे कही ज्यादा गायत्री को था। डाक्टर प्रियनाथ ने स्पष्ट कह दिया कि इसने विष खाया है। लक्षणो से भी यही बात सिद्ध होती थी। गायत्री इस खून से अपना हाथ रँगा हुआ पाती थी। उसकी सगर्व आत्मा इस कल्पना से ही काँप उठती थी। वह अपनी निज की महरियो से भी विद्या की चर्चा करते झिझकती थी। मौत की रात का दृश्य कभी न भूलता था। विद्या की वह क्षमाप्रार्थी चितवनें सदैव उसकी आँखो मे फिरा करती। हा, यदि मुझे पहले मालूम होता कि उसके मन मे मेरी ओर से इतना मिथ्या भ्रम हो गया है तो यह नौबत न आती। लेकिन फिर जब वह उसके पहलेवाली रात की घटनाओ पर विचार करती तो उसका मन स्वय कहता था कि विद्या का सन्देह करना स्वाभाविक था। नही, अब उसे कितनी ही छोटी-छोटी बाते ऐसी भी याद आती थी जो उसने विद्या का मनोमालिन्य देख कर केवल उसे जलाने और सुलगाने के लिए की थी। यद्यपि उस समय उसने ये बाते अपने पवित्र प्रेमी की तरग मे की थी और विद्या के ही सामने नही, सारी दुनिया के सामने करने पर तैयार थी, पर इन खून के छीटो से वह नशा उतर गया था। उसका मन स्वय स्वीकार करता था कि वह विशुद्ध प्रेम न था, अज्ञात रीति से उसमे वासना का लेश आ गया था। विद्या मुझे देख कर सदय

हो गयी थी, लेकिन ज्ञानशकर की सूरत देखते ही उसका झिझकना, चीखना, चिल्लाना साफ कह रहा था कि उसने हमारे ही ऊपर जान दी। यह उसकी परम उदारता थी कि उसने मुझे निर्दोष समझा। इतने भयकर उत्तरदायित्व का भार उसकी आत्मा को कुचले देता था। शनै शनै इस भाव का उस पर इतना प्रावल्य हुआ कि भक्ति और प्रेम से उसे अरुचि होने लगी। उसके विचार मे यह दुर्घटना इस वात का प्रमाण थी कि हम भक्ति के ऊँचे आदर्श से गिर गये, प्रेम के निर्मल जल मे तैरते हुए हम भोग के सेवारो मे उलझ गये, मानो यह हमारी आत्मा को सजग करने के लिए देव-प्रेरित चेतावनी थी। अब ज्ञानशकर उसके पास आते तो उनसे खुल कर न मिलती। ज्ञानशकर ने विद्या की दाह-क्रिया आप न की थी, यहाँ तक कि चिता मे आ" भी न दी थी। एक ब्राह्मण से सब सस्कार कराये। गायत्री को यह असज्जनता और हृदय-शून्यता नागवार मालूम होती थी। उसकी इच्छा थी कि विद्या की अन्त्येष्टि प्रथानुसार और यथोचित सम्मान के साथ की जाय। उसकी आत्मा की शान्ति का अब यही एक उपाय था। उसने ज्ञानशकर से इसका इशारा भी किया, पर वह टाल गये। अतएव वह उन्हे देखते ही मुँह फेर लेती थी, उन्हे अपनी वाणी का मत्र मारने का अवसर ही न देती थी। उसे भय होता था कि उनकी यह उच्छृखलता मुझे और भी वदनाम कर देगी। वह कम से कम ससार की दृष्टि मे इस हत्या के अपराध से मुक्त रहना चाहती थी।

गायत्री पर अब ज्ञानशकर के चरित्र के जौहर भी खुलने लगे। उन्होने उससे अपने कुटुम्बियो की इतनी वुराइयाँ की थी कि वह उन्हे धैर्य और सहनशीलता की मूर्ति समझती थी। पर यहाँ कुछ और ही वात दिखायी देती थी। उन्होंने प्रेमशकर को शोक सूचना तक न दी। लेकिन उन्होने ज्यो ही खबर पायी तुरत दौडे हुए आये और सोलह दिनो तक नित्य प्रति आ कर यथायोग्य सस्कार मे भाग लेते रहे। लाला प्रभाशकर सस्कारो की व्यवस्था मे, ब्रह्मभोज में, विरादरी की दावत मे व्यस्त थे मानो आपस मे कोई द्वेष नही। वडी वहू के व्योहार से भी सच्ची समवेदना प्रकट होती थी। लेकिन ज्ञानशकर के रग-ढग से साफ-साफ जाहिर होता था कि इन लोगो का शरीक होना उन्हे नागवार है। वह उनसे दूर-दूर रहते थे, उनसे वात करते तो रुखाई से, मानो सभी उनके शत्रु है और इसी वहाने उनका अहित करना चाहते हैं। ब्रह्मभोज के दिन उनकी लाला प्रभाशकर से खासी झपट हो गयी। प्रभाशकर आग्रह कर रहे थे, मिठाइयाँ घर मे वनवायी जायँ। ज्ञानशकर कहते थे कि यह अनुपयुक्त है। सम्भव है, घर की मिठाइयाँ अच्छी वनें, पर खर्च वहुत पड़ेगा। वाजार से मामूली मिठाइयाँ मँगवायी जायँ। प्रभाशकर ने कहा, खिलाते हो तो ऐसे पदार्थ खिलाओ कि खानेवाले भी समझें कि कही दावत खायी थी। ज्ञानशकर ने विगड कर कहा—मैं ऐसा अहमक नही हूँ कि इस वाह-वाह के लिए अपना घर लुटा दूँ। नतीजा यह हुआ कि वाजार से सस्ते मेल की मिठाइयाँ आयी। ब्राह्मणो ने डट कर खाया, लेकिन सारे शहर मे निन्दा की।

गायत्री को जो वात सवसे अप्रिय लगती थी वह अपनी नजरवन्दी थी। ज्ञानशकर

उसकी चिट्ठियाँ खोल कर पढ लेते, इस भय से कही राय साहब का कोई पत्र न हो। अगर वह प्रेमशकर या लाला प्रभाशकर से कुछ बाते करने लगती तो वह तुरन्त आ कर बैठ जाते और ऐसी असगत बात करने लगते कि साधारण बातचीत भी विवाद का रूप धारण कर लेती थी। उनके व्यवहार से स्पष्ट विदित होता था कि गायत्री के पास किसी अन्य मनुष्य का उठना-बैठना उन्हे असह्य है। इतना ही नही, वह यथासाध्य गायत्री को स्त्रियो से मिलने-जुलने का भी अवसर न देते। आत्माभिमान धार्मिक विषयो मे लोकमत को जितना तुच्छ समझता है लौकिक विषयो मे लोकमत का उतना ही आदर करता है। गायत्री को विद्या के हत्यापराध से मुक्त होने के लिए घर और महल्ले की स्त्रियो की सहानुभूति आवश्यक जान पडती थी। वह अपने बर्ताव से, विद्या की सुकीर्ति के बखान से, यहाँ तक कि ज्ञानशकर की निन्दा से भी यह उद्देश्य पूरा करना चाहती थी। षोडशे और ब्रह्मभोज के बाद एक दिन उसने नगर की कई कन्या पाठशालाओ का निरीक्षण किया और प्रत्येक को विद्या के नाम पर पारितोषिक देने के लिए रुपये दे आयी, और यह केवल दिखावा ही नही था, विद्या से उसे बहुत मुहब्बत थी, उसकी मृत्यु का उसे सच्चा शोक था। विद्या को याद करके वह बहुधा एकान्त मे रो पडती, उसकी सूरत उसकी आँखो से कभी न उतरती थी। जब श्रद्धा और बडी बहू आदि विद्या की चर्चा करने लगती तो वह अदबदा कर उसकी बातें सुनने के लिए जा बैठती। उनके कटाक्ष और सकेतो की ओर उसका ध्यान नही जाता। ऐसे अवसरो पर जब ज्ञानशकर उसे रियासत के किसी काम के बहाने से बुलाते तो उसे बहुत नागवार मालूम होता। वह कभी-कभी झुँझला कर कहती, जा कर कह दो मुझे फुरसत नही है। जरा-जरा सी बातो मे मुझसे सलाह लेने की क्या जरूरत है ? क्या इतनी बुद्धि भी ईश्वर ने नही दी ? रियासत ! रियासत! ! उन्हे किसीके मरने-जीने की परवाह न हो, सबके हृदय तो एक-से नही हो सकते। कभी-कभी वह केवल ज्ञानशकर को चिढाने के लिए श्रद्धा के पास घटो बैठी रहती। वह अब उनकी कठपुतली बन कर न रहना चाहती थी। उसकी गौरवशील प्रकृति स्वच्छन्द होने के लिए तडपती थी। वह इस बन्धन से निकल भागना चाहती थी। एक दिन वह ज्ञानशकर से कुछ कहे बिना ही प्रेमशकर की कृषिशाला मे आ पहुँची और सारे दिन वही रही। एक दिन उसने लाला प्रभाशकर और प्रेमशकर की दावत की और सारा जेवनार अपने हाथों से पकाया ! लाला जी को भी उसके पाक-नैपुण्य को स्वीकार करना पडा !

दो महीने गुजर गये। धीरे-धीरे महिलाओ को गायत्री पर विश्वास होने लगा। द्वेष और मालिन्य के परदे हटने लगे। उसके सम्मुख ऐसी-ऐसी बाते होने लगी जिनकी भनक भी पहले उसके कानो मे न पडने पाती थी। यहाँ तक कि वह इस समाज का एक प्रधान अग बन गयी। यहाँ प्राय नित्य ही ज्ञानशकर की चरित्र चर्चा होती और फलत. उनका आदर गायत्री के हृदय से उठता जाता था। बड़ी बहू और उनकी बहू दोनो ज्ञानशकर की द्वेष-कथा कहने लगती तो उसका अन्त ही न होता था। श्रद्धा यद्यपि इतनी प्रगल्भा न थी, पर यह अनुमान करने के लिए बहुत सूक्ष्मदर्शिता की जरूरत न थी

कि उसे भी ज्ञानशकर से विशेष स्नेह न था। ज्ञानशकर की सकीर्णता और स्वार्थपरता दिनो-दिन गायत्री को विदित होने लगी। अब उसे ज्ञान होने लगा कि पिता जी ने मुझे ज्ञानशकर से बचते रहने की जो ताकीद की थी उसमे भी कुछ न कुछ रहस्य अवश्य था। ज्ञानशकर के प्रेम और भक्ति पर से भी उसका विश्वास उठने लगा। उसे सदेह होने लगा कि उन्होने केवल अपना कार्य सिद्ध करने के लिए तो यह स्वाँग नही रचा। अब उसे कितनी ही ऐसी बात याद आने लगी, जो इस सदेह को पुष्ट करती थी। ज्यो-ज्यो यह सन्देह बढता था ज्ञानशकर की ओर से उसका चित्त फिरता जाता था। ज्ञानशकर गायत्री के चित्त की यह वृत्ति देख कर बड़े असमजस मे रहते थे। उनके विचार मे यह मनोमालिन्य शान्त करने का सर्वोत्तम उपाय यही था कि गायत्री को किसी प्रकार गोरखपुर खीच ले चलूँ। लेकिन उससे यह प्रस्ताव करते हुए वह डरते थे। अपनी गोटी लाल करने के लिए वह गायत्री का एकान्त-सेवन परमावश्यक समझते थे। माया शकर को गोद लेने से ही कोई विशेष लाभ न था। गायत्री की आयु ३५ वर्ष से अधिक न थी और कोई कारण न था वह अभी ४५ वर्ष जीवित न रहे। यह लम्बा इन्तजार ज्ञानशकर जैसे अधीर पुरुषो के लिए असह्य था। इसलिए वह श्रद्धा और भक्ति का वही वशीकरण मत्र मार कर गायत्री को अपनी मुट्ठी मे करना चाहते थे।

एक दिन वे एक पत्र लिये हुए गायत्री के पास आ कर बोले, गोरखपुर से यह बहुत जरूरी खत आया है। मुख्तार साहब ने लिखा है कि ये फसल के दिन हैं। आप लोगो का आना जरूरी है, नही तो सीर की उपज हाथ न लगेगी, नौकर-चाकर खा जायँगे।

गायत्री ने रुष्ट हो कर कहा—इसका उत्तर तो मैं पीछे दूँगी, पहले यह बताइए कि आप मेरी चिट्ठियाँ क्यो खोल लिया करते है?

ज्ञानशकर सन्नाटे मे आ गये, समझ गये कि मै इसकी आँखो मे उससे कही ज्यादा गिर गया हूँ जितना मैं समझता हूँ। बगल झाँकते हुए बोले—मेरा अनुमान था कि इतनी आत्मिक घनिष्ठता के बाद इस शिष्टाचार की जरूरत नही। लेकिन आप को नागवार लगता है तो आगे ऐसी भूल न होगी।

गायत्री ने लज्जित हो कर कहा—मेरा आशय यह नही था। मैं केवल यह चाहती हूँ कि मेरी निज की चिट्ठियाँ न खोली जाया करे।

ज्ञानशकर—इस धृष्टता का कारण यह था कि मैं अपनी आत्मा को आपकी आत्मा मे सयुक्त समझता था, लेकिन ऐसा जान पडता है कि इस घर के द्वेष-पोषक जलवायु ने हमारे बीच मे भी अन्तर डाल दिया। भविष्य मे ऐसा दुस्साहस न होगा। मालूम होता है कि मेरे कुदिन आये हैं। देखे क्या-क्या झेलना पड़ता है।

गायत्री ने बात का पहलू बदल कर कहा—मुख्तार साहब को लिख दीजिए कि अभी हम लोग न आ सकेंगे, तहसील-वसूल शुरू कर दें।

ज्ञानशकर—मेरे विचार मे हम लोगो का वहाँ रहना जरूरी है।

गायत्री—तो आप चले जायँ। मेरे जाने की क्या जरूरत है? मैं अभी यहाँ कुछ दिन और रहना चाहती हूँ।

ज्ञानशकर ने हताश हो कर कहा—जैसी आपकी इच्छा। लेकिन आपके बिना वहाँ एक-एक क्षण मुझे एक-एक साल मालूम होगा। कृष्णमन्दिर तैयार ही है। वहाँ भजन-कीर्त्तन मे जो आनन्द आयेगा वह यहाँ दुर्लभ है। मेरी इच्छा थी कि अबकी बरसात वृन्दावन मे कटती। इस आशा पर पानी फिर गया। आप मेरे जीवन-पथ की दीपक है. आप ही मेरे प्रेम और भक्ति की केन्द्रस्थल है। आप के बिना मुझे अपने चारों ओर अँधेरा दिखाई देगा। सम्भव है कि पागल हो जाऊँ।

दो महीने पहले ऐसी प्रेमरस पूर्ण बाते सुन कर गायत्री का हृदय गद्गद हो जाता; लेकिन इतने दिनो यहाँ रह कर उसे उनके चरित्र का पूरा परिचय मिल चुका था। वह साज जो बेसुर अलाप को भी रसमय बना देता था अब बन्द था। वह मत्र का प्रतिहार करना सीख गयी थी। बोली—यहाँ मेरी दशा उससे भी दुस्सह होगी, खोयी-खोयी सी फिरूँगी, लेकिन करूँ क्या? यहाँ लोगो के हृदय को अपनी ओर से साफ करना आवश्यक है। यह वियोग-दु ख इसलिए उठा रही हूँ, नही तो आप जानते है यहाँ मन बहलाव की क्या सामग्री है? देह पर अपना वश है, उसे यहाँ रखूँगी। रहा मन, मन एक क्षण के लिए भी अपने कृष्ण का दामन न छोड़ेगा। प्रेम-स्थल मे हजारो कोस की दूरी भी कोई चीज नही है, वियोग मे भी मिलाप का आनन्द मिलता रहता है। हाँ, पत्र नित्य प्रति लिखते रहिएगा, नही तो मेरी जान पर बन जायेगी।

ज्ञानशकर ने गायत्री को भेद की दृष्टि से देखा। यह वह भोली-भाली सरला गायत्री न थी। वह अब त्रिया-चरित्र मे निपुण हो गयी थी; दगा का जवाब दगा से देना सीख गयी थी। समझ गये कि अब यहाँ मेरी दाल न गलेगी। इस बाजार मे अब खोटे सिक्के न चलेगे। यह बाजी जीतने के लिए कोई नयी चाल चलनी पड़ेगी, नये किले बाँधने पड़ेगे। गायत्री को यहाँ छोड़ कर जाना शिकार को हाथ से खोना था। किसी दूसरे अवसर पर यह जिक्र छेडने का निश्चय करके वह उठे। सहसा गायत्री ने पूछा, तो कब तक जाने का विचार है? मेरे विचार मे आपका प्रात काल की गाड़ी से चला जाना अच्छा होगा।

ज्ञानशकर ने दीन भाव से भूमि की ओर ताकते हुए कहा—अच्छी बात है।

गायत्री—हाँ, जब जाना ही है तब देर न कीजिए। जब तक इस मायाजाल मे फँसे हुए है तब तक तो यहाँ के राग अलापने ही पड़ेगे।

ज्ञानशकर—जैसी आज्ञा।

यह कह कर वह मर्माहत भाव से उठ कर चले गये। उनके जाने के बाद गायत्री को वही खेद हुआ जो किसी मित्र को व्यर्थ कष्ट देने पर हमको होता है, पर उसने उन्हे रोका नही।

५३

श्रद्धा और गायत्री मे दिन-दिन मेल-जोल बढने लगा। गायत्री को अब ज्ञात हुआ कि श्रद्धा मे कितना त्याग, विनय, दया और सतीत्व है। मेल-जोल से उनमे आत्मीयता का विकास हुआ, एक दूसरी से अपने हृदय की बात कहने लगी, आपस मे कोई पर्दा न रहा। दोनो आधी-आधी रात तक बैठी अपनी बीती सुनाया करती। श्रद्धा की बीती प्रेम और वियोग की करुण कथा थी जिसमे आदि से अन्त तक कुछ छिपाने की जरूरत न थी। वह रो-रो कर अपनी विरह-व्यथा का वर्णन करती, प्रेमशकर की निर्दयता और सिद्धान्त प्रेम का रोना रोती, अपनी टेक पर भी पछताती। कभी प्रेमशकर के सद्‌गुणो की अभिमान के साथ चर्चा करती। अपनी कथा कहने मे, अपने हृदय के भावो को प्रकट करने मे, उसे शान्तिमय आनन्द मिलता था। इसके विपरीत गायत्री की कथा प्रेम से शुरू हो कर आत्म-ग्लानि पर समाप्त होती थी। विश्वास के उद्‌गार में भी उसे सावधान रहना पडता था, वह कुछ न कुछ छिपाने और दवाने पर मजबूर हो जाती थी। उसके हृदय मे कुछ ऐसे काले धब्बे थे जिन्हे दिखाने का उसे साहस न होता था, विशेषत श्रद्धा को जिसका मन और वचन एक था। वह उसके सामने प्रेम और भक्ति का जिक्र करते हुए शरमाती थी। वह जब ज्ञानशकर के उस दुस्साहस को याद करती जो उन्होने रात को थियेटर से लौटते समय किया था तब उसे मालूम होता था कि उस समय तक मेरा मन शुद्ध और उज्ज्वल था, यद्यपि वासनाएँ अकुरित हो चली थी। उसके बाद जो कुछ हुआ वह सब ज्ञानशकर की काम-तृष्णा और मेरी आत्म-दुर्बलता का नतीजा था जिसे मैं भक्ति कहती थी। ज्ञानशकर ने केवल अपनी दुष्कामना पूरी करने के लिए मेरे सामने भक्ति का यह रंगीन जाल फैलाया। मेरे विषय मे उनका यह लेख लिखना, धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र मे मुझे आगे बढाना उनकी वह अविरल स्वामि-भक्ति, वह तत्परता, वह आत्म-समर्पण, सब उनकी अभीष्ट-सिद्धि के मन्त्र थे। मुझे मेरे अहकार ने डुबाया, मैं अपने ख्याति-प्रेम के हाथो मारी गयी। मेरा वह धर्मानुराग, मेरी वह विवेकहीन मिथ्या भक्ति, मेरे वह आमोद-प्रमोद, मेरी वह आवेशमयी कृतज्ञता जिसपर मुझे अपने सयम और व्रत को बलिदान करने मे लेशमात्र भी सकोच न होता था, केवल मेरे अहकार की क्रीडाएँ थीं। इस व्याध ने मेरी प्रकृति के सबसे भेद्य स्थान पर निशाना मारा। उसने मेरे व्रत और नियम को धूल मे मिला दिया, केवल अपने ऐश्वर्य-प्रेम के हेतु मेरा सर्वनाश कर दिया। स्त्री अपनी कुवृत्ति का दोष सदैव पुरुष के सिर पर रखती हैं, अपने को वह दलित और आहत समझती है। गायत्री के हृदय मे इस समय ज्ञानशकर का प्रेमालाप, वह मृदुल व्यवहार, वह सतृष्ण चितवनें तीर की तरह लग रही थी। वह कभी-कभी शोक और क्रोध से इतनी उत्तेजित हो जाती कि उसका जी चाहता कि उसने जैसे मेरे जीवन को भ्रष्ट किया है वैसे ही मैं भी उसका सर्वनाश कर दूं।

एक दिन वह इन्ही उद्दड विचारो मे डूबी हुई थी कि श्रद्धा आकर बैठ गयी और

उसके मुख की ओर देख कर बोली—मुख क्यों लाल हो रहा है। आँखों में आँसू क्यों भरे हैं ?

गायत्री—कुछ नहीं, मन ही तो है।

श्रद्धा—मुझसे कहने योग्य नहीं है ?

गायत्री—तुमसे छिपा ही क्या है जो तुम पूछती हो। मैंने अपनी तरफ से छिपाया है, लेकिन तुम सब कुछ जानती हो। यहाँ कौन नहीं जानता है ? उन बातों को जब याद करती हूँ तो ऐसी इच्छा होती है कि एक ही कटार से अपनी और उसकी गर्दन काट डालूँ। खून खौलने लगता है। मुझे जरा भी भ्रम न था कि वह इतना बड़ा धूर्त और पाजी है। बहिन, अब चाहे जो कुछ हो मैं उससे अपनी आत्म-हत्या का बदला अवश्य लूँगी। मर्यादा तो यही कहती है कि विद्या की भाँति विष खा कर मर जाऊँ, लेकिन यह तो उसके मन की बात होगी, वह अपने भाग्य को सराहेगा और दिल खोल कर विभव का भोग करेगा। नहीं, मैं यह मूर्खता न करूँगी। नहीं, मैं उसे घुला-घुला कर और रटा-रटा कर मारूँगी। मैं उसका सिर इस तरह कुचलूँगी जैसे साँप का सिर कुचला जाता है। हा ! मुझ जैसी अभागिनी संसार में न होगी।

यह कहते-कहते गायत्री फूट-फूट कर रोने लगी। जरा दम ले कर फिर उसी प्रवाह में बोली, श्रद्धा, तुम्हें विश्वास न आयेगा, यह मनुष्य पक्का जादूगर है। इसने मुझ पर ऐसा मंत्र मारा कि मैं अपने को बिलकुल भूल गयी। मैं तुमसे अपनी सफाई नहीं कर रही हूँ। वायुमंडल में नाना प्रकार के रोगाणु उड़ा करते हैं। उनका विष उन्हीं प्राणियों पर असर करता है, जिनमें उनके ग्रहण करने का विकार पहले से ही मौजूद रहता है। मच्छर के डंक से सबको ताप और जूड़ी नहीं आती। वह बाह्य उत्तेजना केवल भीतर के विकार को उभार देती है। ऐसा न होता तो आज समस्त संसार में एक भी स्वस्थ प्राणी न दिखायी देता। मुझमें यह विकृत पदार्थ था। मुझे अपने आत्म-बल पर घमंड था। मैं ऐंद्रिक भोग को तुच्छ समझती थी। इस दुरात्मा ने उसी दीपक से जिससे मेरे अँधेरे घर में उजाला था घर में आग लगा दी, जो तलवार मेरी रक्षा करती थी वही तलवार मेरी गर्दनपर चला दी। अब मैं वही तलवार उसकी गर्दन पर चलाऊँगी। वह समझता होगा कि मैं अबला हूँ, निर्बल हूँ उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकती। लेकिन मैं दिखा दूँगी कि अबला पानी की भाँति द्रव हो कर भी पहाड़ों को छिन्न-भिन्न कर सकती है। मेरे पूज्य पिता आत्मदर्शी हैं। उन्हें उसकी बुरी नीयत मालूम हो गयी थी, इसी कारण उन्होंने मुझे उससे दूर रहने की ताकीद की थी। उन्होंने अवश्य विद्या से यह बात कही होगी। इसीलिए विद्या यहाँ मुझे सचेत करने आयी थी। लेकिन शोक ! मैं नशे में ऐसी चूर थी कि पिता जी की चेतावनी की भी कुछ परवाह न की। इस धूर्त ने मुझे उनकी नजरों में भी गिरा दिया। अब वह मेरा मुँह देखना भी न चाहेंगे।

गायत्री यह कह कर फिर शोकमग्न हो गयी। श्रद्धा की समझ में न आता था कि इसे कैसे सांत्वना दूँ। अकस्मात् गायत्री उठ खड़ी हुई। सन्दूक में से कलम, दावात, कागज निकाल लायी और बोली, बहिन, जो कुछ होना था हो चुका; इसके लिए जीवन-

पर्यन्त रोना है। विद्या देवी थी, उसने अपमान से मर जाना अच्छा समझा। मैं पिशाचिनी हूँ, मौत से डरती हूँ। लेकिन अब से यह जीवन त्याग और पश्चात्ताप पर समर्पण होगा। मैं अपनी रियासत से इस्तीफा दे देती हूँ, मेरा उस पर कोई अधिकार नही है। तीन साल से उस पर मेरा कोई हक नही है। मैं इतने दिनो तक विना अधिकार ही उसका उपभोग करती रही। रियासत मेरे पतिव्रत-पालन का उपहार थी। यह ऐश्वर्य और सम्पत्ति मुझे इसलिए मिली थी कि कुलमर्यादा की रक्षा करती रहूँ, मेरी पतिभक्ति अचल रहे। वह मर्यादा कितने महत्त्व की वस्तु होगी जिसकी रक्षा के लिए मुझे करोडो की सम्पत्ति प्रदान की गयी। लेकिन मैंने उस मर्यादा को भग कर दिया, उस अमूल्य रत्न को अपनी विलासिता की भेंट कर दिया। अब मेरा उस रियासत पर कोई हक नही है। उस घर मे पाँव रखने का भी मुझे स्वत्व नहीं, वहाँ का एक-एक दाना मेरे लिये त्याज्य है। मैं इतने दिनो मे हराम के माल पर ऐश करती रही।

यह कह कर गायत्री कुछ लिखने लगी, लेकिन श्रद्धा ने कागज उठा लिया और बोली—खूब सोच-समझ लो, इतना उतावलापन अच्छा नही।

गायत्री—खूब सोच लिया है। मैं इसी क्षण ये मँगनी के वस्त्र फेकूँगी और किसी ऐसे स्थान पर जा बैठूंगी, जहाँ कोई मेरी सूरत न देखे।

श्रद्धा—भला सोचो तो दुनिया क्या कहेगी? लोग भाँति-भाँति की मनमानी कल्पनाएँ करेंगे। मान लिया तुमने इस्तीफा ही दे दिया तो यह क्या मालूम है कि जिनके हाथों मे रियासत जायेगी वे उसका सदुपयोग करेंगे। अब तो तुम्हारे लोक और परलोक की भलाई इसी मे है कि शेष जीवन भगवत भजन मे काटो, तीर्थयात्रा करो, साधु-सन्तों की सेवा करो। सम्भव है कि कोई ऐसे महात्मा मिल जायें, जिनके उपदेश से तुम्हारे चित्त को शान्ति हो। भगवान् ने तुम्हे धन दिया है। उससे अच्छे काम करो। अनाथो और विधवाओ को पालो, धर्मशालाएँ बनवाओ, भक्ति को छोड कर ज्ञान पर चलो। भक्ति का मार्ग सीधा है, लेकिन काँटो से भरा हुआ है। ज्ञान का मार्ग टेढा है लेकिन साफ है।

श्रद्धा का ज्ञानोपदेश अभी समाप्त न होने पाया था कि एक महरी ने आ कर कहा—बहू जी, वह डिपटियाइन आयी हैं, जो पहले यही रहती थी। यही लिवा लाऊँ?

श्रद्धा—शीलमणि तो नही है?

महरी—हाँ-हाँ, वही है साँवली! पहले तो गहने से लदी रहती थी, आज तो एक मुंदरी भी नही है। बडे आदमियो का मन गहने से भी फिर जाता है।

श्रद्धा—हाँ, यही लिवा लाओ।

एक क्षण मे शीलमणि आ कर खडी हो गयी। केवल एक उजली साडी पहने हुए थी। गहनों का तो कहना ही क्या, अधरो पर पान की लाली भी न थी। श्रद्धा उठ कर उनसे गले मिली और पूछा—सीतापुर से कब आयी।

शीलमणि—आज ही आयी हूँ, और इसी लिए आयी हूँ कि लाला ज्ञानशकर से दो-दो बाते करूँ। जब से बेचारी विद्या के विष खा कर जान देने का हाल सुना है

कलेजे मे एक आग सी सुलग रही है। यह सब उसकी उसी बहिन की करामात है जो रानी बनी फिरती है। उसी ने विष दिया होगा।

शीलमणि ने गायत्री की ओर देखा न था और देखा भी हो तो पहचानती न थी। श्रद्धा ने दाँतो तले जीभ दबायी और छाती पर हाथ रख कर आँखो से गायत्री को इशारा किया। शीलमणि ने चौक कर बायी तरफ देखा तो एक स्त्री सिर झुकाये बैठी हुई थी। उसकी प्रतिभा, सौन्दर्य और वस्त्राभूषण देख कर समझ गयी कि गायत्री यही है। उसकी छाती धक से हो गयी, लेकिन उसके मुख से ऐसी बाते निकल गयी थी कि जिनको फेरना या सँभालना मुश्किल था। वह जलता हुआ ग्रास मुँह मे रख चुकी थी और उसे निगलने के सिवा दूसरा उपाय न था। यद्यपि उसका क्रोध न्याय-सगत था, पर शायद गायत्री के मुँह पर वह ऐसे कटु शब्द मुँह से न निकाल सकती। लेकिन अब तीर कमान से निकल चुका था इसलिए उसके क्रोध ने हेकडी का रूप धारण किया, लज्जित होने के बदले और उद्दड हो गयी। गायत्री की ओर मुँह करके बोली—अच्छा, रानी साहिबा तो यही विराजमान हैं। मैंने आपके विषय मे जो कुछ कहा है वह आपको अवश्य अप्रिय लगा होगा, लेकिन उसके लिए मैं आप से क्षमा नही माँग सकती। यही बाते मै आपके मुँह पर कह सकती थी और एक मैं क्या ससार यही कह रहा है। मुँह से चाहे कोई न कहे, किन्तु सब के मन मे यही बात है। लाला ज्ञानशकर से जिसे एक बार भी पाला पड चुका है, वह उसे अग्राह्य नही समझ सकता। मेरे बाबू जी इनके साथ के पढे हुए है और इन्हे खूब समझे है।

जब वह मैजिस्ट्रेट थे, तो उन्होने अपने असामियो पर इजाफा लगान का दावा किया था। महीनो मेरी खुशामद करते रहे कि मैं बाबू जी से डिगरी करवा दूँ। मैं क्या जानूँ, इनके चकमे मे आ गयी। बाबू जी पहले तो बहुत आनाकानी करते रहे, लेकिन जब मैंने जिद्द की तो राजी हो गये। कुशल यह हुई कि इसी बीच मे मुझे उनके अत्याचार का हाल मालूम हो गया और डिगरी न होने पायी, नही तो कितने दीन असामियो की जान पर बन आती। दावा डिसमिस हो गया। इस पर यह इतने रुष्ट हुए कि समाचार-पत्रों मे लिख लिख कर बाबू जी को बदनाम किया। वह अब पत्रो मे इनके धर्मोत्साह की खबरे पढते थे तो कहते थे, महाशय अब जरूर कोई न कोई स्वाँग रच रहे है। गोरखपुर मे सनातन-धर्म के उत्सव पर जो धूम-धाम हुई और बनारस मे कृष्णलीला का जो नाटक खेला गया उनका वृतान्त पढ कर बाबू जी ने खेद के साथ कहा था, यह महाशय रानी साहिबा को सब्ज बाग दिखा रहे है। इसमे अवश्य कोई न कोई रहस्य है। लाला जी मुझे मिल जाते तो ऐसा आडे हाथो लेती कि वह भी याद करते।

गायत्री खिडकी की ओर ताक रही थी, यहाँ तक कि उसकी दृष्टि मे खिडकी भी लुप्त हो गयी। उसके अन्त करण से पश्चात्ताप और ग्लानि की लहरे उठ-उठ कर कठ तक आती थी और उसके नेत्र-रूपी नौका को झकोरे दे कर लौट जाती थी। वह सज्ञा-हीन हो गयी थी। सारी चैतन्य शक्तियाँ शिथिल हो गयी थी। श्रद्धा ने उसके मुख की ओर देखा, आँसू न रोक सकी। इस अभागिनी दुखिया पर उसे कभी इतनी

दया न आयी। वहाँ बैठना तक अन्याय था। वह और कुछ न कर सकी, शीलमणि को अपने साथ ले कर दूसरे कमरे मे चली गयी। वहाँ दोनो मे देर तक बातचीत होती रही। श्रद्धा हत्या का सारा भार ज्ञानशंकर के सिर रखती थी। शीलमणि गायत्री को भी दोष का भागी समझती थी। दोनो ने अपने-अपने पक्ष को स्थिर किया। अन्त मे श्रद्धा का पल्ला भारी रहा। इसके बाद शीलमणि ने अपना वृत्तान्त सुनाया। सन्तानोत्पत्ति के निमित्त कौन-कौन से यत्न किये, किन-किन दाइयो को दिखाया, किन-किन डाक्टरो से दवा करायी? यहाँ तक कि वह श्रद्धा को अपने गर्भवती हो जाने का विश्वास दिलाने मे सफल हो गयी, किन्तु महाशोक! सातवे महीने गर्भपात हो गया, सारी आशाएँ धूल मे मिल गयी! श्रद्धा ने सच्चे हृदय से समवेदना प्रकट की। फिर कुछ देर तक इधर-उधर की बाते होती रही। श्रद्धा ने पूछा—अब डिप्टी साहब का क्या इरादा है?

शीलमणि—अब तो इस्तीफा दे कर आये हैं और बाबू प्रेमशंकर के साथ रहना चाहते हैं। उन्हे इन पर असीम भक्ति है। पहले जब इस्तीफा देने की चर्चा करते तो समझती थी काम से जी चुराते है, राजी न होती थी, लेकिन इन तीन वर्षो मे मुझे अनुभव हो गया कि इस नौकरी के साथ आत्म-रक्षा नही हो सकती। जाति के नेतागण प्रजा के उपकार के लिए जो उपाय करते है सरकार उसी मे विघ्न डालती है, उसे दबाना चाहती है। उसे अब भय होता है कि कही यहाँ के लोग इतने उन्नत न हो जायँ कि उसका रोब न माने। इसीलिए वह प्रजा के भावो को दबाने के लिए, उसका मुँह बन्द करने को नये-नये कानून बनाती रहती है। नेताओ ने देश को दरिद्रता के चंगुल से छुड़ाने के लिए चरखो और करघो की व्यवस्था की। सरकार उसमे बाधा डाल रही है। स्वदेशी कपडे का प्रचार करने के लिए दूकानदारो और ग्राहको को समझाना अपराध ठहैरा दिया गया है। नशे की चीजो का प्रचार कम करने के लिए नशेबाजो और ठेकेदारो से कुछ कहना-सुनना भी अपराध है। अभी पिछले सालो जब यूरोप मे लडाई हुई थी तो सरकार ने प्रजा से कर्ज लिया। कहने को तो कर्ज था पर असल में जरुरी टैक्स था। अधिकारियो ने दीन दरिद्र प्रजा पर नाना प्रकार के अत्याचार किये, तरह-तरह के दबाव डाले, यहाँ तक कि उन्हे अपने हल-बैल बेच कर सरकार को कर्ज देने पर मजबूर किया। जिसने इन्कार किया उसे या तो पिटवाया या कोई झूठा इलजाम लगा कर फँसा दिया। बाबू जी ने अपने इलाके मे किसी के साथ सख्ती नही की। कह दिया, जिसका जी चाहे कर्ज दे, जिसका न जी चाहे न दे। नतीजा यह हुआ कि और इलाको मे तो लाखो रुपये वसूल हुए, इनके इलाके मे बहुत कम मिला। इस पर जिले के हाकिम ने नाराज हो कर इनकी शिकायत कर दी। इनसे यह ओहदा छीन लिया गया, दर्जा घटा दिया गया। जब मैंने यह हाल देखा तो आप ही जिद्द करके इस्तीफा दिलवा दिया। जब प्रजा की कमाई खाते है तो प्रजा के फायदे का ही काम करना चाहिए। यह क्या कि जिसकी कमाई खायँ, उसी का गला दबाये। यह तो नमकहरामी है, घोर नीचता।

यह तो वह करे जिसकी आत्मा मर गयी हो, जिसे पेट पालने के सिवा लोक-परलोक की कुछ भी चिन्ता न हो। जिसके हृदय मे जाति-प्रेम का लेशमात्र है वह ऐसे अन्याय नही कर सकता। भला तो होता है सरकार का, रोब तो उसका बढ़ता है, जेब तो अँगरेज व्यापारियो के भरते हैं और पाप के भागी होते हैं यह पेट के बन्दे नौकर, यह स्वार्थ के दास अधिकारी, और फिर हमे नौकरी की परवाह ही क्या है। घर मे खाने को बहुत है। दो-चार को खिला कर खा सकते हैं। अब तो पक्का इरादा करके आये हैं कि यही बाबू प्रेमशंकर के साथ रहें और अपने से जहाँ तक हो सके प्रजा की भलाई करें। अब यह बताओ तुम कब तक रूठी रहोगी? क्या इसी तरह रो-रो कर उम्र काटने की ठान ली है?

श्रद्धा—प्रारब्ध मे जो कुछ है उसे कौन मिटा सकता है?

शील—कुछ नही, यह तुम्हारी व्यर्थ की टेक है। मैं अबकी तुम्हें घसीट ले चलूँगी। उस उजाड़ में मुझसे अकेले न रहा जायगा। हम और तुम दोनो रहेगी तो सुख से दिन कटेंगे। अवसर पाते ही मैं उन महाशय की भी खबर लूँगी। ससार के लिए तो जान देते फिरते हैं और घरवालो की खबर ही नही लेते। जरा सा प्रायश्चित करने में क्या शान घटी जाती है?

श्रद्धा—तुम अभी उन्हें जानती नहीं हो। वह सब कुछ करेंगे पर प्रायश्चित न करेंगे। वह अपने सिद्धान्त को न तोड़ेंगे! तिस पर भी वह मेरी ओर से निश्चिन्त नही हैं। ज्ञानशंकर जब से गोरखपुर रहने लगे तब से वह प्राय रोज यहाँ एक बार आ जाते हैं। अगर काम पड़े तो उन्हे यहाँ रहने मे भी आपत्ति न होगी, लेकिन अपने नियम उन्हें प्राणो से भी प्रिय हैं।

शीलमणि ने आकाश की तरफ देखा तो बादल घिर आये थे। घबरा कर बोली—कही पानी न बरसने लगे। अब चलूँगी। श्रद्धा ने उसे रोकने की बहुत चेष्टा की, लेकिन शीलमणि ने न माना। आखिर उसने कहा—जरा चल कर उनके आँसू तो पोंछ दो। बेचारी तभी से बैठी रो रही होगी।

शीलमणि—रोना तो उनके नसीब मे लिखा है। अभी क्या रोयी हैं! ऐसे आदमी की यही सजा है। नाराज हो कर मेरा क्या बना लेंगी? रानी होगी तो अपने घर की होंगी।

शीलमणि को विदा करके श्रद्धा झेंपती हुई गायत्री के पास आयी। वह डर रही थी, कहीं गायत्री मुझपर सन्देह न करने लगी हो कि सारी करतूत इसी की है। उसने डरते-डरते अपराधी की भाँति कमरे में कदम रखा। गायत्री ने प्रार्थी दृष्टि से उसे देखा, पर कुछ बोली नहीं। बैठी हुई कुछ लिख रही थी। मुख पर शोक के साथ दृढ़ सकल्प की झलक थी। कई मिनट तक वह लिखने में ऐसी मग्न थी मानो श्रद्धा के आने का उसे ज्ञान ही न था। सहसा बोली—बहिन, अगर तुम्हे कष्ट न हो तो जरा माया को बुला दो और मेरी महरियो को भी पुकार लेना।

श्रद्धा समझ गयी कि इसके मन मे कुछ और ठन गयी। कुछ पूछने का साहस

न हुआ। जा कर माया और महरियो को बुलाया। एक क्षण मे माया आ कर गायत्री के सामने खडा हो गया। महरियाँ बाग मे झूल रही थी। भादो का महीना था, घटा छायी थी, कजली बहुत सुहावनी लगती थी।

गायत्री ने माया को सिर से पाँव तक देख कर कहा—तुम जानते हो कि किसके लडके हो ?

माया ने कुतूहल से कहा—इतना भी नही जानता ?

गायत्री—मैं तुम्हारे मुँह से सुनना चाहती हूँ जिसमे मुझे मालूम हो जाय कि तुम मुझे क्या समझते हो ?

माया पहले इस प्रश्न का आशय न समझता था। इतना इशारा पा कर सचेत हो गया। बोला—पहले लाला ज्ञानशकर का लडका था, अब आपका लडका हूँ।

गायत्री—इसीलिए तुम्हे प्रत्येक विषय मे ईश्वर के पीछे मेरी इच्छा को मान्य समझना चाहिए।

माया—निस्सन्देह।

गायत्री—बाबू ज्ञानशकर को तुम्हारे पालन-पोषण, दीक्षा से कोई सम्बन्ध नही है, यह मेरा अधिकार है।

माया—आपके ताकीद की जरूरत नही, मैं स्वय उनसे दूर रहना चाहता हूँ। जब से मैंने अम्माँ को अन्तिम समय उनकी सूरत देखते ही चीख कर भागते देखा तभी से उनका सम्मान मेरे हृदय से उठ गया।

गायत्री—तो तुम उससे कही ज्यादा चतुर हो जितना मै समझती थी। मैं आज बद्रीनाथ की यात्रा करने जा रही हूँ। कुछ पता नही कब तक लौटूं। मैं समझती हूँ कि तुम्हे बाबू प्रेमशकर की निगरानी मे रखूँ। यह मेरी आशा है कि तुम उन्हे अपना पिता समझो और उनके अनुगामी बनो। मैंने उनके नाम यह पत्र लिख दिया है। इसे ले कर तुम उनके पास जाओ। वह तुम्हारी शिक्षा की उचित व्यवस्था कर देंगे। तुम्हारी स्थिति के अनुसार तुम्हारे आराम और जरूरत की आयोजना भी करेंगे। तुमको थोडे ही दिनो मे ज्ञात हो जायगा कि तुम अपने पिता से कही ज्यादा सुयोग्य हाथो मे हो। सभव है कि लाला प्रेमशकर को तुमसे उतना प्रेम न हो जितना तुम्हारे पिता को है, लेकिन इसमे जरा भी सन्देह नही है कि तुम्हे अपने आनेवाले कर्त्तव्यो का पालन करने के लिए जितनी क्षमता उनके द्वारा प्राप्त हो सकती है, तुम्हारे आचार, विचार और चरित्र का जैसा उत्तम सगठन वह कर सकते है, कोई और नही कर सकता। मुझे आशा है कि वह इस भार को स्वीकार करेंगे। इसके लिए तुम और मैं दोनो ही उनके बाध्य होगे। यह दूसरा पत्र मैंने बाबू ज्ञानशकर को लिखा है। मेरे लौटते तक वह रियासत के मैनेजर होगे। मैंने उन्हे ताकीद कर दी है कि बाबू प्रेम-शकर के पास प्रति मास दो हजार रुपये भेज दिया करे। यह पत्र डाकखाने भिजवा दो।

इतने मे चारो महरियाँ आयी। गायत्री ने उनसे कहा—मैं आज बद्रीनाथ की यात्रा करने जा रही हूँ। तुममे से कौन मेरे साथ चलती है ?

महरियो ने एक स्वर से कहा—हम सब की सब चलेंगी।

'नही, मुझे केवल एक की जरूरत है। गुलाबी, तुम मेरे साथ चलोगी?'

'सरकार जैसा हुक्म दे। बाल-बच्चो को महीने से नही देखा है।'

'तो तुम घर जाओ। तुम चलोगी केसरी?'

'कब तक लौटना होगा?'

'यह नही कह सकती।'

'मुझे चलने मे कोई उजुर नही है, पर सुनती हूँ वहाँ का पहाडी पानी बहुत लगता है।'

'तो तुम भी घर जाओ। तू चलोगी अनसूया?'

'सरकार, मेरे घर कोई मर्द-मानुस नही है। घर चौपट हो रहा है। वहाँ चलूँगी तो छटाँक भर दाना भी न मिलेगा।'

'तो तुम भी घर जाओ। अब तो तुम्ही रह गयी राधा, तुमसे भी पूछ लूँ, चलोगी मेरे साथ?'

'हाँ, सरकार चलूँगी।'

'आज चलना होगा।'

'जब सरकार का जी चाहे, चले।'

'तुम्हे बीस बीघे मुआफी मिलेगी।'

तीनो महरियो ने लज्जित हो कर कहा—सरकार, चलने को हम सभी तैयार हैं। आपका दिया खाती हैं तो साथ किसके रहेंगी?

'नही, तुम लोगो की जरूरत नही। मेरे साथ अकेली राधा रहेगी। तुम सब कृतघ्न हो, तुमसे अब मेरा कोई नाता नही।'

यह कह कर गायत्री यात्रा की तैयारी करने लगी। राधा खडी देख रही थी, पर कुछ बोलने का साहस न होता था। ऐसी दशा मे आदमी अव्यवस्थित सा हो जाता है। जरा सी बात पर झुँझला पडता है और जरा सी बात पर प्रसन्न हो जाता है।

५४

बाबू ज्ञानशकर गोरखपुर आये, लेकिन इस तरह जैसे लडकी ससुराल आती है। वह प्राय शोक और चिन्ता मे पडे रहते। उन्हे गायत्री से सच्चा प्रेम न सही, लेकिन वह प्रेम अवश्य था जो शराबियो को शराब से होता है। उसके बिना उनका यहाँ जरा भी जी न लगता। सारे दिन अपने कमरे मे पडे कुछ न कुछ सोचते या पढते रहते थे। न कही सैर करने जाते, न किसी से मिलते-जुलते। कृष्णमन्दिर की ओर भूल कर भी न जाते। उन्हे बार-बार यही पछतावा होता कि मैंने गायत्री को बनारस जाने मे क्यो नही रोका? यह सब उसी भूल का फल है। श्रद्धा, प्रेमशकर और बड़ी बहू ने यह सारा विष बोया है। उन्होने गायत्री के कान भरे, मेरी ओर से मन मैला किया। कभी-कभी उन्हें उद्भ्रान्त वासनाओ पर भी क्रोध आता और वह इस नैराश्य मे प्रारब्ध के

कायल हो जाते थे। हरि-इच्छा भी अवश्य कोई प्रबल वस्तु है, नही तो क्या मेरे सारे खेल यो बिगड जाते? कोई चाल सीधी ही न पडती? धनलालसा ने मुझसे क्या-क्या नही कराया? मैंने अपनी आत्मा की, कर्म की, नियमो की हत्या की, और एक सती-साध्वी स्त्री के खून से अपने हाथो को रगा, पर प्रारब्ध पर विजय न पा सका। अभीष्ट का मार्ग अवश्य दिखायी दे रहा है, पर मालूम नही वहाँ तक पहुँचना नसीब होगा या नही। इस क्षोभ और नैराश्य की दशा मे उन्हे बार-बार गायत्री की याद आती, उसकी प्रतिभा-मूर्ति आँखो मे फिरा करती, अनुराग मे डूबी हुई उसकी बाते कानो मे गूँजने लगती, हृदय से एक ठडी आह निकल जाती।

ज्ञानशकर को अब नित्य यह धडका लगा रहता था कि कही गायत्री मुझे अलग न कर दे। वह चिट्ठियाँ खोलते डरते थे कि कही गायत्री का कोई पत्र न निकल आये। उन्होने उसको कई पत्र लिखे थे, पर एक का भी उत्तर न आया था। इससे उन्हे और भी उलझन होती थी। मायाशकर के पत्र अवश्य आते थे, पर इससे उन्हे शान्ति न मिलती थी। बनारस मे क्या हो रहा है यह जानने के लिए वह व्यग्र रहते थे, पर ऐसा कोई न था जो वहाँ के समाचार विस्तारपूर्वक उनको लिखता। कभी-कभी वह स्वय बनारस जाने का विचार करते, लेकिन डरते कि न जाने इसका क्या नतीजा हो। यहाँ तो उसकी आँखो से दूर पडा हूँ, सम्भव है कि कुछ दिनो मे उसका क्रोध शान्त हो जाय। मुझे देख कर वह कही और भी अप्रसन्न हो जाय तो रही-सही आशा भी जाती रहे।

इस भाँति तीन-चार महीने बीत गये। भादो का महीना था। जन्माष्टमी आ रही थी। शहर मे उत्सव मनाने की तैयारी हो रही थी। कई वर्षो से गायत्री के यहाँ यह उत्सव बडी धूमधाम से मनाया जाता था। दूर-दूर से गवैये आते थे, रासलीला की मडलियाँ बुलायी जाती थी, रईसो और हाकिमो को दावत दी जाती थी। ज्ञानशकर ने समझा, गायत्री को यहाँ बुलाने का यह बहुत ही अच्छा बहाना है। एक लम्बा पत्र लिखा और बडे आग्रह के साथ उसे बुलाया। कृष्णमन्दिर की सजावट होने लगी लेकिन तीसरे ही दिन जवाब आया, मेरे यहाँ जन्माष्टमी न होगी, कोई तैयारी न की जाय। यह शोक का साल है, मैं किसी प्रकार का आनन्दोत्सव नही कर सकती, चाहे वह धार्मिक ही क्यो न हो। ज्ञानशकर के हृदय पर बिजली सी गिर गयी। समझ गये कि यहाँ से विदा होने के दिन निकट आ गये। नैराश्य का रग और भी गहरा हो गया। शका ने ऐसा उग्र रूप धारण किया कि डाकिये की सूरत देखते ही उनकी छाती धड-धड करने लगती थी। किसी बग्घी या मोटर की आवाज सुन कर सिर मे चक्कर आ जाता था, कही गायत्री न हो। रात और दिन मे बनारस से चार गाडियाँ आती थी। यह ज्ञानशकर के लिए कठिन परीक्षा की घडियाँ थी। गाडियो के आने के समय उनकी नीद आप ही आप खुल जाती थी। चार दिन तक उनकी यह हालत रही। पाँचवे दिन की डाक से गायत्री की रजिस्टरी चिट्ठी आयी। शिरनामा देखते ही ज्ञानशकर के पाँव तले से जमीन सरक गयी। निश्चय हो गया कि यह मुझे हटाने का

परवाना है, नही तो रजिस्टरी चिट्ठी भेजने की क्या जरूरत थी ? कांपते हुए हाथो से पत्र खोला। लिखा था—मैं आज बद्रीनाथ जा रही हूँ। आप सावधानी से रियासत का प्रबन्ध करते रहिएगा। मुझे आपके ऊपर पूरा भरोसा है, इसी भरोसे ने मुझे यह यात्रा करने पर उत्साहित किया है। इसके बाद वह आदेश था जिसका ऊपर जिक्र किया जा चुका है। ज्ञानशकर का चित्त कुछ शान्त हुआ। लिफाफा रख दिया और सोचने लगे, बात वही हुई जो वह चाहते थे। गायत्री सब कुछ उनके सिर छोड कर चली गयी। यात्रा कठिन है, रास्ता दुर्गम है, पानी खराब है, इन विचारो ने उन्हें जरा देर के लिए चिन्ता मे डाल दिया। कौन जानता है क्या हो। वह इतने व्याकुल हुए कि एक बार जी मे आया, क्यो न मैं भी बद्रीनाथ चलूँ ? रास्ते मे भेंट हो जायगी। वहाँ तो उसके कोई कान भरनेवाला न होगा। सम्भव है मैं अपना खोया हुआ विश्वास फिर जमा लूँ, प्रेम के बुझे हुए दीपक को फिर जला दूँ, इस सन्दिग्ध दशा का अन्त हो जाय। गायत्री के बिना अब उन्हे सब कुछ सूना मालूम होता था। यह विपुल सम्पत्ति अगर सुख-सरिता थी तो गायत्री उसकी नौका थी। नौका के बिना जल-विहार का आनन्द कहाँ ? पर थोडी देर मे उनका यह आवेग शान्त हो गया। सोचा, अभी वह मुझसे भरी बैठी है, मुझे देखते ही जल जायगी। मेरी ओर से उसका चित्त कितना कठोर हो गया है। माया को मुझसे छीने लेती है। अपने विचार मे उसने मुझे कडे से कडा दड दिया है। ऐसी दशा मे मेरे लिए सबसे सुलभ यही है कि अपनी स्वामि-भक्ति से, सुप्रबन्ध से, प्रजा-हित से, उसे प्रसन्न करूँ। प्रेमशकर ने अच्छा निशाना मारा। बगुला भगत हैं, बैठे-बैठे दो हजार रुपये मासिक की जागीर बना ली। बेचारा माया कही का न रहा। प्रेमशकर उसे कुशल कृषक बना देंगे, लेकिन चतुर इलाकेदार नही बना सकते। उन्हे खबर ही नही कि रईसो की शिक्षा कैसी होनी चाहिए। खैर, जो कुछ हो, मेरी स्थिति उतनी शोचनीय नही है जितना मैं समझता था।

ज्ञानशकर ने अभी तक दूसरी चिट्ठियाँ न खोली थी। अपने चित्त को यो समझा कर उन्होने दूसरा लिफाफा उठाया तो राय साहब का पत्र था। उनके विषय मे ज्ञानशकर को केवल इतना ही मालूम था कि विद्या के देहान्त के बाद वह अपनी दवा कराने के लिए मसूरी चले गये हैं। पत्र खोल कर पढने लगे—

बाबू ज्ञानशंकर, आशीर्वाद। दो-एक महीने पहले मेरे मुँह से तुम्हारे प्रति आशीर्वाद का शब्द न निकलता, किन्तु अब मेरे मन की वह दशा नही है। ऋषियो का वचन है कि बुराई से भलाई पैदा होती है। मेरे हक मे यह वचन अक्षरश चरितार्थ हुआ। तुम मेरे शत्रु हो कर परम मित्र निकले। तुम्हारी बदौलत मुझे आज यह शुभ अवसर मिला। मैं अपनी दवा कराने के लिए मसूरी आया, लेकिन यहाँ मुझे वह वस्तु मिल गयी जिस पर मैं ऐसे सैकड़ो जीवन न्यौछावर कर सकता हूँ। मैं भोग-विलास का भक्त था। मेरी समस्त प्रवृत्तियाँ जीवन का सुख भोगने मे लिप्त थी। लोक-परलोक की चिन्ताओ को मैं अपने पास न आने देता था। यहाँ मुझे एक दिव्य आत्मा

के सत्सग का सौभाग्य प्राप्त हो गया और अब मुझे यह ज्ञात हो रहा है कि मेरा सारा जीवन नष्ट हो गया। मैंने योग का अभ्यास किया, शिव और शक्ति की आराधना की, अपनी आकर्षण-शक्ति को बढाया यहाँ तक कि मेरी आत्मा विद्युत का भडार हो गयी, पर इन सारी क्रियाओ का उद्देश्य केवल वासनाओ की तृप्ति थी। कभी-कभी भोग के आनन्द मे मग्न हो कर मैं समझता था यही आत्मिक शान्ति है, पर अब ज्ञात हो रहा है कि मैं भ्रम-जाल मे फँसा हुआ था! उसी अज्ञान की दशा मे अपने को आत्मज्ञानी समझता हुआ मैं ससार से प्रस्थान कर जाता, लेकिन तुमने वैद्य की तलाश मे घर से बाहर निकाला और दैवयोग से शारीरिक रोगो के वैद्य की जगह मुझे आत्मिक रोगो का वैद्य मिल गया। मेरे हृदय से तुम्हारे कल्याण की प्रार्थना निकलती है; लेकिन याद रखो, मेरी शुभ कामनाओ से तुम्हारा जितना हित होगा उससे कही ज्यादा अहित गायत्री की ठडी साँसो से होगा। विद्या के आत्मघात ने उसे सचेत कर दिया है। ऐसी दशा मे अन्य स्त्रियाँ प्रसन्न होतीं, लेकिन गायत्री की आत्मा सम्पूर्णत· निर्जीव नही हुई थी। उसने तुम्हारे मन्त्र को विफल कर दिया। तुम्हारा अन्त.करण अब गायत्री के लिये खुला हुआ पृष्ठ है। तुम उसकी शापाग्नि से किसी तरह बच नही सकते। तुम्हे जल्द अपनी तृष्णाओ को साथ लिये ही ससार से जाना पडेगा। अतएव मुनासिब है कि तुम अपने जीवन के गिने-गिनाये दिन आत्म-शुद्धि मे व्यतीत करो। तुम्हारे कल्याण का यही मार्ग है। मैं अपनी कुछ जायदाद मायाशंकर को देता हूँ। वह होनहार बालक है और कुल को उज्ज्वल करेगा। उनके वयस्कत्व तक तुम रियासत का प्रबन्ध करते रहो। मुझे अब उससे कोई प्रयोजन नही है।

यह पत्र पढकर ज्ञानशकर के मन मे हर्ष की जगह एक अव्यक्त शंका उत्पन्न हुई। वह भविष्यवाणी के कायल न थ, लेकिन ऐसे पुरुप के मुँह से अनिष्ट की बातें सुन कर जिसके त्याग ने उसके आत्मज्ञानी होने मे कोई सन्देह न रखा हो उनका हृदय कातर हो गया। इस समय उनके जीवन की चिर-सचित अभिलाषा पूरी हुई थी। उन्हे स्वप्न मे भी यह आशा न थी कि मैं इतनी जल्द रायसाहब की विपुल सम्पत्ति का स्वामी हो जाऊँगा। नहीं, वह उसकी ओर से निराश हो चुके थे। उन्हे विश्वास हो गया था कि राय साहब उसे ट्रस्ट के हवाले कर जायेंगे। यह सब शकाएँ मिथ्या निकली। लेकिन तिस पर भी इस पत्र से उन्हे वही दुश्शका हुई जो किसी स्त्री को अपनी दाईं आँख फड़कने से होती है। उनकी दशा इस समय उस मनुष्य की सी थी जिसे डाकुओ की कैद मे मिठाइयाँ खाने को मिलें! सूखे ठूँठ का कुसुमित होना किसे आशकित नहीं कर देगा? वह एक घटे तक चिन्ता मे डूबे रहे। इसके बाद वह कृष्णमन्दिर मे गये और बडे उत्साह मे जन्माष्टमी के उत्सव की तैयारियाँ करने लगे।

ज्ञानशकर के जीवनाभिनय मे अब से एक नये दृश्य का सूत्रपात हुआ, पहले से कही ज्यादा शुभ्र, मंजु और सुखद। अभी दस मिनट पहले उनकी आशा-नौका मझधार मे पड़ी चक्कर खा रही थी, पर देखते-देखते लहरे शान्त हो गयी। वायु अनुकूल

हो गयी और नौका तट पर आ पहुँची, जहाँ दृष्टि की परम सीमा के निधियो का भव्य विस्तृत उपवन लहरा रहा था।

५५

वावू ज्वालासिंह को वनारस से आये आज दूसरा दिन था। कल तो वह थकावट के मारे दिन भर पड़े रहे, पर प्रात काल ही उन्होने लखनपुरवालो की अपील का प्रश्न छेड दिया। प्रेमशकर ने कहा—मैं तो आप ही की बाट जोह रहा था। पहले मुझे प्रत्यक काम मे अपने ऊपर विश्वास होता था, पर आप सा सहायक पा कर मुझे पग-पग पर आपके सहारे की इच्छा होती है। अपने ऊपर से विश्वास ही उठ गया। आपके विचार मे अपील करने के लिए कितने रुपये चाहिए ?

ज्वालासिंह—ज्यादा नही तो चार-पाँच हजार तो अवश्य ही लग जायेंगे।

प्रेम—और मेरे पास चार-पाँच सौ भी नही है।

ज्वाला—इसकी चिन्ता नही। आपके नाम पर दस-वीस हजार मिल सकते है।

प्रेम—मैं ऐसा कौन सा जाति का नेता हूँ जिस पर लोगो की इतनी श्रद्धा होगी ?

ज्वाला—जनता आपको आपसे अधिक समझती है। मैं आज ही चन्दा वसूल करना शुरू कर दूँगा।

प्रेम—मुझे आशा नही कि आपको इसमे सफलता होगी। सम्भव है दो चार सौ रुपये मिल जायँ, लेकिन लोग यही समझेंगे कि उन्होने भी कमाने का यह ढग निकाला। चन्दे के साथ ही लोगो को सन्देह होने लगता है। आप तो देखते ही है, चन्दो ने हमारे कितने ही श्रद्धेय नेताओ को बदनाम कर दिया। ऐसा बिरला ही कोई मनुष्य होगा जो चन्दो के भँवर मे पडकर वेदाग निकल गया हो। मेरे पास श्रद्धा के कुछ गहने अभी बचे हुए हैं। अगर वह सब वेच दिया जाय तो शायद हजार रुपये मिल जायँ।

इतने मे शीलमणि इन लोगो के लिए नाश्ता लायी। यह बात उसके कानो मे पडी। बोली—कभी उनकी सुधि भी लेते हैं या गहनो पर हाथ साफ करना ही जानते है ? अगर ऐसी ही जरूरत है तो मेरे गहने ले जाइए।

ज्वाला—क्यो न हो, आप ऐसी ही दानी तो है। एक-एक गहने के लिए तो आप महीनो रूठती हैं, उन्हे ले कर कौन अपनी जान गाढे मे डाले !

शील—जिस आग से आदमी हाथ सेंकता है, क्या काम पडने पर उससे अपने चने नही भून लेता। स्त्रियाँ गहने पर प्राण देती है लेकिन अवसर पडने पर उतार भी फेकती है।

मायाशकर एक तरफ अपनी किताव खोले वैठा हुआ था, पर उसका ध्यान इन्ही बातो की ओर था। एक कल्पना बार-बार उसके मन मे उठ रही थी, पर सकोचवश उसे प्रकट न कर सकता था। कई बार इरादा किया कि कहूँ, पर प्रेमशंकर की ओर देखते ही जैसे कोई मुँह वन्द कर देता था। आँखे नीची हो जाती थी ! शीलमणि की

बात सुन कर वह अधीर हो गया। ज्वालासिंह की तरफ कातर नेत्रो से देखता हुआ बोला—आज्ञा हो तो मैं भी कुछ कहूँ।

ज्वाला—हाँ-हाँ, शौक से कहो।

माया—इस महीने की मेरी पूरी वृत्ति अपील मे खर्च कर दीजिए। मुझे रुपयो की कोई विशेष जरूरत नही है।

शीलमणि और ज्वालासिंह दोनो ने इस प्रस्ताव को बालोचित आवेश समझ कर प्रेमशकर की तरफ मुस्कुराते हुए देखा। माया ने उनका यह भाव देख कर समझा, मुझसे धृष्टता हो गयी। ऐसे महत्त्व के विषय मे मुझे बोलने का कोई अधिकार न था। चाचा जी मेरे दुस्साहस पर अवश्य नाराज होगे। लज्जा से आँखे भर आयी और मुँह से एक सिसकी निकल गयी। प्रेमशकर ने चौक कर उसकी तरफ देखा, हृद्गत भावो को समझ गये। उसे प्रेमपूर्वक छाती से लगा कर आश्वासन देते हुए बोले—तुम रोते हो क्यो बेटा ? तुम्हारी यह उदारता देख कर मेरा चित्त जितना प्रसन्न हुआ है वह प्रकट नही कर सकता। तुम मेरे पुत्रतुल्य हो, लेकिन मेरा जी चाहता है कि तुम्हारे पैरो पर सिर रख दूँ। तुम्हारे हृदय मे दया और विवेक है और मुझे विश्वास है कि तुम्हारा जीवन परोपकारी होगा, लेकिन मैंने तुम्हारी शिक्षा के लिए जो व्यवस्थाएँ की है उनका व्यय तुम्हारी वृत्ति से कुछ अधिक ही है।

माया को अब कुछ साहस हुआ। बोला, मेरी शिक्षा पर इतने रुपय खर्च करने की क्या जरूरत है ?

प्रेम—क्यो, आखिर तुम्हे घर पर पढाने के लिए अध्यापक रहेगे या नही ? एक अँगरेजी और हिसाब पढायेगा, एक हिन्दी और सस्कृत, एक उर्दू और फारसी, एक फ्रेंच और जर्मन, पाँचवाँ तुम्हे व्यायाम, घोडे की सवारी, नाव चलाना, शिकार खेलना सिखायेगा। इतिहास और भूगोल मै पढाया करूँगा।

माया—मेरी कक्षा मे जो लडके सबसे अच्छे है वे घर पर किसी मास्टर से नही पढते। मैं उनको अपने से कम नही समझता।

प्रेम—तुम्हे हवा खाने के लिए एक फिटन की जरूरत है। सवारी के अभ्यास के लिये दो घोडे चाहिए।

माया—अपराध क्षमा कीजिएगा, मेरे लिए इतने मास्टरो की जरूरत नही है। फिटन, मोटर, पोलो को भी मैं व्यर्थ समझता हूँ। हाँ, एक घोडा गोरखपुर से मँगवा दीजिए तो सवारी किया करूँ। नाव चलाने के लिए मैं मल्लाहो की नाव पर जा बैठूंगा। उनके साथ पतवार घुमाने और डांड चलाने मे जो आनन्द मिलेगा वह अकेले अध्यापक के साथ बैठने मे नही आ सकता। अभी से लोग कहने लगे है कि इसका मिजाज नही मिलता। पदमू कई बार ताने दे चुके है ! मुझे नक्कू रईसो की भाँति अपनी हँसी कराने की इच्छा नही है। लोग यही कहेगे कि अभी कल तक तो एक मास्टर भी न था, आज दूसरो की सम्पत्ति पा कर इतना घमड हो गया है।

प्रेम—प्रतिष्ठा का ध्यान रखना आवश्यक है।

माया—मैं तो देखता हूँ आप इन चीजो के बिना ही सम्मान की दृष्टि से देखे जाते है। सभी आपकी इज्जत करते है। मेरे स्कूल के लडके भी आप का नाम आदर से लेते है, हालाँ कि शहर के और बड़े रईसो की हँसी उड़ाते है। मेरे लिए किसी विशेष चीज की जरूरत क्यो हो ?

माया के प्रत्येक उत्तर पर प्रेमशकर का हृदय अभिमान से फूला पडता था। उन्हे आश्चर्य होता था कि इस लडके मे संतोष और त्याग का भाव क्योकर उदित हुआ ? इस उम्र मे तो प्राय. लडके टीमटाम पर जान देते हैं, सुन्दर वस्त्रो से उनका जी नही भरता, चमक-दमक की वस्तुओ पर लट्टू हो जाते हैं। यह पूर्व संस्कार है और कुछ नही। निरुत्तर हो कर बोले—रानी गायत्री की यही इच्छा थी, नही तो इतने रुपये क्यो खर्च करती ?

माया—यदि उनकी यह इच्छा होती तो क्या वह मुझे ताल्लुकेदारो के स्कूलों में नही भेज देती ? मुझे आपकी सेवा मे रखने से उनका उद्देश्य यही होगा कि मैं आपके ही पदचिह्न पर चलूँ।

प्रेम—तो यह रुपये खर्च क्योकर होगे ?

माया—इसका फैसला रानी अम्माँ ने आप पर ही छोड़ दिया है। मुझे आप उसी तरह रखिए जैसे आप अपने लडके को रखते हैं। मुझे ऐसी शिक्षा न दीजिए और ऐसे व्यसनो मे न डालिए कि मैं अपनी दीन प्रजा के दु ख-दर्द मे शरीक न हो सकूँ। आपके विचार मे मेरी शिक्षा की यही सबसे उत्तम विधि है ?

प्रेम—नही, मेरा विचार तो ऐसा नही, लेकिन दुनिया को दिखाने के लिये ऐसा ही करना पडेगा। नही तो लोग यही कहेगे कि मैं तुम्हारी वृत्ति का दुरुपयोग कर रहा हूँ।

माया—तो आप मुझे इस ढग पर शिक्षा देना चाहते है जिसे आप स्वय उपयोगी नही समझते। लोगो के दुराक्षेपो से बचने के ही लिए आप ने यह व्यवस्थाएँ की हैं।

प्रेमशंकर शरमाते हुए बोले—हाँ, बात तो कुछ ऐसी ही है।

माया—मैंने अपने वजीफे के खर्च करने की और भी विधि सोची है। आप बुरा न माने तो कहूँ।

प्रेम—हाँ-हाँ, शौक से कहो। तुम्हारी बातो से मेरी आत्मा प्रसन्न होती है। मैं तुम्हें इतना विचारशील न समझता था।

ज्वालासिंह—इस उम्र मे मैंने किसी को इतना चैतन्य नही देखा।

शीलमणि प्रेमशकर की ओर मुँह करके मुस्कुरायी और बोली—इस पर आप की ही परछायी पडी है।

माया—मैं चाहता हूँ कि मेरा वजीफा गरीब लड़को की सहायता मे खर्च किया जाय। दस-दस रुपये की १९९ वृत्तियाँ दी जाये तो मेरे लिए दस रुपये बच रहेगे। इतने मे मेरा काम अच्छी तरह चल सकता है।

प्रेमशंकर पुलकित हो कर बोले—बेटा, तुम्हारी उदारता धन्य है, तुम देवात्मा हो।

कितना देवदुर्लभ त्याग है! कितना सतोष! ईश्वर तुम्हारे इन पवित्र भावो को सुदृढ करें, पर मैं तुम्हारे साथ इतना अन्याय नही कर सकता।

माया—तो दो-चार वृत्तियाँ कम कर दीजिए, लेकिन यह सहायता उन्ही लडको को दी जाय जो यहाँ आकर खेती और बुनाई का काम सीखे।

ज्वाला—मैं इस प्रस्ताव का अनुमोदन करता हूँ। मेरी राय मे तुम्हे अपने लिए कम से कम ५०० रु० रखने चाहिए। बाकी रुपये तुम्हारी इच्छा के अनुसार खर्च किये जायें। ७५ वृत्तियाँ बुनाई और ७५ खेती के काम सिखाने के लिये दी जायें। भाई साहब कृषिशास्त्र और विज्ञान मे निपुण है। बुनाई का काम मैं सिखाया करूँगा। मैंने इसका अच्छी तरह अभ्यास कर लिया है।

प्रेमशकर ने ज्वालासिंह का खंडन करते हुए कहा,मैं इस विषय मे रानी गायत्री की आज्ञा और इच्छा के बिना कुछ नही करना चाहता।

मायाशकर ने निराश भाव से ज्वालासिंह को देखा और फिर अपनी किताब देखने लगा।

इसी समय डाक्टर इर्फानअली के दीवनखाने मे भी इसी विषय पर वार्त्तालाप हो रहा था। डाक्टर साहब सदैव अपने पेशे की दिल खोल कर निन्दा किया करते थे। कभी-कभी न्याय और दर्शन के अध्यापक बन जाने का इरादा करते। लेकिन उनके विचार मे स्थिरता न थी, न विचारो को व्यवहार मे लाने के लिए आत्मबल ही था। नही, अनर्थ यह था कि वह जिन दोषो की निन्दा करते थे उन्हे व्यवहार मे लाते हुए जरा भी सकोच न करते, जैसे कोई जीर्ण रोगी पथ्यो से ऊब कर सभी प्रकार के कुपथ्य करने लगे। उन्हे इस पेशे को धन-लोलुपता से घृणा थी, पर आप मुवक्किलो को बडी निर्दयता से निचोडते थे। वकीलो की अनीति का नित्य रोना रोते थे। पर आप दुर्नीति के परम भक्त थे। अपने हलवे-माडे से काम था, मुवक्किल चाहे मरे या जिये। इनकी स्वार्थपरायणता और दुर्नीति के ही कारण लखनपुर का सर्वनाश हुआ था।

लेकिन जब से प्रेमशकर ने उपद्रवकारियो के हाथो से उनकी रक्षा की थी तभी से उनकी रीति-नीति और आचार-विचार मे एक विशेष जागृति सी दिखायी देती थी। उनकी धन-लिप्सा अब उतनी निर्दय न थी, मुवक्किलो से बडी नम्रता का व्यवहार करते, उनके वृत्तान्त को विचारपूर्वक सुनते, मुकदमे को दिल लगा कर तैयार करते, इतना ही नही, बहुधा गरीब मुवक्किलो से केवल शुकराना ले कर ही सन्तुष्ट हो जाते थे। इस सद्व्यवहार का कारण केवल यही नही था कि वह अपने खोये हुए सम्मान को फिर प्राप्त करना चाहते थे, बल्कि प्रेमशकर का सन्तोषमय, निष्काम और नि स्पृह जीवन उनके चित्त की शान्ति और सहृदयता का मुख्य प्रेरक था। उन्हे जब अवसर मिलता प्रेमशकर से अवश्य मिलने जाते और हर बार उनके सरल और पवित्र जीवन से मुग्ध हो कर लौटते थे। अब तक शहर मे कोई ऐसा साधु, सात्विक पुरुष न था जो उनपर अपनी छाप डाल सके। अपने सहवर्गियो मे वह किसी को अपने से अधिक विवेकशील, नीतिपरायण और सहृदय न पाते थे। इस दशा मे वह अपने को ही सर्वश्रेष्ठ

समझते थे और वकालत की निन्दा करके अपने को धन्य मानते थे। उनकी स्वार्थ वृत्ति को उन्मत्त करने के लिए इतना ही काफी था, पर अब उनकी आँखो के सामने एक ऐसा पुरुष उपस्थित था जो उन्ही का सा विद्वान्, लेख और और वाणी मे उन्ही का सा कुशल था; पर कितना विनयी, कितना उदार, कितना दयालु, कितना शातचित्त ! जो उनकी असाधुता से दु.खी हो कर भी उनकी उपेक्षा न करता था। अतएव अब डाक्टर साहब को अपने पिछले अपकारो पर पश्चात्ताप होता था। वह प्रायश्चित्त करके अपयश और कलक के दाग को मिटाना चाहते थे। उन्हें लज्जावश प्रेमशकर से अपील के लिए अनुरोध करने का साहस न होता था, पर उन्होने सकल्प कर लिया था कि अपील मे अभियुक्तो को छुडाने के लिए दिल तोड़ कर प्रयत्न करूँगा। वह अपील के खर्च का बोझ भी अपने ही सिर लेना चाहते थे। महीनो से अपील की तैयारी कर रहे थे, मुकदमे की मिस्ले विचारपूर्वक देख डाली थी, जिरह के प्रश्न निश्चित कर लिये थे और अपना कथन भी लिख डाला था। उन्हे इतना मालूम हो गया था कि ज्वाला-सिंह के आने पर अपील होगी। उनके आने की बडी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रात.काल का समय था। डाक्टर साहब को ज्वालासिंह के आने की खबर मिल गयी थी। उनसे मिलने के लिए जा ही रहे थे कि सैयद ईजाद हुसेन का आगमन हुआ। उनकी सौम्यमूर्ति पर काला चुगा बहुत खुलता था। सलाम-बन्दगी के बाद सैयद साहब ने इर्फान अली की ओर सन्देह की दृष्टि से देख कर कहा—आपने देखा, इन दोनो भाइयो ने रानी गायत्री को कैसा शीशे मे उतार लिया ? एक साहब ने रियासत हाथ मे कर ली और दूसरे साहब दो हजार रुपये के मौरूसी वसीकेदार बन गये। लौंडे की तालीम मे ज्यादा से ज्यादा चार-पाँच सौ खर्च हो जायेंगे, और क्या ? दुनिया मे कैसे-कैसे बगुला भगत छिपे हुए हैं !

ईजाद हुसेन को बदगुमानी का मर्ज था। जब से उन्हे यह बात मालूम हुई थी, उनकी छाती पर साँप लोट रहा था, मानो उन्ही की जेब से रुपये निकाले जाते हैं। यह कितना अनर्थ था कि प्रेमशकर को तो दो हजार रुपये महीने विना हाथ पैर हिलाये घर बैठे मिल जायँ और उस गरीब को इतना छल-प्रपच करने पर भी रोटियों की चिन्ता लगी रहे !

डाक्टर महाशय ने व्यग भाव से कहा—इस मौके पर आप चूक गये। अगर आप रानी साहिबा की खिदमत मे डेपुटेशन ले कर जाते तो इत्तहादी यतीमखाने के लिए एक हजार का वसीका जरूर बँध जाता।

ईजाद हुसेन—आप तो जनाब मजाक करते हैं। मैं ऐसा खुशनसीब नही हूँ। मगर दुनिया में कैसे-कैसे लोग पड़े हुए है जो तर्क[1] का नूरानी जाल फैला कर सोने की चिड़िया फँसा लेते है।

डाक्टर साहब ने तिरस्कार की दृष्टि से देख कर कहा—लाला ज्ञानशंकर की निस्बत

---

[1]—त्याग।

आप जो चाहे ख्याल करें, लेकिन बाबू प्रेमशकर जैसे नेकनीयत आदमी पर आपका शुबहा करना बिलकुल बेजा है और जब वह आपके मददगारो मे हैं तो आपका उनसे बदगुमान होना सरासर बेइन्साफी है। मैं उन्हे अर्से से जानता हूँ और दावे के साथ कह सकता हूँ कि ऐसा बेलौस आदमी इस शहर मे क्या इस मुल्क मे मुश्किल से मिलेगा। वह अपने को मशहूर नही करते, लेकिन कौम की जो वह खिदमत कर रहे हैं काश और लोग भी करते तो यह मुल्क रश्के फिर्दौस[1] हो जाता। जो आदमी दस रुपये माहवार पर जिन्दगी बसर करे, अपने मजदूरो से मसावत[2] का बर्ताव करे, मजलूमा[3] की हिमायत करने मे दिलोजान से तैयार रहे, अपने उसूलो[4] पर अपनी जायदाद तक कुर्बान कर दे, उसकी निस्बत ऐसा शक करना शराफत के खिलाफ है। आप उनके मुलाजिमो को सौ रुपये माहवार पर भी रखना चाहे तो न आयेंगे। वह उनके नौकर नही है, बल्कि पैदावार में बराबर के हिस्सेदार हैं। गायत्री गजब की मर्दुमशनास[5] औरत मालूम होती है।

ईजादहुसेन ने चकित हो कर कहा—वाकई वह दस रुपये माहवार पर बसर करते हैं? यह क्योकर?

इर्फान—अपनी जरूरतो को घटा कर। हम और आप तकल्लुफ[6] की चीजों को जरूरियात मे शामिल किये हुए है और रात-दिन उसी फिक्र मे परेशान रहते हैं। यह नफ्स[7] की गुलामी है। उन्होने इसे अपने काबू मे कर लिया है। हम लोग अपनी फुर्सत का वक्त जमाने और तकदीर की शिकायत करने मे सर्फ करते हैं। रातदिन इसी उधेड-बुन मे रहते हैं कि क्योकर और मिले। और की हवस मे हलाल और हराम का भी लिहाज नही करते। उन्हे मैंने कभी अपनी तकदीर के दुखडे रोते हुए नही पाया। वह हमेशा खुश नजर आते है गोया कोई गम ही नही. . .

इतने मे बाबू ज्वालासिंह आ पहुँचे। डाक्टर साहब ने उठ कर हाथ मिलाया। शिष्टाचार के बाद पूछा—अब तो आप का इरादा यहाँ मुस्तकिल तौर पर रहने का है न?

ज्वाला—जी हाँ, आया तो इसी इरादे से हूँ।

इर्फान—फरमाइए, अपील कब होगी?

ज्वाला—इसका जिक्र पीछे करूँगा। इस वक्त तो मुझे सैयद से कुछ अर्ज करना है। हुजूर के दौलतखाने पर हाजिर हुआ था। मालूम हुआ आप यहाँ तशरीफ रखते हैं। मुझे बाबू प्रेमशकर ने आप से यह पूछने के लिए भेजा है कि आप मायाशकर को उर्दू फारसी पढाना मजूर करेंगे।

इर्फान—मजूर क्यो न करेंगे, घर बैठे-बैठे क्या करते है? जल्से तो साल मे दस-पाँच ही होते है और रोटियो की फिक्र चौबीसो घटे सिर पर सवार रहती है। तनख्वाह क्या तजवीज की है?

---

[1]—स्वर्गतुल्य। [2]—बराबरी। [3]—अन्याय पीडित। [4]—सिद्धान्तों।
[5]आदमियो को पहचाननेवाली। [6]विलास। [7]इन्द्रिय।

ज्वाला—अभी १०० रु० माहवार मिलेंगे।

इर्फान—बहुत माकूल है। क्यो मिर्जासाहब, मजूर है न ? ऐसा मौका फिर आपको न मिलेगा।

ईजाद हुसेन ने कृतज्ञ भाव से कहा—दिलोजान से हाजिर हूँ। मेरी जबान मे ताकत नही है कि इस एहसान का शुक्रिया अदा कर सकूं। हैरत तो यह है कि मुझे उनसे एक ही बार नियाज हासिल हुआ और उन्हे मेरी परवरिश का इतना खयाल है।

ज्वाला—वह आदमी नही, फरिश्ते हैं। आपके यतीमखाने का कई बार जिक्र कर चुके है। शायद यतीमो के लिए कुछ वजीफे मुकर्रर करना चाहते हैं। इस वक्त सब कितने यतीम है ?

उपकार ने ईजाद हुसेन के हृदय को पवित्र भावो से परिपूरित कर दिया था। अतिशयोक्ति से काम न ले सके। एक क्षण तक वह असमजस मे पड़े रहे, पर अन्त मे सद्भावो ने विजय पायी। बोले—जनाब, अगर आपने किसी दूसरे मौके पर यह सवाल किया होता तो मैं उसका कुछ और ही जवाब देता, पर आप लोगो की शराफत और हमदर्दी का मुझ जैसे दगाबाज आदमी पर भी असर पड ही गया। मेरे यहाँ दो किस्मो के यतीम है। एक मुस्तकिल और दूसरे फसली। जरूरत के वक्त इन दोनो की तायदाद पचास से भी बढ जाती है, लेकिन फसली यतीमो को निकाल दीजिए तो सिर्फ दस यतीम रह जाते है। मुमकिन है आप इनको यतीम न खयाल करे, लेकिन मैं समझता हूँ गरीब आदमी के अजीजो के लडके सच्चे यतीम है।

इर्फान अली ने मुस्कुरा कर कहा—तो हजरत, आपने क्या यतीमखाने का स्वाँग ही खडा कर रखा है ? कम से कम मुझसे तो पर्दा न रखना चाहिए था। तभी आपने अपनी सारी जायदाद यतीमखाने के नाम लिख दी थी।

ईजाद हुसेन ने शर्म से सिर झुका कर कहा—किबला, जरूरत इन्सान से सब कुछ करा लेती है। मैं वकील नही, बैरिस्टर नही, ताजिर नही, जागीरदार नही, एक मामूली लियाकत का आदमी हूँ। मुझ बदनसीब के वालिद टोक की रियासत मे ऊँचे मसबदार थे। हजारो की आमदनी थी, हजारो का खर्च। जब तक वह ज़िन्दा रहे मैं आजाद घूमता रहा, कनकैये और बटेरो से दिल बहलाता रहा। उनकी आँखे बन्द होते ही खानदान की परवरिश का भार मुझ पर पड़ा और खान्दान भी वह जो ऐश का आदी था। मेरी गैरत ने गवारा न किया कि जिन लोगो पर वालिद मरहूम ने अपना साया कर रखा था उनसे मुँह मोड़ लूँ। मुझमे लियाकत न हो, पर खान्दानी गैरत मौजूद थी। बुरी सोहबतो ने दगा और मक्र को फन मे पुख्ता कर दिया। टोक मे गुजरान की कोई सूरत न देखी तो सरकारी मुलाजमत कर ली और कई जिलो की खाक छानता हुआ यहाँ आया। आमदनी कम थी, खर्च ज्यादा। थोड़े दिनो मे घर की लेई-पूंजी गायब हो गयी। अब सिवाय इसके और कोई सूरत न थी कि या तो फाके करूँ या गुजरान की कोई राह निकालूँ। सोचते-सोचते यही सूझी जो अब कर रहा हूँ।

इर्फानअली—अन्दाजन आपको सालाना कितने रुपये मिल जाते होगे ?

ईजाद—अब क्या कुछ भी पर्दा न रहने दीजिएगा ?

इर्फान—अधूरी कहानी नही छोडी जाती।

ईजाद—तो जनाब, कोई बँधी हुई रकम है नही, और न मैं हिसाब लिखने का आदी हूँ। जो कुछ मुकद्दर मे है मिल जाता है। कभी-कभी एक-एक महीने मे हजारो की याफत हो जाती है, कभी महीनो रुपये की सूरत देखनी नसीब नही होती। मगर कम हो या ज्यादा, इस कमाई मे बरकत नही है। हमेशा शैतान की फटकार रहती है। कितनी ही अच्छी गिजा खाइए, कितने ही कीमती कपडे पहिनिए, कितने ही शान से रहिए, पर वह दिली इतमीनान नही हासिल होता जो हलाल की रूखी रोटियो और गजी-गाढो मे है। कभी-कभी तो इतना अफसोस होता है कि जी चाहता है जिन्दगी का खातमा हो जाय तो बेहतर। मेरे लिए सौ रुपये लाखो के बराबर है। इन्शा अल्लाह, इर्शाद भी जल्द ही किसी न किसी काम मे लग जायगा तो रोजी की फिक्र से निजात हो जायगी। बाकी जिन्दगी तोबा और इबादत मे गुजरेगी। 'इत्तहाद' की खिदमत अब भी करता रहूँगा, लेकिन अब से यह सच्ची खिदमत होगी, खुदगर्जी से पाक। इसका सवाब खुदा बाबू प्रेमशकर को अदा करेगा।

थोडी देर अपील के विषय मे परामर्श करने के बाद ज्वालासिंह मिर्जासाहब को साथ ले कर हाजीपुर चले। डाक्टर साहब भी साथ हो लिये।

५६

ज्यो ही दशहरे की छुट्टियो के बाद हाईकोर्ट खुला, अपील दायर हो गयी और समाचार पत्रो के कालम उसकी कार्यवाही से भरे जाने लगे। समस्या बडी जटिल थी। दड-प्राप्तो मे उन साक्षियो को फिर पेश किये जाने की प्रार्थना की थी जिनके आधार पर उन्हे दड दिये गये थे। सरकारी वकील ने इस प्रार्थना का घोर विरोध किया, किन्तु इर्फानअली ने अपने दावे को ऐसी सबल युक्तियो से पुष्ट किया और दण्ड-भोगियो पर हुई निर्दयता को ऐसे करुणा-भाव से व्यक्त किया कि जजो ने मुकदमे की दुबारा जाँच किये जाने की अनुमति दे दी।

मातहत अदालत ने विवश हो कर शहादतो को तलब किया। बिसेसर साह, डाक्टर प्रियनाथ, दारोगा खुर्शेद आलम, कर्तारसिंह, फैजू और तहसीलदार साहब कचहरी मे हाजिर हुए। बिसेसर साह का बयान तीन दिन तक होता रहा। बयान क्या था, पुलिस के हथकडो और कूटनीति का विशद और शिक्षाप्रद निरूपण था। अब वह दुर्बल इनकम-टैक्स से डरनेवाला, पुलिस के इशारो पर नाचने वाला बिसेसर साह न था। इन दो वर्षों की ग्लानि, पश्चात्ताप और दैविक व्याधियो ने सम्पूर्णत उसकी काया पलट दी थी। एक तो उसका बयान यो ही भडाफोड था, दूसरे इर्फानअली की जिरहो ने रहा-सहा पर्दा भी खोल दिया। सरकारी वकील ने पहले तो बिसेसर को अपने पिछले बयान से फिर जाने पर धमकाया, जज ने भी डाँट बतलायी पर बिसेसर जरा भी न डगमगाया। इर्फानअली ने बडी नम्रता से कहा, गवाह का यो फिर जाना

बेशक सजा के काबिल है, पर इस मुकदमे की हालत निराली है। यह सारा तूफान पुलिस का खड़ा किया हुआ है। इतने बेगुनाहों की जिन्दगी का ख्याल करके अदालत को शहादत के कानून की इतनी सख्ती से पाबन्दी न करनी चाहिए। इन विनीत शब्दो ने जज साहब को शान्त कर दिया। पुराना जज तबदील हो गया था, उसकी जगह नये साहब आये थे।

सरकारी वकील ने भी अपने पक्ष के अनुकूल खूब जिरह की, सिद्ध करना चाहा कि गाँववालो की धमकी, प्रेमशकर के आग्रह या इसी प्रकार के अन्य सम्भावित कारणो ने गवाहो को विचलित कर दिया; पर बिसेसर किसी तरह फन्दे मे न आया। अँगरेजी और जातीय पत्रो ने इस घटना की आलोचना करनी शुरू की। अँगरेजी पत्रो का अनुमान था कि गवाह का यह रूपान्तर राष्ट्रवादियो के दुराग्रह का फल है। उन्होने पुलिस को नीचा दिखाने के लिए यह चाल खेली है। अदालत ने इस बयान को स्वीकार गरने मे बड़ी भूल की है। मुखबिर को यथोचित दंड मिलना चाहिए। हिन्दुस्तानी पत्रो को पुलिस पर छीटे उडाने का अवसर मिला। अदालत मे मुकदमा पेश ही था, मगर पत्रो ने आग्रह करना शुरू किया कि पुलिस के कर्मचारियो से जवाब तलब करना चाहिए। एक मनचले पत्र ने लिखा, यह घटना इस बात का उज्ज्वल प्रमाण है कि हिन्दुस्तान की पुलिस प्रजा-रक्षण के लिए नही वरन् भक्षण के लिए स्थापित की गयी है। अगर खोज की जाय तो पूर्णत सिद्ध हो जायगा कि यहाँ की ८७ सैंकडे दुर्घटनाओ का उत्तरदायित्व पुलिस के सिर है। बाज पत्रो को पुलिस की आड में जमीदारो के अत्याचार का भयकर रूप दिखायी देता था। उन्हे जमीदारो के न्याय पर जहर उगलने का अवसर मिला। कतिपय पत्रो ने जमीदारो की दुरवस्था पर आँसू बहाने शुरू किये। यह आन्दोलन होने लगा कि सरकार की ओर से जमीदारो को ऐसे अधिकार मिलने चाहिए कि वह अपने असामियो को काबू मे रख सके, नही तो बहुत सम्भव है कि उच्छृखलता का यह प्रचड झोका सामाजिक सगठन को जड़ से हिला दे।

बिसेसर साह के बाद डाक्टर प्रियनाथ की शहादत हुई। पुलिस अधिकारियो को उन पर पूरा विश्वास था, पर जब उनका बयान सुना तो हाथो के तोते उड़ गये। उनके कुतूहल का पारावार न था, मानो किसी नये जगत् की सृष्टि हो गयी। वह पुरुष जो पुलिस का दाहिना हाथ बना हुआ था, जो पुलिस के हाथो की कठपुतली था, जिसने पुलिस की बदौलत हजारों कमाये वह आज यो दगा दे जाये, नीति को इतनी निर्दयता से पैरो तले कुचले।

डाक्टर साहब ने स्पष्ट कह दिया कि पिछला बयान शास्त्रोक्त न था, लाश के हृदय और यकृत की दशा देख कर मैंने जो धारणा की थी वह शास्त्रानुकूल नही थी। बयान देने के पहले मुझे पुस्तकों को देखने का अवसर न मिला था। इन स्थलो मे खून का रहना सिद्ध करता है कि उनकी क्रिया आकस्मिक रीति पर बन्द हो गयी। यन्त्राघात के पहले गला घोटने से यह क्रिया क्रम से बन्द होती और इतनी मात्रा मे रक्त का जमना सम्भव न था। अपनी युक्ति के समर्थन मे उन्होने कई प्रसिद्ध डाक्टरो की

सम्मति का भी उल्लेख किया। डाक्टर इर्फान अली ने भी इस विषय पर कई प्रामाणिक ग्रंथो का अवलोकन किया था। उनकी जिरहो ने प्रियनाथ की धारणा को और भी पुष्ट कर दिया। तीसरे दिन सरकारी वकील की जिरह शुरू हुई। उन्होने जब वैद्यक प्रश्नो से प्रियनाथ को काबू मे आते न देखा तब उनकी नीयत पर आक्षेप करने लगे।

वकील—क्या यह सत्य है कि पहले जिस दिन अभियोग का फैसला सुनाया गया था उस दिन उपद्रवकारियो ने आपके बँगले पर जा कर आपको घेर लिया था ?

प्रिय—जी हाँ।

वकील—उस समय बाबू प्रेमशकर ने आपको मार-पीट से बचाया था ?

प्रिय—जी हाँ, वह न आते तो शायद मेरी जान न बचती।

वकील—यह भी सत्य है कि आपको बचाने में वह स्वयं जख्मी हो गये थे ?

प्रिय—जी हाँ, उन्हे बहुत चोट आयी थी। कन्धे की हड्डी टूट गयी थी।

वकील—आप यह भी स्वीकार करेगे कि वह दयालु प्रकृति के मनुष्य है और अभियुक्तो से उन्हे सहानुभूति है।

प्रिय—जी हाँ, ऐसा ही है।

वकील—ऐसी दशा मे यह स्वाभाविक है कि उन्होने आपको अभियुक्तो की रक्षा करने पर प्रेरित किया हो ?

प्रिय—मेरे और उनके बीच मे इस विषय पर कभी बात-चीत भी नही हुई।

वकील—क्या सभव नही है कि उनके एहसान ने आपको ज्ञात रूप से बाधित किया हो।

प्रिय—मैं अपने व्यक्तिगत भावो को अपने कर्त्तव्य से अलग रखता हूँ। यदि ऐसा होता ता सबसे पहले बाबू प्रेमशकर ही अवहेलना करते।

वकील साहब एक पहलू से दूसरे पहलू पर आते थे, पर प्रियनाथ चालाक मछली की तरह चारा कुतर कर निकल जाते थे। दो दिन तक जिरह करने के बाद अन्त मे हार कर बैठ रहे।

दारोगा खुर्शेद आलम का बयान शुरू हुआ। यह उनके पहले बयान की पुनरावृत्ति थी, पर दूसरे दिन इर्फान अली की जिरहो ने उनको बिलकुल उखाड़ दिया। बेचारे बहुत तडफडाये पर जिरह-जाल से न निकल सके।

इर्फान अली को अब अपनी सफलता का विश्वास हो गया। वह आज अदालत से निकले तो बाछे खिली जाती थी। इसके पहले भी बडे-बडे मुकदमो की पैरवी कर चुके थे और दोनो जेब नोटो से भरे हुए घर चले थे, पर चित्त कभी इतना प्रफुल्लित न हुआ था। प्रेमशकर तो ऐसे खुश थे मानो लडके का विवाह हो रहा हो।

इसके बाद तहसीलदार साहब का बयान हुआ। वह घटो तक लखनपुरवालो की उद्दडता और दुर्जनता का आल्हा गाते रहे, लेकिन इर्फान अली ने दस ही मिनट मे उसका सारा ताना-बाना उधेड़ कर रख दिया।

इर्फान—आप यह तसलीम करते है कि यह सब मुलजिम लखनपुर के खास आदमियो मे हैं ?

तहसीलदार—हो सकते हैं, लेकिन जात के अहीर, जुलाहे और कुर्मी है।

इर्फान—अगर कोई चमार लखपती हो जाय तो आप उससे अपनी जूती गँठवाने का काम लेते हुए हिचकेगे या नही?

तहसीलदार—उन आदमियो मे कोई लखपती नही है।

इर्फान—मगर सब काश्तकार है, मजदूर नही। उनसे अपको घास छिलवाने का क्या मजाल था ?

तहसीलदार—सरकारी जरूरत।

इर्फान—क्या यह सरकारी जरूरत मजदूरो को मजदूरी दे कर काम कराने से पूरी न हो सकती थी ?

तहसीलदार—मजदूरो की तायदाद उस गाँव मे ज्यादा नही हैं।

इर्फान—आपके चपरासियो मे अहीर, कुर्मी या जुलाहे न थे ? आपने उनसे यह काम क्यो न लिया ?

तहसीलदार—उनका यह काम नही है।

इर्फान—और काश्तकारो का यह काम है ?

तहसीलदार—जब जरूरत पडती है तो उनसे भी यह काम लिये जाते है।

इर्फान—आप जानते है जमीन लीपना किसका काम है ?

तहसीलदार—यह किसी खास जात का काम नही है।

इर्फान—मगर आपको इससे तो इन्कार नही हो सकता कि आम तौर पर अहीर और ठाकुर यह नही करते ?

तहसीलदार—जरूरत पडने पर कर सकते है।

इर्फान—जरूरत पडने पर क्या आप अपने घोडे के आगे घास नही डाल देते ? इस लिहाज से आप अपने को साईस कहलाना पसन्द करेंगे ?

तहसीलदार—मेरी हालत का उन काश्तकारो से मुकाबला नही हो सकता।

इर्फान—बहरहाल यह आपको मानना पडेगा कि जो लोग जिस काम के आदी नही हैं वे उसे करना अपनी जिल्लत समझते हैं, उनसे यह काम लेना बेइन्साफी है। कोई बरहमन खुशी से आप के बर्तन धोयेगा। अगर आप उससे जबरन यह काम लें तो वह चाहे खौफ से करे पर उसका दिल जख्मी हो जायेगा। वह मौका पायेगा तो आपकी शिकायत करेगा।

तहसीलदार—हाँ, आपका यह फरमाना बजा है, लेकिन कभी-कभी अफसरो को मजबूर हो कर सभी कुछ करना पडता है।

इर्फान—तो आपको ऐसी हालतो मे नामुलायम बातें सुनने के लिए भी तैयार रहना चाहिए। फिर लखनपुरवालो पर इलजाम रखते है, यह इन्सानी फितरत[1] का

---

[1] फितरत—स्वभाव।

कसूर है। अब तो आप तसलीम करेंगे कि काश्तकारों से जो बेअदबी हुई वह आपकी ज्यादती का नतीजा था।

तहसीलदार—अफसरों की आसाइश के लिए......

तहसीलदार साहब का आशय समझ कर जज ने उन्हें रोक दिया।

इर्फान अली जब सन्ध्या समय घर पहुँचे तब उन्हें बाबू ज्ञानशंकर का अर्जेंट तार मिला। उन्होंने एक जरूरी मुकदमे की पैरवी करने के लिए बुलाया था। एक हजार रुपये रोजाना मेहनताना का वादा था। डाक्टर साहब ने तार फाड़ कर फेंक दिया और तत्क्षण तार से जवाब दिया—खेद है मुझे फुर्सत नहीं है। मैं लखनपुर के मामले की पैरवी कर रहा हूँ।

५७

गायत्री की दशा इस समय उस पथिक की सी थी जो साधु भेषधारी डाकुओं के कौशल-जाल में पड़ कर लुट गया हो। वह उस पथिक की भाँति पछताती थी कि मैं कुसमय चली क्यों? मैंने चलती सड़क क्यों छोड़ दी? मैंने भेष बदले हुए साधुओं पर विश्वास क्यों किया और उनको अपने रुपयों की थैली क्यों दिखायी? उसी पथिक की भाँति अब वह प्रत्येक बटोही को आशंकित नेत्रों से देखती थी। यह विडम्बना उसके लिए सहस्रों उपदेशों से अधिक शिक्षाप्रद और सजगकारी थी। अब उसे याद आया था कि एक साधु ने मुझे प्रसाद खिलाया था। जरा दूर चल कर मुझे प्यास लगी तो उसने मुझे शर्बत पिलाया, जो तृषित होने के कारण मैंने पेट भर पिया। अब उसे यह भी ज्ञात हो रहा था कि वह प्यास उसी प्रसाद का फल था। ज्यों-ज्यों वह उस घटना पर विचार करती थी, उसके सभी रहस्य, कारण और कार्य सूत्र में बँधे हुए मालूम होते थे। गायत्री ने अपने आभूषण तो बनारस में ही उतार कर श्रद्धा को सौंप दिये थे, अब उसने रंगीन कपड़े भी त्याग दिये। पान खाने का उसे शौक था। उसे भी छोड़ा। आईने और कंघी को त्रिवेणी में डाल दिया। रुचिकर भोजन को तिलांजलि दी। उसे अनुभव हो रहा था कि इन्हीं व्यसनों ने मेरे मन को चंचल बना दिया। मैं अपने सतीत्व के गर्व में विलास-प्रेम को निर्विकार समझती थी। मुझे यह न सूझता था कि वासना केवल इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके सन्तुष्ट नहीं होती, वह शनैः शनैः मन को भी अपना आज्ञाकारी बना लेती है। अब वह केवल एक उजली साड़ी पहनती थी, नंगे पाँव चलती थी और रूखा-सूखा भोजन करती थी। इच्छाओं को दमन कर रही थी, उन्हें कुचल डालना चाहती थी। शीशा ज्यों-ज्यों साफ होता है, उसके बाल स्पष्ट होते जाते हैं। गायत्री को अब अपने मन की कुप्रवृत्तियाँ साफ दिखायी दे रही थीं। कभी-कभी क्षोभ और ग्लानि के उद्वेग में उसका जी चाहता कि प्राणाघात कर लूँ। उसे अब स्वप्न में अक्सर अपने पति के दर्शन होते। उसकी मर्मभेदी बातें कलेजे के पार हो जातीं, उनकी तीव्र दृष्टि हृदय को छेद डालती।

बनारस से वह प्रयाग आयी और कई दिनों तक झूसी की एक धर्मशाला में ठहरी

रही। यहाँ उसे कई महात्माओ के दर्शन हुए, लेकिन उसे उनके उपदेशो से शान्ति न मिली। वे सब दुनिया के वन्दे थे। पहले तो उससे बात तक न की; पर ज्यो ही मालूम हुआ कि यह रानी गायत्री है त्यो ही सब ज्ञान और वैराग्य के पुतले बन गये। गायत्री को विदित हो गया कि उनका त्याग केवल उद्योग-हीनता है और उनका भेष केवल सरल-हृदय भक्तो के लिए मायाजाल। वह निराश हो कर चौथे दिन हरिद्वार जा पहुँची, पर यहाँ धर्म का आडम्बर तो बहुत देखा, भाव कम। यात्री गण दूर-दूर से आये हुए थे, पर तीर्थ करने के लिए नही, केवल विहार करने के लिए। आठो पहर गगा तट पर विलास और आभूषण की बहार रहती थी। गायत्री खिन्न होकर तीसरे ही दिन यहाँ से हृषीकेश चली गयी। वहाँ उसने किसी को अपना परिचय न दिया। नित्य पहर रात रहे उठती और गगा-स्नान करके दो-तीन घटे गीता का पाठ किया करती। शेष समय धर्म ग्रथो के पढने मे काटती। सन्ध्या को साधु-महात्माओ के ज्ञानोपदेश सुना करती। यद्यपि वहाँ दो-एक त्यागी आत्माओ के दर्शन हुए, पर कोई ऐसा तत्त्वज्ञानी न मिला जो उसके चित्त को विरक्त कर दे। इतना सयम और इद्रिय-निग्रह करने पर भी सासारिक चिन्ताएँ उसे सताया करती थी। मालूम नही घर पर क्या हो रहा है? न जाने सदाव्रत चलता है या ज्ञानशकर ने बन्द कर दिया? फर्श आदि की न जाने क्या दशा होगी? नौकर-चाकर चारो ओर लूट मचा रहे होगे। मेरे दीवानखाने मे मनो गर्द जम गयी होगी। अबकी अच्छी तरह मरम्मत न हुई होगी तो छतें कई जगह फट गयी होगी। मोटरें और बग्घियाँ रोज माँगी जाती होगी। जो ही आ कर दो-चार लल्लो-चप्पो की बातें करता होगा, लाला जी दे देते होगे। समझते होगे अब तो मैं मालिक हूँ। बगीचा बिलकुल जगल हो गया होगा। ईश्वर जाने कोई चिड़ियो और जानवरो की सुधि लेता है या नही। बेचारे भूखो मर गये होगे। दोनो पहाड़ी मैने कितनी दौड़-धूप करने पर मिले थे। अब या तो मर गये होगे या कोई माँग ले गया होगा। सन्दूको की कुजियाँ तो श्रद्धा को दे आयी हूँ, पर ज्ञानशकर जैसे दुष्ट चरित्र आदमी से कोई बात बाहर नही। बहुधा धर्म-ग्रन्थो के पढने या मन्त्र जाप करते समय ये दुश्चिन्ताएँ उसे आ घेरती थी। जैसे टूटे हुए बर्तन मे एक ओर से पानी भरो और दूसरी ओर से टपक जाता है उसी तरह गायत्री एक ओर तो आत्म-शुद्धि की क्रियाओ मे तत्पर हो रही थी, पर दूसरी ओर चिन्ता व्याधि उसे घेरे रहती थी। वह शान्ति, वह एकाग्रता न प्राप्त होती थी जो आत्मोत्कर्ष का मूल मन्त्र है। आश्चर्य तो यह है कि वह विघ्न-बाधाओ का स्वागत करती थी और उन्हे प्यार से हृदयागार मे बैठाती थी। वह बनारस से यह ठान कर चली थी कि अब ससार से कोई नाता न रखूँगी, लेकिन अब उसे ज्ञात होता था कि आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए वैराग्य की जरूरत नही है। मैं अपने घर रह कर रियासत की देख-रेख करते हुए क्या निर्लिप्त नही रह सकती, पर इस विचार से उसका जी झुंझला पडता था। वह अपने को समझाती, अब उसे रियासत से क्या प्रयोजन है? बहुत भोग कर चुकी। अब मुझे मोक्ष मार्ग पर ही चलना चाहिए, यह जन्म तो बिगड ही गया, दूसरा जन्म क्यो बिगाड़ूँ?

इसी तर्क-वितर्क मे गायत्री बद्रीनाथ की यात्रा पर आरूढ़ न हो सकी। हृषीकेश मे पड़े-पड़े तीन महीने गुजर गये और हेमन्त सिर पर आ पहुँचा, यात्रा दुस्साध्य हो गयी।

पौष मास था, पहाडो पर बर्फ गिरने लगी थी। प्रातःकाल की सुनहरी किरणो मे तुषार-मंडित पर्वत श्रेणियो की शोभा अकथनीय थी। एक दिन गायत्री ने सुना कि चित्रकूट मे कही से ऐसे महात्मा आये है जिनके दर्शन मात्र से ही आत्मा तृप्त हो जाती है। वह उपदेश बहुत कम करते हैं, लेकिन उनका दृष्टिपात उपदेशो से भी ज्यादा सुधावर्षी होता है। उनके मुखमंडल पर ऐसी कान्ति है मानो तपाया हुआ कुन्दन हो। दूध ही उनका आहार है और वह भी एक छटाँक से अधिक नही, पर डीलडौल और तेजबल ऐसा है कि ऊँची से ऊँची पहाडियो पर खटाखट चढते चले जाते हैं, न दम फूलता है, न पैर काँपते है, न पसीना आता है। उनका पराक्रम देख कर अच्छे-अच्छे योगी भी दग रह जाते है। पसूनी के गलते हुए पानी मे पहर रात से ही खड़े हो कर दो-तीन घटे तक तप किया करते है। उनकी आँखो मे कुछ ऐसा आकर्षण है कि बन के जीवधारी भी उनके इशारो पर चलने लगते है। गायत्री ने उनकी सिद्धि का यह वृत्तान्त सुना तो उसे उनके दर्शनो की प्रबल उत्कठा हुई। उसने दूसरे ही दिन चित्रकूट की राह ली और चौथे दिन पसूनी के तट पर एक धर्मशाला मे बैठी हुई थी।

यहाँ जिसे देखिए वही स्वामी जी का कीर्तिगान कर रहा था। भक्त जन दूर-दूर से आये हुए थे। कोई कहता था यह त्रिकालदर्शी हैं, कोई उन्हे आत्मज्ञानी बतलाता था। गायत्री उनकी सिद्धि की कथाएँ सुन कर इतनी विह्वल हुई कि इसी दम जा कर उनके चरणो पर सिर रख दे, लेकिन रात से मजबूर थी। वह सारी रात करवटें बदलती और सोचती रही कि मैं मुँह अँधेरे जा कर महात्मा जी के पैरो पर गिर पड़ूँगी और कहूँगी कि महाराज, मैं अभागिनी हूँ, आप आत्मज्ञानी है, आप सर्वज्ञ है, मेरा हाल आपसे छिपा हुआ नही है, मैं अथाह जल मे डूबी जाती हूँ, अब आप ही मुझे उबार सकते हैं। मुझे ऐसा उपदेश दीजिए और मेरी निर्बल आत्मा को इतनी शक्ति प्रदान कीजिए कि वह माया मोह के बन्धनो से मुक्त हो जाय। मेरे हृदय-स्थल मे अन्धकार छाया हुआ है, उसे आप अपनी व्यापक ज्योति से आलोकित कर दीजिए। इस दीन कल्पना से गद्गद हो कर घटो रोती रही। उसकी कल्पना इतनी सजग हो गयी कि स्वामी जी के आश्वासन-शब्द भी उसके कानो मे गूँजने लगे। ज्यो ही मैं उनके चरणो पर गिरूँगी वह प्रेम से मेरे सिर पर हाथ रख कर कहेगे, बेटी, तुझ पर बडी विपत्ति पडी है, ईश्वर तेरा कल्याण करेंगे। जाड़े की लम्बी रात किसी भाँति कटती ही न थी। यह बार-बार उठ कर देखती तडका तो नही हो गया है, लेकिन आकाश मे जगमगाते हुए तारो को देख कर निराश हो जाती थी। पाँचवी बार जब उठी तो पौ फट रही थी। तारागण किसी मधुर गान के अन्तिम स्वरो की भाँति लुप्त होते जाते थे। आकाश एक पीतवस्त्रधारी योगी की भाँति था जिसका मुखकमल आत्मोल्लास से खिला हुआ

हो और पृथ्वी एक माया-रहस्य थी, ओर के नीले पर्दे मे छिपी हुई गायत्री ने तुरन्त पसूनी मे स्नान किया और स्वामी जी के दर्शन करने चली।

स्वामी जी की कुटी एक ऊँची पहाडी पर थी। वहाँ वह एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे। वही चट्टानो के फर्श पर भक्तजन आ-आ कर बैठते जाते थे। चढाई कठिन थी, पर श्रद्धा लोगो को ऊपर खीचे लिये जाती थी। अशक्तता और निर्बलता ने भी सदनुराग के सामने सिर झुका दिया था। नीचे से ऊपर तक आदमियो का ताँता लगा हुआ था। गायत्री ने पहाडी पर चढना शुरू किया। थोडी दूर चल कर उसका दम फूल गया। पैर मन-मन भर के हो गये, उठाये न उठते थे, लेकिन वह दम ले-ले कर हाथो और घुटनो के बल चट्टानो पर चढती हुई ऊपर जा पहुँची। उसकी सारी देह पसीने से तर थी और आँख के सामने अँधेरा छा रहा था, लेकिन ऊपर पहुँचते ही उमका चित्त ऐसा प्रफुल्लित हुआ जैसे किसी प्यासे को पानी मिल जाय। गायत्री की छाती मे धडकन सी होने लगी। ग्लानि की ऐसी विषम, ऐसी भीषण पीडा उसे कभी न हुई थी। इस ज्ञान-ज्योति को कौन सा मुँह दिखाऊँ! उसे स्वामी जी की ओर ताकने का साहस न हुआ जैसे कोई आदमी सर्राफ के हाथ मे खोटा सिक्का देता हुआ डरे। बस इसी हैस-बैस मे थी कि सहसा उसके कानो मे आवाज आयी—गायत्री, मैं बहुत देर से तेरी बाट जोह रहा हूँ। यह राय कमलानन्द की आवाज थी, करुणा और स्नेह मे डूबी हुई। गायत्री ने चौक कर सामने देखा स्वामी जी उसकी ओर चले आ रहे थे। उनके तेजोमय मुखारविन्द पर करुणा झलक रही थी और आँखे प्रेमाश्रु से भरी हुई थी। गायत्री की आँखे झुक गयी। ऐसा जान पडा मानो मैं तेज तरगो मे बही जाती हूँ। हा! मैं इस विशाल आत्मा की पुत्री हूँ। ग्लानि ने कहा, हा पतिता! लज्जा ने कहा, हा कुलकलकिनी! निराशा बोली, हा अभागिनी! शोक ने कहा, तुझ पर धिक्कार! तू इस योग्य नही कि ससार को अपना मुँह दिखाये। अध पतन अब क्या शेष है जिसके लिए जीवन की अभिलाषा! विधाता ने तेरे भाग्य मे ज्ञा। और वैराग्य नही लिखा। इन दुष्कल्पनाओ ने गायत्री को इतना मर्माहत किया कि पश्चात्ताप, आत्मोद्धार और परमार्थ की सारी सदिच्छाएँ लुप्त हो गयी। उसने उन्मत्त नेत्रो से नीचे की ओर देखा और तब जैसे कोई चोट खाया हुआ पक्षी दोनो डैना फैला वृक्ष से गिरता है वह दोनो हाथ फैलाये शिखर पर से गिर पडी। नीचे एक गहरा कुड था। उसने उसकी अस्थियो को ससार के निर्दय कटाक्षो से बचाने के लिए अपने अन्तस्थल के अपार अन्धकार मे छिपा लिया।

५८

लाला प्रभाशकर ने भविष्य-चिन्ता का पाठ न पढ़ा था। 'कल' की चिन्ता उन्हे कभी न सताती थी। उनका समस्त जीवन विलास और कुल-मर्यादा की रक्षा मे व्यतीत हुआ था। खिलाना, खाना और नाम के लिए मर जाना—यही उनके जीवन के ध्येय थे। उन्होने सदैव इसी त्रिमूर्ति की आराधना की थी और अपनी वशगत

सम्पत्ति का अधिकाश बर्बाद कर चुकने पर भी वह अपने व्यावहारिक नियमो मे सशोधन करने की जरूरत नही समझते थे, या समझते थे तो अब किसी नये मार्ग पर चलना उनके लिए असाध्य था। वह एक उदार, गौरवशील पुरुष थे। सम्पत्ति उनकी दृष्टि मे मर्यादा पालन का एक साधन मात्र थी। इससे श्रीवृद्धि भी हो सकती है, धन से धन की उन्नति भी हो सकती है, यह उनके ध्यान मे भी नही आया था। चिन्ताओ को वह तुच्छ समझते थे, शायद इसीलिए कि उनका निवारण करने के लिए ज्यादा से ज्यादा अपने महाजन के द्वार तक जाना पडता था। उनका जो समय और धन मेहमानो के आदर-सत्कार मे लगता था उसी को वह श्रेयस्कर समझते थे। दान-दक्षिणा के शुभ अवसर आते तो उनकी हिम्मत आसमान पर जा पहुँचती थी। उस नशे मे उन्हे इसकी सुध न रहती थी कि फिर क्या होगा, और काम कैसे चलेंगे? यह बडी बहू का ही काम था कि इस चढी हुई नदी को थामे। वह रुपये को उनकी आँखो से इस तरह बचाती थी जैसे दीपक को हवा से बचाते हैं। वह बेधडक कह देती थी, अब यहाँ कुछ नही है। लाला जी उसे धिक्कारने लगते, दुष्टा, अभागिनी, तुच्छ हृदया, जो कुछ मुँह मे आता कहते, पर वह टस-से-मस न होती थी। अगर वह सदैव इस नीति पर चल सकती तो अब तक जायदाद बची रहती, पर लाला साहब ऐसे अवसरो पर कौशल से काम लेते। वह विनय के महत्त्व से अनभिज्ञ नही थे। बडी बहू उनके कोप का सामना कर सकती थी, पर उनके मृदु वचनो मे हार जाती।

प्रेमशकर की जमानत के अवसर पर लाला प्रभाशकर ने जो रुपये कर्ज लिये थे, उसका अधिकाश उसके पास बच रहा था। वह रुपये उन्होने महाजन को लौटा कर न दिये। शायद ऋण-धन को वह अपनी कमाई समझते थे। धन-प्राप्ति का कोई अन्य उपाय उन्हे ज्ञात ही न था। बहुत दिनो के बाद इतने रुपये एक मुश्त उन्हे मिले थे—मानो भाग्य सूर्य उदय हो गया। आत्मीय जनो और मित्रो के यहाँ तोहफे और सौगात जाने लगे, मित्रो की दावते होने लगी। लाला जी पाक-कला मे सिद्धहस्त थे। उनका निज रचित एक ग्रन्थ था जिसमे नाना प्रकार के व्यजनो के बनाने की विधि लिखी हुई थी। वह विद्या उन्होने बहुत खर्च करके हलवाइयो और बावर्चियो से प्राप्त की थी। वह निमकौड़ियो की ऐसी स्वादिष्ट खीर पका सकते थे कि बादाम का धोखा हो। लाल विषाक्त मिर्चा का ऐसा हलवा बना सकते थे कि मोहनभोग का भ्रम हो। आम की गुठलियो का कबाब बना कर उन्होने अपने कितने ही रसज्ञ मित्रो को धोखा दे दिया था। उनका लिसोडा का मुरब्बा अगूर के मुरब्बे से भी बाजी मार ले जाता था। यद्यपि इन पदार्थों को तैयार करने मे धन का अपव्यय होता था, सिर-मगजन भी बहुत करना पडता था और नक्ल-नक्ल ही रहती थी, लेकिन लाला जी इस विषय मे पूरे कवि थे जिनके लिए सुहृदयजनो की प्रशसा ही सब से बडा पुरस्कार है। अबकी कई साल के बाद उन्होने अपने बड़े भाई की जयन्ती हौसले के साथ की। भोज और दावत की हफ्तो तक धूम रही। शहर मे एक से एक गण्य-मान्य सज्जन पड़े हुए थे, पर कोई उनसे टक्कर लेने का साहस न कर सकता था।

बड़ी बहू जानती थी कि जब तक घर मे रुपये रहेंगे इनका हाथ न रुकेगा, साल-आध-साल मे सारी रकम खा-पी कर बराबर कर देंगे, इसलिए जब घर में आग ही लगायी है तो क्यो न हाथ सेंक ले। अवसर पाते ही उसने दोनो कन्याओं के विवाह की बातचीत छेड़ दी। यद्यपि लड़कियाँ अभी विवाह के योग्य न थी, पर मसहलत यही थी कि चलते हाथ इस भार से उऋण हो जायँ। जिस दिन ज्वालासिंह अपील दायर करने चले उसी दिन लाला प्रभाशंकर ने फलदान चढ़ाये। दूसरे ही दिन से वह बारातियो के आदर-सत्कार की तैयारियो मे व्यस्त हो गये। ऐसे सुलभ कार्यों मे वह किफायत को दूषित ही नही, अक्षम्य समझते थे। उनके इरादे तो बहुत बड़े थे, लेकिन कुशल यह थी कि आजकल प्रेमशंकर प्राय नित्य उनकी मदद करने के लिए आ जाते। प्रभाशकर दिल से उनका आदर करते थे, इसलिए उनकी सलाहे सर्वथा निरर्थक न होती। विवाह की तिथि अगहन मे पड़ती थी। वे डेढ-दो महीने तैयारियों में ही कटे। प्रेमशकर अक्सर सन्ध्या को यही भोजन भी करते और कुछ देर तक गपशप करके हाजीपुर चले जाते। आश्चर्य यह था कि अब महाशय ज्ञानशकर भी चाचा से प्रसन्न मालूम होते थे। उन्होने गोरखपुर से कई बोरे चावल, शक्कर और कई कुप्पे घी भेजें। विवाह के एक दिन पहले वह स्वय आये और बडे ठाट-बाट से आये। कई सशस्त्र सिपाही साथ थे। फर्श-कालीनें, दरियाँ तो इतनी लाये थे कि उनसे कई बरातें सज जाती। दोनो वरों को सोने की एक-एक घडी और एक-एक मोहनमाला दी। बरातियो को भोजन करते समय एक-एक अशर्फी भेट की। दोनो भतीजियो के लिए सोने के हार बनवा लाये थे और दोनो समधियो को एक-एक सजी हुई पालकी भेंट की। बरात के नौकरो, कहारो और नाइयो को पाँच-पाँच रुपये बिदाई दी। उनकी इस असाधारण उदारता पर सारा घर चकित हो रहा था और प्रभाशकर तो उनके ऐसे भक्त हो गये मानो वह कोई देवता थे। सारे शहर मे वाह-वाह होने लगी। लोग कहते थे—मरा हाथी तो भी नौ लाख का। बिगड गये लेकिन फिर भी हौसला और शान वही है। यह पुराने रईसो का ही गुर्दा है! दूसरे क्या खा कर इनकी बराबरी करेंगे? घर मे लाखों भरे हो, कौन देखता है? यही हौसला अमीरी की पहचान है। लेकिन यह किसे मालूम था कि लाला साहब ने किन दामो यह नामवरी खरीदी है।

विवाह के बाद कुछ दिन तो बची-खुची सामग्रियो से लाला प्रभाशकर की रसना तृप्त होती रही, लेकिन शनैः शनै यह द्वार भी बन्द हुआ और रूखे फीके भोजन पर कटने लगी। उस वर्षा के बाद यह सूखा बहुत अखरता था। स्वादिष्ट पदार्थों के बिना उन्हें तृप्ति न होती थी। रूखा भोजन कठ से नीचे उतरता ही न था। बहुधा चौके पर से मुँह जूठा करके उठ आते, पर सारे दिन जी ललचाया करता। अपनी किताब खोल कर उसके पन्ने उलटते कि कौन सी चीज आसानी से बन सकती है, पर वहाँ ऐसी कोई चीज न मिलती। बेचारे निराश हो कर किताब बन्द कर देते और मन को बहलाने के लिए बरामदे मे टहलने लगते। बार-बार घर मे जाते, आलमारियो और ताखो की ओर उत्कण्ठित नेत्रो से देखते कि शायद कोई चीज निकल आये। अभी

तक थोड़ी सी नवरत्न चटनी बची हुई थी। कुछ और न मिलता तो सब की नजर बचा उसमे से एक चम्मच निकाल कर चाट जाते। विडम्बना यह थी कि इस दु:ख मे कोई उनका साथी, कोई हमदर्द न था। बड़ी बहू से अगर कभी डरते-डरते अच्छी चीजें बनाने को कहते तो वह या तो टाल जाती या झुंझला कर कह बैठती—तुम्हारी जीभ भी लड़को की तरह चटोरी है, जब देखो खाने की ही फिक्र। सारी जायदाद हलुवे और पुलाव की भेंट कर दी और अब तक तस्कीन न हुई। अब क्या रखा है? बेचारे लाला साहब यह झिड़कियाँ सुन कर लज्जित हो जाते। प्रेमियो को प्रेमिका की चर्चा से शान्ति प्राप्ति होती है; किन्तु खेद यह था कि यहाँ कोई वह चर्चा सुनानेवाला भी न था।

अन्त को यहाँ तक नौबत पहुँची कि वह खोंचेवालों को बुलाते और उनसे चाट के दोने लेकर घर के किसी कोने मे जा बैठते और चुपचाप मजे ले-ले कर खाते। पहले चाट की ओर वह आँख उठा कर ताकते भी न थे, पर, अब वह शान न थी। डेढ़-दो महीने तक उनका यही ढंग रहा, पर टुट पुँजिये खोंचेवाले वादों पर कब तक रहते! उनके तकाजे होने लगे। लाला जी पहले तो उनकी विचित्र पुकार पर कान लगाये रहते थे, अब उनकी आवाज सुनते ही छिपने के लिए बिल ढूंढने लगते। उनके वादे अब सुनिश्चित न होते थे, उनमे विनय और अविश्वास की मात्रा अधिक होती थी। मालूम नही इन तकाजो से उन्हे कब तक मुँह छिपाना पड़ता, लेकिन सयोग से उनके पूरे करने की एक विधि उपस्थित हो गयी। श्रद्धा ने एक दिन उन्हे बाजार से दो जोडी साड़ियाँ लाने के लिए दाम दिया। वह साड़ियाँ उधार लाये और रुपये खोंचेवालो को देकर गला छुड़ाया। बजाज की ओर से ऐसे दुराग्रह पूर्ण और निन्दास्पद तकाजो की आशंका न थी। उसे बरसो वादो पर टाला जा सकता था, मगर उस दिन से चाटवालो ने उनके द्वार पर आना ही छोड दिया।

लेकिन चाट बुरी लत है। अच्छे दिनो मे वह गले की जंजीर है, किन्तु बुरे दिनो मे तो वह पैनी छुरी हो जाती है जो आत्म-सम्मान और लज्जा का तसमा भी नही छोड़ती। माघ का महीना, सर्दी का यह हाल था कि नाड़ियो मे रक्त जमा जाता था। लाला प्रभाशकर नित्य वायु सेवन के बहाने प्रेमशकर के पास जा पहुँचते और देश-काल के समाचार सुनते। मौका पाते ही किसी न किसी स्वादिष्ट पदार्थ की चर्चा छेड़ देते, उस समय की कथा कहने लगते जब वह चीज खायी थी, मित्रो ने उस पर क्या-क्या टिप्पणियाँ की थी। प्रेमशंकर उनका इशारा समझ जाते और शीलमणि से वह पदार्थ बनवा कर लाते, लेकिन प्रभाशंकर की स्वाद लिप्सा कितनी दारुण थी इसका उन्हे ज्ञान न था। अतएव कभी-कभी लाला जी का मनोरथ वहाँ भी पूरा न होता। तब घर आते समय वह सीधी राह से न आते। स्वाद तृष्णा उन्हे नानबाइयो के मुहल्ले मे ले जाती। प्याज और मसालो की सुगन्ध से उनकी लोलुप आत्मा तृप्त होती थी। कितना करुणाजनक दृश्य था! सत्तर साल का बूढा, उच्च कुल मर्यादा पर जान देनेवाला पुरुष, गन्ध से रस का आनन्द उठाने के लिए घंटो नानबाइयो की गली मे चक्कर लगाया

करता, लज्जा से मुँह छिपाये हुए कि कोई देख न ले ! ताजे कबाब की सुगन्ध से उनके मुँह मे पानी भर आता, यहाँ तक कि खाद्याखाद्य का विचार भी न रहता। उस समय केवल एक अव्यक्त शका, एक मिथ्या सकोच उनके खिलते हुए पैरो को सँभाल लिया करता था।

एक दिन लाला जी प्रेमशकर के पास गये तो उन्होने अपील का फैसला सुनाया। प्रभाशकर प्रसन्न हो कर बोले—यह बहुत अच्छा हुआ। ईश्वर ने तुम्हारा उद्योग सफल किया। बेचारे निरपराध किसान जेल मे पडे सड रहे थे। ईश्वर बडा दयालु है। इस आनन्दोत्सव मे एक दावत होनी चाहिए।

माया बोला—जी हाँ, यही तो अभी मैं कह रहा था। मैं तो अपने स्कूल के सब लडको को नेवता दूँगा।

प्रेमशकर—पहले बेचारे आ तो जायें। अभी तो उनके आने मैं महीनो की देर है, कोई किसी जेल मे है, कोई किसी मे। जज ने तो पुलिस का पक्ष करना चाहा था, पर डाक्टर इर्फान अली ने उसकी एक न चलने दी।

प्रभा—इन जजो का यही हाल है। उनका अभीष्ट सरकार का रोब जमाना होता है, न्याय करना नही। इस मुकदमे मे तुमने इतनी दौड धूप न की होती तो उन बेचारो की कौन सुनता? ऐसे कितने निरपराधी केवल पुलिस के कौशल तथा वकीलो की दुर्जनता के कारण दड भोगा करते हैं। मैं तो जब वकीलो को बहस करते देखता हूँ तो ऐसा मालूम होता है मानो भाट कवित्त पढ रहे हो। न्याय पर किसी पक्ष की दृष्टि नही होती। दोनो मौखिक बल से एक दूसरे को परास्त करना चाहते है। जो वाक्य-चतुर है उसी की जीत होती है। आदमियो के जीवन मरण का निर्णय सत्य और न्याय के बल पर नही, न्याय को धोखा देने के बल पर होता है।

प्रेम—जब तक मुद्दई और मुद्दालेह अपने-अपने वकील अदालत मे लायेंगे तब तक इस दशा मे सुधार नही हो सकता, क्योकि वकील तो अपने मुवक्किल का मुख-पात्र होता है। उसे सत्यासत्य निर्णय से कोई प्रयोजन नही, उसका कर्त्तव्य केवल अपने मुवक्किल के दावे को सिद्ध करना है। सच्चे न्याय की आशा तो तभी हो सकती है जब वकीलो को अदालत स्वय नियुक्त करे और अदालत भी राजनीतिक भावो और अन्य दुस्सस्कारो से मुक्त हो। मेरे विचार मे गवर्नमेंट को पुलिस मे सुयोग्य और सच्चरित्र आदमी छाँट-छाँट कर रखने चाहिए। अभी तक इस विभाग मे सच्चरित्रता पर जरा भी ध्यान नही दिया गया। वही लोग भर्ती किये जाते है जो जनता को दबा सकें, उन पर रोब जमा सके। न्याय का विचार नही किया जाता।

प्रभा—जरा फैसला तो सुनाओ, देखूँ क्या लिखा है?

प्रेम—हाँ सुनिये, मैं अनुवाद करता हूँ। देखिए, पुलिस की कैसी तीव्र आलोचना की है। यह अभियोग पुलिस के कार्यक्रम का एक उज्ज्वल उदाहरण है। किसी विषय का सत्यासत्य निर्णय करने के लिए आवश्यक है, साक्षियो पर निष्पक्ष भाव से विचार किया जाय और उनके आधार पर कोई धारणा स्थिर की जाय; लेकिन पुलिस के अधि-

कारी वर्ग ठीक उल्टे चलते है, ये पहले एक धारणा स्थिर कर लेते हैं और तब उसको सिद्ध करने के लिए साक्षियो और प्रमाणो की तलाश करते हैं। स्पष्ट है कि ऐसी दशा मे वह कार्य से कारण की ओर चलते है और अपनी मनोनीत धारणा मे कोई संशोधन करने के बदले प्रमाणो को ही तोड-मरोड कर अपनी कल्पनाओ के साँचे मे ढाल देते है। यह उल्टी चाल क्यो चली जाती है? इसका अनुमान करना कठिन है; पर प्रस्तुत अभियोग मे कठिन नही। एक समूह जितना भार सँभाल सकता है उतना एक व्यक्ति के लिए असाध्य है।

प्रभाशकर ने चिन्ता भाव से कहा—यह तो खुला हुआ आक्षेप है। पुलिस से जवाब तो न तलब होगा?

प्रेम—इन आक्षेपो को कौन पूछता है? इन पर कुछ ध्यान दिया जाय तो पुलिस कब की सुधर गयी होती।

इतने मे ज्वालासिंह आते हुए दिखायी दिये। प्रेमशकर ने कहा—चाचा साहब कहते हैं कि विजय का उत्सव करना चाहिए।

ज्वाला—मेरी भी इच्छा है।

५६

बाल्यावस्था के पश्चात् ऐसा समय आता है जब उद्दडता की धुन सिर पर सवार हो जाती है। इसमे युवाकाल की सुनिश्चित इच्छा नही होती, उसकी जगह एक विशाल आशावादिता है जो दुर्लभ को सरल और असाध्य को मुँह का कौर समझती है। भाँति-भाँति की मृदु-कल्पनाएँ चित्त को आन्दोलित करती रहती हैं। सैलानीपन का भूत सा चढा रहता है। कभी जी मे आया है कि रेलगाडी मे बैठ कर देखूँ कि कहाँ तक जाती है। अर्थी को देख कर उसके साथ श्मशान तक जाते है कि वहाँ क्या होता है। मदारी का खेल देख कर जी मे उत्कठा होती है कि हम भी गले मे झोली लटकाये देश-विदेश घूमते और ऐसे ही तमाशे दिखाते। अपनी क्षमता पर ऐसा विश्वास होता है कि बाधाएँ ध्यान मे भी नही आती। ऐसी सरलता जो अलाउद्दीन के चिराग को ढूँढ निकालना चाहती है। इस काल मे अपनी योग्यता की सीमाएँ अपरिमित होती हैं। विद्या क्षेत्र मे हम तिलक को पीछे हटा देते है, रणक्षेत्र मे नेपोलियन से आगे बढ जाते हैं। कभी जटाधारी योगी बनते है, कभी ताता से भी धनवान् हो जाते है। हमे इस अवस्था मे फकीरो और साधुओ पर ऐसी श्रद्धा होती है जो उनकी विभूति को कामधेनु समझती है। तेजशकर और पद्मशकर दोनो ही सैलानी थे। घर पर कोई देख-भाल करनेवाला न था जो उन्हे उत्तेजनाओ से दूर रखता, उनकी सजीवता को, उनकी अबाध्य कल्पनाओ को सुविचार की ओर कर सकता। लाला प्रभाशकर उन्हे पाठशाला मे भरती करके ज्यादा देख-भाल अनावश्यक समझते थे। दोनो लडके घर से स्कूल को चलते; लेकिन रास्ते मे नदी के तट पर घूमते, बैंड सुनते या सेना की कवायद देखने की इच्छा उन्हे रोक लिया करती। किताबो से दोनो को अरुचि थी और दोनो एक ही

श्रेणी मे कई-कई साल फेल हो जाने के कारण हताश हो गये थे। उन्हे ऐसा मालूम होता था कि हमे विद्या आ ही नही सकती। एक बार लाला जी की आलमारी मे इद्र-जाल की एक पुस्तक मिल गयी थी। दोनो ने उसे बड़े चाव से पढ़ा और उसके मत्रो को जगाने की चेष्टा करने लगे। दोनो अक्सर नदी की ओर चले जाते और साधु सन्तो की बाते सुनते। सिद्धियो की नयी-नयी कथाएँ सुन कर उनके मन मे भी कोई सिद्धि प्राप्त करने की प्रबल इच्छा होती है। इस कल्पना से उन्हे एक गर्वयुक्त आनन्द मिलता था कि इन सिद्धियो के बल से हम सब कुछ कर सकते हैं, गडा हुआ धन निकाल सकते हैं, शत्रुओ पर विजय पा सकते है, पिशाचो को वश में कर सकते है। उन्होने दो-एक लटको का अभ्यास भी किया था और यद्यपि अभी तक उनकी परीक्षा करने का अवसर न मिला था, पर अपनी कृतकार्यता पर उन्हे अटल विश्वास था।

लेकिन जब से गायत्री ने मायाशकर को गोद लिया था, ईर्षा और स्वार्थ से दोनो जल रहे थे। यह दाह एक क्षण के लिए भी न शान्त होता। जो लडका अभी कल तक उनके साथ का खिलाडी था वह सहसा इतने ऊँचे पद पर पहुँच जाय! दोनो यही सोचा करते कि कोई ऐसी सिद्धि प्राप्त करनी चाहिए कि जिसके सामने धन और वैभव की कोई हस्ती न रहे, जिसके प्रभाव से वे मायाशकर को नीचा दिखा सकें। अन्त मे बहुत सोच-विचार के पश्चात् उन्होने भैरव-मन्त्र जगाने का निश्चय किया। एक तन्त्र ग्रन्थ ढूँढ निकाला जिसमे इस क्रिया की विधियाँ विस्तार से लिखी हुई थी। दोनो ने कई दिन तक मन्त्र को कठ किया। उसके मुखाग्र हो जाने पर यह सलाह होने लगी, इसे जगाने का आरम्भ कब से किया जाय? तेजशकर ने कहा—चलो आज से ही श्रीगणेश कर दे।

पद्म—जब कहो तब। बस, अस्सी घाट की ओर चले।

तेज—चालीसा किसी तरह पूरा हो जाय फिर तो हम अमर हो जायेगे। बन्दूक, तलवार, तोप का हम पर कुछ असर ही न होगा।

पद्म—यार, बडा मजा आयेगा। सैकड़ो बरस तक जीते रहेगे।

तेज—सैकडो! अभी हजारो क्यो नही कहते? हिमालय की गुफाओ मे ऐसे-ऐसे साधु पड़े हैं जिनकी अवस्थाएँ चार-चार सौ साल से अधिक हैं। उन्होने भी यही मन्त्र जगाया होगा। मौत का उन पर कोई वश नही चलता।

पद्म—माया बडी शेखी मारा करते हैं। बच्चा एक दिन मर जायेंगे, सब यही रखा रह जायगा। यहाँ कौन चिन्ता है? तोप से भी न डरेंगे।

तेज—लेकिन मन्त्र जगाना सहज नही है। डरे और काम तमाम हुआ, जरा चौके और वही ढेर हो गये। तुमने तो किताब म पढा ही है, कैसी-कैसी भयकर सूरते दिखायी देती हैं। कैसी-कैसी डरावनी आवाजें सुनायी देती हैं। भूत-प्रेत, पिशाच नगी तलवार लिए मारने दौड़ते हैं। उस वक्त जरा भी शका न करनी चाहिए।

पद्म—मैं जरा भी न डरूँगा, वह कोई सचमुच के भूत-प्रेत थोड़े न होगे। देवता लोग परीक्षा के लिए डराते होगें।

तेज—हाँ और क्या! सब भ्रम है। अपना कलेजा मजबूत किये रहना।

पद्म—और जो कही तुम डर जाओ?

तेजशकर ने गर्व से हँस कर कहा—मैंने डर को भून कर खा लिया है। वह मेरे पास नही फटक सकता। मैं तो सचमुच प्रेतो से न डरूँ, शकाओ की कौन चलाये।

पद्म—तो हम लोग अमर हो जायेंगे।

तेज—अवश्य, इसमे भी कुछ सन्देह है?

दोनो ने इस भाँति निश्चय करके मन्त्र जगाना शुरू किया। जब घर के सब लोग सो जाते तो दोनो चुपके से निकल जाते और अस्सी घाट पर गगा के किनारे बैठ कर मन्त्र जाप करते। इस प्रकार उन्तालीस दिनो तक दोनो ने अभ्यास किया। इस विकट परीक्षा मे वे कैसे पूरे उतरें इसकी व्याख्या करने के लिए एक पोथी अलग चाहिए। उन्हे वह सब विकराल सूरते दिखायी दी, वे सब रोमाचकारी शब्द सुनायी दिये, जिनका उस पुस्तक मे जिक्र था। कभी मालूम होता था आकाश फटा पडता है, कभी आग की एक लहर सामने आती हुई नजर आती, कही कोई भयकर राक्षस मुँह से अग्नि की ज्वाला निकालता हुआ उन्हे निगलने को लपकता, लेकिन भय की पराकाष्ठा का नाम साहस है। दोनो लडके आँखे बन्द किये, नीरव, निश्चल, निस्तब्ध, मूर्ति के समान बैठे रहते। जाप का तो केवल नाम था, सारी मानसिक शक्तियाँ इन शकाओं को दूर रखने मे ही केन्द्रीभूत हो जाती थी। यह भय कि जरा भी चौके, झिझके या विचलित हुए तो तत्क्षण प्राणान्त हो जायेगा उन्हे अपनी जगह पर बाँधे रहता था। मेरा भाई समीप ही बैठा है, यह विश्वास उनकी दृढ़ता का एक मुख्य कारण था, हालाँकि इस विश्वास से तेजशकर को उतना ढाढस न होता था जितना पद्मशकर को। उसे (तेजशकर को) पद्म पर वह भरोसा न था जो पद्म को उस पर था। अतएव तेज-शकर के लिए यह परीक्षा ज्यादा दुस्साध्य थी, पर यह भय कि मैं जरा भी हिला तो पद्म की जान पर बन जायगी, उस विश्वास की थोडी सी कसर पूरी कर देता था। इन दिनो दोनो बहुत दुर्बल हो गये थे, मुख पीले, आँखें चचल, ओठ सूखे हुए। दोनो सारे दिन सज्ञा-हीन से पड रहते, खेल-कूद, सैर-सपाटे, आमोद-विनोद से उन्हे जरा भी रुचि न थी, आठो पहर मन उचटा रहता था- यहाँ तक कि भोजन भी अच्छा न लगता। इस तरह उन्तालीस दिन बीत गये, चालीसवाँ दिन आ पहुँचा। आज भोर से ही उनके चित्त उद्विग्न होने लगे, शकाओ ने उग्र रूप धारण किया, आशाएँ भी प्रबल हुई। दोनो आशा और भय की दशा मे बैठे हुए कभी अमरत्व की कल्पना से प्रफु-ल्लित हो जाते, कभी आज की कठिनतम परीक्षाओ के भय से काँपते, पर आशाएँ भय के ऊपर थी। सारे शहर मे हलचल मच जायेगी, हम लोग जलती हुई आग मे कूद पडेगे और बेदाग निकल जायेंगे, आँच तक न आयेगी। उस मुंडेर पर से निश्शक नीचे कूद पडेगे, जरा भी चोट न लगेगी। लोग देख कर दग हो जायेंगे। दिन भर दोनो ने कुछ नही खाया। कभी नीचे जाते, कभी ऊपर जाते, कभी हँसते, कभी रोते, कभी नाचते। कोई दूसरा आदमी उनकी यह दशा देख कर समझता कि पागल हो गये हैं।

जब अँधेरा हुआ तो तेजशंकर घर में से एक तलवार निकाल लाया जिसे लाला जी ने हाल ही मे जयपुर से मँगाया था। दोनो ने कमरे का द्वार बन्द कर उसे मिट्टी के तेल से खूब साफ किया, उसे पत्थर पर रगड़ा, यहाँ तक कि उसमें चिनगारियाँ निकलने लगी। तब उसे बिछावन के नीचे छिपा कर दोनो बाजार की सैर करने निकल गये। लौटे तो नौ बज गये थे। बड़ी बहू के बहुत अनुरोध करने पर दोनों ने कुछ सूक्ष्म भोजन किया और तब अपने कमरे मे लोगों के निद्रामग्न हो जाने का इन्तजार करने लगे। ज्यों ज्यो समय निकट आता था उनका आशा-दीपक भय-तिमिर में विलुप्त होता जाता था। इस समय उनकी दशा कुछ उस अपराधी की सी थी जिसकी फाँसी का समय प्रति क्षण निकट आता जाता हो। भाँति-भाँति की शंकाएँ और दुष्कल्पनाएँ उठ रही थीं, किन्तु इस आँधी और तूफान मे भी एक नौका का स्पष्ट चिह्न दूर से दिखायी देता था जिससे उनकी हिम्मत बँध जाती थी। तेज शंकर चिन्तित और गभीर था और पद्मशंकर की सरल, आशामय बातो का जवाब तक न देता था।

निश्चित समय आ पहुँचा तो दोनो घर से निकले। माघ का महीना, तुषारवेष्टित वायु हड्डियो मे चुभती थी। हाथ-पाँव अकड़े जाते थे। तेजशकर ने तलवार को अपनी चादर के नीचे छिपा लिया और दोनो चले, जैसे कोई मन्द बुद्धि बालक परीक्षा भवन की ओर चले। पग-पग पर वे शका-विह्वल हो कर ठिठक जाते, कलेजा मजबूत करके आगे बढते। यहाँ तक कि कई बार उन्होंने लौटने का इरादा किया, लेकिन उन्तालीस दिन की तपस्या के बाद वरदान मिलने के दिन हिम्मत हार जाना असम्य दुर्बलता और भीरुता थी। अब तो चाहे जो हो, यह अन्तिम परीक्षा अनिवार्य थी। इस तरह डरते हिचकते दोनो घाट पर पहुँच गये। रास्ते मे किसी के मुँह से एक शब्द भी न निकला।

अमावस की रात थी। आँखो का होना न होना बराबर था। तारागण भी बादलों मे मुँह छिपाये हुए थे। अन्धकार ने जल और बालू, पृथ्वी और आकाश को समान कर दिया था। केवल जल की मधुर-ध्वनि गंगा का पता देती थी। ऐसा सन्नाटा छाया हुआ था कि जल-नाद भी उसमे निमग्न हो जाता था। ऐसा जान पड़ता था कि सृष्टी शून्य के गर्भ मे पड़ी हुई है। अनन्त जीवन के दोनो आराधक पग-पगपर ठोकरें खाते शका-रचित बाधाओं से पग-पग पर चौंकते नदी के किनारे पहुँचे और जल में उतरे। पानी बर्फ हो रहा था। उनके सारे अंग शिथिल हो गये। स्नान करके दोनों रेत पर बैठ गये और मन्त्र का जाप करने लगे। लेकिन आश्चर्य यह था कि आज उन्हे कोई ऐसा दृश्य न दिखायी दिया जिसे वे देख न चुके हो, न कोई ऐसी आवाजें सुनायी दीं जो वे सुन न चुके हो, कोई असाधारण घटना न हुई। सरदी ने शकाओं को भी शान्त कर दिया था। विषम कल्पनाएँ भी निर्जीव हो गयी थी। दोनो डर रहे थे कि आज न जाने कैसी-कैसी विकराल मूर्तियाँ दिखायी देंगी, प्रेतगण न जाने किन मन्त्रो से आघात करेंगे। न जाने प्राण बचेंगे या जायेंगे? लेकिन आज और दिनो से सस्ते छूट गये।

जब रात समाप्त हो गयी और दोनो साधको ने आँखे खोली तब आकाश पर उषा-लालिमा दिखायी दी। पृथ्वी शनै शनै तिमिर-पट से निकलने लगी। उस पार के वृक्ष और रेत व्यक्त हो गये जैसे किसी मूर्छित रोगी के मुख पर चैतन्य का विकास हो रहा हो। श्यामल जल वेग से बह रहा था मानो अन्धकार को अपने साथ बहाये लिए जाता हो। उस पार के वृक्ष इस तरह सिर झुकाये खड़े थे मानो शोक समाज किसी की दाह-क्रिया करके शोक से सिर झुकाये चला जाता है।

सहसा तेजशकर उठ खडा हुआ और बोला—जय भैरव की।

दोनो के नेत्रो मे एक अलौकिक प्रकाश था, दोनो के मुखो पर एक अद्भुत प्रतिभा झलक रही थी।

तेजशकर—तलवार हाथ मे लो, मैं सिर झुकाये हुए हूँ।

पद्म—नही, पहले तुम चलाओ मैं सिर झुकाता हूँ।

तेज—क्या अब भी डरते हो? हमने मौत को कुचल दिया, काल को जीत लिया, अब हम अमर है।

पद्म—नही, पहले तुम ही श्रीगणेश करो। ऐसा हाथ चलाना कि एक-ही बार मे गर्दन अलग जा गिरे। मगर यह तो बताओ दर्द तो न होगा?

तेज—कैसा दर्द? ऐसा जान पड़ेगा जैसे किसी ने फूल से मारा हो। इसी से तो कहता हूँ कि पहले तुम शुरू करो।

पद्म—नही, पहले मै सिर झुकाता हूँ।

तेजशकर ने तलवार हाथ मे ली, उसे तौला, दो-तीन बार पैतरे बदले और तब 'जय भैरव की' कह कर पद्मशकर की गर्दन पर तलवार चलायी। हाथ भरपूर पडा; तलवार तेज थी, सिर धड से अलग जा गिरा, रक्त का फौवारा छूटने लगा। तेजशकर खडा मुस्कुरा रहा था, मानो कोई फुलझडी छूट रही हो। उसके चेहरे पर तेजोमय शान्ति छायी हुई थी। कोई शिकारी भी पक्षी को भूमि पर तडपते देखकर इतना अविचलित न रहता होगा। कोई अभ्यस्त बधिक भी पशु की गर्दन पर तलवार चला कर इतना स्थिर-चित्त न रह सकता होगा। वह ऐसे सुदृढ विश्वास के भाव से खडा था जैसे कोई कबूतरबाज अपने कबूतर को उडा कर उसके लौट आने की राह देख रहा हो।

लाश कुछ देर तक तड़पती रही, इसके बाद शिथिल हो गयी। खून के छीटे बन्द हो गये, केवल एक-एक बूंद टपक रही थी जैसे पानी बरसने के बाद ओरी टपकती है, किन्तु पुनरुज्जीवन के सचार का कोई लक्षण न दिखायी दिया। एक मिनट और गुजरा। तेजशकर को कुछ भ्रम हुआ, पर विश्वास ने उसे शान्त कर दिया। उसने गगाजल चुल्लू मे लेकर भैरव मन्त्र पढा और उस पर एक फूंक मार कर उसे लाश पर छिडक दिया, किन्तु यह क्रिया भी असफल हुई। उस कटे हुए सिर मे कोई गति न हुई, उस मृत देह मे स्फूर्ति का कोई चिह्न न दिखायी दिया। मन्त्र की जीवन-सचारिणी शक्ति का कुछ असर न हुआ।

अब तेजशकर को शका होने लगी, विश्वास की नीव हिलने लगी। उस पुस्तक मे स्पष्ट लिखा था कि सिर गर्दन से अलग होते ही तुरन्त उसमे चिमट जाता है और यदि इस क्रिया मे कुछ विलम्ब हो तो भैरव मन्त्र से फूँके हुए पानी का एक चुल्लू काफी है। यहाँ इतनी देर हो गयी और अभी तक कुछ भी असर न हुआ। यह बात क्या है? मगर यह असम्भव है कि मन्त्र निष्फल हो। कितने लोगो ने इस मन्त्र को सिद्ध किया है। नही, घबराने की कोई बात नही, अभी जान आयी जाती है।

उसने तीन-चार मिनट तक और इन्तजार किया; पर लाश ज्यो की त्यो शान्त, शिथिल पडी हुई थी। तब उसने फिर गंगाजल छिड़का, फिर मन्त्र पढ़ा, किन्तु लाश न उठी। उसने चिल्लाकर कहा—हा ईश्वर! अब क्या करूँ? विश्वास का दीपक बुझ गया। उसने निराश भाव से नदी की ओर देखा। लहरे दाढें मार-मार कर रोती हुई जान पडी। वृक्ष शोक मे सिर धुनते हुए मालूम हुए। उसके कठ से बलात् क्रन्दन ध्वनि निकल आयी, वह चीख मार कर रोने लगा। अब उसे ज्ञान हुआ कि मैंने कैसा घोर अनर्थ किया। अनन्त जीवन की सिद्धि कितनी उद्‌भ्रात, कितनी मिथ्या थी। हा! मैं कितना अन्धा, कितना मन्द बुद्धि, कितना उद्दड हूँ। हा! प्राणो से प्यारे पद्म, मैंने मिथ्या भक्ति की धुन मे अपने ही हाथो से, इन्ही निर्दय हाथो से, तुम्हारी गर्दन पर तलवार चलायी। हा! मैंने तुम्हारे प्राण लिए! मुझ सा पापी और अभागा कौन होगा? अब कौन सा मुँह ले कर घर जाऊँ? कौन सा मुंह दुनिया को दिखाऊँ? अब जीवन वृथा है। तुम मुझे प्राणो से भी प्यारे थे। अब तुम्हे कैसे देखूंगा, तुम्हे कैसे पाऊँगा?

तेजशकर कई मिनट तक इन्ही शोकमय विचारो से विह्वल हो कर खडा रोता रहा। अभी एक् क्षण पहले उसके दिल मे क्या-क्या इरादे थे, कैसी-कैसी अभिलाषाएँ थी? वह सब इरादे मिट्टी मे मिल गये? आह! जिस धूर्त्त पापी ने यह किताब लिखी है उसे पाता तो इसी तलवार से उसकी गर्दन काट लेता। उसके भ्रम जाल मे पड़ कर मैंने अपना सर्वनाश किया!

हाय! अभी तक लाश मे जान नही आयी। उसे उसकी ओर ताकते हुए अब भय होता था।

नैराश्य-व्यथा, शोकाघात, परिणाम-भय, प्रेमोद्‌गार, ग्लानि—इन सभी भावो ने उसके हृदय को कुचल दिया!

तिस पर भी अभी तक उसकी आशाओ का प्राणान्त न हुआ था। उसने एक बार डरते-डरते कनखियो से लाश को देखा, पर अब भी उसमे प्राण-प्रवेश का चिह्न न दिखायी दिया तो आशाओ का अन्तिम सूत्र भी टूट गया, धैर्य ने साथ छोड दिया।

उसने एक बार निराश होकर आकाश की ओर देखा। भाई की लाश पर अन्तिम दृष्टि डाली तब सँभल कर बैठ गया और वही तलवार अपने गले पर फेर दी। रक्त की फुवारें छूटी, शरीर तडपने लगा, पुतलियाँ फैल गयी। बलिदान पूरा हो गया। मिथ्या विश्वास ने दो लहलहाते हुए जीव-पुष्पो को पैर से मसल दिया!

सूर्य देव अपने आरक्त नेत्रो से यह विपम माया लीला देख रहे थे। उनकी नीरव, पीत किरणे उन दोनो मत्राहत बालको पर इस भाँति पड रही थी मानो कोई शोक-विह्वल प्राणी उनके गले से लिपट कर रो रहा हो।

६०

इस शोकाघात ने लाला प्रभाशकर को सज्ञा-विहीन कर दिया। दो सप्ताह बीत चुके थे, पर अभी तक घर से बाहर न निकले थे। दिन के दिन चारपाई पर पडे छत की ओर देखा करते, राते करवटे बदलने मे कट जाती। उन्हे अपना जीवन अब शून्य सा जान पड़ता था। आदमियो की सूरत से अरुचि थी, अगर कोई सात्वना देने के लिए भी जाता तो मुँह फेर लेते। केवल प्रेमशकर ही एक ऐसे प्राणी थे जिसका आना उन्हे नागवार न मालूम होता था, इसलिए कि वह समवेदना का एक शब्द भी मुँह से न निकालते। सच्ची समवेदना मौन हुआ करती है।

एक दिन प्रेमशकर आ कर बैठे तो लाला जी को कपडे पहनते देखा, द्वार पर एक्का भी खडा था जैसे कही जाने की तैयारी हो। पूछा, कही जाने का इरादा है क्या।

प्रभाशकर ने दीवार की ओर मुँह फेर कर कहा—हाँ, जाता हूँ उसी निर्दयी दया-शकर के पास, उसी की चिरौरी-विनती करके घर लाऊँगा। कोई यहाँ रहने वाला भी तो चाहिए। मुझसे गृहस्थी का बोझ नही सँभाला जाता। कमर टूट गयी, बलहीन हो गया। प्रतिज्ञा भी तो की थी कि जीते जी उसका मुँह न देखूंगा, लेकिन परमात्मा को मेरी प्रतिज्ञा निबाहनी मजूर न थी, उसके पैरो पर गिरना पडा। वश का अन्त हुआ जाता है। कोई नाम लेवा तो रहे, मरने के बाद चुल्लू भर पानी को तो न रोना पडे, मेरे बाद दीपक तो न बुझ जाय। अब दयाशकर के सिवाय और दूसरा कौन है, उसी से अनुनय-विनय करूँगा, मनाऊँगा, आ कर घर आबाद करे। लड़को के बिना घर भूतो का डेरा हो रहा है। दोनो लडकियाँ ससुराल ही चली गयी, दोनो लडके भैरव की भेट हुए, अब किसका मुँह देख कर जी को समझाऊँ। मै तो चाहे कलेजे पर पत्थर की सिल रख कर बैठ भी रहता, पर तुम्हारी चाची को कैसे समझाऊँ? आज दो हफ्ते से ऊपर हुए उन्होने दाने की ओर ताका तक नही। रात-दिन रोया करती है। बेटा, सच पूछो तो मै ही दोनो लडको का घातक हूँ। वे जैसे चाहते थे रहते थे, जहाँ चाहते थे जात थे। मैने कभी उन्हे अच्छे रास्ते पर लगाने की चेष्टा न की। सन्तान का पालन कैसे करना चाहिए,-इसकी मैने कभी चिन्ता न की।

प्रेमशकर ने करुणार्द्र हो कर कहा—एक्के का सफर है, आपको कष्ट होगा। कहिए तो मैं चला जाऊँ, कल तक आ जाऊँगा।

प्रभा—वह यो न आयेगा, उसे खीच कर लाना होगा। वह कठोर नही, केवल लज्जा के मारे नही आता। वहाँ पडा रोता होगा। भाइयो को बहुत प्यार करता था।

प्रेम—मै उन्हे जबरदस्ती खीच लाऊँगा।

प्रभाशकर राजी हो गये। प्रेमशकर उसी दम चल खडे हुए। थाना यहाँ से बारह

मील पर था। नौ बजते-बजते पहुँच गये। थाने मे सन्नाटा था। केवल मुन्शी जी फर्श पर बैठे लिख रहे थे। प्रेमशंकर ने उनसे कहा—आपको तकलीफ तो होगी, पर जरा दारोगा जी को इत्तला कर दीजिए कि एक आदमी आपसे मिलने आया है। मुन्शी जी ने प्रेमशंकर को सिर से पाँव तक देखा, तब लपक कर उठे, उनके लिए एक कुर्सी निकाल कर रख दी और पूछा, जनाब का नाम बाबू प्रेमशंकर तो नही है?

प्रेमशंकर—जी हाँ, मेरा ही नाम है।

मुन्शी—आप खूब आये। दारोगा जी अभी आपका ही जिक्र कर रहे थे। आपका अक्सर जिक्र किया करते हैं। चलिए मैं आपके साथ चलता हूँ। कानिस्टेबिल सब उन्हीं की खिदमत मे हाजिर हैं। कई दिन से बहुत बीमार हैं।

प्रेम—बीमार हैं? क्या शिकायत है?

मुन्शी—जाहिर मे तो बुखार है, पर अन्दर का हाल कौन जाने? हालत बहुत बदतर हो रही है। जिस दिन से दोनो छोटे भाइयो की नावक्त मौत की खबर सुनी उसी दिन से बुखार आया। उस दिन से फिर थाने मे नही आये। घर से बाहर निकलने की नौबत न आयी। पहले भी थाने में बहुत कम आते थे, नशे मे डूबे पड़े रहते थे, ज्यादा नही तो तीन-चार बोतल रोजाना जरूर पी जाते होगे। लेकिन इन पन्द्रह दिनो मे एक बूंट भी नहीं पी। खाने की तरफ ताकते ही नही। या तो बुखार मे बेहोश पड़े रहते हैं या तबीयत जरा हल्की हुई तो रोया करते हैं। ऐसा मालूम होता है कि फालिज गिर गयी है, करवट तक नही बदल सकते। डाक्टरो का ताँता लगा हुआ है, मगर कोई फायदा नही होता। सुना आप कुछ हिकमत करते हैं। देखिए शायद आपकी दवा कारगर हो जाय। बड़ा अनमोल आदमी था। हम लोगो को तो ऐसा सदमा हो रहा है जैसे कोई अपना अजीज उठा जाता हो। पैसे की मुहब्बत छू तक नहीं गयी थी। हजारो रुपये माहवार लाते थे और सब का सब अमलो के हाथो मे रख देते थे। रोजाना शराब मिलती जाय बस, और कोई हवस न थी। किसी मातहत से गलती हो जाय, पर कभी शिकायत न करते थे, बल्कि सारा इलजाम अपने सिर ले लेते थे। क्या मजाल कि कोई हाकिम उनके मातहतो को तिर्छी निगाह से भी देख सके, सीना-सीपर हो जाते थे। मातहतो की शादी और गमी मे इस तरह शरीक होते थे, जैसे कोई अपना अजीज हो। कई कानिस्टेबिलो की लड़की की शादियाँ अपने खर्च से करा दीं, उनके लड़को की तालीम की फीस अपने पास से देते थे, अपनी सख्ती के लिए सारे इलाके मे बदनाम थे। सारा इलाका उनका दुश्मन था, मगर थानेवाले चैन करते थे। हम गरीबो को ऐसा गरीब-परवर और हमदर्द अफसर न मिलेगा।

मुन्शी जी ने ऐसे अनुरक्त भाव से यश गान किया कि प्रेमशंकर गद्‌गद् हो गए। वह दयाशंकर को लोभी, कुटिल, स्वार्थी समझते थे कि जिसके अत्याचारो से इलाके मे हाहाकार मचा हुआ था। जो कुल का द्रोही, कुपुत्र और व्यभिचारी था, जिसने अपनी विलासिता और विषयवासना की धुन मे माता-पिता, भाई-बहन यहाँ तक कि अपनी पत्नी से मुँह फेर लिया था। उनकी दृष्टि मे वह एक बेशर्म, पतित, हृदय शून्य

आदमी था। यह गुणानुवाद सुन कर उन्हे अपनी सकीर्णता पर बहुत खेद हुआ। वह मन मे अपना तिरस्कार करने लगे। उन्हे फिर आत्मिक यन्त्रणा मिली—हा! मुझमे कितना अहकार है! मै कितनी जल्द भूल जाता हूँ कि यह विराट् जगत् अनन्त ज्योति से प्रकाशमय हो रहा है। इसका एक-एक परमाणु उसी ज्योति से आलोकित है। यहाँ किसी मनुष्य को नीचा या पतित समझना ऐसा पाप है जिसका प्रायश्चित नही। मुन्शी जी से पूछा—डाक्टरो ने कुछ तशखीस नही की ?

मुन्शी जी ने उपेक्षा भाव से कहा—डाक्टरो की कुछ न पूछिए, कोई कुछ बताता है, कोई कुछ। या तो उन्हे खुद ही इल्म नही या गौर से देखते ही नही। उन्हे तो अपनी फीस से काम है। आइए, अन्दर चले आइए, यही मकान है।

प्रेमशकर अन्दर गये तो कानिस्टेबिलो की भीड लगी हुई थी। कोई रो रहा था, कोई उदास, कोई मलिन-मुख खडा था, कोई पखा झलता था। कमरे मे सन्नाटा था। प्रेमशकर को देखते ही सभी ने सलाम किया और कातर नेत्रो से उनकी ओर देखने लगे। दयाशकर चारपाई पर पडे हुए थे, चेहरा पीला हो गया था और शरीर सूखकर काँटा हो गया था। मानो किसी हरे-भरे खेत को टिड्डियो ने चर लिया हो। आँखे बन्द थी, माथे पर पसीने की बूँदे पडी हुई थी और श्वास-क्रिया मे एक चिन्ताजनक शिथिलता थी। प्रेमशकर यह शोकमय दृश्य देख कर तडप उठे, चारपाई के निकट जा कर दयाशकर के माथे पर हाथ रखा और बोले—भैया ?

दयाशकर ने आँखें खोली और प्रेमशकर को गौर से देखा, मानो किसी भूली हुई सूरत को याद करने की चेष्टा कर रहे है। तब बडे शान्तिभाव से बोले—तुम हो प्रेमशकर ? खूब आये। तुम्हे देखने की बडी इच्छा थी। कई बार तुमसे मिलने का इरादा किया, पर शर्म के मारे हिम्मत न पडी। लाला जी तो नही आये ? उनसे भी एकबार भेट हो जाती तो अच्छा होता, न जाने फिर दर्शन हो या न हो।

प्रेम—वह आने को तैयार थे, पर मैंने ही उन्हे रोक दिया। मुझे तुम्हारी हालत मालूम न थी।

दया—अच्छा किया। इतनी दूर एक्के पर आने मे उन्हे कष्ट होता। वह मेरा मुँह न देखे यही अच्छा है। मुझे देख कर कौन उनकी छाती हुलसेगी ?

यह कह कर वह चुप हो गये, ज्यादा बोलने की शक्ति न थी, दम ले कर बोले—क्यो प्रेम, ससार मे मुझ सा अभागा और भी कोई होगा ? यह सब मेरे ही कर्मो का फल है। मै ही वश का द्रोही हूँ। मैं क्या जानता था कि पापी के पापो का दड इतना बडा होता है। मुझे अगर किसी की कुछ मुहब्बत थी तो दोनो लडकों की। मेरे पापो ने भैरव बन कर उन .

उनकी आँखो मे आँसू बहने लगे। मूर्छा सी आ गयी। आध घटे तक इतनी अचेत दशा मे पडे रहे। साँस प्रतिक्षण धीमी होती जाती थी। प्रेमशकर पछता रहे थे, यह हाल मुझे पहले न मालूम हुआ, नही तो डाक्टर प्रियनाथ को साथ लेता आता। यहाँ तार घर तो है। क्यो न उन्हे तार दे दूं ? वह इसे मेरा काम समझ कर

फीस न लेगे, यही अड़चन है। यही सही, पर उनको बुलाना जरूर चाहिए।

यह सोच कर उन्होने तार लिखना शुरू किया कि सहसा डाक्टर प्रियनाथ ने कमरे मे कदम रखा। प्रेमशकर ने चकित हो कर एक बार उनकी ओर देखा और तब उनके गले से लिपट गये और कुठित स्वर मे बोले—आइए भाई साहब, अब मुझे पूरा विश्वास हो गया कि ईश्वर दीनो की विनय सुनता है। आपके पास यह तार भेज रहा था। इनकी जान बचाइए।

प्रियनाथ ने आश्वासन देते हुए कहा—आप घबडाइए नही, मै अभी देखता हूँ। क्या करूँ, मुझे पहले किसी ने खबर न दी। इस इलाके मे बुखार का जोर है। मैं कई गाँवो का चक्कर लगाता हुआ थाने के सामने से गुजरा तो मुन्शी जी ने मुझे यह हाल बतलाया।

यह कह कर डाक्टर साहब ने हैंडबेग से एक यन्त्र निकाल कर दयाशकर की छाती मे लगाया और खूब ध्यान से निरीक्षण करके बोले—फेफडो पर बलगम आ गया है, लेकिन चिन्ता की कोई बात नही। मैं दवा देता हूँ। ईश्वर ने चाहा तो शाम तक जरूर असर होगा।

डाक्टर साहब ने दवा पिलायी और वही कुर्सी पर बैठ गये। प्रेमशकर ने कहा—मैं शाम तक आपको न छोडूंगा।

प्रियनाथ ने मुस्करा कर कहा—आप मुझे भगाये भी तो न जाऊँगा। यह मेरे पुराने दोस्त है। इनकी बदौलत मैंने हजारो रुपये उडाये हैं।

एक वृद्ध चौकीदार ने कहा—हुजूर, इनका अच्छा कर देव। और तो नही, मुदा हम सब जने आपन एक-एक तलब आपके नजर कर देहै।

प्रियनाथ हँस कर बोले—मैं तुम लोगो को इतने सस्ते न छोड़ूंगा। तुम्हे बचन देना पडेगा कि अब किसी गरीब को न सतायेंगे, किसी से जबरदस्ती बेगार न लेंगे और जिसका सौदा लेंगे उसको उचित दाम देंगे।

चौकीदार—भला सरकार, हमारा गुजर-बसर कैसे होगा? हमारे भी तो बाल-बच्चे है, दस-पन्द्रह रुपयो मे क्या होता है?

प्रिय—तो अपने हाकिमो से तरक्की करने के लिए क्यो नही कहते? सब लोग मिल कर जाओ और अर्ज-मारूज करो। तुम लोग प्रजा की रक्षा के लिए नौकर हो, उन्हे सताने के लिए नही। अवकाश के समय कोई दूसरा काम किया करो, जिससे आमदनी बढे। रोज दो-तीन घटे कोई काम कर लिया करो तो १०—१२ रुपये की मजदूरी हो सकती है।

चौकीदार—भला ऐसा कौन काम है हजूर?

प्रिय—काम बहुत है, हाँ शर्म छोडनी पडेगी। इस भाव को दिल से निकाल देना पडेगा कि हम कानिस्टेबिल है तो अपने हाथो से मिहनत कैसे करें? सच्ची मिहनत की कमाई मे अन्याय और जुल्म की कमाई से कही ज्यादा बरकत होती है।

मुन्शी जी बोले—हजूर, इस बारे मे सरकारी कायदे बडे सख्त है। पुलिस के

मुलाजिम को कोई दूसरा काम करने का मजाल नही है। अगर हम लोग कोई काम करने लगें तो निकाल दिये जायें।

प्रिय—यह आपकी गलती है। आपको फुर्सत के वक्त कपडे बुनने या सूत कातने या कपडे सीने से कोई नही रोक सकता। हाँ, सरकारी काम मे हर्ज न होना चाहिए। आप लोगो को अपनी हालत हाकिमो से कहनी चाहिए।

मुन्शी—हजूर, कोई सुननेवाला भी तो हो? हमारा रिआया को लूटना हुक्काम की निगाह मे इतना वडा जुर्म नही है, जितना कुछ अर्ज-मारूज करना। फौरन साजिश और गरोह-वन्दी का इलजाम लग जाय।

प्रिय—इससे तो यह कही अच्छा होता कि आप लोग कोई हुनर सीख कर आजादी से रोजी कमाते। मामूली कारीगर भी आप लोगो से ज्यादा कमा लेता है।

मुन्शी—हुजूर, यह तकदीर का मुआमला है। जिसके मुकद्दर मे गुलामी लिखी हो, वह आजाद कैसे हो सकता है।

दोपहर हो गयी थी, प्रियनाथ ने दूसरी खुराक दवा दी। इतने मे महाराज ने आ कर कहा—सरकार, रसोई तैयार है, भोजन कर लीजिए। प्रेमशकर वहाँ से उठना न चाहते थे, लेकिन प्रियनाथ ने उन्हे इत्मीनान दिला कर कहा—चाहे अभी जाहिर न हो, पर पहली खुराक का कुछ न कुछ असर हुआ है। आप देख लीजिएगा शाम तक यह होश-हवास की बाते करने लगेंगे।

दोनो आदमी भोजन करने गये। महाराज ने खूब मसालेदार भोजन बनाया था। दयाशकर चटपटे भोजन के आदी थे। सब चीजे इतनी कडवी थी कि प्रेमशकर दो-चार कौर से अधिक न खा सके। आँख और नाक से पानी बहने लगा। प्रियनाथ ने हँस कर कहा—आपकी तो खूब दावत हो गयी। महाराज ने तो मदरासियो को भी मात कर दिया। यह उत्तेजक मसाले पाचन-शक्ति को निर्बल कर देते हैं। देखो महा-राज, जब तक दारोगा जी अच्छे न हो जायँ ऐसी चीजें उन्हे न खिलाना, मसाले बिलकुल न डालना।

महाराज—हुजूर, मैंने तो आज बहुत कम मसाले दिये है। दारोगा जी के सामने यह भोजन जाता तो कहते यह क्या फीकी-पोच पकायी है।

प्रेमशकर ने रूखे चावल खाये, मगर प्रियनाथ ने मिरचा की परवाह नही की। दोनो आदमी भोजन करके फिर दयाशकर के पास आ बैठे। तीन बजे प्रियनाथ ने अपने हाथो से उनकी छाती मे एक अर्क की मालिश की और शाम तक दो बार और दवा दी। दयाशकर अभी तक चुपचाप पडे हुए थे, पर वह मूर्छा नही, नीद थी। उनकी श्वास-क्रिया स्वाभाविक होती जाती थी और मुख की विवर्णता मिटती जाती थी। जब अँधेरा हुआ तो प्रियनाथ ने कहा, अब मुझे आज्ञा दीजिए। ईश्वर ने चाहा तो रात भर मे इनकी दशा बहुत अच्छी हो जायगी। अब भय की कोई बात नही है। मैं कल आठ बजे तक फिर आऊँगा। सहसा दयाशकर जागे, उनकी आँखो मे अब वह चच-लता न थी। प्रियनाथ ने पूछा, अब कैसी तबीयत है?

दया—ऐसा जान पडता है कि किसी ने जलती हुई रेत से उठा कर वृक्ष की छाँह मे लिटा दिया हो।

प्रिय—कुछ भूख मालूम होती है?

दया—जी नही, प्यास लगी है।

प्रिय—तो आप थोडा सा गर्म दूध पी लें। मैं इस वक्त जाता हूँ। कल आठ वजे तक आ जाऊँगा।

दयाशकर ने मुन्शी जी की तरफ देख कर कहा—मेरा सन्दूक खोलिए और उसमे जो कुछ हो ला कर डाक्टर साहव के पैरो पर रख दीजिए। वावूजी, यह रकम कुछ नही है, पर आप इसे कवूल करे।

प्रिय—अभी आप चगे तो हो जायँ, मेरा हिसाव फिर हो जायगा।

दया—मैं चगा हो गया, मौत के मुँह से निकल आया। कल तक मरने का ही जी चाहता था, लेकिन अव जीने की इच्छा है। यह फीस नही है। मै आपको फीस देने के लायक नही हूँ। दैहिक रोग-निवृत्ति की फीस हो सकती है, लेकिन मुझे ज्ञात हो रहा है कि आपने आत्मिक उद्धार कर दिया है। इसकी फीस वह एहसान है जो जीवन-पर्यन्त मेरे सिर पर रहेगा और ईश्वर ने चाहा तो आपको इस पापी जीवन को मौत के पजे से वचा लेने का दुख न होगा।

प्रियनाथ ने फीस न ली, चले गये। प्रेमशकर थोडी देर वैठे रहे। जव दयाशकर दूध पी कर फिर सो गये तव वह वाहर निकल कर टहलने लगे। अकस्मात् उन्हे लाला प्रभाशंकर एक्के पर आते हुए दिखायी दिए। निकट आते ही वह एक्के से उतरे और कम्पित स्वर से वोले—वेटा, वताओ दयाशकर की क्या हालत है? तुम्हारे चले आने के वाद यहाँ से एक चौकीदार मेरे पास पहुँचा। उसने कुछ ऐसी वुरी खवर सुनायी कि होश उड गये, उसी वक्त चल खडा हुआ। घर मे हाहाकार मचा हुआ है। सच-सच वताओ वेटा, क्या हाल है!

प्रेम—अव तो तवीअत वहुत कुछ सँभल गयी है, कोई चिन्ता की वात नही, पर जव मैं आया था तो वास्तव मे हालत खराव थी। खैरियत यह हो गयी कि डाक्टर प्रियनाथ आ गये। उनकी दवा ने जादू का सा असर किया। अव सो रहे हैं।

प्रभा—वेटा, चलो, जरा देख लूँ, चित्त वहुत व्याकुल है।

प्रेम—आपको देख कर शायद वह रोने लगे।

प्रभाशकर ने वडी नम्रता से कहा—वेटा, मै जरा भी न वोलूँगा, वस एक आँख देख कर चला जाऊँगा। जी वहुत घवराया हुआ है।

प्रेम—आइए, मगर चित्त को शान्त रखिएगा। अगर उन्हे जरा भी आहट मिल गयी तो दिन भर की मेहनत निष्फल हो जायगी।

प्रभा—भैया, कसम खाता हूँ, जरा भी न वोलूँगा। वस, दूर से एक आँख देख कर चला जाऊँगा।

प्रेमशंकर मजवूर हो गये। लाला जी को लिए हुए दयाशकर के कमरे मे गये।

प्रभाशकर ने चौखट से ही इस तरह डरते-डरते भीतर झाँका जैसे कोई बालक घटा की ओर देखता है कि कही बिजली न चमक जाय। पर दयाशकर की दशा देखते ही प्रेमोद्‌गार से विवश हो कर वह जोर से चिल्ला उठे और हाय बेटा! कह कर उनकी छाती से चिमट गये।

प्रेमशंकर ने तुरन्त उपेक्षा भाव से उनका हाथ पकडा और खीच कर कमरे के बाहर लाये।

दयाशकर ने चौक कर पूछा, कौन था? दादा जी आये हैं क्या?

प्रेमशकर—आप आराम से लेटे। इस वक्त बात-चीत करने से बेचैनी बढ जायगी।

दया—नही, मुझे एक क्षण के लिए उठा कर बिठा दो। मैं उनके चरणो पर सिर रखना चाहता हूँ।

प्रेम—इस वक्त नही। कल इतमीनान से मिलिएगा।

यह कह कर प्रेमशकर बाहर चले आये। प्रभाशकर बरामदे मे खडे रो रहे थे। बोले—बेटा, नाराज न हो, मैंने बहुत रोका, पर दिल काबू मे न रहा। इस समय मेरी दशा उस टूटी नाव पर बैठे हुए मुसाफिर की सी है जिसके लिए हवा का एक झोका भी मौत के थप्पड के समान है। सच-सच बताओ, डाक्टर साहब क्या कहते थे?

प्रेम—उनके विचार मे अब कोई चिन्ता की बात नही है। लक्षणो से भी यही प्रकट होता है।

प्रभा—ईश्वर उनका कल्याण करे, पर मुझे तो तब ही इतमीनान होगा जब यह उठ बैठेंगे। यह इनके ग्रह का साल है।

दोनो आदमी बाहर आकर सायबान मे बैठे। दोनो अपने विचार मे मग्न थे। थोडी देर के बाद प्रभाशकर बोले—हमारा यह कितना बडा अन्याय है कि अपनी सन्तान मे उन्ही कुसस्कारो को देख कर जो हममे स्वय मौजूद हैं उनके दुश्मन हो जाते है। दयाशकर से मेरा केवल इसी बात पर मनमुटाव था कि वह घर की खबर क्यो नही लेता? दुर्व्यसनो मे क्यो अपनी कमाई उडा देता है? मेरी मदद क्यो नही करता? किन्तु मुझसे पूछो कि तुमने अपनी जिन्दगी मे क्या किया? मेरी इतनी उम्र भोग विलास मे ही गुजरी है। इसने अगर लुटायी तो अपनी कमाई लुटाई, बरबाद की तो अपनी कमाई बरबाद की। मैंने तो पुरखाओ की जायदाद का सफाया कर दिया। मुझे इससे बिगडने का कोई अधिकार न था।

थाने के कई अमले और चौकीदार आ कर बैठ गये और दयाशकर की सहृदयता और सज्जनता की सराहना करने लगे। प्रभाशकर उनकी बाते सुनकर गर्व से फूले जाते थे।

आठ बजे प्रेमशकर ने जाकर फिर दवा पिलायी और वही रात भर एक आराम कुर्सी पर लेटे रहे। पलक को झपकने भी न दिया।

सबेरे प्रियनाथ आये और दयाशकर को देखा तो प्रसन्न हो कर बोले—अब जरा भी चिन्ता नही है, इनकी हालत बहुत अच्छी है। एक सप्ताह मे यह अपना काम

करने लगेंगे। दवा से ज्यादा बाबू प्रेमशकर की सुश्रूषा का असर है। शायद आप रात को बिलकुल न सोये ?

प्रेमशकर—सोया क्यो नही ? हाँ, घोडे बेच कर नही सोया।

प्रभाशकर—डाक्टर साहब, मै गवाही देता हूँ कि रात भर इनकी आँखे नही झपकी। मैं कई बार झाँकने आया तो इन्हे बैठे या कुछ पढ़ते पाया।

दयाशकर ने श्रद्धामय भाव से कहा—जीता बचा तो बाकी उम्र इनकी खिदमत मे काटूँगा। इनके साथ रह कर मेरा जीवन सुधर जायगा।

इस भाँति एक हफ्ता गुजर गया। डाक्टर प्रियनाथ रोज आते और घटे भर ठहर कर देहातो की ओर चले जाते। प्रभाशकर तो दूसरे ही दिन घर चले गये, लेकिन प्रेमशकर एक दिन के लिए भी न हिले। आठवे दिन दयाशंकर पालकी मे बैठ कर घर जाने के योग्य हो गये। उनकी छुट्टी मजूर हो गयी थी।

प्रात काल था। दयाशकर थाने से चले। यद्यपि वह केवल तीन महीने की छुट्टी पर जा रहे थे, पर थाने के कर्मचारियो को ऐसा मालूम हो रहा कि अब इनसे सदा के लिए साथ छूट रहा है। सारा थाना मील भर तक पालकी के साथ दौडता हुआ उनके साथ आया। लोग किसी तरह लौटते ही न थे। अन्त मे प्रेमशकर के बहुत दिलासा देने पर लोग विदा हुए। सब के सब फूट-फूट कर रो रहे थे।

प्रेमशकर मन मे पछता रहे थे कि ऐसे सर्वप्रिय श्रद्धेय मनुष्य से मै इतने दिनो तक घृणा करता रहा। दुनिया मे ऐसे सज्जन, ऐसे दयालु, ऐसे विनयशील पुरुष कितने हैं, जिनकी मुट्ठी मे इतने आदमियो के हृदय हो, जिनके वियोग से लोगो को इतना दु ख हो !

६१

होली का दिन था। शहर मे चारो तरफ अबीर और गुलाल उड रही थी, फाग और चौताल की धूम थी, लेकिन लाला प्रभाशकर के घर पर मातम छाया हुआ था। श्रद्धा अपने कमरे मे बैठी हुई गायत्री देवी के गहने और कपडे सहेज रही थी कि अब की ज्ञानशकर आये तो यह अमानत सौप दूँ। विद्या के देहान्त और गायत्री के चले जाने के बाद से उसकी तबीअत अकेले बहुत घबराया करती थी। अक्सर दिन के दिन बडी बहू के पास बैठी रहती, पर जब से दोनो लड़को की मृत्यु हुई उसका जी और भी उचटा रहता था। हाँ, कभी-कभी शीलमणि के आ जाने से जरा देर के लिए जी बहल जाता था। गायत्री के मरने की खबर यहाँ कल ही आयी थी। श्रद्धा उसे याद करके सारी रात रोती रही। इस वक्त भी गायत्री उसकी आँखो मे फिर रही थी, उसकी मृदु, सरल, निष्कपट बाते याद आ रही थी। कितनी उदार, कितनी नम्र कितनी प्रेममयी रमणी थी। जरा भी अभिमान नही, पर हा शोक ! कितना भीषण अन्त हुआ। इसी शोकावस्था मे दोनो लडको की ओर ध्यान जा पहुँचा। हा ! दोनो कैसे हँसमुख, कैसे होनहार, कैसे सुन्दर बालक थे ! जिन्दगी का कोई भरोसा नही,

आदमी कैसे-कैसे इरादे करता है, कैसे-कैसे मनसूबे बाँधता है, किन्तु यमराज के आगे किसी की नही चलती। वह आन की आन मे सारे मसूबो को धूल मे मिला देता है। तीन महीने के अन्दर पाँच प्राणी चल दिये। इस तरह एक दिन मै भी चल बसूँगी और मन की मन मे ही रह जायेगी। आठ साल से हम दोनो अपनी-अपनी टेक पर अडे है, न वह झुकते है, न मैं दबती हूँ। जब इतने दिनो तक उन्होने प्रायश्चित नही किया तब अब कदापि न करेगे। उनकी आत्मा अपने पुण्य कार्यों से सन्तुष्ट है, न इसकी जरूरत समझती है न महत्त्व, अब मुझी को दबना पडेगा। अब मै ही किसी विद्वान पडित से पूछूँ कि मेरे किसी अनुष्ठान से उनका प्रायश्चित्त हो सकता है या नही? क्या मेरी इतने दिनो की तपस्या, गगास्नान, पूजा-पाठ, व्रत और नियम अकारथ हो जायेगे? माना, उन्होने विदेश मे कितने ही काम अपने धर्म के विरुद्ध किये, लेकिन जब से यहाँ आये है तब से तो बराबर सत्कार्य ही कर रहे है। दीनो की सेवा और पतितो के उद्धार मे दत्तचित्त रहते है। अपनी जान की भी परवाह नही करते। कोई बडा से बडा धर्मात्मा भी परोपकार मे इतना व्यस्त न रहता होगा। उन्होने अपने को बिल्कुल मिटा दिया है। धर्म के जितने लक्षण ग्रन्थो मे लिखे हुए है वे सब उनमे मौजूद है। जिस पुरुष ने अपने मन को, अपनी इन्द्रियो को, अपनी वासना को ज्ञान-बल से जीत लिया हो क्या उसके लिए भी प्रायश्चित की जरूरत है? क्या कर्मयोग का मूल्य प्रायश्चित के बराबर नही? कोई पुस्तक नही मिलती जिसमे इस तपस्या की साफ-साफ व्यवस्था की गयी हो। कोई ऐसा विद्वान नही दिखायी देता जो मेरी शकाओ का समाधान करे। भगवान्, मैं क्या करूँ? इन्ही दुविधाओ मे पडी एक दिन मर जाऊँगी और उनकी सेवा करने की अभिलाषा मन मे ही रह जायेगी। उनके साथ रह कर मेरा जीवन सार्थक हो जाता, नही तो इस चहारदीवारी मे पडे जीवन वृथा गँवा रही हूँ।

श्रद्धा इन्ही विचारो मे मग्न थी कि अचानक उसे द्वार पर हलचल सी सुनायी दी। खिडकी से झाँका तो नीचे सैकडो आदमियो की भीड दिखायी दी। इतने मे महरी ने आ कर कहा, बहू जी, लखनपुर के जितने आदमी कैद हुए थे वह सब छूट आये है और द्वार पर खडे बाबू जी को आशीर्वाद दे रहे है। जरा सुनो, वह बुड्ढा दाढीवाला कह रहा है, अल्लाह! बाबू प्रेमशकर को कयामत तक सलामत रख! इनके साथ एक बूढा साधु भी है। सुखदास नाम है। वह बाजार से यहाँ तक रुपये-पैसे लुटाता आया है। जान पडता है कोई बडा धनी आदमी है।

इतने मे मायाशकर लपका हुआ आया और बोला—बडी अम्माँ, लखनपुर के सब आदमी छूट आये है। बाजार मे उनका जलूस निकला था। डाक्टर इर्फानअली, बाबू ज्वालासिंह, डाक्टर प्रियनाथ, चाचा साहब, चाचा दयाशकर और शहर के और सैकडो छोटे-बडे आदमी जलूस के साथ थे। लाओ, दीवानखाने की कुजी दे दो। कमरा खोल कर सबको बैठाऊँ।

श्रद्धा ने कुजी निकाल कर दे दी और सोचने लगी, इन लोगो का क्या सत्कार

करूँ कि इतने मे जयकार का गगन-व्यापी नाद सुनायी दिया—बाबू प्रेमशकर की जय ! लाला दयाशकर की जय ! लाला प्रभाशकर जी जय !

मायाशंकर फिर दौडा हुआ आया और बोला—बड़ी अम्मा, जरा ढोल मजीरा निकलवा दो, बाबा सुखदास भजन गायेगे। वह देखो, वह दाढीवाला बुड्ढा, वही कादिरखाँ है। वह जो लम्बा तगडा आदमी है, वही बलराज है। इसी के बाप ने गौस खाँ को मारा था।

श्रद्धा का चेहरा आत्मोल्लास से चमक रहा था। हृदय ऐसा पुलकित हो रहा था मानो द्वार पर बरात आयी हो। मन मे भाँति-भाँति की उमगे उठ रही थी। इन लोगो को आज यही ठहरा लूँ, सबकी दावत करूँ, खूब धूमधाम से सत्यनारायण की कथा हो। प्रेमशकर के प्रति श्रद्धा का ऐसा प्रबल आवेग हो रहा था कि इसी दम जा कर उनके चरणो मे लिपट जाऊँ। तुरन्त ढोल और मजीरे निकाल कर मायाशकर को दिये।

सुखदास ने ढोल गले मे डाला, औरो ने मजीरे लिए, मडल बाँधकर खडे हो गये और यह भजन गाने लगे—

'सतगुरु ने मोरी गह लई बाँह नही रे मैं तो जात बहा।'

माया खुशी के मारे फूला न समाता था। आ कर बोला—कादिर मियाँ खूब गाते हैं।

श्रद्धा—इन लोगो की कुछ आव-भगत करनी चाहिए।

माया—मेरा तो जी चाहता है कि सब की दावत हो। तुम अपनी तरफ से कहला दो। जो सामान चाहिए वह मुझे लिखवा दो। जा कर आदमियो को लाने के लिए भेज दूँ। यह सब बेचारे इतने सीधे, गरीब है कि मुझे तो विश्वास नही आता कि इन्होंने गौस खाँ को मारा होगा। बलराज है तो पूरा पहलवान, लेकिन वह भी बहुत ही सीधा मालूम होता है।

श्रद्धा—दावत मे बडी देर लगेगी। बाजार से चीजे आयेगी, बनाते-बनाते तीसरा पहर हो जायगा। इस वक्त एक बीस रुपए की मिठाई मँगाकर जलपान करा दो। रुपये है या दूँ ?

माया—रुपये बहुत है। क्या कहूँ, मुझे पहले यह बात न सूझी।

दोपहर तक भजन होता रहा। शहर के हजारो आदमी इस आनन्दोत्सव मे शरीक थे। प्रेमशकर ने सबको आदर से बिठाया। इतने मे बाजार से मिठाइयाँ आ गयी, लोगो ने नाश्ता किया और प्रेमशकर का यश-गान करते हुए बिदा हुए, लेकिन लखनपुरवालो को छुट्टी न मिली। श्रद्धा ने कहला भेजा कि खा-पी कर शाम को जाना। यद्यपि सब के सब घर पहुँचने के लिए उत्सुक हो रहे थे, पर यह निमन्त्रण न अस्वीकार करते। लाला प्रभाशकर भोजन बनवाने लगे। अब तक उन्होने केवल बड़े आदमियो को ही अपनी व्यंजन-कला से मुग्ध किया था। आज देहातियो को भी यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। लाला जी ऐसा स्वादयुक्त भोजन देना चाहते थे जो उन्हे तृ

कर दे, जिसको वह सदैव याद करते रहे। भाँति-भाँति के पकवान बनने लगे। बहुत जल्दी की गयी, फिर भी खाते-खाते आठ बज गये। प्रियनाथ और इर्फानअली ने अपनी सवारियाँ भेज दी थी। उस पर बैठ कर लोग लखनपुर चले। सब ने मुक्त कंठ से आशीर्वाद दिये। अभी घरवाले बाकी थे, उनके खाने मे दस बज गये। प्रेमशकर हाजीपुर जाने को प्रस्तुत हुए तो महरी ने आ कर धीरे से कहा, बहू जी कहती हैं कि आज यही सो रहिए। रात बहुत हो गयी है। इस असाधारण कृपा-दृष्टि ने प्रेमशकर को चकित कर दिया। वह इसका मर्म न समझ सके।

ज्वालासिंह ने महरी से हँसी की—हम लोग भी रहे या चले जायँ ?

महरी सतर्क थी। बोली—नही सरकार, आप भी रहें, माया भैया भी रहें, यहाँ किस चीज की कमी है ?

ज्वाला—चल, बातें बनाती है !

महरी चली गयी तो वह प्रेमशकर से बोले—आज मालूम होता है आपके नक्षत्र बलवान हैं। अभी और विजय प्राप्त होनेवाली है।

प्रेमशकर ने विरक्त भाव से कहा—कोई नया उपदेश सुनना पड़ेगा और क्या ?

ज्वाला—जी नही, मेरा मन कहता है कि आज देवी आपको वरदान देगी। आपकी तपस्या सफल हो गयी।

प्रेम—मेरी देवी इतनी भक्तवत्सला नहीं है।

ज्वाला—अच्छा, कल आप ही ज्ञात हो जायेगा। हमें आज्ञा दीजिए।

प्रेम—क्यो, यही न सो रहिए।

ज्वाला—मेरी देवी और भी जल्द रूठती है।

यह कह कर वह मायाशकर के साथ चले गये।

महरी ने प्रेमशकर के लिए पलँग बिछा दिया था। वह लेटे तो अनिवार्यत मन मे जिज्ञासा होने लगी कि श्रद्धा आज क्यों मुझपर इतनी सदय हुई हैं। कही यह महरी का कौशल तो नही है। नही, महरी ऐसी हँसोड तो नही जान पडती। कही वास्तव मे उसने दिल्लगी की हो तो व्यर्थ लज्जित होना पडे। श्रद्धा न जाने अपने मन मे क्या सोचे। अन्त मे इन शकाओ को शान्त करने के लिए उन्होने ज्ञानशकर की आलमारी मे से एक पुस्तक निकाल ली और उसे पढने लगे।

ज्वालासिंह की भविष्यवाणी सत्य निकली। आज वास्तव मे उनकी तपस्या पूरी हो गयी थी। उनकी सुकीर्ति ने श्रद्धा को वशीभूत कर लिया था। आज जब से उसने सैकडो आदमियो को द्वार पर खडे प्रेमशकर की जय-जयकार करते देखा था तभी से उसके मनमे यह समस्या उठ रही थी—क्या इतने अन्त करणो से निकली हुई शुभेच्छाओ का महत्त्व प्रायश्चित्त से कम है ? कदापि नही। परोपकार की महिमा प्रायश्चित्त से किसी तरह कम नही हो सकती, बल्कि सच्चा प्रायश्चित्त तो परोपकार ही है। इतनी आशीषें किसी महान् पापी का भी उद्धार कर सकती है। कोरे प्रायश्चित्त का इनके सामने क्या महत्त्व हो सकता है ? और इन आशीषो का आज ही थोडे ही अन्त हो

गया। जब यह सब घर पहुँचेगे तो इनके घरवाले और भी आशीष देंगे। जब तक दम मे दम रहेगा, उनके हृदय से नित्य यह सदिच्छाएँ निकलती रहेगी। ऐसे यशस्वी, ऐसे श्रद्धेय पुरुष को प्रायश्चित्त की कोई जरूरत नही। इस सुधा-वृष्टि ने उसे पवित्र कर दिया है।

ग्यारह बजे थे। श्रद्धा ऊपर से उतरी और सकुचाती हुई आ कर दीवानखाने के द्वार पर खडी हो गयी। लैम्प जल रहा था, प्रेमशकर किताब देख रहे थे। श्रद्धा को उनके मुखमडल पर आत्म-गौरव की एक दिव्य ज्योति झलकती हुई दिखायी दी। उसका हृदय बाँसो उछल रहा था और आँखे आनन्द के अश्रु-बिन्दुओ से भरी हुई थी। आज चौदह वर्ष के बाद उसे अपने प्राणपति की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। अब विरहिणी श्रद्धा न थी जिसकी सारी आकाक्षाएँ मिट चुकी हो। इस समय उसका हृदय अभिलाषाओं से आन्दोलित हो रहा था, किन्तु उसके नेत्रो मे तृष्णा न थी, उसके अधरो पर मृदु मुस्कान न थी। वह इस तरह नही आयी थी जैसे कोई नववधू अपने पति के पास आती है, वह इस तरह आयी थी जैसे कोई उपासिका अपने इष्टदेव के सामने आती है, श्रद्धा और अनुराग मे डूबी हुई।

वह क्षण भर द्वार पर खडी रही। तब जा कर प्रेमशकर के चरणो पर गिर पडी।

६२

मानव चरित्र न बिलकुल श्यामल होता है न बिलकुल श्वेत। उसमे दोनो ही रगो का विचित्र सम्मिश्रण होता है। स्थिति अनुकूल हुई तो वह ऋषितुल्य हो जाता है, प्रतिकूल हुई तो नराधम। वह अपनी परिस्थितियो का खिलौना मात्र है। बाबू ज्ञान-शकर अगर अब तक स्वार्थी, लोभी और सकीर्ण-हृदय थे तो वह परिस्थितियो का फल था। भूखा आदमी उस समय तक कुत्ते को कौर नही देता जब तक वह स्वय सन्तुष्ट न हो जाये। अप्रसन्नता ने उनकी श्यामलता को और भी उज्ज्वल कर दिया था। उन्होने ऐसे घर मे जन्म लिया था जिसने कुल-मर्यादा की रक्षा मे अपनी श्री का अन्त कर दिया था। ऐसी अवस्था मे उन्हे सन्तोष से ही शान्ति मिल सकती थी, पर उनकी उच्च शिक्षा ने उन्हे जीवन को एक वृहत् सग्राम-क्षेत्र समझना सिखाया था। उनके सामने जिन महान् पुरुषो के आदर्श रखे गये थे उन्होने भी सघर्ष-नीति का आश्रय ले कर सफलता प्राप्त की थी। इसमे सदेह नही कि इस शिक्षा ने उन्हे लेख और वाणी मे प्रवीण, तर्क मे कुशल, व्यवहार मे चतुर बना दिया था, पर उसके साथ ही उन्हे स्वार्थ और स्वहित का दास बना दिया था। यह वह शिक्षा न थी जो अपने झोपडे का द्वार खुला रखने का अनुरोध करती है, जो दूसरो को खिला कर आप खाने की नीति सिखाती है। ज्ञानशकर किसी को आश्रय देने की कल्पना भी न कर सकते थे जब तक अपना प्रासाद न बना ले, वह किसी को मुट्ठी भर अन्न भी न दे सकते थे, जब तक अपनी धान्यशाला को भर न ले।

सौभाग्य से उनका प्रासाद निर्मित हो चुका था। अब वह दूसरो को आश्रय देने

पर तैयार थे, उनकी धान्यशाला परिपूर्ण हो चुकी थी। अब उन्हे भिक्षुओ से घृणा न थी। सम्पत्तिशाली हो कर वह उदार, दयालु, दीनवत्सल और कर्त्तव्यपरायण हो गये थे। लाला प्रभाशकर की पुत्रियो के विवाह मे उन्होने खासी मदद की थी और पुत्रो के मातम मे शरीक होने के लिए भी गोरखपुर से आये थे। प्रेमशकर के प्रति भी भ्रातृ-प्रेम जाग्रत हो गया था, यहाँ तक कि लखनपुरवालो के मुक्त हो जाने पर उन्हे बधाई दी थी। गायत्री की मृत्यु का शोक समाचार मिला तो उन्होने उसका सस्कार बडी धूमधाम से किया और कई हजार रुपये खर्च किये। उसकी यादगार मे एक पक्का तालाब खुदवा दिया। जब तक वह फूस के झोपडे मे रहते थे, आग की चिनगारियों से डरते थे। अब उनका पक्का महल था, फुलझडियो का तमाशा सावधानी से देख सकते थे।

ज्ञानशकर अब ख्याति और सुकीर्ति के लिए लालायित रहते थे। लखनऊ के मान्यगण उन्हे अनधिकारी समझ कर उनसे कुछ खिंचे रहते थे। और यद्यपि गोरखपुर मे पहले ही उन्होने सम्मानपद प्राप्त कर लिया था, पर इस नयी हैसियत मे देख कर अक्सर लोग उनसे जलते थे। ज्ञानशकर ने दोनो शहरो के रईसो मे मेल-जोल बढाना शुरू किया। पहले वह राय साहब के अव्यवस्थित व्यय को घटाना परमावश्यक समझते थे। कई घोडे, एक मोटर, कई सवारी गाडियाँ निकाल देना चाहते थे। लेकिन अब उन्हे अपनी सम्मान रक्षा के लिए उस ठाट-बाट को निबाहना ही नही, उसे और बढाना जरूरी मालूम होता था जिसमे लोग उनकी हँसी न उडाये। वह उन लोगो की बार-बार दावते करते, छोटे-बडे सबसे नम्रता और विनय का व्यवहार करते और सत्कार्यो के लिए दिल खोल कर चन्दे देते। पत्र-सम्पादको से उनका परिचय पहले ही से था अब और भी घनिष्ठ हो गया। अखबारो मे उनकी उदारता और सज्जनता की प्रशसा होने लगी। यहाँ तक कि साल भी न बीतने पाया था कि वह लखनऊ की ताल्लुकेदार सभा के मत्री चुन लिये गये। राज्याधिकारियो मे भी उनका सम्मान होने लगा। वह वाणी में कुशल थे ही, प्राय जातीय-सम्मेलनो मे ओजस्विनी वक्तृता देते। पत्रो मे वाह-वाह होने लगती। अतएव वह इधर तो जाति के नेताओ मे गिने जाने लगे, उधर अधिकारियो मे भी मान-प्रतिष्ठा होने लगी।

किन्तु अपनी मूक, दीन प्रजा के साथ उनका बर्ताव इतना सदय न था। उन वृक्षो मे काँटे न थे, इसलिए उनके फल तोडने मे कोई बाधा न थी। असामियो पर अखराज, बकाया और इजाफे की नालिशें धूम से हो रही थी, उनके पट्टे बदले जा रहे थे और नजराने बडी कठोरता से वसूल किये जा रहे थे। राय साहब ने रियासत पर पाँच लाख का ऋण छोडा था। उस पर लगभग २५ हजार वार्षिक ब्याज होता था। ज्ञानशकर ने इन प्रयत्नो से सूद की पूर्ति कर ली। इतने अत्याचार पर भी प्रजा उनसे असन्तुष्ट न थी। वह कडवी दवाएँ मीठी करके पिलाते थे। गायत्री की बरसी मे उन्होने असामियो को एक हजार कम्बल बाँटे और ब्राह्मणो को भोज दिया। इसी तरह राय साहब के इलाके मे होली के दिन जलसे कराये और भोले-भाले असामियो को भर

पेट भग पिला कर मुग्ध कर दिया। कई जगह मडियाँ लगवा दी जिससे कृषको को अपनी जिन्से बेचने मे सुविधा हो गयी और रियासत को भी अच्छा लाभ होने लगा।

इस तरह दो साल गुजर गये। ज्ञानशंकर का सौभाग्य-सूय अब मध्याह्न पर था। राय साहब के ऋण से वह बहुत कुछ मुक्त हो चुके थे। हाकिमो मे मान था, रईसो मे प्रतिष्ठा थी, विद्वज्जनो मे आदर था, मर्मज्ञ लेखक थे, कुशल वक्ता थे। सुख-भोग की सब सामग्रियाँ प्राप्त थी। जीवन की महत्त्वाकाक्षाएँ पूरी हो गयी थी। वह जब कभी अनकाश के समय अपनी गत अवस्था पर विचार करते तब उन्हे अपनी सफलता पर आश्चर्य होता था। मैं क्या से क्या हो गया? अभी तीन ही साल पहले मैं एक हजार सालाना नफे के लिए सारे गाँव को फाँसी पर चढवा देना चाहता था। तब मेरी दृष्टि कितनी सकीर्ण थी। एक तुच्छ बात के लिए चचा से अलग हो गया, यहाँ तक कि अपने सगे भाई का भी अहित सोचता था। उन्हे फँसाने में कोई बात उठा नही रखी। पर अब ऐसी कितनी रकमे दान कर देता हूँ। कहाँ एक ताँगा रखने की सामर्थ्य न थी, कहाँ अब मोटरें मँगनी दिया करता हूँ। निस्सदेह इस सफलता के लिए मुझे स्वाँग भरने पडे, हाथ रँगने पडे, पाप, छल, कपट सब कुछ करने पड़े, किंतु अँधेरे मे खोह मे उतरे बिना अनमोल रत्न कहाँ मिलते है? लेकिन इसे अपने ही कृत्यो का फल समझना मेरी नितान्त भूल है। ईश्वरीय व्यवस्था न होती तो मेरी चाल कभी सीधी न पड़ती! उस समय तो ऐसा जान पडता था, कि पाँसा पट पडा, वार खाली गया, लेकिन सौभाग्य से उन्हीं खाली वारो ने, उन्ही उल्टी चालो ने बाजी जिता दी।

ज्ञानशकर दूसरे-तीसरे महीने बनारस अवश्य जाते और प्रेमशकर के पास रह कर सरल जीवन का आनद उठाते। उन्होने प्रेमशकर से कितनी ही बार साग्रह कहा कि अब आपको इस उजाड मे झोपडा बना कर रहने की क्या जरूरत है? चल कर घर पर रहिए और ईश्वर की दी हुई सपत्ति भोगिए। यह मजूर न हो तो मेरे साथ चलिए। हजार-दो हजार बीघे चक दे दूँ, वहाँ दिल खोल कर कृषक जीवन का आनद उठाइए, लेकिन प्रेमशकर कहते, मेरे लिए इतना ही काफी है, ज्यादा की जरूरत नही। हाँ, इस अनुरोध का इतना फल अवश्य हुआ कि वह अपनी जोत को बढाने पर राजी हो गये। उनके डाँढ से मिली हुई पचास बीघे जमीन एक दूसरे जमीदार की थी। उन्होने उसका पट्टा लिखा लिया और फूस के झोपडे की जगह खपरैल के मकान बनवा लिए। ज्ञानशकर उनसे यह सब प्रस्ताव करते थे, पर उनके संतोषमय, सरल, निर्विरोध जीवन के महत्त्व से अनभिज्ञ थे। नाना प्रकार की चिताओ और बाधाओ मे ग्रस्त रहने के बाद वहाँ के शान्तिमय, निर्विघ्न विश्राम से उनका चित्त प्रफुल्लित हो जाता था। यहाँ से जाने को जी न चाहता था। यह स्थान अब पहले की तरह न था, जहाँ केवल एक आदमी साधुओ की भाँति अपनी कुटी मे पड़ा रहता हो। अब वह एक छोटी सी गुलजार बस्ती थी, जहाँ नित्य राजनीतिक और सामाजिक विषयो पर सम्वाद होते थे और जीवन-मरण के गूढ, जटिल प्रश्नो की मीमासा की जाती थी! यह विद्वज्जनो

की एक छोटी सी सगत थी, विद्वानो के पक्षपात और अहकार से मुक्त। वास्तव मे यह सारल्य, सतोष और सुविचार की तपोभूमि थी। यहाँ न ईर्षा का सन्ताप था, न लोभ का उन्माद, न तृष्णा का प्रकोप। यहाँ धन की पूजा न होती थी और न दीनता पैरो तले कुचली जाती थी। यहाँ न एक गद्दी लगा कर बैठता था और न दूसरा अपराधियो की भाँति उनके सामने हाथ बाँध कर खडा होता था। यहाँ स्वामी की घुडकियाँ न थी, न सेवक की दीन ठकुरसोहातियाँ। यहाँ सब एक दूसरे के सेवक, एक दूसरे के मित्र और हितैषी थे। एक तरफ डाक्टर इर्फान अली का सुदर बँगला था फूलो और लताओ से सजा हुआ। डाक्टर साहब अब केवल वही मुकदमे लेते थे जिनके सच्चे होने का उन्हे विश्वास होता था और उतना ही पारिश्रमिक लेते थे जितना रोजाना खर्च के लिए आवश्यक हो। सचय और सग्रह की चिंताओ से निवृत्त हो गये थे। शाम-सवेरे वह प्रेमशकर के साथ बागवानी करते थे, जिसका उन्हे पहले से ही शौक था। पहले गमलो मे लगे हुए पौधो को देख कर खुश होते थे, काम माली करता था। अब सारा काम अपने ही हाथो करते थे। उनके बँगले से मिला हुआ डाक्टर प्रियनाथ का मकान था। मकान के सामने एक औषधालय था। अब वे प्राय देहातो मे घूम-घूम कर रोगियो का कष्ट निवारण करते थे, नौकरी छोड दी थी। जीविका के लिए एक गौशाला खोल ली थी जिसमे कई पछाही गायें-भैंसे थी। दूध-मक्खन बिकने के लिए शहर चला आता था। रोगियो से कुछ फीस न लेते थे। बाबू ज्वालासिंह और प्रेमशकर एक ही मकान मे रहते थे। श्रद्धा और शीलमणि मे खूब बनती थी। घर के कामो से फुरसत पाते ही दोनो चरखे पर बैठ जाती थी या मोजे बुनने लगती थी। प्रेमशकर नियमानुसार खेत मे काम करते थे और ज्वालासिंह नये प्रकार के करघो पर आप कपडे बुनते थे और हाजीपुर के कई युवको को बुनना सिखाते थे। इस कला मे वह बहुत निपुण हो गये थे। सैयद ईजाद हुसेन ने भी यही अड्डा जमाया। उनका परिवार अब भी शहर मे ही रहता था, पर वह यतीमखाना यही उठ आया था। उसमे अब नकली नही, सच्चे यतीमो का पालन-पोषण होता था। सैयद साहब अपना 'इत्तहाद' अब भी निकालते थे और 'इत्तहाद' पर व्याख्यान देते थे, लेकिन चन्दे न वसूल करते थे और न स्वाँग भरते थे। वह अब हिन्दू-मुसलिम एकता के सच्चे प्रचारक थे। यतीमखाने के समीप ही मायाशकर का मित्र भवन था। यह एक छोटा सा छात्रालय था। इसमे इर्फान अली के दो लडके, प्रियनाथ के तीनो लडके, दुर्गा-माली का एक लडका और मस्ता का एक छोटा भाई साथ-साथ रहते थे। सब साथ-साथ पाठशाला को जाते और साथ-साथ भोजन करते। उनका सब खर्च मायाशकर अपने वजीफे से देता था। भोजन श्रद्धा पकाती थी। ज्ञानशकर ने कई बार चाहा कि माया को ले जा कर लखनऊ के ताल्लुकेदार स्कूल मे दाखिल करा दें, लेकिन वह राजी न होता था।

एक बार ज्ञानशकर लखनऊ से आये तो माया के वास्ते एक बहुत सुदर रेशमी सूट सिला लाये, लेकिन माया ने उसको उस वक्त तक न पहना जब तक मित्र-भवन के

और छात्रों के लिए वैसे ही सूट न तैयार हो गये। ज्ञानशंकर मन मे बहुत लज्जित हुए और बहुत जब्त करने पर भी उनके मुँह से इतना निकल ही गया, भाई साहब मैं इस साम्य-सिद्धान्त पर आपसे सहमत नही हूँ। यह एक अस्वाभाविक सिद्धान्त है। सिद्धान्त रूप से हम चाहे इसकी कितनी ही प्रशसा करे पर इसका व्यवहार मे लाना असभव है। मै यूरोप के कितने ही साम्यवादियो को जानता हूँ जो अमीरो की भाँति रहते है, मोटरो पर सैर करते है और साल मे छह महीने इटली या फ्रास मे विहार किया करते है। जब वह अपने को साम्यवादी कह सकते है तो कोई कारण नही है कि हम इस अस्वाभाविक नीति पर जान दे।

प्रेमशकर ने विनीत भाव से कहा—यहाँ साम्यवाद की तो कभी चर्चा नही हुई है।

ज्ञान—तो फिर यहाँ के जलवायु मे यह असर होगा। यद्यपि मुझे इस विषय में आपसे कुछ कहने का अधिकार नही है पर पिता के नाते मैं इतना कहने की क्षमा चाहता हूँ कि ऐसी शिक्षा का फल माया के लिए हितकर न होगा।

प्रेम—अगर तुम चाहो और माया की इच्छा हो तो उसे लखनऊ ले जाओ, मुझे कोई आपत्ति नही है। यहाँ के जलवायु को बदलना मेरे वश की बात नही।

ज्ञान—यह तो आप जानते है कि माया और उसके साथियो की स्थिति मे कितना अन्तर है।

प्रेमशकर ने गम्भीरता से कहा—हाँ, खूब जानता हूँ, पर यह नही जानता कि इस अन्तर को प्रदर्शित क्यो किया जाय। मायाशकर थोडे दिनो मे एक बडा इलाकेदार होगा, यह सब लडको को मालूम है। क्या यह बात उन्हे अपने दुर्भाग्य पर रुलाने के लिए काफी नही है कि इस विभिन्नता का स्वाँग दिखा कर उन्हे और भी चोट पहुँचायी जाय? तुम्हें मालूम न होगा, पर मै यह विश्वस्त रूप से कहता हूँ कि तेजू और पद्मू का बलिदान माया के गोद लिए जाने के ही कारण हुआ। माया को अचानक इस रूप मे देख कर सिद्धि प्राप्त करने की प्रेरणा हुई। माया डीगे मार-मार कर उनकी लालसा को और भी उत्तेजित करता रहा और उसका यह भयकर परिणाम हुआ

इतने मे माया आ गया और प्रेमशकर को अपनी बात अधूरी ही छोडनी पडी। ज्ञानशकर भी अन्यमनस्क हो कर वहा से उठ गये।

६३

गायत्री के आदेशानुसार ज्ञानशकर २००० रु० महीना मायाशकर के खर्च के लिए देते जाते थे। प्रेमशकर की इच्छा थी कि कई अध्यापक रखे जायँ, सैर करने के लिए गाडियाँ रखी जायँ, कई नौकर सेवा-टहल के लिए लगाये जायँ, पर मायाशकर अपने ऊपर इतना खर्च करने को राजी न हुआ। प्रेमशकर को मजबूर हो कर उसकी बात माननी पडी। केवल दो अध्यापक उसे पढाने आते थे। फारसी पढ़ाने के लिए ईजाद हुसेन और संस्कृत पढाने के लिए एक पडित। सवारी के लिए एक घोडा भी था। अँगरेजी प्रेमशकर स्वय पढाते थे। गणित ज्वालासिंह के जिम्मे था, डाक्टर प्रियनाथ

सप्ताह में दो दिन गाने की शिक्षा देते थे, जिसमें यह निपुण थे और दो दिन आरोग्य शास्त्र पढ़ाते थे। डाक्टर इर्फान अली अर्थशास्त्र के ज्ञाता थे। सप्ताह में दो दिन कानून सिखाते और दो दिन अर्थशास्त्र की व्याख्या करते। कालेज के कई विद्यार्थी शहर से इन व्याख्यानों को सुनने के लिए आ जाते थे और प्रियनाथ का संगीत समाज तो सारे शहर में प्रसिद्ध था। इधर की बचत मित्र-भवन, इत्तहादी अनाथालय और प्रियनाथ के चिकित्सालय के संचालन में खर्च होती थी। विद्यावती के नाम से बीस-बीस रुपये की दस छात्रवृत्तियाँ भी दी जाती थीं। इतना सब खर्च करने पर भी महीने में खासी बचत हो जाती थी। इन तीन वर्षों में कोई २५ हजार रुपये जमा हो गये थे। प्रेमशंकर चाहते थे कि ज्ञानशंकर की सम्मति ले कर माया को कुछ दिनों के लिए यूरोप, अमेरिका आदि देशों में भ्रमण करने के लिए भेज दिया जाय। इस धन का इससे अच्छा उपयोग न हो सकता था। पर मायाशंकर की कुछ और ही इच्छा थी। वह यात्रा करने के लिए तो उत्सुक था, पर एक हजार रुपये महीने से ज्यादा खर्च न करना चाहता था। इस धन के सदुपयोग की उसने दूसरी ही विधि सोची थी, पर प्रेमशंकर से यह प्रकट करते हुए सकुचाता था। संयोग से इसी बीच में उसे इसका अच्छा अवसर मिल गया।

लाला प्रभाशंकर ने प्रेमशंकर को लखनपुर के मुकदमे से बचाने के लिए जो रुपये उधार लिये थे उसकी अवधि तीन साल थी। यह मियाद पूरी हो गयी थी, पर रुपये का सूद तक न अदा हुआ था। पहले प्रेमशंकर को इस मामले की जरा भी खबर न थी, पर जब महाजन ने अदालत में नालिश की तो उन्हें खबर हुई। रुपये क्यों उधार लिये गये, यह बात शीघ्र ही मालूम हो गयी। तब से यह घोर चिन्ता में पड़े हुए थे कि यह रुपये कैसे दिये जायें? यद्यपि मुकदमे में रुपये का एक ही भाग खर्च हुआ था, अधिकांश खाने-खिलाने शादी-ब्याह में उड़ा था, पर यह हिसाब-किताब करने का समय न था। प्रेमशंकर ऋण का पूरा भार लेना चाहते थे। लेकिन रुपये कहाँ से आयें? वे कई दिन इसी चिन्ता में विकल रहे। कभी सोचते ज्ञानशंकर से माँगूँ, कभी प्रियनाथ से माँगने का विचार करते, पर संकोचवश किसी से कहते न बनता था।

एक दिन वह इसी उधेड़-बुन में पड़े हुए थे कि भोला आ कर खड़ा हो गया और उन्हें चिन्तित देख बोला—बाबू जी आज-कल आप बहुत उदास रहते हैं, क्या बात है? हमारे लायक कोई काम हो तो बताइए, भरसक उसे पूरा करेंगे।

प्रेमशंकर को भोला से बहुत स्नेह था। इनके सत्संग से उसकी शराब और जुए की आदत छूट गयी थी। वह इनको अपना मुक्तिदाता समझता था और इन पर असीम श्रद्धा रखता था। प्रेमशंकर भी उस पर विश्वास करते थे। बोले—कुछ ऐसी ही चिन्ता है, मगर तुम सुन कर क्या करोगे?

भोला—और तो क्या करूँगा? हाँ, जान लड़ा दूंगा।

प्रेम—जान लड़ाने से मेरी चिंता दूर न होगी, उसका कोई और ही उपाय करना पड़ेगा।

भोला—कहिए वह करने को तैयार हूँ। जब तक आप न बतायेंगे पिंड न छोड़ूँगा।

अन्त मे विवश हो कर प्रेमशकर ने कहा—मुझे कुछ रुपयो की जरूरत है और समझ मे नही आता कि कौन सा उपाय करूँ।

भोला—हजार दो हजार से काम चले तो मेरे पास हैं, ले लीजिए। ज्यादा की जरूरत हो तो कोई और उपाय करूँ।

प्रेम—हजार दो हजार का तुम क्या प्रबन्ध करोगे? तुम्हारे पास तो है नही, किसी से लेने ही पडेगे।

भोला—नही बाबू जी, आपकी दुआ से अब इतने फटेहाल नही है। हजार से कुछ ऊपर तो अपने ही है। एक हजार मस्ता ने रखने को दिये है। दुर्गा और दमडी भी कुछ रुपये रखने को देते थे, पर मैंने नही लिये। पराये रुपये घर मे रख कर कौन जजाल पाले? कही कुछ हो जाय तो लोग समझे इसने खा लिये होगे।

प्रेम—तुम लोगो के पास इतने रुपये कहाँ से आ गये?

भोला—आप ही ने दिये है, और कहाँ से आये? जवानी की कसम खा कर कहता हूँ कि इधर तीन साल से एक दिन भी कौड़ी हाथ से छुई हो या दारू मुँह से लगायी हो। आप लोगो जैसे भले आदमियो के साथ रह कर ऐसे कुकर्म करता तो कौन मुँह दिखाता? मस्ता के बारे मे भी कह सकता हूँ कि इधर दो-ढाई साल से किसी के माल की तरफ आँख उठा कर नही देखा। अभी थोड़े ही दिनों की बात है, भवानी सिंह की अटी से पाँच गिन्नियाँ गिर गयी थी। मस्ता ने खेत मे पडी पायी और उसी दिन जा कर उन्हे दे आया। पहले इसी बगीचे से फल-फलारी तोड कर बेच लिया करता था पर अब यह सारी आदते छूट गयी। दुर्गा और दमडी गाँजा-चरस तो पीते हैं, लेकिन बहुत कम और मैंने उन्हें कोई कुचाल चलते नही देखा। हम सभी रोटी, दाल तरकारी खा कर दो-तीन सौ रुपये बचा लेते है। तो कहिए, जितने रुपये मेरे पास है वह लाऊँ?

प्रेम—यह सुन कर मुझे बडी खुशी हुई कि तुम लोग भी चार पैसे के आदमी हो गये। यह सब तुम्हारे सुविचार का फल है। लेकिन मेरा काम इतने रुपये मे न चलेगा। मुझे पच्चीस हजार की जरूरत है।

सहसा मायाशकर आ कर खड़ा हो गया। उसकी आँखे डबडबायी हुई थी और मुँह पर करुण उत्सुकता झलक रही थी। प्रेमशकर ने भोला को आँखो के इशारे से हटा दिया तब माया से बोले—आँखे क्यो भरी हुई है? बैठो।

माया—जी, कुछ नही। अभी तेजू और पद्मू की याद आ गयी थी। दोनो अब तक होते तो उन्हे यही बुला कर रखता। उस समय मैं बड़ा निर्दयी था। बेचारो को अपना ठाट दिखा कर जलाना चाहता था। मेरी शेखी की बाते सुन-सुन वे भी कहा करते थे, हम वह मन्त्र जगायेंगे कि कोई मार ही न सके। ऐसे-ऐसे मन्त्रो को अपने वश मे कर लेंगे कि घर बैठे संसार की जो वस्तु चाहे मँगा लेंगे! उस वक्त मेरी समझ मे वे बाते न आती थी, दिल्लगी समझता था, पर अब तो उन बातो को याद करता हूँ तो ऐसा मालूम होता है कि मैं ही उनका घातक हूँ। चित्त व्याकुल हो जाता है और अपने

ऊपर ऐसा क्रोध आता है कि क्या कहूँ! अभी बाबा से मिलने गया था। बहुत दु खी थे। किसी महाजन ने उनपर नालिश भी कर दी है, इससे और भी चिन्तित थे। अगर यह मुसीबत न आती तो शायद वह इतने दु खी न होते। विपत्ति मे शोक और भी दुस्सह हो जाता है। शोक का घाव भरना तो असम्भव है, पर इस नयी विपत्ति का निवारण हो सकता है। आपसे कहते हुए सकोच होता है, पर इस समय मुझे क्षमा कीजिए। चाचा दयाशकर तो बाबा से कह रहे थे, हमे जमीन की परवाह नही है, निकल जाने दीजिए। आपको अब क्या करना है? मेरे सिर पर जो पडेगी, देख लूँगा, लेकिन बाबा की इच्छा यह थी कि महाजन से कुछ दिनो की मुहलत ली जाय। अगर आपकी आज्ञा हो तो मै जा कर बातचीत करूँ। मुझसे वह कुछ दबेगा भी।

प्रेमशकर—रुपयो की फिक्र तो मै कर रहा हूँ, पर मालूम नही उन्हे कितने रुपयो की जरूरत है। उन्होने मुझसे कभी यह जिक्र नही किया।

माया—बातचीत से मालूम होता था कि पन्द्रह-बीस हजार का मुआमला है।

प्रेम—यही मेरा अनुमान है। दो-चार दिन मे कुछ न कुछ उपाय निकल ही आयेगा। या तो महाजन को समझा-बुझा दूंगा या दो-चार हजार दे कर कुछ दिनो की मुहलत ले लूंगा।

माया—मै चाहता हूँ कि बाबा को मालूम भी न होने पाये और महाजन के सब रुपये पहुँच जाये जिसमे यह झझट न रहे। जब हमारे पास रुपये हैं तो फिर महाजन की खुशामद क्यो की जाय?

प्रेम—वह रुपये अमानत है। उन्हे छूने का अधिकार नही है। उन्हे मैने तुम्हारी यूरोप-यात्रा के लिए अलग कर दिया है।

माया—मेरी यूरोप यात्रा इतनी आवश्यक नही है कि घरवालो को सकट मे छोड कर चला जाऊँ।

प्रेम—जिस काम के लिए वह रुपये दिये गये है उसी काम मे खर्च होने चाहिए।

माया मन मे खिन्न हो कर चला गया, पर श्रद्धा से ढीठ हो गया था। उसके पास जा कर बोला—अगर चाचा साहब बाबा को रुपये न देंगे तो मैं यूरोप कदापि न जाऊँगा। तीस हजार ले कर मैं वहाँ क्या करूँगा? मेरे लिए चलते समय पाँच हजार काफी है। चाचा साहब से पचीस हजार दिला दो।

प्रेमशकर ने श्रद्धा से भी वही बाते कही। श्रद्धा ने माया का पक्ष लिया। बहस होने लगी। कुछ निश्चय न हो सका। दूसरे दिन श्रद्धा ने फिर वही प्रश्न उठाया। आखिर जब उसने देखा कि यह दलीलो से हार जाने पर भी रुपये नही देना चाहते तो जरा गर्म हो कर बोली—अगर तुमने दादा जी को रुपये न दिये तो माया कभी यूरोप न जायेगा।

प्रेम—वह मेरी बात को कभी नही टाल सकता।

श्रद्धा—और बातो को नही टाल सकता पर इस बात को हर्गिज न मानेगा।

प्रेम—तुमने यह शिक्षा दी होगी।

श्रद्धा ने कुछ जवाब न दिया। यह बात उसे लग गयी। एक क्षण तक चुपचाप बैठी रही। तब जाने के लिए उठी। प्रेमशंकर के मुँह से बात तो निकल गयी थी, पर अपनी कठोरता पर लज्जित थे। बोले—अगर ज्ञानशंकर कुछ आपत्ति करें तो?

श्रद्धा ने तिनक कर कहा—तो साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि ज्ञानशंकर के डर से नहीं देना। अधिकार, कर्त्तव्य और अमानत का आश्रय क्यों लेते हो?

प्रेमशंकर ने असमंजस में पड़ कर कहा—डर की बात नहीं है। रुपयों के विषय में मुझे पूरा अधिकार है, लेकिन ज्ञानशंकर की अनुमति के बिना मैं उसे इस तरह खर्च नहीं करना चाहता।

श्रद्धा—तो एक चिट्ठी लिख कर पूछ लो। मुझे तो पूरा विश्वास है कि उन्हें कोई आपत्ति न होगी। अब वह ज्ञानशंकर नहीं हैं जो पैसे-पैसे पर जान देते थे।

प्रेमशंकर बाहर आ कर ज्ञानशंकर को पत्र लिखने बैठे। लेकिन फिर ख्याल आया कि उन्होंने अनुमति दे दी तो! अनुमति देने में उनकी क्या हानि है? तब मुझे विवश हो कर रुपये देने पड़ेंगे। यह रुपये न मेरे हैं, न माया के हैं, न ज्ञानशंकर के हैं। यह माया की शिक्षावृत्ति है। पत्र न लिखा। ज्वालासिंह के सामने यह समस्या पेश की। उन्होंने भी कुछ निश्चय न किया। डाक्टर इर्फानअली से परामर्श लेने की ठहरी। डाक्टर साहब ने फैसला किया कि यह रकम माया की शिक्षा के सिवा और किसी काम में नहीं खर्च की जा सकती।

मायाशंकर ने यह फैसला सुना तो झुँझला उठा। जी में आया कि चलकर डाक्टर साहब से खूब बहस करूँ, पर डरा कि कहीं वह इसे बेअदबी न समझें। क्यों न महाजन के पास जा कर वह सब रुपये माँग लूँ? अभी नाबालिग हूँ, शायद उसे कुछ आपत्ति हो, लेकिन एक के दो देने पर तैयार हो जाऊँगा तो मान जायगा। लेकिन फिर शंका हुई कि चाचा साहब को मालूम हो गया तो मुँह से तो चाहे कुछ न कहें, पर मन में बहुत नाराज होंगे। बेचारा इन्हीं दुश्चिन्ताओं में डूबा हुआ मलीन, उदास जा कर लेट रहा। सन्ध्या हो गयी पर कमरे से न निकला। डाक्टर इर्फानअली ने पढ़ने के लिए बुलाया। कहला भेजा, मेरे सिर में दर्द है। भोजन का समय आया। मित्र-भवन के और सब छात्र भोजन करने लगे। माया ने कहला भेजा, मेरे सिर में दर्द है। श्रद्धा बुलाने आयी। उसे देखते ही माया रो पड़ा।

श्रद्धा ने प्रेम से आँसू पोंछते हुए कहा—बेटा, चल कर थोड़ा सा खाना खा लो। सबेरे मैं फिर उनसे कहूँगी। डाक्टर इर्फानअली ने बात बिगाड़ दी, नहीं तो मैंने तो राजी कर लिया था।

माया—चाची, मेरी खाने की बिलकुल इच्छा नहीं है। (रो कर) तेजू और पद्मू के प्राण मैंने लिये और अब मैं बाबा की कुछ मदद भी नहीं कर सकता। ऐसे जीने पर धिक्कार है।

श्रद्धा भी करुणावेग से विवश हो गयी। अंचल से माया के आँसू पोंछती थी और स्वयं रोती थी।

माया ने कहा—चाची, तुम नाहक हलाकान होती हो, मैं अभागा हूँ, मुझे रोने दो।

श्रद्धा—तुम चल कर कुछ खा लो। मैं आज ही रात को यह बात छेडूंगी।

माया का चित्त बहुत खिन्न था, पर श्रद्धा की बात न टाल सका। दो-चार कौर खाये, पर ऐसा मालूम होता था कि कौर मुँह से निकला पडता है। हाथ-मुँह धो कर फिर अपने कमरे मे लेट रहा।

सारी रात श्रद्धा यही सोचती रही कि इन्हे कैसे समझाऊँ। शीलमणि से भी सलाह ली, पर कोई युक्ति न सूझी।

प्रातःकाल बुधिया किसी काम से आयी। बातो-बातो मे कहने लगी—बहू जी, पैसा सब कोई देखता है, मेहनत कोई नही देखता। मर्द दिन भर मे एक-दो रुपया कमा लाता है तो मिजाज ही नही मिलता, औरत बेचारी रात-दिन चूल्हे-चक्की मे जुती रहे, फिर भी वह निकम्मी ही समझी जाती है।

श्रद्धा सहसा उछल पडी। जैसे सुलगती हुई आग हवा पा कर भभक उठती है। उसी भाँति इन बातो ने उसे एक युक्ति सुझा दी। भटकते हुए पथिक को रास्ता मिल गया। कोई चीज जिसे घटो से तलाश करते-करते थक गयी थी, अचानक मिल गयी। ज्यो ही बुधिया गयी, वह प्रेमशकर के पास आ कर बोली—चाचा जी को रुपये देने के बारे मे क्या निश्चय किया?

प्रेम—फिक्र मे हूँ। दो चार दिन मे कोई सूरत निकल ही आयेगी।

श्रद्धा—रुपये तो रखे ही है।

प्रेम—मुझे खर्च करने का अधिकार नही है।

श्रद्धा—यह किसके रुपये है?

प्रेम—(विस्मित होकर) माया के शिक्षार्थ दिये गये है।

श्रद्धा—तो क्या २००० रु० महीने खर्च नही होते है?

प्रेम—क्या तुम जानती नही? लगभग ८०० रु० खर्च होते है, बाकी १२०० रु० बच रहते है।

श्रद्धा—यह क्यो बच रहते है? क्या यह तुम्हारी समझ मे नही आता? डाक्टर इर्फानअली को पढाने के लिए कितना वेतन मिलना चाहिए? डाक्टर प्रियनाथ और बाबू ज्वालासिंह को भी नौकर रखते तो कुछ न कुछ देना पडता। तुम्हारी मजूरी भी कुछ न कुछ होनी ही चाहिए। तुम्हारे विचार मे इर्फानअली का वेतन कुछ होता ही नही? उनका एक दिन का मेहनताना ५०० रु० न दोगे? प्रियनाथ की आमदनी १०० रु० प्रति दिन से कम नही थी। पहले तो वह किसी के घर पढाने जाये ही नही, जाये तो ५०० रु० महीने से कम न ले। बाबू ज्वालासिंह भी १०० रु० पर महँगे नही हैं। रहे तुम। तुम्हारा भतीजा है, उसे शौक से, प्रेम से पढाते हो, पर दूसरो को क्या पडी है कि वह सेत मे अपनी सिरपच्ची करे? इन रुपयो को तुम बचत समझते हो, यह सर्वथा अन्याय है। इसे चाहे अपनी सज्जनता का पुरस्कार समझो या उनके एहसान का मूल्य, इस धन के खर्च करने का उन्हे अधिकार है।

प्रेमशकर ने सन्दिग्ध भाव से कहा—माया और तुम विना रुपये दिलाये न मानोगे, जैसी तुम्हारी इच्छा। तुम्हारी युक्ति मे न्याय है, इसे मै मानता हूँ, पर आत्मा सन्तुष्ट नही होती। मैं इस वक्त रुपये दिये देता हूँ पर इसे ण समझ कर सदैव अदा करने की चेप्टा करता रहूँगा।

६४

लाला प्रभाशकर को रुपये मिले तो वह रोये। गाँव तो बच गया, पर उसे कौन बिलसेगा? दयाशकर का चित्त फिर घर से उचाट हो चला था। साधु-सन्तो के सत्सग के प्रेमी हो गये थे। दिन-दिन वैराग्य मे रत होते जाते थे।

इधर मायाशकर की यूरोप-यात्रा पर ज्ञानशकर राजी न हुए। उनके विचारो मे अभी यात्रा से माया को यथेप्ट लाभ न पहुँच सकता था। उससे यह कही उत्तम था कि वह अपने इलाको का दौरा करे। उसके बाद हिन्दुस्तान के मुख्य-मुख्य स्थानो को देखें, अतएव चैत के महीने मे मायाशकर गोरखपुर चला गया और दो महीने तक अपने इलाके की सैर करने के बाद लखनऊ जा पहुँचा। दो महीने तक वहाँ भी अपने गाँवो का दौरा करता रहा। प्रतिदिन जो कुछ देखता अपनी डायरी मे लिख लेता। कृषको की दशा का खूब अध्ययन किया। दोनो इलाको के किसान उसके प्रजा-प्रेम, विनय और शिष्टता पर मुग्ध हो गये। उसने उनके दिलो मे घर कर लिया। भय की जगह प्रेम का विकास हो गया। लोग उसे अपना उच्च हितैषी समझने लगे। उसके पास आ कर अपनी विपत्ति-कथा सुनाते। उसे उनकी वास्तविक दशा का ऐसा परिचय किसी अन्य रीति से न मिल सकता था। चारो तरफ तबाही छायी हुई थी। ऐसा विरला ही कोई घर था जिसमे धातु के बर्तन दिखाई देते हो। कितने घरो मे लोहे के तवे तक न थे। मिट्टी के बर्तनो को छोड कर झोपडे मे और कुछ दिखायी न देता था। न ओढना, न बिछौना, यहाँ तक कि बहुत से घरो मे खाटे तक न थी और वह घर ही क्या थे। एक-एक, दो-दो छोटी कोठरियाँ थी। एक मनुष्यो के लिए, एक पशुओ के लिए। उसी एक कोठरी मे खाना, सोना, बैठना—सब कुछ होता था। बस्तियाँ इतनी घनी थी कि गाँव मे खुली हुई जगह दिखायी ही नही देती थी। किसी के द्वार पर सहन नही, हवा और प्रकाश का शहरो की घनी बस्तियो मे भी इतना अभाव न होगा। जो किसान बहुत सम्पन्न समझे जाते थे उनके बदन पर साबित कपडे न थे, उन्हे भी एक जून चबेना पर ही काटना पडता था। वह भी ऋण के बोझ से दबे हुए थे। अच्छे जानवरो के देखने को आँखे तरस जाती थी। जहाँ देखो छोटे-छोटे मरियल, दुर्बल बैल दिखायी देते और खेत मे रेगते और चरनियो पर औघते थे। कितने ही ऐसे गाँव थे जहाँ दूध तक न मयस्सर होता था। इस व्यापक दरिद्रता और दीनता को देख कर माया का कोमल हृदय तडप जाता था। वह स्वभाव से ही भावुक था—बहुत नम्र, उदार और सहृदय। शिक्षा और सगीत ने इन भावो को और भी चमका दिया था। प्रेमाश्रम मे नित्य सेवा और प्रजा-हित की चर्चा रहती थी। माया का सरल हृदय

उसी रग मे रँग गया। वह इन दृश्यो से दु खित हो कर प्रेमशकर को बार-बार पत्र लिखता, अपनी अनुभूत घटनाओ का उल्लेख करता और इस कष्ट को निवारण करने का उपाय पूछता, किन्तु प्रेमशकर या तो उनका कुछ उत्तर ही न देते या किसानो की मूर्खता, आलस्य आदि दु स्वभावो की गाथा ले बैठते।

माया तो अपने इलाको की सैर कर रहा था, इधर स्थानीय राजसभा के सदस्यो का चुनाव होने लगा। ज्ञानशकर इस उम्मान्य पद के पुराने अभिलाषी थे। बडे उत्साह से मैदान मे उतरे, यद्यपि यह ताल्लुकेदार सभा के मन्त्री थे, पर ताल्लुकेदारो की सहायता पर उन्हे भरोसा न था। कई बडे-बडे ताल्लुकेदार अपने गाँव के प्रतिनिधि बनने के लिए तत्पर थे। उनके सामने ज्ञानशकर को अपनी सफलता की कोई आशा न थी। इसलिए उन्होने गोरखपुर के किसानो की ओर से खडा होने का निश्चय किया। वहाँ सग्राम इतना भीषण न था। उनके गोइन्दे देहातो मे घूम-घूम कर उनका गुण-गान करने लगे। बाबू साहब कितने दयालु, ईश्वरभक्त है, उन्हे चुन कर तुम कृतार्थ हो जाओगे। वह राजसभा मे तुम्हारी उन्नति और उपकार के लिए जान लडा देंगे, लगान घटवायेंगे, प्रत्येक गाँव मे गोचर भूमि की व्यवस्था करेंगे, नजराने उठवा देंगे, इजाफा लगान का विरोध करेंगे और इखराज को समूल उखाड देंगे। सारे प्रान्त मे धूम मची हुई थी। जैसे सहालग के दिनो मे ढोल और नगाडो का नाद गूँजने लगता है उसी भाँति इस समय जिधर देखिए जाति प्रेम की चर्चा सुनायी देती थी। डाक्टर इर्फानअली बनारस महाविद्यालय की तरफ से खडे हुए। बाबू प्रियनाथ ने बनारस म्युनिसिपैल्टी का दामन पकडा। ज्वालासिंह इटावे के रईस थे, उन्होने इटावे के कृषको का आश्रय लिया। सैयद ईजाद हुसेन को भी जोश आया। वह मुसलिम स्वत्व की रक्षा के लिए उठ खडे हुए। प्रेमशकर इस क्षेत्र मे न आना चाहते थे, पर भवानीसिंह, बलराज और कादिर खाँ ने बनारस के कृषको पर उनका मन्त्र चलाना शुरू किया। तीन-चार महीनो तक बाजार खूब गर्म रहा, छापेखाने को ट्रैक्टो के छापने से सिर उठाने का अवकाश न मिलता था। कही दावतें होती थी, कही नाटक दिखाये जाते थे। प्रत्येक उम्मीदवार अपनी-अपनी ढोल पीट रहा था मानो ससार के कल्याण का उसी ने बीडा उठाया है।

अन्त मे चुनाव का दिन आ पहुँचा। उस दिन नेताओ का सदुत्साह, उनकी तत्परता, उनकी शीलता और विनय दर्शनीय थी और राय देनेवालो का तो मानो सौभाग्य-सूर्य उदय हो गया था। मोहनभोग तथा मेवे खाते थे और मोटरो पर सैर करते थे। सुबह से पहर रात तक रायो की चिट्ठियाँ पढी जाती रही।

इसके बाद के सात दिन बडी बेचैनी के दिन थे। ज्यो-त्यो करके कटे। आठवे दिन राजपत्र मे नतीजे निकल गये। आज कितने ही घरा मे घी के चिराग जले, कितनो ने मातम मनाया। ज्ञानशकर ने मैदान मार लिया, लेकिन प्रेमाश्रम निवासियो को जो सफलता प्राप्त हुई वह आश्चर्यजनक थी, इस अखाडे के सभी योद्धा विजय-पताका फहराते हुए निकले। सबसे बडी फतह प्रेमशकर की थी। वह बिना उद्योग और इच्छा के इस उच्चासन पर पहुँच गये थे। ज्ञानशकर ने यह खबर सुनी तो उनका उत्साह

भग हो गया। राजसभा मे बैठने का उतना शौक न रहा। बहुधा वृक्षपुजो मे सन्ध्या समय पक्षियो के कलरव से कान पडी आवाज नही सुनायी देती लेकिन ज्योही अन्धेरा हो जाता है और चिडियाँ अपने-अपने घोसलो मे जा बैठती हैं वहाँ नीरवता छा जाती है, उसी भाँति जाति के प्रतिनिधि गण राजसभा के सुसज्जित सुविशाल भवन मे पहुँच कर शान्ति मे मग्न हो गये। वे लम्बे-चौडे वादे, वे बडी-बडी बात सब भूल गयी। कोई मुवक्किलो के सेवा-सत्कार मे लिप्त हुआ, कोई अपने बही-खाते की देख-भाल मे, कोई अपने सैर और शिकार मे। जाति-हित की वह उमग शान्त हो गयी। लोग मनोविनोद की रीति से राजसभा मे आते और कुछ निरर्थक प्रश्न पूछ कर या अपने वाक्य-नैपुण्य का परिचय दे कर विदा हो जाते। वह कौन सी प्रेरक शक्तियाँ थी जिन्होने लोगों को इस अधिकार पर आसक्त कर रखा था। इसका निर्णय करना कठिन है, पर उनमे सेवा-भाव का जरा भी लगाव न था—यह निर्भ्रान्त है। कारण और कार्य, साधन और फल दोनों उसी अधिकार मे विलीन हो गये।

किन्तु प्रेमाश्रम में वह शिथिलता न थी। यहाँ लोग पहले से ही सेवाधर्म के अनुगामी थ। अब उन्हे अपने कार्यक्षेत्र को और विस्तृत करने का सुअवसर मिला। ये लोग नये-नये सुधार के प्रस्ताव सोचते, राजकीय प्रस्तावो के गुण-दोष की मीमासा करते, सरकारी रिपोर्टो का निरीक्षण करते। प्रश्नो द्वारा अधिकारियो के अत्याचारो का पता देते, जहाँ कही न्याय का खून होते देखते, तुरत सभा का ध्यान उसकी ओर आकर्षित करते और ये लोग केवल प्रश्नो से ही सन्तुष्ट न हो जाते थे, वरन् प्रस्तुत विषयो के मर्म तक पहुँचने की चेष्टा करने। विरोध के लिए विरोध न करते बल्कि शोध के लिए। इस सदुद्योग और कर्त्तव्यपरायणता ने शीघ्र ही राजसभा मे इस मित्र-मडल का सिक्का जमा दिया। उनकी शकाएँ, उनके प्रस्ताव, उनके प्रतिवाद आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। अधिकारी-वर्ग उनकी बातो को चुटकियो मे न उडा सकते थे। यद्यपि डाक्टर इर्फान अली इस मडल के मुखपात्र थे, पर खुला हुआ भेद था कि प्रेमशकर ही उसके कर्णधार हैं।

इस तरह दो साल बीत गये और यद्यपि मित्र-मडल ने सभा को मुग्ध कर लिया था, पर अभी तक प्रेमशकर को अपना वह प्रस्ताव सभा मे पेश करने का साहस न हुआ जो बहुत दिनो से उनके मन मे समाया हुआ था और जिसका उद्देश्य यह था कि जमीदारो से असामियो को बेदखल करने का अधिकार ले लिया जाय। वह स्वय जमीदार घराने के थे, माया जिसे वह पुत्रवत् प्यार करते थे एक बडा ताल्लुकेदार हो गया था। ज्वालासिंह भी जमीदार थे। लाला प्रभाशकर जिनको वह पिता तुल्य समझते थे अपने अधिकारो मे जौ भर की कमी भी न सह सकते थे, इन कारणो से वह प्रस्ताव को सभा के सम्मुख लाते हुए सकुचाते थे। यद्यपि सभा मे भूपतियो की सख्या काफी थी और सख्या के देखते दबाव और भी ज्यादा था, पर प्रेमशकर को सभा का इतना भय न था जितना अपने सम्बन्धियो का, इसके साथ ही अपने कर्त्तव्य-मार्ग से विचलित होते हुए उनकी आत्मा को दु ख होता था।

एक दिन वह इसी दुविधा मे बैठे हुए थे कि मायाशकर एक पत्र लिये हुए आया और वोला—देखिए, वावू दीपक सिंह सभा मे कितना घोर अनर्थ करने का प्रयत्न कर रहे है? वह सभा मे इस आशय का प्रस्ताव लानेवाले है कि जमीदारो को असामियो से लगान वसूल करने के लिए ऐसे अधिकार मिलने चाहिए कि वे अपनी इच्छा से जिस असामी को चाहे वेदखल कर दे। उनके विचार मे जमीदारो को यह अधिकार मिलने से रुपये वसूल करने मे वडी सुविधा हो जायगी। प्रेमशकर ने उदासीन भाव से कहा—मैं यह पत्र देख चुका हूँ।

माया—पर आपने इसका कुछ उत्तर नही दिया?

प्रेमशकर ने आकाश की ओर ताकते हुए कहा—अभी तो नही दिया।

माया—आप समझते है कि सभा मे प्रस्ताव स्वीकृत हो जायगा?

प्रेम—हाँ, सम्भव है।

माया—तव तो जमीदार लोग असामियो को कुचल ही डालेंगे।

प्रेम—हाँ, और क्या?

माया—अभी से इस आन्दोलन की जड काट देनी चाहिए। आप इस पत्र का जवाव दे दे तो वावू दीपकसिंह को अपना प्रस्ताव सभा मे पेश करने का साहस न हो।

प्रेम—ज्ञानशकर क्या कहेगे?

माया—मैं जहाँ तक समझता हूँ, वह इस प्रस्ताव का समर्थन न करेगे।

प्रेम—हाँ, मुझे भी ऐसी आशा है।

मायाशकर चचा की वातो से उनकी चित्त-वृत्ति को ताड गये।

वह जव से अपने इलाके का दौरा करके लौटा था, अक्सर कृपको की सुदशा के उपाय सोचा करता। इस विपय की कई कितावे पढी थी और डाक्टर इर्फानअली से भी जिज्ञासा करता रहता था। प्रेमशकर को असमजस मे देख कर उसे वहुत खेद हुआ। वह उनसे तो और कुछ न कह सका, पर उस पत्र का प्रतिवाद करने के लिए उसका मन अधीर हो गया। आज तक उसने कभी समाचार-पत्रो के लिए कोई लेख न लिखा था। डरता था, लिखते वने या न वने, सम्पादक छापे या न छापे। दो-तीन दिन वह इसी आगा-पीछा मे पडा रहा। अन्त मे उसने उत्तर लिखा और कुछ सकुचाते, कुछ डरते डाक्टर इर्फानअली को दिखाने ले गया। डाक्टर महोदय ने लेख पढा तो, चकित हो कर पूछा—यह सव तुम्ही ने लिखा है?

माया—जी हाँ, लिखा तो है, पर वना नही।

इर्फान—वाह! इससे अच्छा तो मै भी नही लिख सकता। यह सिफत तुम्हे वावू ज्ञानशकर से विरासत मे मिली है।

माया—तो भेज दूँ, छप जायगा?

इर्फान—छपेगा क्यो नही? मैं खुद भेज देता हूँ।

प्रेमशकर रोज पत्रो को ध्यान से देखते कि दीपकसिंह के पत्र का किसी ने उत्तर दिया या नही, पर आठ-दस दिन बीत गये और आशा न पूरी हुई। कई बार उनकी

इच्छा हुई कि कल्पित नाम से इस लेख का उत्तर दूं, लेकिन कुछ तो अवकाश न मिला, कुछ चित्त की दशा अनिश्चित रही, न लिख सके। बारहवें दिन उन्होंने पत्र खोला तो मायाशंकर का लेख नजर आया। आद्योपान्त पढ गये। हृदय मे एक गौरवपूर्ण उल्लास का आवेग हुआ। तुरन्त श्रद्धा के पास गये और लेख पढ़ सुनाया। फिर इर्फानअली के पास गये। उन्होंने पूछा—कोई खबर है क्या ?

प्रेम—आपने देखा नही, माया ने दीपकसिंह के पत्र का कैसा युक्तिपूर्ण उत्तर दिया है ?

इर्फान—जी हाँ, देखा। मैं तो आपसे पूछने आ रहा था कि यह माया ने ही लिखा है या आपने कुछ मदद की है ?

प्रेम—मुझे तो खबर भी नहीं, उसी ने लिखा होगा।

इर्फान—तो उसको मुवारकवाद देनी चाहिए, बुलाऊँ !

प्रेम—जी नही। उसके इस जोश को दवाने की जरूरत है। ज्ञानशंकर यह लेख देख कर रोयेंगे। सारा इलजाम मेरे ऊपर आयेगा। कहेंगे कि आपने लड़के को बहका दिया, पर मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि मैंने उसे यह पत्र लिखने के लिए इशारा तक नही किया। इसी बदनामी के डर से मैंने खुद नही लिखा।

इर्फान—आप यह इल्जाम मेरे सिर पर रख दीजिएगा। मैं बडी खुशी से इसे ले लूंगा।

प्रेम—कल उनका कोप-पत्र आ जायगा। माया ने मेरे साथ अच्छा सलूक नही किया !

इर्फान—भाभी साहिबा का क्या ख्याल है ?

प्रेम—उनकी कुछ न पूछिए। वह तो इस खुशी मे दावत करना चाहती है।

प्रेमशंकर का अनुमान अक्षरशः सत्य निकला। तीसरे दिन ज्ञानशंकर का कोप-पत्र आ पहुँचा। आशय भी यही था—मुझे आपसे ऐसी आशा न थी। साम्यवाद के पाठ पढा कर आपने सरल बालक पर घोर अत्याचार किया है। उसका अठारहवाँ वर्ष पूरा हो रहा है। उसे शीघ्र ही अपने इलाके का शासनाधिकार मिलनेवाला है। मैं इस महीने के अन्त तक इन्ही तैयारियो के लिए आनेवाला हूँ। हिज एक्सलेन्सी गवर्नर महोदय स्वयं राज्य तिलक देने के लिए पधारने वाले हैं। उस मृदु संगीत को इस बेसुरे राग ने चौपट कर दिया। आपको अपने प्रजावाद का बीज किसी और खेत मे बोना चाहिए था। आपने अपने शिक्षाधिकार का खेदजनक दुरुपयोग किया है। अब मुझपर दया कर माया को मेरे पास भेज दीजिए। मैं नही चाहता कि अब वह एक क्षण भी वहाँ और रहे। अभिषेक तक मैं उसे अपने साथ रखूंगा। मुझे भय है कि वहाँ रह कर वह कोई और उपद्रव न कर बैठे. ...अस्तु।

सन्ध्या की गाड़ी से मायाशंकर ने लखनऊ को प्रस्थान किया।

६५

महाशय ज्ञानशकर का भवन आज किसी कवि कल्पना की भाँति अलकृत हो रहा है। आज वह दिन आ गया है जिसके इन्तजार में एक युग बीत गया। प्रभुत्व और ऐश्वर्य का मनोहर स्वप्न पूरा हो गया है। मायाशंकर के तिलकोत्सव का शुभ-मुहूर्त आ पहुँचा है। बँगले के सामने एक विशाल, प्रशस्त मंडप तना हुआ है। उसकी सजावट के लिए लखनऊ के चतुर फर्राश बुलाये गये हैं। मंच गगा-जमुनी कुर्सियो से जगमगा रहा है। चारो तरफ अनुपम शोभा है। गोरखपुर, लखनऊ और बनारस के मान्य पुरुष उपस्थित हैं। दीवानखाना, मकान, बँगला सब मेहमानो से भरा हुआ है। एक ओर फौजी बाजा है, दूसरी ओर बनारस के कुशल शहनाईवाले बैठे हैं। एक दूसरे शामियाने में नाटक खेलने की तैयारियाँ हो रही हैं। मित्र-भवन के छात्र अपना अभिनय कौशल दिखायेगे। डाक्टर प्रियनाथ का सगीत समाज अपने जौहर दिखायेगा। लाला प्रभाशकर मेहमानो के आदर-सत्कार मे प्रवृत्त है। दोनो रियासतो के देहातो से सैकडो नम्बरदार और मुखिया आये हुए हैं। लखनपुर ने भी अपने प्रतिनिधि भेजे है। ये सब ग्रामीण सज्जन प्रेमशकर के मेहमान हैं। कादिर खाँ, दुखरन भगत, डपट-सिंह सब आज केशरिया बाना धारण किये हुए है। वे आज अपने कारावास जीवन पर नकल करेंगे। सैयद ईजाद हुसेन ने एक जोरदार कसीदा लिखा है। इत्तहादी यतीमखाने के लडके हरी-हरी झडियाँ लिए मायाशकर का स्वागत करने के लिए खडे हैं। अँगरेज मेहमानो का स्थान अलग है। वे भी एक-एक करके आते-जाते हैं। उनके सेवा-सत्कार का भार डाक्टर इर्फानअली ने लिया है। उन लोगो के मनोरजन के लिए प्रोफेसर रिचर्डसन कलकत्ते से बुलाये गये हैं जिनका गान विद्या मे कोई सानी नही है। बाबू ज्ञानशकर गवर्नर महोदय के स्वागत की तैयारियो मे मग्न है।

सन्ध्या का समय था। बसन्त की शुभ्र, सुखदा समीर चल रही थी। लोग गवर्नर का स्वागत करने के लिए स्टेशन की तरफ चले। ज्ञानशकर का हाथी सबसे आगे था। पीछे-पीछे बैंड बजता जा रहा था। स्टेशन पर पहले से ही फूलो का ढेर लगा दिया गया था। ज्यो ही गवर्नर की स्पेशल आयी और वह गाडी से उतरे, उन पर फूलो की वर्षा हुई। उन्हे एक सुसज्जित फिटन पर बिठाया गया। जलूस चला। आगे-आगे हाथियो की माला थी। उसके पीछे राजपूतो की एक रेजीमेंट थी। फौज के बाद गवर्नर महोदय की फिटन थी जिस पर कारचोबी का छत्र लगा हुआ था। फिटन के पीछे शहर के रईसो की सवारियाँ थी। उनके बाद पुलिस के सवारो की एक टोली थी। सबसे पीछे बाजे थे। यह जलूस नगर की मुख्य सडको पर होता हुआ, चिराग जलते-जलते ज्ञानशकर के मकान पर आ पहुँचा। हिज एक्सेलेन्सी महाराज गुरुदत्तराय चौधरी फिटन से उतरे और मच पर आ कर अपनी निर्दिष्ट कुर्सी पर विराजमान हो गये। विद्युत के उज्ज्वल प्रकाश मे उनकी विशाल प्रतिभासम्पन्न मूर्त्ति, गभीर, तेजमय ऐसी मालूम होती थी मानो स्वर्ग से कोई दिव्य आत्मा उतर आयी हो। केसरिया

साफा और सादे श्वेतवस्त्र उनकी प्रतिभा को और भी चमकाते थे। रईस लोग कुर्सियों पर बैठे। देहाती मेहमानों के लिए एक तरफ उज्ज्वल फर्श बिछा हुआ था। प्रेमशंकर ने उन्हे वहाँ पहले से ही बिठा रखा था। सब लोगो के यथास्थान बैठ जाने के बाद मायाशकर, रेशम और रत्नो से चमकता हुआ दीवानखाने से निकला और मित्र-भवन के छात्रो के साथ पडाल मे आया। बन्दूको की सलामी हुई, ब्राह्मण-समाज ने मगला-चरण गान शुरू किया। सब लोगो ने खड़े हो कर उसका अभिवादन किया। महाराज गुरुदत्तराय ने नीचे उतर कर उसे आलिंगन किया और उसे ला कर उसके सिंहासन पर बैठा दिया। मायाशकर के मुख-मडल पर इस समय हर्ष या उल्लास का कोई चिह्न न था। वह चिंता और विचार मे डूबा हुआ नजर आता था। विवाह के समय मंडप के नीचे वर की जो दशा होती है वही दशा इस समय उसकी थी। उसके ऊपर कितना उत्तरदायित्व का भार रखा जाता था! आज से उसे कितने प्राणियो के पालन का, कल्याण का, रक्षा का कर्त्तव्य पालन करना पड़ेगा, सोते-जागते, उठते-बैठते न्याय और धर्म पर निगाह रखनी पडेगी, उसके कर्मचारी प्रजा पर जो-जो अत्याचार करेंगे उन सबका दोष उसके सिर पर होगा। दीनों की हाय और दुर्बलों के आँसुओं से उसे कितना सशक रहना पड़ेगा। इन आंतरिक भावो के अतिरिक्त ऐसी भद्र मडली के सामने खड़े होने और हजारो नेत्रो के केन्द्र बनने का संकोच कुछ कम अशान्तिकारक न था।

कार्यवाही आरम्भ हुई। मगलगान के बाद पंडित श्रीनिवास वेदाचार्य ने ईश्वर-प्रार्थना की। तब सैयद ईजाद हुसेन ने अपना जोरदार कसीदा पढ़ा जिसकी श्रोताओं ने खूब प्रशसा की। उनके बैठते ही यतीमखाने के बालको ने गवर्नर महोदय का गुणानुवाद गाया। उनके स्वर लालित्य पर लोग मुग्ध हो गये। तब बाबू ज्ञानशंकर उठे और अपना प्रभावशाली अभिनदन-पत्र पढ़ सुनाया। उसकी भाषा और भाव दोनों ही निर्दोष थे। डाक्टर इर्फानअली ने हिंदुस्तानी भाषा में उसका अनुवाद किया। तब महाराज साहब उसका उत्तर देने के लिए खड़े हुए। उन्होंने पहले ज्ञानशंकर और और अन्य रईसो को धन्यवाद दिया, दो-चार मार्मिक वाक्यो मे ज्ञानशकर की कार्य-पटुता और योग्यता की प्रशसा की, राय कमलानद और रानी गायत्री के सुयश और सुकीर्ति, प्रजा-रजन और आत्मोत्सर्ग का उल्लेख किया। तब माया शंकर को संबोधित करके उसके सौभाग्य पर हर्ष प्रकट किया। वक्तृता के शेष भाग मे मायाशंकर को कर्त्तव्य और सुनीति का उपदेश दिया, अन्त मे आशा प्रकट की कि वह अपने देश, जाति और राज्य का भक्त और समाज का भूषण बनेगा।

तब मायाशकर उत्तर देने के लिए उठा। उसके पैर कांप रहे थे और छाती में जोर की धड़कन हो रही थी। उसे भय होता था कि कही मैं घबरा कर बैठ न जाऊँ। उसका दिल बैठा जाता था। ज्ञानशकर ने पहले से ही उसे तैयार कर रखा था। उत्तर लिख कर याद करा दिया था, पर मायाशकर के मन मे कुछ और ही भाव थे। उसने अपने विचारों का जो क्रम स्थिर कर रखा था वह छिन्न-भिन्न हो गया था। एक क्षण तक वह हतबुद्धि बना अपने विचारो को सँभालता रहा, कैसे शुरू करूँ, क्या कहूँ?

प्रेमशकर सामने बैठे हुए उसके सकट पर अधीर हो रहे थे। सहसा मायाशकर की निगाह उन पर पड गयी। इस निगाह ने उसपर वही काम किया जो रुकी हुई गाडी पर ललकार करती है। उसकी वाणी जाग्रत हो गयी। ईश्वर-प्रार्थना और उपस्थित महानुभावो को धन्यवाद देने के वाद वोला —

महाराज साहब, मैं उन अमूल्य उपदेशो के लिए अन्त करण से आपका अनुगृहीत हूँ जो आपने मेरे आनेवाले कर्त्तव्यो के विषय मे प्रदान किये है। और आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं यथासाध्य उन्हे कार्य मे परिणत करूँगा। महोदय ने कहा है कि ताल्लुकेदार अपनी प्रजा का मित्र, गुरु और सहायक है। मैं वडी विनय के साथ निवेदन करूँगा कि वह इतना ही नही, कुछ और भी है, वह अपने प्रजा का सेवक भी है। यही उसके अस्तित्व का उद्देश्य और हेतु है अन्यथा ससार मे उसकी कोई जरूरत न थी, उसके विना समाज के सगठन मे कोई वाधा न पडती। वह इसलिए नही है कि प्रजा के पसीने की कमाई को विलास और विषय-भोग मे उडाये, उनके टूटे-फूटे झोपडो के सामने अपना ऊँचा महल खडा करे, उनकी नम्रता को अपने रत्नजटित वस्त्रो से अपमानित करे, उनकी सतोषमय सरलता को अपने पार्थिव वैभव से लज्जित करे, अपनी स्वाद-लिप्सा से उनकी क्षुधा-पीडा का उपहास करे। अपने स्वत्वो पर जान देता हो; पर अपने कर्त्तव्य से अनभिज्ञ हो। ऐसे निरकुश प्राणियो से प्रजा की जितनी जल्द मुक्ति हो, उनका भार प्रजा के सिर मे जितनी ही जल्द दूर हो उतना ही अच्छा हो।

विज्ञ सज्जनो, मुझे यह मिथ्याभिमान नही है कि मैं इन इलाको का मालिक हूँ। पूर्व सस्कार और सौभाग्य ने मुझे ऐसी पवित्र, उन्नत, दिव्य आत्माओ की सत्सगति से उपकृत होने का अवसर दिया है कि अगर यह भ्रम, यह महत्त्व एक क्षण के लिए मेरे मन मे आता तो मैं अपने को अधम और अक्षम्य समझता। भूमि या तो ईश्वर की है जिसने इसकी सृष्टि की या किसान की जो ईश्वरीय इच्छा के अनुसार इसका उपयोग करता है। राजा देश की रक्षा करता है इसलिए उसे किसानो से कर लेने का अधिकार है, चाहे प्रत्यक्ष रूप मे ले या कोई इससे कम आपत्तिजनक व्यवस्था करे। अगर किसी अन्य वर्ग या श्रेणी को मीरास, मिल्कियत, जायदाद, अधिकार के नाम पर किसानो को अपना भोग्य-पदार्थ वनाने की स्वच्छन्दता दी जाती हे तो इस प्रथा को वर्तमान समाज-व्यवस्था का कलक चिह्न समझना चाहिए।

ज्ञानशकर के मुँह पर हवाइयाँ उडने लगी। गवर्नर साहव ने भी अनिच्छा भाव से पहलू वदला, रईसो मे इशारे होने लगे। लोग चकित थे कि इन वातो का अभिप्राय क्या है? प्रेमशकर तो मारे शर्म के गडे जाते थे। हाँ, डाक्टर इर्फानअली और ज्वालासिंह के चेहरे खिले पड़ते थे।

मायाशकर ने जरा दम ले कर फिर कहा —

मुझे भय है कि मेरी वाते कही तो अनुपयुक्त और समय विरुद्ध और कही क्रातिकारी और विद्रोहमय समझी जायेंगी, लेकिन यह भय मुझे उन विचारो के प्रकट करने

से रोक नही सकता जो मेरे अनुभव के फल हैं और जिन्हे कार्यरूप मे लाने का मुझे सुअवसर मिला है। मेरी धारणा है कि मुझे किसानो की गर्दन पर अपना जुआ रखने का कोई अधिकार नही है। यह मेरी नैतिक दुर्बलता और भीरुता होगी, अगर मैं अपने सिद्धात का भोग-लिप्सा पर बलिदान कर दूं। अपनी ही दृष्टि मे पतित हो कर कौन जीना पसन्द करेगा? मैं आप सब सज्जनो के सम्मुख उन अधिकारो और स्वत्वो का त्याग करता हूँ जो प्रथा, नियम और समाज-व्यवस्था ने मुझे दिये हैं। मैं अपनी प्रजा को अपने अधिकारो के बन्धन से मुक्त करता हूँ। वह न मेरे असामी है, न मैं उनका ताल्लुकेदार हूँ। वह सब सज्जन मेरे मित्र है। मेरे भाई है, आज से वह अपनी जोत के स्वय जमीदार है। अब उन्हे मेरे कारिन्दों के अन्याय और मेरी स्वार्थ भक्ति की यन्त्रणाएँ न सहनी पडेगी। वह इजाफे, एखराज, बेगार की विडम्बनाओ से निवृत्त हो गये। यह न समझिए कि मैंने किसी आवेग के वशीभूत हो कर यह निश्चय किया है। नही, मैंने उसी समय यह सकल्प किया जब अपने इलाको का दौरा पूरा कर चुका। आपको मुक्त करके मैं स्वय मुक्त हो गया। अब मैं अपना स्वामी हूँ, मेरी आत्मा स्वच्छन्द है। अब मुझे किसी के सामने घुटने टेकने की जरूरत नही। इस दलाली की बदौलत मुझे अपनी आत्मा पर कितने अन्याय करने पडते, इसका मुझे कुछ थोडा अनुभव हो चुका है। मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ कि उसने मुझे इस आत्म-पतन से बचा लिया। मेरा अपने समस्त भाइयो से निवेदन है कि वह एक महीने के अन्दर मेरे मुखतार के पास जा कर अपने अपने हिस्से का सरकारी लगान पूछ ले और वह रकम खजाने मे जमा कर दे। मैं श्रद्धेय डाक्टर इर्फानअली से प्रार्थना करता हूँ कि वह इस विषय मे मेरी सहायता करे और जाब्ते और कानून की जटिल समस्याओ को तै करने की व्यवस्था करें। मुझे आशा है कि मेरा समस्त भ्रातृवर्ग आपस मे प्रेम से रहेगा और जरा-जरा सी बातो के लिए अदालत की शरण न लेंगे। परमात्मा आपके हृदय मे सहिष्णुता, सद्भाव और सुविचार उत्पन्न करे और आपको अपने नये कर्त्तव्यो का पालन करने की क्षमता प्रदान करे। हाँ, मैं यह जता देना चाहता हूँ कि आप अपनी जमीन असामियो को नफे पर न उठा सकेंगे। यदि आप ऐसा करेंगे तो मेरे साथ घोर अन्याय होगा, क्योकि जिन बुराइयो को मिटाना चाहता हूँ, आप उन्ही का प्रचार करेंगे। आपको प्रतिज्ञा करनी पडेगी कि आप किसी दशा मे भी इस व्यवहार से लाभ न उठायेंगे, असामियो से नफा लेना हराम समझेंगे।

मायाशकर ज्यो ही अपना कथन समाप्त करके अपनी जगह बैठा कि हजारो आदमी चारो तरफ से आ-आ कर उसके इर्द-गिर्द जमा हो गये। कोई उसके पैरो पर गिरा पड़ता था, कोई रोता था, कोई दुआएँ देता था, कोई आनन्द से विह्वल हो कर उछल रहा था। आज उन्हे वह अमूल्य वस्तु मिल गयी थी जिसकी वह स्वप्न मे भी कल्पना न कर सकते थे। दीन किसान को जमीदार बनने का हौसला कहाँ? सैकडो आदमी गवर्नर महोदय के पैरो पर गिर पडे, कितने ही लोग बाबू ज्ञानशकर के पैरो से लिपट गये। शामियाने मे हलचल मच गयी। लोग आपस मे एक-दूसरे से गले मिलते थे

और अपने भाग्य को सराहते थे। प्रेमशकर सिर झुकाये चुपचाप खडे थे, मानो किसी गहरे विचार मे डूबे हुए हो, लेकिन उनके अन्य मित्र खुशी से फूले न समाते थे। उनकी सगर्व आँखे कह रही थी कि यह हमारी सगति और शिक्षा का फल है, हमको भी इसका कुछ श्रेय मिलना चाहिए। रईसो के प्राण सकट मे पडे हुए थे। आश्चर्य से एक दूसरे का मुँह ताकते थे, मानो अपने कानो और आँखो पर विश्वास न आता हो। कई विद्वान इस प्रश्न पर अपने विचार प्रकट करने के लिए आतुर हो रहे थे, पर यहाँ उसका अवसर न था।

गवर्नर महोदय बडे असमजस मे पडे हुए थे इस कथन का किन शब्दो मे उत्तर दूँ? वह दिल मे मायाशकर के महान् त्याग की प्रशसा कर रहे थे, पर उसे प्रकट करते हुए उन्हे भय होता था कि अन्य ताल्लुकेदारो और रईसो को बुरा न लगे। इसके साथ ही चुप रहना मायाशकर के इस महान् यज्ञ का अपमान करना था। उन्हे माया-शकर से वह प्रेममय श्रद्धा हो गयी थी, जो पुनीत आत्माओ का भाग है। खडे हो कर मृदु स्वर मे बोले—

बाबू मायाशकर! यद्यपि हममे से अधिकाश सज्जन उन सिद्धान्तो के कायल न होगे जिससे प्रेरित हो कर आपने यह अलौकिक सतोष व्रत धारण किया है, पर जो पुरुष सर्वथा हृदय-शून्य नही है वह अवश्य आपको देव तुल्य समझेगा। सम्भव है कि जीवन-पर्यन्त सुख भोगने के बाद किसी को वैराग्य हो जाये, किन्तु जिस युवक ने अभी प्रभुत्व और वैभव के मनोहर, सुखद उपवन मे प्रवेश किया उसका यह त्याग आश्चर्यजनक है। पर यदि बाबू साहब को बुरा न लगे तो मैं कहूँगा कि समाज की कोई व्यवस्था केवल सिद्धान्तो के आधार पर निर्दोष नही हो सकती, चाहे वे सिद्धान्त कितने ही उच्च और पवित्र हो। उसकी उन्नति मानव चरित्र के अधीन है। एकाधिपतियो मे देवता हो गये हैं और प्रजावादियो मे भयकर राक्षस। आप जैसे उदार, विवेकशील, दयालु स्वामी की जात से प्रजा का कितना उपकार हो सकता था। आप उनके पथदर्शक बन सकते थे। अब वह प्रजा हित-साधनो से वचित हो जायगी, लेकिन मैं इन कुत्सित विचारो से आपको भ्रम मे नही डालना चाहता। शुभ कार्य सदैव ईश्वर की ओर से होते है। यह भी ईश्वरीय इच्छा है और हमे आशा करनी चाहिए कि इसका फल अनुकूल होगा। मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि वह इन नये जमीदारो का कल्याण करे और आपकी कीर्ति अमर हो।

इधर तो मित्र-भवन की मडली नाटक खेल रही थी, मस्ताने की ताने और प्रिय-नाथ की सरोद-ध्वनि रग-भवन मे गूँज रही थी, उधर बाबू ज्ञानशकर नैराश्य के उन्मत्त आवेश मे गगातट की ओर लपके चले जाते थे जैसे कोई टूटी हुई नौका जल-तरगो मे बहती चली जाती हो। आज प्रारब्ध ने उन्हे परास्त कर दिया। अब तक उन्होने सदैव प्रारब्ध पर विजय पायी थी। आज पासा पलट गया और ऐसा पलटा कि सँभलने की कोई आशा न थी। अभी एक क्षण पहले उनका भाग्य-भवन जगमगाते हुए दीपको से प्रदीप्त हो रहा था, पर वायु के एक प्रचड झोके ने उन दीपको को बुझा दिया।

अब उनके चारो तरफ गहरा, घना, भयावह अँधेरा था जहाँ कुछ न सूझता था।

वह सोचते चले जाते थे, क्या इसी उद्देश्य के लिए मैंने अपना जीवन समर्पण किया? क्या अपनी नाव इसी लिए बोझी थी कि वह जलमग्न हो जाय?

हा वैभव लालसा! तेरी बलि वेदी पर मैंने क्या नही चढ़ाया? अपना धर्म, अपनी आत्मा तक भेंट कर दी। हा! तेरे भाड मे मैंने क्या नही झोका? अपना मन, वचन, कर्म सब कुछ आहुति कर दी। क्या इसी लिए कि कालिमा के सिवा और कुछ हाथ न लगे।

मायाशंकर का कसूर नही, प्रेमशंकर का दोष नही, यह सब मेरे प्रारब्ध की कूटलीला है। मैं समझता था मैं स्वय अपना विधाता हूँ। विद्वानो ने भी ऐसा ही कहा है, पर आज मालूम हुआ कि मैं इसके हाथो का खिलौना था। उसके इशारो पर नाचनेवाली कठपुतली था। जैसे बिल्ली चूहे को खेलाती है, जैसे मछुआ मछली को खेलाता है उसी भाँति इसने मुझे अभी तक खेलाया। कभी पजे मे धीरे से पकड लेता था, कभी छोड़ देता था। जरा देर के लिए उसके पजे मे छूट कर मैं सोचता था उस पर विजय पायी, पर आज उस खेल का अन्त हो गया, बिल्ली ने गर्दन दबा दी, मछुए ने वंसी खीच ली। मनुष्य कितना दीन, कितना परवश है! भावी कितनी प्रबल, कितनी कठोर!

जो तिमजिला भवन मैंने एक युग मे अविश्रान्त उद्योग से खडा किया वह क्षण-मात्र मे इस भाँति भूमिस्थ हो गया मानो उसका अस्तित्व न था, उसका चिह्न तक नही दिखायी देता। क्या वह विशाल अट्टालिका भावी की केवल माया रचना थी?

हा! जीवन कितना निरर्थक सिद्ध हुआ। विषय-लिप्सा, तूने मुझे कही का न रखा। मैं आँख तेज करके तेरे पीछे-पीछे चला और तूने मुझे इस घातक भँवर मे डाल दिया।

मैं अब किसी को मुँह दिखाने योग्य नही रहा। सम्पत्ति, मान, अधिकार किसी का शोक नही। इसके बिना भी आदमी सुखी रह सकता है; बल्कि सच पूछो तो सुख इनसे मुक्त रहने मे ही है। शोक यह है कि मैं अल्पांश मे भी इस यश का भागी नही बन सकता। लोग इसे मेरे विषय-प्रेम की यन्त्रणा समझेंगे। कहेगे कि बेटे ने बाप का कैसा मान-मर्दन किया, कैसी फटकार बतायी? यह व्यंग, यह अपमान कौन सहेगा? हा! मुझे पहले से इस अन्त का ज्ञान हो जाता तो आज मैं पूज्य समझा जाता, त्यागी पुत्र का धर्मज्ञ पिता कहलाने का गौरव प्राप्त करता। प्रारब्ध ने कैसा गुप्ताघात किया! अब क्यो जिन्दा रहूँ? इसलिए कि तू मेरी दुर्गति और उपहास पर खुश हो, मेरी प्राण-पीड़ा पर तालियाँ बजाये! नही, अभी इतना लज्जाहीन, इतना बेहया नही हूँ।

हा! विद्या! मैंने तेरे साथ कितना अत्याचार किया। तू सती थी, मैंने तुझे पैरो तले रौंदा। मेरी बुद्धि कितनी भ्रष्ट हो गयी थी! देवी, इस पतित आत्मा पर दया कर!

इन्ही दु:खमय भावो मे डूबे हुए ज्ञानशंकर नदी के किनारे आ पहुँचे। घाटो पर इधर-उधर साँड बैठे हुए थे। नदी का मलिन, मध्यम स्वर नीरवता को और भी नीरव बना रहा था।

ज्ञानशंकर ने नदी को कातर नेत्रो से देखा। उनका शरीर काँप उठा, वह रोने लगे। उनका दु ख नदी से कही अपार था।

जीवन की घटनाएँ सिनेमा चित्रो के सदृश्य उनके सामने मूर्तिमान हो गयी। उनकी कुटिलताएँ आकाश के तारागण से भी उज्ज्वल थी। उनके मन ने प्रश्न किया, क्या मरने के सिवा और कोई उपाय नही है ?

नैराश्य ने कहा, नही, कोई उपाय नही ! वह घाट के एक पील पाये पर जा कर खडे हो गये। दोनो हाथ तौले, जैसे चिडिया पर तौलती है, पर पैर न उठे।

मन ने कहा, तुम भी प्रेमाश्रम मे क्यो नही चले जाते ? ग्लानि ने जवाब दिया, कौन मुँह ले कर जाऊँ ? मरना तो नही चाहता, पर जीऊँ कैसे ? हाय ! मैं जबरन मारा जा रहा हूँ। यह सोच कर ज्ञानशकर जोर से रो उठे। आँसू की झडी लग गयी। शोक और भी अथाह हो गया। चित्त की समस्त वृत्तियाँ इस अथाह शोक मे निमग्न हो गयी। धरती और आकाश, जल और थल सब इसी शोक-सागर मे समा गये।

वह एक अचेत, शून्य दशा मे उठे और गगा मे कूद पडे। शीतल जल ने हृदय को शान्त कर दिया।

उपसंहार

दो साल हो गये है। सन्ध्या का समय है। बाबू मायाशकर घोडे पर सवार लखनपुर मे दाखिल हुए। उन्हे वहाँ बडी रौनक और सफाई दिखायी दी। प्राय सभी द्वारो पर सायबान थे। उनमे बडे-बडे तख्ते बिछे हुए थे। अधिकाश घरो पर सुफेदी हो गयी थी। फूस के झोपडे गायब हो गयें थे। अब सब घरो पर खपरैल थे। द्वारो पर बैलों के लिए पक्की चरनियाँ बनी हुई थी और कई द्वारो पर घोडे बँधे हुए नजर आते थे। पुराने चौपाल मे पाठशाला थी और उसके सामने एक पक्का कुँआ और धर्मशाला थी। मायाशकर को देखते ही लोग अपने-अपने काम छोड कर दौडे और एक क्षण मे सैकडो आदमी जमा हो गये। मायाशकर सुक्खू चौधरी के मन्दिर पर रुके। वहाँ इस वक्त बडी बहार थी। मन्दिर के सामने सहन मे भाँति-भाँति के फूल खिले हुए थे। चबूतरे पर चौधरी बैठे हुए रामायण पढ रहे थे और कई स्त्रियाँ बैठी हुई सुन रह थी। मायाशकर घोडे से उतर कर चबूतरे पर जा बैठे।

सुखदास हकबका कर खडे हो गये और पूछा—सब कुशल है न ? क्या अभी चले आ रहे है ?

माया—हाँ, मैंने कहा चलूँ तुम लोगो से भेट-भाँट करता आऊँ।

सुख—बडी कृपा की। हमारे धन्य-भाग कि घर बैठे स्वामी के दर्शन होते है। यह कह कर वह लपके हुए घर मे गये, एक ऊनी कालीन ला कर बिछा दी, कल्से मे पानी खीचा और शरबत घोलने लगे। मायाशकर ने मुँह-हाथ धोया, शरबत पीया, घोडे की लगाम उतार रहे थे कि कादिरखाँ ने आ कर सलाम किया। माया ने कहा, कहिए खाँ साहब, मिजाज तो अच्छा है ?

कादिर—सब अल्लाताला का फजल है। तुम्हारे जान-माल की खैर मनाया करते हैं। आज तो रहना होगा न ?

माया—यही इरादा करके तो चला हूँ।

थोडी देर मे वहाँ गाँव के सब छोटे-बडे आ पहुँचे। इधर-उधर की बातें होने लगी। कादिर ने पूछा—बेटा, आजकल कौसिल मे क्या हो रहा है ? असामियो पर कुछ निगाह होने की आशा है या नही ?

माया—हाँ, है ! चचा साहब और उनके मित्र लोग बडा जोर लगा रहे है। आशा है कि जल्दी ही कुछ न कुछ नतीजा निकलेगा।

कादिर—अल्लाह उनकी मेहनत सुफल करे। और क्या दुआ दे ? रोयें-रोयें से तो दुआ निकल रही है। काश्तकारो की दशा बहुत कुछ सुधरी है। बेटा, मुझी को देखो। पहले बीस बीघे का काश्तकार था, १०० रु० लगान देना पडता था। दस-बीस रुपये साल नजराने मे निकल जाते थे। अब जुमला २० रु० लगान है और नजराना नही लगता। पहले अनाज खलिहान से घर तक न आता था। आपके चपरासी-कारिन्दे वही गला दबा कर तुलवा लेते थे। अब अनाज घर मे भरते है और सुभीते से बेचते है। दो साल मे कुछ नही तो तीन-चार सौ बचे होगे। डेढ सौ की एक जोडी बैल लाये, घर की मरम्मत करायी, सायबान डाला, हाँडियो की जगह ताँबे और पीतल के बर्तन लिए और सबसे बडी बात यह है कि अब किसी की धौस नही। मालगुजारी दाखिल करके चुपके घर चले आते है। नही तो हर दम जान सूली पर चढी रहती थी। अब अल्लाह की इबादत मे भी जी लगता है, नही तो नमाज भी बोझ मालूम होती थी।

माया—तुम्हारा क्या हाल है दुखरन भगत ?

दुखरन—भैया, अब तुम्हारे अकबाल से सब कुशल है। अब जान पडता है कि हम भी आदमी है, नही तो पहले बैलो से भी गये बीते थे। बैल तो हर से आता है तो आराम से भोजन करके सो जाता है। यहाँ हर से आकर बैल की फिकिर करनी पडती थी। उससे छुट्टी मिली तो कारिन्दे साहब की खुशामद करने जाते। वहाँ से दस-ग्यारह बजे लौटते, तो भोजन मिलता। १५ बीघे का काश्तकार था। १० बीघे मौरूसी थे। उनके ५० रु० लगान देता था। ५ बीघे सिकमी जोतते थे। उनके ६० रु० देने पडते थे। अब १५ बीघे के कुल ३० रु० देने पडते है। हरी-बेगारी, गजर-नियाज सबसे गला छूटा। दो साल मे तीन-चार सौ हाथ मे हो गये। १०० रु० की एक पछाही भैस लाया हूँ। कुछ करजा था, चुका दिया।

सुखदास—और तबला-हारमोनियम लिया है, वह क्यो नही कहते ? एक पक्का कुआँ बनवाया है उसे क्यो छिपाते हो ? भैया, यह पहले ठाकुर जी के बडे भगत थे। एक बार बेगार मे पकडे गये तो आकर ठाकुर जी पर क्रोध उतारा। उनकी प्रतिमा को तोड़-ताड कर फेंक दिया। अब फिर ठाकुर जी के चरणो मे इनकी श्रद्धा हुई है ! भजन-कीर्त्तन का सब सामान इन्होने मँगवाया है !

दुखरन—छिपाऊँ क्यो ? मालिक से कौन परदा ? यह सब उन्ही का अकबाल तो है।

माया—यह बाते चचा जी सुनते, तो फूले न समाते।

कल्लू—भैया, जो सच पूछो तो चाँदी मेरी है। रक से राजा हो गया। पहले ६ बीघे का आसामी था, सब सिकमी, ७२ रु० लगान के देने पडते थे, उस पर हरदम गौस-मियाँ की चिरौरी किया करता था कि कही खेत न छीन ले। ५० रु० खाली नजराना लगता था। पियादो की पूजा अलग करनी पडती थी। अब कुल ६ रु० लगान देता हूँ। दो साल मे आदमी बन गया। फूस के झोपडे मे रहता था, अब की मकान बनवा लिया है। पहले हरदम घडका लगा रहता था कि कोई कारिन्दे से मेरी चुगली न कर आया हो। अब आनन्द से मीठी नीद सोता हूँ और तुम्हारा जस गाता हूँ।

माया—(सुक्खू चौधरी से) तुम्हारी खेती तो सब मजदूरो से ही होती होगी? तुम्हे भजन-भाव से कहाँ छुट्टी?

सुक्खू—(हँस कर) भैया, मुझे अब खेती-बारी करके क्या करना है। अब तो यही अभिलाषा है कि भगवत-भजन करते-करते यहाँ से सिधार जाऊँ। मैंने अपने चालीसो बीघे उन बेचारो को दे दिये है जिनके हिस्से मे कुछ न पडा था। इस तरह सात-आठ घर जो पहले मजूरी करते थे और बेगार के मारे मजूरी भी न करने पाते थे, अब भले आदमी हो गये। मेरा अपना निर्वाह भिक्षा से हो जाता है। हाँ, इच्छापूर्ण भिक्षा यही मिल जाती है, किसी दूसरे गाँव मे पेट के लिए नही जाना पडता। दो-चार साधु-सत नित्य ही आते रहते है। उसी भिक्षा मे उनका सत्कार भी हो जाता है।

माया—आज बिसेसर साह नही दिखायी देते।

सुक्खू—किसी काम से गये होगे। वह भी अब पहले से मजे मे है। दूकान बहुत बढा दी है, लेन-देन कम करते है। पहले रुपये मे आने से कम ब्याज न लेते थे और करते क्या? कितने ही असामियो से कौड़ी वसूल न होती थी। रुपये मारे पडते थे। उसकी कसर ब्याज से निकालते थे। अब रुपये सैकडे ब्याज देते हैं। किसी के यहाँ रुपये डूबने का डर नही है। दूकान भी अच्छी चलती है। लश्करो मे पहले दिवाला निकल जाता था। अब एक तो गाँव का बल है, कोई रोब नही जमा सकता और जो कुछ थोडा बहुत घाटा हुआ भी तो गाँववाले पूरा कर देते हैं।

इतने मे बलराज रेशमी साफा बाँधे, मिर्जई पहने, घोडे पर सवार आता दिखायी दिया। मायाशकर को देखते ही बेधडक घोडे पर से कूद पडा और उनके चरण स्पर्श किये। वह अब जिला-सभा का सदस्य था। उसी के जल्से से लौटा आ रहा था।

माया ने मुस्करा कर पूछा—कहिए मेम्बर साहब, क्या खबर है?

बलराज—हजूर की दुआ से अच्छी तरह हूँ। आप तो मजे मे है? बोर्ड के जल्से मे गया था। बहस छिड गयी, वही चिराग जल गया।

माया—आज बोर्ड मे क्या था?

बलराज—वही बेगार का प्रश्न छिडा हुआ था। खूब गर्मागर्म बहस हुई। मेरा प्रस्ताव था कि जिले का कोई हाकिम देहात मे जा कर गाँववालो से किसी तरह की खिदमत का काम न ले, जैसे पानी भरना, घास छीलना, झाडू लगाना। जो रसद

दरकार हो वह गाँव के मुखिया से कह दी जाय और बाजार भाव से उसी दम दाम चुका दिया जाय। इस पर दोनो तहसीलदार और कई हुक्काम बहुत भन्नाये। कहने लगे, इससे सरकारी काम मे बड़ा हर्ज होगा। मैंने भी जी खोल कर जो कुछ कहते बना, कहा। सरकारी काम प्रजा को कष्ट दे कर और उनका अपमान करके नही होना चाहिए। हर्ज होता है तो हो। दिल्लगी यह है कि कई जमीदार भी हुक्काम के पक्ष मे थे। मैंने उन लोगो की खूब खबर ली। अन्त मे मेरा प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। देखे जिलाधीश क्या फैसला करते है। मेरा एक प्रस्ताव यह भी था कि निर्खनामा लिखने के लिए एक सब-कमेटी बनायी जाय जिसमें अधिकाश व्यापारी लोग हों। यह नही कि तहसीलदार ने कलम उठाया और मनमाना निर्ख लिख कर चलता किया। वह प्रस्ताव भी मंजूर हुआ।

माया—मैं इन सफलताओ पर तुम्हे बधाई देता हूँ।

बलराज—यह सब आपका अकबाल है। यहाँ पहले कोई अखबार का नाम भी न जानता था। अब कई अच्छे-अच्छे पत्र भी आते है। सबेरे आपको अपना वाच-नालय दिखाऊँगा। गाँव के लोग यथायोग्य १ रु०, २ रु० मासिक चन्दा देते है, नही तो पहले हम लोग मिल कर पत्र मँगाते थे तो सारा गाँव बिदकता था। जब कोई अफसर दौरे पर आता, कारिन्दा साहब चट उससे मेरी शिकायत करते। अब आपकी दया से गाँव मे रामराज है। आपको किसी दूसरे गाँव मे पूसा और मुजफ्फरपुर का गेहूँ न दिखायी देगा। हम लोगो ने अबकी मिल कर दोनो ठिकानो से बीज मँगवाये और डेवढ़ी पैदावार होने की पूरी आशा है। पहले यहा डर के मारे कोई कपास बोता ही न था। मैंने अबकी मालवा और नागपुर से बीज मँगवाये और गाँव मे बाँट दिये। खूब कपास हुई। यह सब काम गरीब असामियो के मान के नही है जिनको पेट भर भोजन तक नही मिलता, सारी पैदावार लगान और महाजन के भेट हो जाती है।

यही बाते करते-करते भोजन का समय आ पहुँचा। लोग भोजन करने गये। मायाशकर ने भी पूरियाँ दूध मे मल कर खायी, दूध पिया और वही लेटे। थोड़ी देर मे लोग खा-पीकर आ गये। गाने-बजाने की ठहरी। कल्लू ने गाया। कादिर खाँ ने दो-तीन पद सुनाये। रामायण का पाठ हुआ। सुखदास ने कबीरपन्थी भजन सुनाये। कल्लू ने एक नकल की। दो-तीन घटे खूब चहल-पहल रही। माया को बड़ा आनन्द आया। उसने भी कई अच्छी चीजे सुनायी। लोग उनके स्वर माधुर्य पर मुग्ध हो गये।

सहसा बलराज ने कहा—बाबू जी आपने सुना नही ? मिर्ज़ा फैजुल्ला पर जो मुकदमा चल रहा था, उसका आज फैसला सुना दिया गया। अपनी पडोसिन बुढिया के घर मे घुस कर चोरी की थी। तीन साल की सजा हो गयी।

डपटसिंह ने कहा—बहुत अच्छा। सौ बेत पड़ जाते तो और भी अच्छा होता। यह हम लोगो की आह पडी है।

माया—बिन्दा महाराज और कर्तारसिंह का भी कही पता है?

बलराज—जी हाँ बिन्दा महाराज तो यही रहते हैं। उनके निर्वाह के लिए हम

लोगो ने उन्हे यहाँ का बया वना दिया है। कर्तार पुलिस मे भरती हो गये।

दस बजते-बजते लोग बिदा हुए। मायाशंकर ऐसे प्रसन्न थे मानो स्वर्ग में बैठे हुए हैं।

स्वार्थ-सेवी, माया के फन्दो मे फँसे हुए मनुष्यो को यह शान्ति, यह सुख, यह आनन्द, यह आत्मोल्लास कहाँ नसीब!